श्रीराजमाला

(त्रिपुर राजन्यवर्गों का इतिवृत्त)

प्रथम लहर

TRIPURA
ETIHAS, KALA,
SANSKRATI

अनुवादक व लेखक
अरविन्द कुमार त्रिपाठी
अलका त्रिपाठी
E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Fone - 8762396880

Shri Rajmala / श्रीराजमाला
Tripur Rajanyavargi ka Etivratta (त्रिपुर राजन्यवर्गों का इतिवृत्त)
Pratham Lehar/प्रथम लहर.

Publisher : Self / E-Book – PDF

Key Words
इतिहास, त्रिपुरा, त्रिपुरा इतिहास, कला, संस्कृति, पर्यटन राजमाला, श्रीराजमाला,
Shri Rajmala TRIPURA, ETIHAS, ETIHAAS, KALA, SANSKRATI, PARYATAN

Translator / Editor ARVIND KUMAR TRIPATHI
ALKA TRIPATHI

Typeset ARVIND KUMAR TRIPATHI
ALKA TRIPATHI

Font used Hindi/ Devnagari - Kruti Dev 010, Size - 14
English – Arial, Size - 10

Print PDF format, Other format available on request
Self-Publishing (No publisher)
E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Phone - 8762396880

Price Rs 00/-, Free, निःशुल्क, मुक्त, स्वतन्त्र
ISBN 978-93-5473-628-5
Book Title : SRIRAJMALA- PRATHAM BHAG

लेखक



अरविन्द कुमार त्रिपाठी, DIG (Retired)
पुत्र स्वर्गीय आचार्य श्री भगवान दास त्रिपाठी
शिक्षा– विज्ञान परास्नातक(भौतिकी), शिक्षा स्नातक
सेवारत कोर्स व प्रशिक्षण (कुल 24),
सी सु ब द्वारा प्रदत्त विभिन्न सेवा
पदक व अलंकरण

E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Fone - 8762396880

विज्ञान परास्नातक(भौतिकी), शिक्षा स्नातक के पश्चात अध्यापन कार्य करते हुए 1987 में सीमा सुरक्षा बल में सहायक समादेष्टा (Assistant Commandant) के पद पर प्रवेश कर उप महानिरीक्षक के पद से लगभग 33साल का सफल कार्यकाल पूर्ण कर अगस्त 2019 में सेवानिवृत्त हुए।

सेवा कार्यकाल में 1993 ई में त्रिपुरा में पहला पदस्थापन हुआ। सेवा काल में लगभग 11वर्ष त्रिपुरा में रहा और इसी संक्रमण में त्रिपुरा इतिवृत्त, समस्त जनजातियों पर विस्तृत अध्ययन कर लेखन कार्य भी किया।



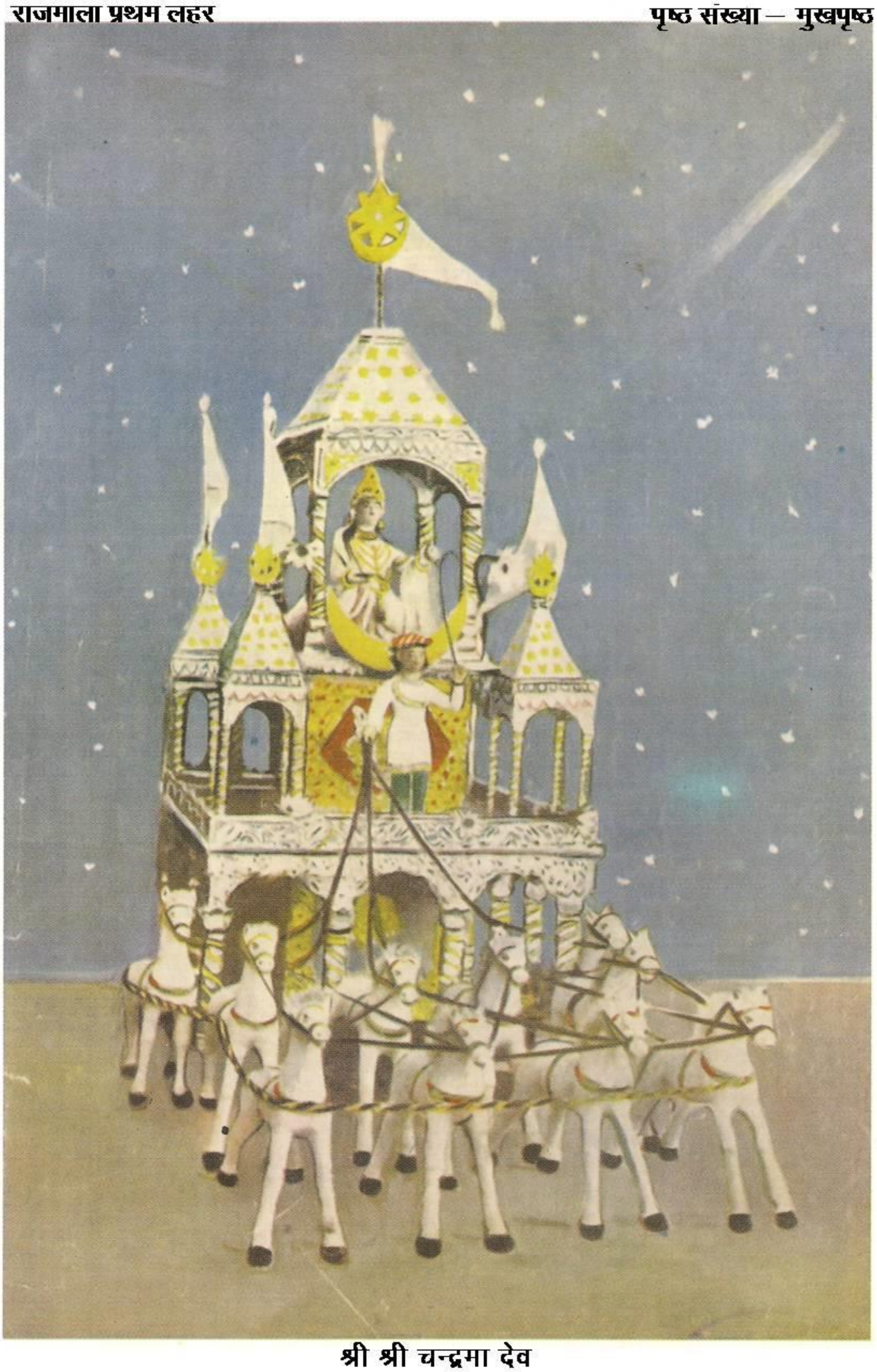
अलका त्रिपाठी
शिक्षा परास्नातक(हिन्दी),
स्नातक(हिन्दी व संस्कृत)
शिक्षा स्नातक व **M. Phil.**

प्रकाशित पुस्तकें
श्रीराजमाला : प्रथम भाग
श्रीराजमाला : द्वितीय भाग
श्रीराजमाला : तृतीय भाग
श्रीराजमाला : चतुर्थ भाग
और अन्य पुस्तकें

Key Words

lok, kala, geet,git, chitra, chitra kala, song, sahitya, business, byapar vyapaar, krashi, backward, pichhadapan, akal, sukha, femanin, kanluage, boli, idiom, kavat, muhavare, natya, nratya, vadya, kahani, folk, gahane, story,newspaper, club, bhavan, kile, durg, nehru,subhash, bose, aazad chandra shekhar, gandhi, pandit,

banda, history etihas, Itihas, Bhaugolic, Bhaugolik, jal, nadi, bandh Dam, Minral, Soil, Mitty, Talab, Mohal, muhalle, mandir, Cencus, Animal, bird, pakshi tree, shrub, herbs, forest, arthik, Economic,Agricultural, kheti, Mahua, chirongi,tourism, paryatan
Ammend



श्री श्री चन्द्रमा देव

सामुद्रं वैश्यमात्रेयं हस्तमात्रेयं सिताम्बरं। श्वेतं द्विबाहुं वरदं दक्षिणं सगदेतरम्
दशाश्वं श्वेत पद्मास्थं विचिन्तोय्माधिदैवतम्। जलप्रत्यधिदैवबन्ध सूर्यास्यमाहबयेत्तथा

श्रीराजमाला

(त्रिपुर राजन्यवर्गों का इतिवृत्त)

प्रथम लहर

सटीक व सचित्र
सेनापति रनचतुरनारायण कथित

श्रीकालीप्रसन्नसेन विद्याभूषण द्वारा

संपादित

''प्रजा सुखे सुखी राजा तद्दुखे यश्च दुःखित।
न कीर्तियुक्तो लोकेऽस्मिन प्रेत्य स्वर्गे महीयते।।''
विष्णु संहिता

प्रथमलहर–02

निवेदन

''राजमाला'' सम्पादन अनुष्ठान के बहुत दिन पहले गोलोक प्राप्त महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादुर के प्रयत्न में शुरू हुआ था। लेकिन उस समय ''राजरत्नाकर'' नाम से दूसरा ग्रन्थ सम्पादन के लिए मनोनिवेश करने से, राजमाला का कार्य स्थगित(बन्द) हुआ था। राजरत्नाकर के प्रथम खण्ड प्रचार के कुछ समय बाद महाराज बीमार हुए, एंव उस बीमारी मे ही उनकी मृत्यु हुई। इसलिए उस बार राजमाला के रूके हुई कार्य में हस्तक्षेप करने का सुयोग प्राप्त नहीं हुआ।

इसके बाद परलोकगत महाराज राधाकिशोरमाणिक्य बहादुर राजमाला प्रकाश के निमित्त कृत संकल्प हुए। पुज्यपाद श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याबिनोद महाशय इस बिषय मे कार्य करने के लिये वृती हुए थे। उनकी प्रयत्न से राजमाला का प्रमाणित(प्रूफ) पुस्तक अल्पसंख्यक मुलग्रन्थ मात्र मुद्रित हुई थी। नानाविध कारणो से वे इस कार्य मे इसके अलावा आगे 'अग्रसर' होने का सुयोगप्राप्त नहीं कर सके। पण्डित महाशय के सम्पादित ''शिलालिपि संग्रह'' विशेष मूल्यवान संकलन है, उनके द्वारा उनका कार्यकाल सार्थक हुआ है। जीर्णमंदिर के गात्रस्थित भग्न प्रस्तरफलक से अस्पष्ट लिपियों का पाठोद्धार करना कितना कष्टसाध्य है, भुक्तभोगी (पढ़ने वाला) को छोड़ कर, दूसरे समझ नहीं सकते। यह संग्रह त्रिपुर इतिहास के उद्धारसाधन के पक्ष में बहुत उपकारी हुआ है। महाराजमाणिक्य बहादुर के आकस्मिक मृत्यु के साथ साथ इस बार भी राजमाला का कार्य बंद हो गया, पण्डित महाशय कार्यान्तर की ओर जाने से मजबूर हुए।

इनके बाद बहुत समय तक राजमाला का कार्य स्थगित था। महाराज बिरेन्द्रकिशोरमाणिक्य बहादुर के शासनकाल में, महाराजकुमार स्वर्गीय महेन्द्रचन्द्र देबबर्मण बहादुर स्वतः–प्रवृत्त होकर उक्त वह कार्य में दुबारा हस्तक्षेप किया। पण्डित स्वर्गीय गोपालचन्द्र काव्य–व्याकरण तीर्थ महाशय, कुमारबहादुर के सहकारी रूप मे नियुक्त हुए थे, लेकिन वो लोग कोई भी कार्य करने मे समर्थ नहीं हुए। कार्य के सूत्रपात उन लागो के हस्त से उठाकर राजमाला सम्पादन के दायित्व श्रृद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त अमुल्यचरण विद्याभूषण महाशय के हस्त मे अर्पित किया गया। अमुल्य बाबु बहुत दिन से इस कार्य मे नियुक्त थे, लेकिन नानाविध कारणों से उनका समस्त कार्य सम्पन्न नहीं हो पाया।

अमुल्य बाबु के कार्यकाल मे ही स्वर्गीय महाराजमाणिक्य बहादुर के आदेशानुसार कुछ अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन के निमित्त, हमें अन्य कार्य से हटा कर वर्तमान पद में लाया गया। महाराजकुमार श्रील श्रीयुत ब्रजेन्द्रकिशोर देबबर्मण के अपने इच्छा इस अनुष्ठान से मूल नींव स्थापित हुआ था, उक्त कार्य मे व्रती होकर, प्रथमतः वैष्णव महारान घनश्याम दास संकलित सुबृहत एंव दुष्प्राप्य पदाबली ग्रन्थ ''गीत–चन्द्रोदय'' सम्पादन कार्य में हस्तक्षेप किया था।

उस समय गलती से भी सोचा नहीं, राजमाला सम्पादन के गुरूभार हमारे जैसा अक्षम व्यक्ति के हस्त में होगा। भगवान का विधान, मानव बुद्धि के अगोचर है। उनकी कृपा से गूंगा भी बात करने में का सक्षम होता है – पंगु व्यक्ति पर्वत उठने मे समर्थ होता है, एकमात्र उन्ही सर्वनियन्ता के इच्छा से राजाज्ञा

प्रथमलहर–03

शिरोधार्य करके हम अन्य कार्य स्थगित कर, राजमाला के सम्पादन कार्य में प्रबृत्त हुए। पूर्वोक्त योग्यतर व्यक्ति वर्गो के बाद इस कार्य मे ब्रती होकर पद–पद मे अपनी अक्षमता महसूस करने लगे, लेकिन यह दुःसमय मे बहुत उदारचेता महत् व्यक्ति के आशीर्वाद, मेरा प्रधान सम्बल रहा है। त्रिपुरा के भूतपूर्व मंत्री सम्मानास्पद श्रीयुक्त राय प्रनव कुमार दासगुप्त बहादुर बी0ए0, स्वर्गीय महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुक्त राणा बोधजंग बहादुर, एंव शिक्षा विभाग के भारप्राप्त कार्यकारक श्रीयुक्त सोमेन्द्रचन्द्र देबवर्मा एम0ए0(हार्वार्ड) महाशय गणों के साहाज्य की बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कार्यारंभ के अल्पकाल बाद गुरूतर विघ्न उपस्थित हुआ, महाराज माणिक्य बहादुर असमय मे ही लोकान्तरित हुए। इस मर्मान्तक घटना का गंभीर दुखः राज्य में पड़ा। नवीन भूपति अव्यस्क, राज्यों की अवस्था में क्या होगा, छोटे बड़े सभी इस चिन्ता में व्याकुल थे। उस समय कार्य की चिन्ता कौन करे? लगने लगा, पहले बार के जैसा, इस बार भी राजमाला के कार्य यहॉ पर बाधा प्राप्त होगा। लेकिन अल्पकाल के बाद मेरा वह अविश्वास दूर हो गया। देखने को मिला कि नवगठित शासन परिषद के कर्तीपक्षगण सभी इस कार्य के लिए विशेष उद्योगी थे। उद्यमशील सदस्य महाराज कुमार श्रील श्रीयुक्त ब्रजेन्द्र किशोर देबबर्मण बहादुर इस दुःसमय मे भी राजमाला के कार्यभार में स्वत प्रवृत्त हुए। उन्ही के उत्साह से मेरा उद्यमहीन हृदय मे पुनर्बार नवोत्साह जागृत हुआ था। बाद मे क्रम–क्रम से देखने को मिला कि नवीन भूपती पंचश्रीयुक्त महाराज बीरविक्रमकिशोरमाणिक्य बहादुर भी इस कार्य मे विशेष रूप से पक्षपादित एंव उत्साहदाता थे। वे दूरवर्ती स्थान मे रहने के बावजूद सदा राजमाला संक्रात कार्यो की सूचना लेते थे। इतिहास संश्रृष्ट प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ का स्वयं आलोचना करते थे एवं राजमाला मुद्रण के साथ–साथ मुद्रित अंश भी क्रमशः स्वयं आलोचना किया करते थे। यह सामान्य आशाप्रद और कम आनंद की बात नहीं है। मेरा हृदय दोदुल्यमान अवस्था में श्री श्रीयुक्त के वाणी विशेष रूप से कार्यकर हुई थी, इस समय भी वही आदेशवाणी धारण करके, कार्यक्षेत्र मे अग्रसर हो रहा हुं। प्रकाशित प्रथम लहर उस कार्य का आंशिक फल है।

श्रीभगवान की कृपा से इस कार्य में सर्वदा ही सुविधा प्राप्त होने लगी। यत्न एंव परिश्रम में त्रुटि नहीं हुई, लेकिन योग्यता के अभाव से आशानुरूप फल साधारणों के समक्ष मे उपस्थित करने के समर्थ नहीं हुआ। सुयोग्य व्यक्ति के हस्त में यह दायित्व रहने पर इस कार्य सर्वांगसुन्दर होने की संभावना थी। इस कार्य के गुरूत्व को समझना भी गुरुत्व की बात है। जिन लोगों ने राजमाला का मात्र एकबार आलोचना किया है, वे लोग जानते है, इस ग्रन्थ सम्पादन का कार्य कितना मुश्किल है। बहुत सी उल्लेखयोग्य अतीत घटनाओ के इंगितमात्र भी राजमाला में मिलते है। इस प्रकार के इंगितवाक्य को लेकर सुदुर अतीत का इतिहास संग्रह करना भी बहुत ही मुश्किल की बात है, इतिहास वेत्तागण इससे विशेष रूप से अवगत हैं। राजमाला मे उल्लेख नहीं है, लेकिन अनुसंधान में ऐसे बहुत से प्राचीन विवरण एंव विस्तृत कार्यो के निदर्शन मिले हैं। बहुत सी घटना के आभास मिलने के बाद भी उनका उद्धार साधन वर्तमान काल में असंभव मालूम होता है।

प्रथमलहर–04

त्रिपुर–पुराबृत्त संश्रृष्ट राजदत्त विस्तर उपादान पार्वत्य–पल्ली बहुत ही निभृत गृह में संचित है, बहुत सी पुरातन कीर्ति के ध्वंसावशेस जनप्राणीहीन गंभीर अरण्यो के अंदर निहित है, तब भी उनका उद्धार और अनुसन्धान नहीं कर सकते है। इस सभी कारणों से मेरा कार्य अंगहीन हुआ है। इस त्रुटि के लिए मै सर्वदा यत्नवान हुं, कार्य के अंत मे उस विषय मे विशेष चेष्टा करेगें।

राजमाला की पांच पाण्डूलिपियो को मिलाकर बहुत सतर्कता के साथ पाठोद्धार किया गया है, एंव जिस सकल स्थान में पाठांतर मिला है, वह और अन्य प्रयोजनिय कथा पादटीका मे सन्निवेश किया गया है। यह सब विवरण का पादटीका में स्थान मिलना असम्भव था अतः मूलग्रन्थ की पश्चादवर्ती टीका में प्रदान किया गया है। राजरत्नाकर, कृष्णमाला, श्रेणीमाला, चम्पकविजय एंव गाजिनामा इत्यादि हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ एवं अन्यान्य ग्रन्थादि, शिलालिपि, ताम्रशासन, सनंद और मुद्रायों की सहायता से पुरातत्व संग्रह के पक्ष मे साध्यानुरूप चेष्टा किया गया है। लेकिन इस दुरूह कार्य का उपयुक्त रूप से संपादन किया गया है, इस बात को बोलने का उपाय नहीं है। मेरा अटूट विश्वास है कि भविष्य में धीरे–धीरे बहुत सी लुप्तप्राय प्राचीन तथ्यो को संधान मिलेगा। उस आविष्कार–जनित सौभाग्य जिसे मिलेगा, वह यशस्वी होगें, उनमे संदेह नहीं हैं।

अलग–अलग व्यक्तियों के भिन्न–भिन्न मत के समावेश से हमारे इतिहास के उद्धार के पथ इतनी असुविधा हुई है, जिससे इस पथ मे विचरणकारियो के प्रतिपाद विक्षेप से, बिपन्न और पथभ्रष्ट होने के आशंका है, त्रिपुर इतिहास के अवस्था भी ऐसे ही है। इस जगह में यथासाध्य युक्ति और प्रमाण द्वारा बिरूद्ध मतों के खण्डन की चेष्टा किया गया है, इस कार्य समीचीन हुआ या नहीं, वह पाठकवर्गो के विचार का विषय है। किसी–किसी व्यक्ति की मत के विषय मे जानकारी रहने से भी वह जनसमाज मे प्रचारित नहीं हुई बोलकर, उस सबंध में कोई कथा/बात नहीं बोला गया है। इस जगह में उल्लेख करना सगंत होगा कि प्रकृष्ट प्रमाण छोडकर, त्रिपुरा के प्रचलित इतिहास उपेक्षा करके, उनके विरूद्ध मत ग्रहण करना राजमाला संपादक के पक्ष मे असंभव के बात है। विशेषतः जो भी विरूद्ध मत दृष्टिगोचर हुई है, उनमें से युक्ति प्रमाण बहुत ही कम है, अतएव वह ग्रहण करने के लायक नहीं है। इस क्षेत्र में उन सब व्यक्तियो के मत खण्डन की चेष्टा किया गया है, अज्ञानतावश उन लोगो के प्रति किसी भी तरह से अपशब्द (अशिष्ट वाक्य) प्रयुक्त होने से उनके लिए विनीत भाव से क्षमा प्रार्थना करता हूं, किसी को भी दुखी करना मेरा उद्‌देश्य नहीं हैं।

किसी–किसी व्यक्ति ने बोला है, वो लोग त्रिपुरा के पुर्णांग इतिहास मिलने की उम्मीद करते हैं। इस तरह उम्मीद करना बहुत ही संगत एंव स्वभाविक है। लेकिन इस जगह मे निवेदन किया गया है कि राजमाला संपादन, एंव त्रिपुरा के पुराबृत्त संकलन –दोनो विषय के कार्य मे बहुत ही पार्थक्य है। राजमाला मे उनसारे बातों का उल्लेख या आभास नहीं है, इस तरह की बात सोचना संपादक के पक्ष मे संभव नहीं है। राजमाला प्रधानतः राजगणो के इतिहास–राज्यों के इतिबृत्त नहीं है। फिर भी प्रसंग क्रम से जिन सारी कथा का उल्लेख किया गया है, उस सब के बारे में अलोचना पक्ष में यथासाध्य चेष्टा में त्रुटि नहीं हुई हैं।

प्रथमलहर–05

इसके द्वारा त्रिपुर इतिहास के भविष्य संग्राहकगणों को कुछ सहायता मिलने से भी हमारे श्रम सार्थक होगें।

"राजमाला" नाम के पूर्व मे "श्री" व्यवहार किया है। ऐसे करने के तीन कारण निर्देशित कर सकते हैं। प्रथम – पूत चरित्र निष्ठावान पण्डितगण ने भगवान की गुणानुकीर्तन द्वारा श्रृद्धा सहकार में जो धर्म एंव नीतिगर्भ ग्रन्थ रचना का सुत्रपात किया था, वह विशेष पवित्र आख्यायिका है। द्वितीय –उत्तमश्लोक महापुरूषगण की चरितावलि जिस ग्रन्थ का प्रधान उपादान है, उस ग्रन्थ को पवित्र एंव पुण्यमय बोलकर ग्रहण करना एकांत स्वाभाविक है। तृतीय –यह चन्द्रवंशोद्भव महामहिमान्वित् राजन्यवर्गो की आख्यायिका का पूर्ण ग्रन्थ है। हिन्दु शास्त्रानुसार "राजा साक्षात् नारायण।" श्रीमद्भागवत् में है

"अलक्ष्यमाने नरदेव नाम्निरथांग पानायंगम लोकः।
तदाहि चौरप्रचुरो विलक्ष्यन्तरक्षमानोःऽविररूथवत्क्षनात्।।
श्रीमद्भागवत –प्रथम स्कन्ध 18 अ0 42 श्लोक।

इसके द्वारा कहा गया है, चक्रपाणि भगवान ही अलक्षित भाव से नरदेवता रूप मे भूमण्डल पर विराजमान है। श्री भगवान ने स्वयं कहा है

उच्चैःश्रबसमश्वानां बिद्धि माम मृतोद्भवम्।
ऐराबतं गजेन्द्रानां नराणान्च नराधिपम्।। इत्यादि
श्रीमद्भागवत गीता 10 अ0 27 श्लोक।

नारायनरूपी राजन्यवर्गो की आख्यायिका जिस ग्रन्थ का मुख्य उपादान है वह सुपवित्र एंव श्रीसम्पन्न है, यह कहा जा सकता है। इन सकल कारणों से ग्रन्थ के नाम के पूर्व मे "श्री" व्यवहार करना असंगत नही होगा।

राजमाला क्रम से छः भाग मे रचित हुई है। हर भाग के रचित अंश की स्वातंत्र्य रक्षा के निमित्त उन सबको "लहर" आख्या प्रदान किया है। यह अंश राजमाला का प्रथम लहर, उसकी बाद की लहर भी क्रमशः प्रचार करने का संकल्प है। प्रत्येक लहर मे, मूल अंश के बाद के भाग में सन्निवेशित टीका का नामकरण किया गया है–"मध्य–मणि"। यह 'लहर' और 'मध्य–मणि' नाम मेरा प्रदत्त है, अतएव इसमें किसी रूप असंगति घटने से उनके लिए मैं सम्पूर्ण दोषी हूं। इस कार्य के निमित्त कोई रचयिता किंवा पूर्ववर्ती कार्यानुष्ठातागणों के प्रति दोषारोपण न हो, यह प्रार्थना करता हूं।

इस कार्य मे जिन–जिन महात्मा का सानिध्य मिला है, उनमे से त्रिपुरा शासन परिषद के महामान्य सदस्यवर्गो की कथा सर्वाग्रे उल्लेखनीय हैं। परिषद के सुयोग्य सभापति महाराजकुमार श्रीलश्रीयुत नबद्वीपचन्द्र देवबर्मन बहादुर ने सर्वदा उत्साह प्रदान कर एंव समय–समय में कार्यादि पर्यविक्षण द्वारा इस अभाजन को कृतार्थ किया है। स्थानीय पूज्यपाद पण्डितमण्डलियों से विस्तृत सहायता प्राप्त मिली है। उन लोगो में से त्रिपुरेश्वर द्वार–पण्डित महामहोपाध्याय श्रीयुक्त बैकुण्ठनाथ तर्कभूषण, राजपण्डित श्रीयुक्त रेवतीमोहन काव्यरत्न, उमाकान्त एकाडेमी के प्रधान संस्कृत अध्यापक श्रीयुक्त पण्डित कृष्णकुमार काव्यतीर्थ, पुराणबेत्ता श्रीयुक्त पण्डित यदुनन्दन

प्रथमलहर–06

पाँडे भागवत भूषण, राज ज्योतिर्विद श्रीयुक्त चन्द्रमणि ज्योतिःसागर और श्रीयुक्त विश्वेश्वर शिरोरत्न प्रभृति महाशय वृन्दों के नाम कृतज्ञ हृदय से उल्लेख करता हुँ। श्रृद्धास्पद महामहोपाध्याय श्रीयुक्त पण्डित हरप्रसाद शास्त्री, एम.ए., सी.आई.इ., अध्यापक श्रीयुक्त पद्मनाथ भट्टाचार्य विद्याविनोद एम. ए., बंगवासी कार्यालय के अधिकांश शास्त्रग्रन्थों के अनुवादक और सम्पादक पण्डित–प्रवर श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के सुयोग्य अध्यापक महामहोपाध्याय श्रीयुक्त अन्नदाचरण तर्कचुड़ामणि महाशय प्रभृति के असीम कृपा से बहुत विषयों में मेरा संदेह भंग हुआ है। जिस समय जिस विषय मे तत्वजिज्ञासु होकर उनलोगो के द्वारस्थ हुआ हुँ, उसी समय उनलोगो ने सदुत्तर दानपूर्वक हमें उपकृत किया हैं। श्रृद्धाभाजन महाराजकुमार श्रीलश्रीयुक्त नरेन्द्रकिशोर देवबर्मन बहादुर, श्रीलश्रीयुक्त ब्रजेन्द्रकिशोर देववर्मन बहादुर, श्रृद्धेय सुहृद श्रीयुक्त राय दिनेशचन्द्र सेन बहादुर बी.ए.डीलिट एंव श्रृद्धास्पद श्रीयुक्त देवान बिजय कुमार सेन एम.ए, बी.एल., एम. आर.ए. सी(लन्दन), महोदय ने इस लहर की समग्र आलोचना करके हमे यथायोग्य उपदेश दान कर उपकृत किया है। शास्त्रदर्शी–पूज्यपाद परमहंस श्रीलश्रीमत ˎ गौरगोविन्दानंद भागवत स्वामी महोदय के मूल्यवान स्वस्नेह उपदेश दान मे बहुत से नए पथ प्रदर्शन द्वारा इस अनुरक्त जन को धन्य किया है। श्रृद्धाभाजन श्रीलश्रीयुक्त कुमार सुरेन्द्रचंद्र देवबर्मन बहादुर, संसार विभाग के सहकारि श्रीयुक्त ठाकुर भगवान चन्द्र देवबर्मन महोदय, सुह्रवर श्रीयुक्त प्रसन्नलाल देवबर्मन महाशय एंव सीता–कुण्ड के ख्यातनामा तीर्थपुरोहित और साहित्यिक श्रृद्धास्पद श्रीयुक्त हरकिशोर अधिकारी महाशय प्रभृति के साहाज्य लाभ से इस क्षेत्र मे विशेष उपकृत् हुआ हुँ। संसार विभाग के अन्यतर सहकारि प्रीतिभाजन श्रीमान सत्यरंजन बसु, बी.ए. एंव मेरा सहकारि स्नेहास्पद श्रीमान महेन्द्रनाथ दास महाशयद्वय ने इस कार्य मे बहुत सहायता किया है। इन सभी महाशय व्यक्तियो का चिरकृतज्ञ रहुंगा। इनके अलावा और भी अन्य व्यक्तियो से अल्पाधिक परिमाण में अनुकुल्य लाभ प्राप्त किया है, विस्तृति भय मे उनलोगों का नाम उल्लेख नहीं किया है। इस गुरूतर त्रुटि के निमित्त उनलोगों के पास सर्वदा ही क्षमा प्रार्थी हूं।

इस कार्य में ग्रन्थ साहाज्य लाभ की कथा बोलने से सर्वाग्रे महाराज कुमार श्रीलश्रीयुक्त रणवीर किशोर देवबर्मन बहादुर के नाम स्मृति पथ में उदित होता है। उनके ग्रन्थागार में जिन सकल ग्रन्थों से उपादान संग्रह किया गया है उनमे से कोई–कोई ग्रन्थ वर्तमान काल मे दुष्प्राप्य है। जो मिलता है, उन सब को संग्रह करने में विस्तृत व्यय एंव परिश्रम करना पड़ता। ग्रन्थ साहाज्य के अलावा महाराजकुमार बाहादुर ने कष्ट उपेक्षा करके इस लहर के निमित्त कुछ आलोकचित्र भी प्रस्तुत किये है। उनकी वह सहृदयता कभी भी विस्मृत नहीं होगी।

प्रथम लहर के सम्पादन कार्य मे जिन सकल ग्रन्थ की सहायता ग्रहण की गई है, उनकी संक्षिप्त तालिका इस पुस्तक के पश्चात भाग मे संयोजित है। उनको छोड़ कर ऐसे बहुत से ग्रन्थों की आलोचना की गई है जिनका समग्र भाग पाठ करके, कार्यलायक उपयुक्त कुछ नही मिलता। इस कार्य मे कठोर परिश्रम एंव सुदीर्ध समय व्यय हुआ है। जिस सकल ग्रन्थकारो के ग्रन्थ से साहाज्य ग्रहण है, उनलोगों के पास चिरकृतज्ञता से आबद्ध रहूंगा। पूज्यपाद श्रीयुक्त पंडित चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय का

प्रथमलहर–07

संकलित ''शिलालिपि संग्रह'' और ''कैलाशहर भ्रमण'' प्रभृति पुस्तक से एंव श्रृद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त अमुल्यचरण विद्याभुषण महाशय के लिखित पाण्डूलिपि से किसी–किसी विषय मे साहाज्य प्राप्त हुआ है एंव श्रद्धास्पद अध्यापक श्रीयुक्त शीतलचन्द्र चक्रवर्ती एम.ए., विद्यानिधि महाशय कर्तृक स्थानीय ''रवि'' सामयिक पत्र मे लिखित ऐतिहासिक प्रबन्धावलि ने किसी–किसी विषय मे मेरा कार्य की सहायता की है।

ग्रन्थ के यह अंश कलिकाता में मुद्रित हुआ है। दूरवर्ती स्थान से प्रुफ (प्रमाण) संसोधन करके मुद्रण कार्यो की विशुद्धता रक्षा करना कितना कठिन है, भुक्तभोगी व्यक्तिगण सहज में ही बोधगम्य होगें। ग्रन्थ को मुद्राकर के प्रमाद से रक्षा करने के निमित्त बहुत चेष्टा की गई है एंव इस कार्य के अग्रसर के पक्ष में रुकावट हुई है, किन्तु इतना करके भी इस ग्रन्थ को प्रमादशून्य नही किया जा सका । मूल मे भूल करके सुदीर्घ शुद्धीपत्र प्रदान करने की कोई सार्थकता नही है। लेकिन किसी किसी शब्द की ऐसी अवस्था हुई है जिसे शुद्धिपत्र में समझना होगा। इसलिए कुछ शब्दो को शुद्धिपत्र में प्रदान करने को बाध्य हुआ हूं।

मेरी अयोग्यतावश ग्रन्थ संपादन के कार्य मे नानाविध भ्रम प्रमाद एंव विस्तर त्रुटि परिलक्षित होना एकांत स्वभाविक है। विशेषतः ऐतिहासिक मतविरोध की जगह में जो मत ग्रहण किया गया है वह विशुद्ध या प्रमादशून्य है, यह कथा बोलने का साहस मुझमे नहीं है। सहृदय पाठकवर्गो एंव प्रथितयशा ऐतिहासिक समाज मेरे कार्य मे जिस सकल भ्रम, त्रुटि को लक्ष्य करेगें, दयापूर्वक वह जानने से, उनलोगो के पास चिरकृतज्ञता मे आबद्ध रहूंगा। उन लोगो के अभिमत विशेष, भविष्य के इतिहास संकलयितागणों के लिए कल्याणकर होगा, उम्मीद रखता हूँ।

भगवान की कृपा से राजमाला का अवशिष्टांश संपादन व प्रचार करने मे समर्थ होने से अपने आपको धन्य मानूगां।

आगरतला –''राजमाला'' कार्यलय, श्रीकालीप्रसन्न सेन

लक्ष्मी–पूर्णिमा, 1336 त्रिपुराब्द

....

(अंग्रेजी 1926 ई.सन)

प्रथमलहर–08

खाली छोड़ा है

प्रथमलहर—09

प्रमाण पंजी

(जिन ग्रन्थों से प्रथम लहर के सम्पादन कार्य में प्रमाण या उपदानों को लिया गया है। उनकी सूची नीचे दी जा रही है।)

संस्कृत ग्रंथादि

अग्नि पुराण।	देवी भागवत
अथर्ववेद(गोपद ब्राह्मण)।	नारद पंच रात्र।
अद्भुत रामायण।	नैषधेय चरितम्(श्रीहर्ष)
अमर कोष।	पुत्र कौमुदी(वररूचि)
आनन्द लहरी।(श्रीमद् शंकराचार्य)	पद्म पुराण
उद्बाहू तत्व।	पराशर संहिता
उनकोटि महात्म्य।(हस्तलिखित)	पीठमाला तन्त्र
ऋगवेद संहिता।	पुरोहित दर्पण
एडु.मिश्ररे(मिश्र की) कारिका।	प्रयाग माहात्म्य
कठोपनिषद।	प्रायश्चित तत्व
कामन्दकीय नीतिसार।	वराह पुराण
कामाख्या तन्त्र।	वामन पुराण
कायस्थ कौस्तुभ।	वायु पुराण
कालिका पुराण।	वाराहि पुराण
काशी खण्ड़।	वारेन्द्र कुल पंजिका
कुब्जिका तन्त्र।	विक्रमोव्वंशीय नाटक
कुलार्णव।	विष्णु पुराण
कूर्म्म पुराण।	बृहन्नील तन्त्र
गरूड़ पुराण।	बृहद्धर्म्म पुराण
ज्योतिष तत्व।	वृहत संहिता
ज्ञान संहिता।	वैदिक संवादिनी(हस्तलिखित)
तंत्र चूड़ामणि।	ब्रह्म पुराण
तन्त्र सार।	ब्रह्मवैवर्त पुराण
तैत्तिरीय ब्राह्मण।	ब्रह्माण्ड पुराण
दत्तवंश माला।	भविष्य पुराण
दाय भाग	मत्स्य पुराण
दुर्गा मंगल	मनुसंहिता
देवी पुराण	मनुसंहिता भाष्य(मेधातिथि)

प्रथमलहर—10

मनुसंहिता(कल्लुकभट्ट)	शक्तिसंगम तन्त्र
महानिर्वाण तन्त्र	शब्दकल्पद्रुम
महाभागवत पुराण	शान्तिस्वस्तयन कल्पद्रुम
महाभारत(मूल)	शिवचरित
मारकण्डेय पुराण	शिवपुराण
याज्ञवल्क्य संहिता	शुक्र नीति
योगिनी तन्त्र	शुक्ल यजुर्वेद
रघुवंश	श्रीमदभागवत्
राजतरंगिणी	श्रीमदभागवमगीता
राजरत्नाकर(हस्तलिखित)	संस्कृत राजमाला
राजराजेश्वरी तन्त्र	सम्बन्ध निर्णय
राज्याभिषेक पद्धति	स्कन्द पुराण
रामजयेर कूले पंजिका	हरिवंश
रामायण(बाल्मिकी मूल)	हरिमिश्रेर कारिका
लिंग पुराण	

बांग्ला ग्रन्थादि

आदिशूर एवं बल्लाल सेन	ढाका का इतिहास(यतीन्द्रमोहन राय)
आसाम बुरुन्जी	तवकात्—ई—नासेरी
आसामेर इतिहास	तारीख—ई—वरणी
आसामेर विशेष विवरण	त्रिपुर वंशावली(हस्तलिखित)
उनकोटि तीर्थ(पयारीमोहन देवबर्मन)	दुर्गा माहात्म्य(माधवाचार्य)
काछाड का इतिवृत्त(उपेन्द्र चन्द्र गुह)	देशावली
कामरुप बुरुन्जी	नव्य भारत(मासिक—1299 / 1300)
कृष्णमाला(हस्तलिखित)	पार्वतीय वंशावली
कैलास बाबू की राजमाला	पृथ्वी का इतिहास(दुर्गा दास लाहिड़ी)
गाजिनामा(हस्तलिखित)	प्रकृतिवाद अभिधान (रामकमल विद्यालंकार)
गौड़राजमाला	प्रतापादित्य(निखिलनाथ राय)
गौड़ ब्राह्मण	प्राचीन राजमाला(हस्तलिखित)
चण्डी(कविकंकण मुकुन्दराम)	फरीदपुर का इतिहास(आनन्द राय)
चट्टग्राम का इतिहास(पूर्णचन्द्र चौधुरी)	बंग दर्शन(मासिक—नवपर्याय 1312)
चम्पक विजय(हस्तलिखित)	बंगभाषा एवं साहित्य विषयक प्रस्ताव(रामगति—न्यायरन्त)
चैतन्य भागवत(श्रीमत वृन्दावन दास)	बंग का जातीय इतिहस(नगेन्द्रनाथ बसु)
जन्मभूमि(मासिक—1299 / 1300)	वाक्ला(रोहिणी कुमार सेन)
जामिउत्तारिख(अनुवाद)	

प्रथमलहर–11

बांग्ला का इतिहास(राखालदास बन्दोपाध्याय)
बांग्ला का पुरावृत्त(परेशनाथ बन्दोपाध्याय)
विश्वकोष(नगेन्द्र नाथ बसु)
भारती(मासिक–7 भाग)
भ्रमण वृतान्त(धनन्जय ठाकुर)
मयनामती का गान(दुर्ल्लभ मलिक)
मयमनसिंह का इतिहास(केदारनाथमजुमदार)
यशोहरखुलनार इतिहास(सतीश चन्द्र मिश्र)
राजस्थान(अनुवाद अघोरनाथ वराट)
राजावली(हस्तलिखित)
रिया(कर्नल महिमचन्द्र ठाकुर)
रिया–जुस–सलातिन(अनुवाद)
शिलालिपि संग्रह(चन्द्रोदय विद्याविनोद)
श्रीयुत का कैलासहर भ्रमण(ऐ)
श्रीहट्ट का इतिवृत्त(अच्युतचरण चौधुरी तत्वनिधि)
श्रेणीमाला(हस्तलिखित)
संद्वीप का इतिहास(राजकुमार चक्रवर्ती एवं आनन्दमोहन दास)
सामयिक समालोचना की समालोचना एवं मीमान्सा
सायेर–उल–मुताक्षरीण(अनुवाद)
साहित्य (मासिक 1301)
साहित्य परिषत पत्रिका(26 भाग,3 संख्या)

हिन्दी ग्रन्थ

तुलसीदास कृत रामायण

अंगरेजी ग्रन्थादि

Arnold's Lectures on History.
Assam District Gazetteres Vol.II
Asiatic Researches, Vol.IV.
Analysis of the Rajmala. (J.A.S.B.,Vol.XIX)
Bengal & Assam,Behar & Orrisssa,-Compiled by Somerset Playne.F.R.G.S. (The Foreign & Colonial Compiling & Publishing Co.) London.
Calcutta Review No. XXXVI.
Catalogue of Coins in the Indian Museum, Calcutta Vol.II.
Dulton's Ethnology of Bengal.
Dionysiaka or Bassarika.
History of Tripura (by E.F. Sandys.)
History of Assam (by Gait.)
Hunter's Statistical accounts of Bengal. Vol-I,VI.
Hunter's Orrissa. Vol. II.
Intercourse between India and the Western World.
Indian Antiquary Vol. XIX.
Indoche Liter.
Initial Coinage of Bengal.

प्रथमलहर–12

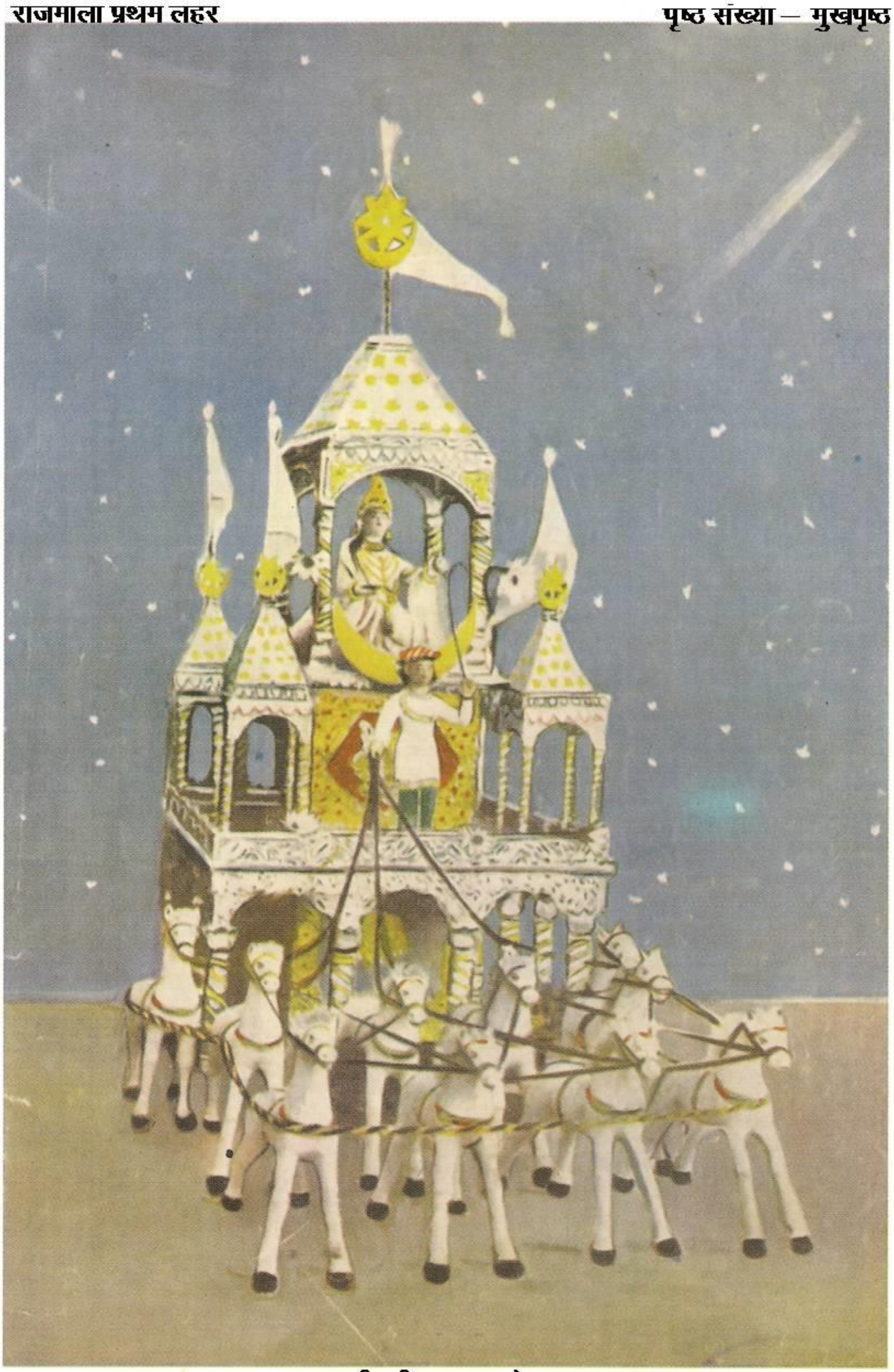
Journal of Asiatic Society of Bengal.
Vol.III.,XIX, XXII, 1873,1876,1896,1898,1909,1913.
Journal of the Royal Asiatic Society, 1909
Kern- Geschichete Vol.IV.
Lecture of the Royal Anthropological Institutes-delivered
by Prof. W.J.Sollas.
Lewin's Hill tracts of Chittagong. Vol.III.
Mc. Crindle's ancient India.
Mr. Ralph Leke's Report (11th March 1783).
Mr. C.W. Bolton's Report.
Periplus of the Erythracan Sea.
-Ptolemy. Book VII.
Report on the Progress of Historical
Researches in Assam-1897.
Settlement Report of Chakla Roshnabad (J.G.Cumming)
Stewart's History of Bengal.
The Golden Book of India .(Sir Roper Lethbridge,)
The Geological Dictionary of Ancient
Mediaeval India(By Nondolal Dey)

--------0----------

प्रथमलहर–13

(Pratham leher-1-13) चित्र

राजमाला प्रथम लहर पृष्ठ संख्या – मुखपृष्ठ



श्री श्री चन्द्रमा देव

सामुद्रं वैश्यमात्रेयं हस्तमात्रेयं सिताम्बरं। श्वेतं द्विबाहुं वरदं दक्षिणं सगदेतरम्
दशाश्वं श्वेत पद्मास्थं विचिन्तोय्माधिदैवतम्। जलप्रत्यधिदैवबन्ध सूर्यास्यमाहबयेत्तथा

प्रथमलहर–14

(Pratham leher-2-14) चित्र

राजमाला प्रथम लहर

पृष्ठ संख्या – मुखपृष्ठ



त्रिपुर इतिहास के उद्धार प्रयासी
स्व. महाराज वीरचन्द्र माणिक्य

<u>प्रथमलहर–15</u>

प्रथमलहर—16

पूर्व भाष

सम्पादित ग्रन्थ का नाम जिस प्राचीन ग्रन्थ के सम्पादन कार्य में हस्तक्षेप किया गया है वह भगवान चन्द्रमा के वंशसंभूत भारत—विश्रुत सुप्राचीन त्रिपुर राजवंश का पुरावृत्त है। यह राजाओं के विवरण संबंधित कहकर ग्रन्थ कारकों ने ग्रन्थ का नाम रखा है —'राजमाला'।

भिन्न भिन्न राजवंश के इतिहास ग्रन्थों के विभिन्न तरह के नाम दूसरे किसी—किसी राजवंश का इतिहास भी 'राजमाला' के नाम से प्रकाश में आया है। कश्मीर राजवंश के इतिहास का नाम 'राजतरंगिनी' रखा गया है। 'राजवलीकथ्ये' महीशुर का प्राचीन इतिवृत्त है। किसी—किसी राजवंश का इतिहास 'राजावली' नाम से परिचित है। राजावली' नाम से त्रिपुरा का भी एक प्राचीन इतिहास था जो आठ सौ साल पहले बांग्ला गद्य भाषा में रचित हुआ था। अब उस ग्रन्थ का अस्तित्व लुप्त हो गया है।

'राज रत्नाकर' त्रिपुरा के दूसरे प्राचीन इतिहास का नाम 'राज—रत्नाकर' है। इसके अलावा संस्कृत और बंगला कविता के रुप में दो ग्रन्थों की रचना हुई है। इन दोनों ग्रन्थों का नाम 'राजमाला' है। इसमें बंगला भाषा की राजमाला ही हमारा सम्पादित ग्रन्थ है।

'राज रत्नाकर' आधुनिक ग्रन्थ नहीं है यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि राजरत्नाकर ग्रन्थ स्वर्गीय महाराज बीरचन्द्र मणिक्य के प्रयास से पंडित मंडलियों की सहायता से सम्पादन का कार्य प्रारम्भ हुआ था। उस समय उस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड मात्र प्रकाशित हुआ था, इसके बारे मे बहुतों को लगता है कि यह वीरचन्द्रमाणिक्य के आदेश से रचित आधुनिक ग्रन्थ है। यह मत मानने वाले अन्य कथा नही मानते, स्वयं महाराज की उक्ति अधिकांशतः संगतयुक्त है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के पत्र के जवाब में 1296 त्रिपुराब्द की 18 ज्येष्ठ तारीख में महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य ने लिखा था—

''राजरत्नाकर के नाम से त्रिपुर राजवंश का एक धारावाहिक संस्कृत इतिहास है। यह ग्रन्थ धर्ममानिक्य के राजत्व के समय संकलित होना शुरु हुआ था। धर्ममानिक्य ''जीवारि वसुमाने '' त्रिपुराब्द में अर्थात त्रिपुरा 868 साल में राज्य का भार ग्रहण किया था और अभी 1296 साल है'' उपर बताए गए राजरत्नाकर में और एक प्रचीन संस्कृत भाषा में लिखित 'राजमाला' का उल्लेख है। किन्तु इस प्राचीन राजमाला इस समय खोजने(अभि अनुसंधान करने) पर भी नहीं मिलता। 'राजमाला' के रूप में जो उपलब्ध है यह 'राजरत्नाकर' से संक्षिप्त संगृहीत एवं बंग्ला पद्य में लिखित है। साधारण से साधारण लोग भी इसे पढ़कर आसानी से समझ सके, इसी

अभिप्राय से द्वितीय 'राजमाला' की रचना हुई है। इसमें महाराज दैत्य का जीवन—वृत्त का वर्णन है। इसके पहले के बहुत से राजाओं के इतिहास का उल्लेख नहीं है।'' इत्यादि

अनुसंधान करने पर भी जिस राजमाला के नहीं मिलने की बात महाराज ने लिखा है, वह बाद में (महाराज राधाकिशोरमाणिक्य के राजत्व काल) अगरतला स्थित वजीर साहब के घर से प्राप्त हुई है।

राजरत्नाकर के प्राचीनत्व के बारे में स्वयं महाराज की उक्ति प्राप्त हुई है, अब उस ग्रन्थ के रचयिताओं ने ग्रन्थ रचना की सूचना में क्या कहा है, इसे देखना आवश्यक और समीचीन है। उसमें उल्लेख मिलता है। :—

शशधर कुलकांतिः प्राज्य विक्रांतिधाम,
प्रथित विमलकीर्ति राज राजि प्रजेता।
नरपतिगण सेव्यो यो महासेन नाम,
नृपतिरिह जनानामेक आसीच्छरण्यः।।

तस्यात्माजन्मा नितरां पवित्रोधम्मैक कामः करूणार्द्रचेताः।
श्रीधर्मादवो नृपतिर्महीयान उदारधीःपुण्यवतां वरिष्ठः।।
यूवापिषो भोगसुखानि हित्वा कन्दादिभूक् तापतुषारसोढ़ा।
संत्यज्य गेहं विनिवृत्तकामो बभ्राम तीर्थेषु च काननेषु।।

जीवारिवसु संख्यात त्रिपुराब्दे गृहागतः।
पितष्युपरते घिन्नो राजतामयमग्रहीत।।
स्व पूर्व पुरुषाणांस स भूपतिनां विसारिनीम्।
कीर्तिमन्यच्च वृत्तान्तं श्रोतुमिच्छन महीपतिः।।
चतुर्दद्शानां देवानां पूजनादिसु तत्परम।
तंत्रादि सम्बिदं धीरं पूरावृत्तार्थ कोविदम।।
वृद्धं नीतिविदां श्रेष्ठं शान्तं सज्जन सन्मतम्।
स कुलाचार तत्वज्ञं चन्ताइं दुर्लभेन्द्रकम्।।
शुक्रेश्वरं मदनुजं तथा बाणेश्वरंचमाम्।
इद्माह समहूय सादरं धरणीश्वरः।। इत्यादि

राज रत्नाकर ग्रन्थ राजमाला ग्रन्थ का ही सम सामयिक इससे यह जाना जाता है कि चन्ताई दुर्लभेन्द्र और पंडित शुक्रेश्वर और बाणेश्वर द्वारा राज—रत्नाकर की रचना हुई थी। संस्कृत और बंगला राजमाला भी महाराज धर्ममाणिक्य की अनुज्ञा से ही इन लोगों ने रचना की थी। अतः राजरत्नाकर और राजमाला ग्रन्थ समकालीन हैं, यह प्रमाणित होता है। लगता है पहले राजरत्नाकर और बाद में राजमाला की रचना होना असंभव नहीं है।

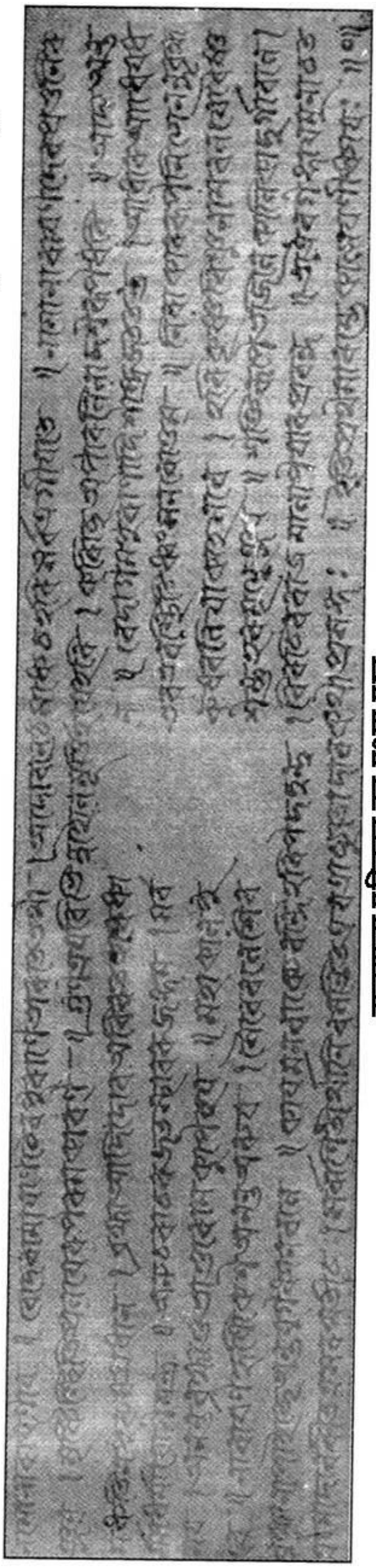
महाराज ने अपने पूर्व पत्र में लिखा है ''द्वितीय बांग्ला राजमाला

प्रथमलहर—18

(Pratham leher-3-18) चित्र

पृष्ठ संख्या –पूर्वभाष

राजमाला प्रथम लहर



राजमाला पुस्तिका का प्रथम पृष्ठ

प्रथमलहर–19

के लेखक को मैंने बालक की उमर में देखा था।'' यह वाक्य राजमाला के प्रथम खण्ड के रचयिताओं के प्रति आरोप नहीं हो सकता। कारण, 500 साल पहले जो ग्रन्थ रचित हुआ था, महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य के बाल्यकाल में, रचयिता करने वालों को देखना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं था। राजमाला के वर्तमान पाण्डुलिपियों में से एक की आलोचना से पता चला है कि वह 1256 त्रिपुराब्द में लिखा गया था। इस समय में लिखे गए विभिन्न पाण्डुलिपि राजग्रन्थ–भन्डार में मिलते हैं। इसके द्वारा समझ में आता है कि उस काल में बहुत सारे ग्रन्थों की नकल की गई थी। महाराज वीरचन्द्रके उम्र का हिसाब करने से पता चलता है कि यह महाराज के बचपन की बात है। उनको बचपन का यह दृश्य स्मरण था एवं यही पत्र में लिखा था। सारे हालात की आलोचना करने यही संभव लगता है। विशेष करके ''लेखक'' एवं ''रचयिता'' एक बात नहीं है। महाराज के पत्र में 'लेखक' शब्द पहले बताया गया है– अनुमान ही जाहिर करता है। बांग्ला राजमाला का प्रथमांश जो 500 साल प्राचीन है– इस विषय में किसी को संशय नहीं है। एशियाटिक सोसायटी का जर्नल भी इस बात को साक्ष्य प्रदान करते हैं।(1)

इस स्थान में और एक बात मन में आती है। राजमाला के छठा खण्ड महाराज कृष्णकिशोरमाणिक्य के राजत्व काल में(1239 से 1259 त्रिपुराब्द के बीच में) रचित हुआ है। इस खण्ड के रचयिता स्वर्गीय उजीर दुर्गामणि ठाकुर है। यह महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य के बचपन की घटना है। पहले बताए गए पत्र में 'लेखक' शब्द द्वारा यदि रचयिता को ही ल़क्ष्य किया बया है, तो यह छठे खण्ड के रचयिता की ही बात है – इसे निसन्देह निर्धारण किया जा सकता है।

समग्र राजमाला एक ही समय में रचित नही हुआ बहुतों का विश्वास है कि, समग्र राजमाला एक ही समय में रचित हुआ है, गलत नहीं है। महाराज दैत्य से महाराज काशीचन्द्रमाणिक्य तक के शासन काल का विवरण क्रम के अनुसार छह बार में राजमाला लिखा गया है। इस छह बार की रचना को छह लहर में विभक्त किया गया है। प्रत्येक लहर का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

प्रथम लहर

विषयः	दैत्य से महामाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः	बाणेश्वर, शुक्रेश्वर और दुर्ल्लभेन्द्र नारायण
श्रोताः	महाराज धर्म्ममाणिक्य
रचना कालः	पन्द्रहवीं शताब्दी का आरम्भ

(1) J.A.S.B. -Vol. XIX

प्रथमलहर–20

द्वितीय लहर

विषयः धर्ममाणिक्य से जयमाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः रनचतुर नारायण
श्रोताः महाराज अमरमाणिक्य
रचना कालः 16वीं शताब्दी का अन्तिम भाग

तृतीय लहर

विषयः अमरमाणिक्य से कल्याणमाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः राजमंत्री
श्रोताः महाराज गोविन्दमाणिक्य
रचना कालः सत्रहवी शताब्दी का शेष भाग

चतुर्थ लहर

विषयः गोविन्दमाणिक्य से कृष्णमाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः जयदेव उजीर
श्रोताः महाराज रामगंगामाणिक्य
रचना कालः अठारहवीं शताब्दी का शेष भाग

पंचम लहर

विषयः राजधरमाणिक्य से रामगंगामाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः दुर्गामुनि उजीर
श्रोताः महाराज काशीचन्द्रमाणिक्य
रचना कालः उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ

षष्ठ लहर

विषयः रामगंगामाणिक्य से काशीचन्द्रमाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः दुर्गामुनि उजीर
श्रोताः महाराज कृष्णकिशोरमाणिक्य
रचना कालः उन्नीसवीं शताब्दी का मध्यभाग

राजमाला इतिहास की तरह है — शास्त्रग्रन्थ समूह में पुराने वृतान्त या इतिहास के जो सारे लक्षण वर्णित है, राजमाला में उसके सारे लक्षण मौजूद है, कह नहीं सकते। फिर भी मुख्य या गौण रुप से इस में सारे के सारे लक्षण मौजूद है अतएव इस ग्रन्थ को इतिहास कह कर स्वीकार किया जा सकता है। इस जगह में प्राचीन मत का आभाष प्रदान किया गया है।

प्रथमलहर–21

प्राचीन मतानुसार इतिहास का लक्षण।

''ऋगवेदो यजुर्वेदः सामवेदाऽर्थर्व्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्रान्यनु व्याख्यानानि'' (14/5/4/10) इतिहास वाच्य।

महाभारत में मिलता है,–

''धर्मार्थ काम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम्।
पुरावृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।''

''जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश और प्राचीन कहानी है उसे ही इतिहास कहा जाता है।''

विष्णु पुराण के टीकाकार श्रीधरस्वामी के मत से, पवित्र(पूत) चरित्र त्रिकालदर्शी ऋषिओं के मुख–निःसृत आख्यानसमूह, देव और ऋषि चरित एवं भविष्य धर्मकर्मादि के विवरण सम्बन्धित ग्रन्थ इतिहास कहलाने के योग्य है।(1) आर्य के मतानुसार, जिस ग्रन्थ में धर्म प्रसंग नहीं है, वह पूर्ण या स्थायी इतिहास नहीं है। उसका ध्वंस अनिवार्य है। साहित्य के बारे में भी उनका यही मत है। प्राचीन काल के साहित्य और इतिहास प्रायः एक ही रुप में विन्यस्त(बुना) है एवं वहीं दूसरी ओर उनके समग्रांश धर्म के साथ संश्लिष्ट हैं।

पाश्चात्य मत का इतिहास पाश्चात्य पंडितों ने देवधर्म परित्याग करके, जिस ग्रन्थ में मानव समाज का अतीत और वर्तमान काल की घटनाएं सन्निविष्ट हैं उसे ही इतिहास कहा है।(2) इन दोनों मतों का पार्थक्य बहुत ज्यादा है। चाहे जो हो, प्राचीन एवं आधुनिक दोनों मतों के हिसाब से राजमाला को इतिहास की श्रेणी में ग्रहण करने योग्य माना है।

क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति की कथा राजमाला जिस वंश का इतिहास है, उसी वंश के प्रातः स्मरणीय महापुरुष गण क्षत्रिय वर्ण के हैं। विश्व के सृष्टि से ही यह क्षत्रिय जाति मानव समाज में श्रेष्ठ स्थान अधिकार करती हुई आ रही है। ऋगवेद(10/90/12), शुक्ल यजुर्वेद(31/11), अथर्ववेद(19/6/6) के अनुसार क्षत्रिय जाति ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न हुई है।(3)

क्षत्रिय जाति का वंश विभाग क्षत्रिय कुल प्रधानतः चार भागों में विभक्त है– सूर्यवंश, चन्द्रवंश, अग्निवंश और इन्द्रवंश। इन चारों क्षत्रिय जाति में सूर्यवंश ही सबसे प्राचीन है। भगवान लोक लोचन दिवाकर के पुत्र वैवस्वत मनु

---

(1) ''आर्यादि बहुव्याख्यानां देवर्षि चरिताश्रयम।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुत धर्मयुक।।''

(2) **"The general idea of history seems to be that it is the biography of a society." - Arnold's lecture on history**

(3) ब्राह्मनोऽस्य मुखमासीद् बाहुराजन्यः कृतः।
उरू तदस्य षद्वैश्यः पदभ्यां शुद्रोऽजायत।''

से यह वंश धारा की उत्पत्ति एवं भगवान चन्द्र के आत्मज बुध से चन्द्रवंश की धारा प्रवाहित हुई है। अग्निवंश की उत्पत्ति का विवरण कुछ वैचित्र्यमय है। इस वंश को चार भागों में बाँटा गया हैः— प्रतिहार(पुरीहार), चौलुक्य(चालुक्य या शौलांकि) , प्रमार(परमार) और चौहान। इन शाखा चतुष्ट के चार आदि पुरुष ब्राह्मण के यज्ञ कुंड से निकले थे। इनके नाम हैं प्रतिहार, चौलुक्य, प्रमार और चौहान। इनके नामानुसार ही इनके वंशजो का परिचय हुआ है। इन्द्रवंशींयों के उत्पत्ति का वर्णन प्रचलित पुराणों में दिखायी नहीं देता किन्तु खसिया और जयंतिया प्रदेश के अधिनायकों को इसी वंश का कहा जाता है।

आदिवंश के विषय विवरण आदिवंश के विषय एक बात यहाँ उल्लेख योग्य है। कुछ पाश्चात्य पंडितो का कहना है सूर्य और चन्द्र जड़ पदार्थ है। अतः उनके वंश का विस्तार सम्भव नहीं हो सकता। जिन लोगों ने वेद पुराणोक्त सृष्टितत्व एवं उसके उद्देश्य को गम्भीरता से अध्ययन किया है वे इस तरह के प्रश्न नहीं करते, लेकिन पाश्चात्य मतवादिगणों के भीतर बहुत से इस देश के रहने वाले लोग भी इस विषय पर सन्देह का भाव पोषण करते है। इस गहरे प्राच्य मत के पोषक प्रमाणों को लेकर विचारों की गहराई में उतरना बहुत ही कठिन समस्या है एवं वह सबके लिए आसान भी नहीं है। शास्त्र वाक्यों के प्रति संदेह का उदय होना ही प्रधान कारण है। खासतौर से इस समय पाश्चात्य प्रभाव का युग है। अतः पाश्चात्य मतानुकूल वाक्य ही ग्राह्य होते हैं। लेकिन इस विषय में पाश्चात्य मत की आलोचना करने पर यह देखा जायेगा कि जो प्रतीच्य देश अपनी प्राचीनता के स्थापना के प्रयासी है, उन देशों के आदि वंश का इतिहास आर्य मत का अनुसरण करता है। मिस्र, बेबीलोन और अमेरिका के प्राचीन राजन्य वर्ग भी सूर्य तनय के नाम से ही परिचित है। चीन के आदि नृपति वर्ग भी सूर्य तनय के नाम से परिचित है। इन बातों को स्वीकार करने में आपत्ति न रहने पर, आर्य मत की आलोचना के समय विरूद्ध प्रश्न को उठाना या बढ़ावा देने का क्या अर्थ या कारण हो सकता है, यह समझ में नहीं आता। इन सभी दृष्टातों से विरूद्ध मत वाले सन्तुष्ट होगें, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। फिर भी श्रद्धा के साथ उन्हें आर्य इतिहास की आलोचना के लिए आमंत्रण भेजना कोई असंगत नहीं होगा।

इस सन्दर्भ में आर्य शास्त्र घटित एक प्रसंग का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। वह प्रसंग यह है कि सूर्य और चन्द्र की वंश धारा की आलोचना के समय हमें मन में यह बात अवश्य रखनी चाहिए कि सभी ग्रह मण्डल के एक एक अधिष्ठाता देवता हैं। ग्रह और ग्रह अधिष्ठाता एक नहीं है, लेकिन अधिकांश जगहों पर दोनों एक ही नाम से परिचित हैं। यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है कि चन्द्र ग्रह के अधिष्ठाता का नाम भी चन्द्र है।(1)

---

(1) विश्व—कोष षष्ठ भाग 'चन्द्र' शब्द देखिए। मतान्तर में चन्द्र की अधिष्ठात्री देवी उमा हैं।

<u>प्रथमलहर–23</u>

सूर्य, मरिची के पौत्र एवं प्रजापति कश्यप के पुत्र हैं। सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु से समाज या मानवकुल की विस्तृति हुई है। एक दूसरे मत के अनुसार चन्द्र अत्रि के पुत्र हैं। अत्रि सप्तऋषिओं से एक हैं। मनु के मत से ये भी प्रजापति हैं। चन्द्र के पुत्र बुध और बुध के पुत्र पुरूरवा हैं। इस पुरूरवा से चन्द्रवंश का विस्तार हुआ है। इससे आसानी से यह समझा जा रहा है कि यह सूर्य और चन्द्र कोई जड़ ग्रह मण्डल नहीं हैं। ग्रह के अधिष्ठाता देवता होते हैं। स्वाभाविक नियमानुसार माता पिता के रजः–वीर्य से उन्होनें जन्म ग्रहण किया है। इसके अलावा उनके वंश विस्तार की बातें असंगत अथवा असंभव समझने का कोई कारण नहीं हो सकता।

सूर्य और चन्द्रवंशीय कथा आदिकाल से सूर्य और चन्द्रवंशीय क्षत्रिय लोग विश्व में अधिकतर प्रसिद्धि प्राप्त किया था। इस तरह ये दोनों वंशों के पारस्परिक विवाह बन्धनों में बंधे रहने के प्रमाण भी पुराणों में पाये जाते हैं। चन्द्र के पुत्र बुध ने और सूर्य की पौत्री(मनु–तनया) इला का पाणिग्रहण किया था। इससे यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि एक मनु से इन दोनों वंशों का विस्तार हुआ है। सूर्यवंश मनु के पुत्र से एवं चन्द्रवंश उनकी कन्या से उत्पन्न हुआ है। ये दोनों वंश समकालीन होने पर भी सूर्यवंश चन्द्रवंश से पहले का है। कर्नल टाड इत्यादि पंडितों ने इस विषय पर बहुत सारी बातें कहा है। सत्य और त्रेता युग के एकछत्र राजाओं के नामों की चर्चा से यह बात स्पष्ट जाती है कि सूर्यवंशीय लोग ही ज्यादा प्रभावशाली थे। चन्द्रवंशीय लोग भारत के कुछ जगह पर एकाधिपत्य स्थापित करने पर भी सूर्यवंशीयों के प्रभावों के साथ उनकी तुलना नहीं की सकती। द्वापर के शेष भाग से चन्द्रवंशीयों का प्रभाव सम्यक रूप से प्रतिष्ठित हुआ था।

पाश्चात्य पंडितों का मत व उनके विचार बाल्मिकी रामायण के अनुसार भगवान श्री रामचन्द्र सूर्य देव से नीचे सैंतीस और महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर और अर्जुन इत्यादि चन्द्र से तैतालिसवें संख्या में आते हैं। दोनों वंशों में पुरुष संख्या का यह सामान्य पार्थक्य देखकर पाश्चात्य पंडितों ने कहा है कि शास्त्रानुसार भी रामचन्द्र त्रेता युग के राजा होकर भी द्वापर के अन्त के राजा युधिष्ठिर आदि से मात्र सात पुरुष पहले के दिखाई देते हैं। श्री रामचन्द्र को त्रेता अन्त के राजा कहकर स्वीकार करने पर भी वे युधिष्ठिर और अर्जुन से मात्र सात पुरुष पहले अविर्भूत हुए, कहा नहीं जा सकता। इस प्रश्न के उत्थापन के कारणों का अनुसंधान करने पर देखा जायेगा, पाश्चात्य समाज सूर्य और चन्द्रवंश की उत्पत्ति समकालीन मानते हैं। इस कारणवश वे लोग भ्रम में फंस गये हैं। प्रकृत रूप से सूर्यवंशीय पन्द्रह पुरुष के समय चन्द्रवंश का उदय हुआ। अतः चन्द्र के पौत्र पुरूरवा

ने सत्य युग में अविर्भूत होकर भी त्रेता के प्रारम्भिक काल तक राजत्व किया था।

श्रीमद्भागवत् के निम्नलिखित श्लोक में मिलता है—

''पुरुरवस एवासीतत्रयी त्रेतामुखे नृप।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गन्धर्व्वमेयिवान।।''

(श्रीमद्भागवत —नवम स्कन्ध 14 अध्याय 49 श्लोक)

इक्ष्वाकु, त्रिशंकु, धुन्धुमार और मान्धाता आदि सूर्यवंशीय राजा सत्ययुग के राजा थे। इन वंशों में भरत और सगर राजा की प्रथम उम्र में सत्ययुग था। पुनः वही महाराज सगर और चन्द्रवंशीय पुरूरवा की शेष उम्र में त्रेता युग की उत्पत्ति हुई। इसलिए सगर और पुरूरवा को समकालीन कहा जाता है। अतः पूर्वकथित वंशादि के काल को विचार करने पर यह स्पष्ट हो उठता है कि रामचन्द्र के अधस्तन 24 पुरुष के पश्चात महाभारत युद्ध शुरू हुआ था। अतएव, पाश्चात्य पंडितों ने श्री रामचन्द्र और युधिष्ठिर के बीच केवल सात पुरुषों का जो व्यवधान रखा है, वह प्रमादपूर्ण है।

इसे और अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं को या उनकी वंशावली के अंश को यहाँ पर दिया जा रहा है।

सूर्यवंश—	चन्द्रवंश—
(बाल्मिकी रामायण के अनुसार)	महाभारत के अनुसार पौरव शाखा

01. सूर्य।
02. मनु।
03. इक्ष्वाकु।
04. कुक्षि।
05. विकुक्षि।
06. बाण।
07. अनरण्य।
08. पृथु।
09. त्रिशंकु।
10 धुन्धुमार।
11. युवनाश्व।
12. मान्धाता।
13. सुसंधि।
14. ध्रुवसंधि।

<u>प्रथमलहर—25</u>

सूर्यवंश—
(बाल्मिकी रामायण के अनुसार)

चन्द्रवंश—
महाभारत के अनुसार—पौरव शखा

15.	भरत।	01.	चन्द्र
16.	असित।	02.	बुध।
17.	सगर।	03.	पुरूरवा।
18.	असमंजस।	04.	आयु।
19.	अंशुमान।	05.	नहुष।
20.	दिलीप।	06.	ययाति।
21.	भगीरथ।	07.	पुरू।
22.	कूकूस्त।	08.	जनमेजय।
23.	रघु।	09.	प्राचीन्वान।
24.	प्रवृद्ध।	10.	संयाति
25.	शंखन।	11.	अहंयाति।
26.	सुदर्शन।	12.	सार्वभौम।
27.	अग्निवर्ण।	13.	जयत्सेन।
28.	शीघ्रग।	14.	अवाचीन।
29.	मरू।	15.	अरिह।
30.	प्राशु श्रुक।	16.	महाभौम।
31.	अंबरीष।	17.	अयुतनायी।
32.	नहुष।	18.	अक्रोधन।
33.	ययाति।	19.	देवतिथि।
34.	नाभग।	20.	अरिह।
35.	अज।	21.	ऋक्ष।
36.	दशरथ।	22.	मतिनार।
37.	श्री राम चन्द्र।	23.	तन्सु।
38.	कुश।	24.	ईलिन।
39.	अतिथि।	25.	दुस्मंत।
40.	निषध(नल)	26.	भरत।
41.	नभ।	27.	भूमन्यु।
42.	पुंडरीक।	28.	सुहोत्र।
43.	क्षेमधन्वा।	29.	हस्ती

<u>प्रथमलहर–26</u>

सूर्यवंश–
(बाल्मिकी रामायण के अनुसार)

चन्द्रवंश–
महाभारत के अनुसार–पौरव शखा

44. देवानीक।	30. विकुंठ।
45. हीन(अहीनगु या रूरू)।	31. अजमिढ़।
46. पारियात्र(पारिपात्र)।	32. संवरण।
47. बलस्थल(दल)।	33. कुरू।
48. बज्रनाभ।	34. विदुरथ(विदुर)
49. सुगन।	35. अनश्वा।
50. विधृति(व्युत्थिताश्व)	36. परिक्षित।
51. हिरण्यनाभ।	37. भीमसेन।
52. पुष्प(पुष्य)	38. प्रतिश्रवा।
53. ध्रुवसंधि।	39. प्रतीप।
54. सुदर्शन।	40. शांतनु।
55. अग्निवर्न(शीघ्र)।	41. विचित्रवीर्य।
56. मरू।	42. पाण्डु।
57. प्रसुश्रुत।	43. अर्जुन।
58. संधि(सुगंधि)।	44. अभिमन्यु(महाभारत की लड़ाई में इन्होनें बृहदल का वध किया था)
59. अमर्षन(अमर्ष)।	
60. महस्वान।	
61. विश्रुतवान।	
62. बृहदल(अभिमन्यु के हाथों महाभारत के युद्ध में इनकी मृत्यु हुई थी)	

महाभारत की लड़ाई में अभिमन्यु द्वारा बृहदल के मारे जाने की बात पाश्चात्य पंडितों ने असम्भव कहकर उपेक्षा ही की है। यह उपेक्षा भी पुरुष संख्या के प्रमादवश हिसाब से हुई है। उद्धृत वंशावली की आलोचना करने पर देखा जाता है कि चन्द्रवंश के अभ्युत्थान के पहले सूर्यवंशी पन्द्रह लोगों का नाम छोड़ने पर(चन्द्रवंशीय प्रथम पुरुष बुध के समकालीन असीत से सूर्यवंश की पुरुष संख्या की गणना करने पर) बृहदल सूर्यवंश 47 संख्या में खड़े मिलेंगे। उन्हें चन्द्रवंश 44 संख्या अभिमन्यु के समकालीन स्वीकार करने में आपत्ति नहीं हो सकती। सुदीर्घकाल में उभय वंश की क्रमिक संख्या में केवल तीन पुरुष का व्यवधान ग्रहणीय नहीं है। विष्णु पुराण चतुर्थ अंश के 22वां अध्याय में बृहदल को युधिष्ठिर का समकालीन माना गया है।

प्रथमलहर—27

मनुष्य के आयुकाल विषयक आलोचना पहले जो कुछ कहा गया है इसमें मनुष्य का आयुष्काल सुदीर्घ लक्षित होता है। यह आर्य शास्त्र ग्रन्थों का सम्पूर्ण अनुमोदित है। वर्तमान काल में बहुत से लोग शास्त्र कथित आयुष्काल को स्वीकार नहीं करते। मनुष्य हजारों साल तक जीवित रह सकता है, इसे ये लोग प्रलाप वाक्य की संज्ञा देते हैं। श्रद्धाष्पद श्रीयुत दुर्गादास लाहिड़ी महोदय ने इस विरूद्धाचरण का जो उत्तर प्रदान किया है, उसे यहाँ दे रहा हूँ।—

"शास्त्रों में लिखा है कि किसी—किसी ने हजारों साल तक राज्य शासन किया था और कुछ लोगों ने इससे भी अधिक काल की परमायु पायी है। शास्त्रों में लिखा है।—सतयुग में मनुष्य की आयु एक तरह से, त्रेता में दूसरी तरह से, द्वापर और कलियुग में कुछ दूसरी तरह की आयु निर्धारित की गयी है।(1) किन्तु आयु गणना की वर्तमान पद्धति में शास्त्र वाक्यों का अनुसरण नहीं किया जाता। मनुष्य एक सौ साल से अधिक परमायु लेकर जी सकता है, आजकल इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पाश्चात्य पंडित गण किसी के सुदीर्घ परमायु की बात सुनकर उपहास करते हैं। किन्तु गहराई से देखने पर हम क्या देखते हैं? पाश्चात्य देश की ही दो घटनाओं का उदाहरण दे रहा हूँ। इंग्लैण्ड के अधिपति द्वितीय चार्ल्स के राजत्व काल में हेनरी जेन्किन्स नाम के एक व्यक्ति की उम्र 169 साल की हुई थी। अष्टम हेनरी के राजत्व काल के ग्यारहवें वर्ष में फ्रोडन रणक्षेत्र में जेन्किन्स ने इंग्लैण्ड की ओर से लड़ाई की थी। इंग्लैण्ड के सिंहासन पर एक एक करके सात राजाओं को राज्य करते उसने देखा था। चार्ल्स प्रथम के राजत्व काल में टॉमास पार नामक और एक दीर्घजीवी का परिचय मिलता है। ये 152 वर्ष और 9 महीने तक जीवित रहे।* * * हमारे शास्त्रानुसार परमायु के विषय में पाश्चात्य पंडित हमेशा विद्रुप करते रहे है। किन्तु उनके ही धर्म ग्रन्थ बाईबिल में महापुरुषों के आयु के बारे में हम क्या देखते हैं? आदम 930 साल से भी अधिक समय तक जीवित रहे है। लुक प्रभृति धर्म प्रवर्तक गण में से कई 900 साल कोई 700 साल और कोई कोई 600 सालों तक जीवित रहे।"

(पृथ्वी का इतिहास) चतुर्थ खण्ड चर्तुथ परिच्छद 35 पृष्ठ

आर्य शास्त्र में कलियुग में मनुष्य की आयु 120 साल मानी गयी है। लोगों को यह परमायु प्राप्त करते हुए बहुतों ने देखा है। इस समय भी यह दृष्य देखा जाता है। ऊपर लिखी आयु से भी अधिक समय तक जीवित रहने की खबर मिल रही है। अतएव शास्त्र निरूपित कलियुग में मानव परमायु काल एक प्रत्यक्ष सत्य है। इस अवस्था में सत्य, त्रेतादि युग के शास्त्र कथित परमायु काल

---

(1) शास्त्रानुसार सत्य युग का परमायु काल एक लाख वर्ष एवं मृत्यु इच्छाधीन थी। त्रेता में दस हजार वर्ष, द्वापर में एक हजार साल और कलियुग में 120 साल की परमायु होगी — यही शास्त्र का मत है।

प्रथमलहर—28

हमारे प्रत्यक्ष के परे रहने पर क्या उसकी उपेक्षा की जायेगी? यदि यही संगत है, तो वर्तमान काल की अदूरदर्शी दृष्टि के अगोचर किसी भी विषय का यथार्थ स्वीकार नहीं करनी चाहिए। प्रतिनियत हम देख रहे हैं कि पाश्चात्य धारणा को हर कदम पर पर्युदस्त(परास्त) होते देखकर भी हम उनके प्रति अंधविश्वासी बने बैठे है। पाश्चात्य पंडितों का कोई मत प्राप्त होने पर उसे वेद वाक्य से भी अधिक अभ्रांत मानकर हम उसे श्रद्धा के साथ ग्रहण करते हैं। लेकिन उस मत में कितनी गहराई है, कितनी सच्चाई है, इसे नहीं देखते। अवश्य पाश्चात्य मत की अश्रद्धा या उसकी उपेक्षा करना हमारा उद्देश्य नहीं है। विचार पूर्वक ग्रहण करना कर्तव्य है। यही कहना चाहता हूँ।

पृथ्वी के वय काल की आलोचना — आर्य शास्त्रानुसार सतयुग से वर्तमान तक की अवधि का काल निर्णय कम से कम 38 लाख 93 हजार साल की आंकी गयी है।(1) पाश्चात्य पंडितों ने इसे भी हास्यवाद कहा है। इस तरह की मान्यता को स्वीकार करने वाले कहते है, "इतिहास पाँच छः हजार साल से अधिक प्राचीन सभ्यता का निदर्शन प्रदान करने में असमर्थ है।" इनकी बातें सम्यक समर्थन योग्य न होने पर भी एक दम उपेक्षणीय भी नहीं है। दूसरे एक सम्प्रदाय का मत है कि ईसा पूर्व चार हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी की सृष्टि हुई है। इनके मत से पृथ्वी की उम्र अभी छः हजार सालों से अधिक नहीं हुई है। परन्तु आर्य शास्त्र कहता है कि वैवस्वत मन्वन्तर के तीन युग(सत्य, त्रेता और द्वापर) सम्पूर्ण रूप से शेष हो चुके है और कलियुग का भी पाँच हजार साल बीत चुका है। जहाँ आकाश पाताल का फर्क है वहाँ दोनों मतों में एक सामंजस्य लाने की चेष्टा करना एक विडम्बना मात्र है। पाश्चात्य मत की सारवत्ता कितनी है यह देखना आवश्यक है। यहाँ पर दो एक पाश्चात्य मत की ही आलोचना की जा रही है।

'पावीलैण्ड केव' के गहवर में कुछ नर कंकाल मिले थे।(2) यह बात भी एक सौ साल पहले की है। वह अस्थि पंजर कितने सालों के पुराने हैं उस समय यह निर्धारित नहीं हो सका। बाद में **Royal Anthropological Institute** के समिति के एक अधिवेशन में अध्यापक सोलास ने निर्णय करके बताया था कि ये अस्थि पंजर **Aurignacian Age** के

---

(1) सत्य युग का मान— 17,28,000 हजार साल, त्रेता युग का मान 12,96,000 हजार साल, द्वापर युग का मान 8,64,000 हजार साल और कलियुग के अभी पाँच हजार साल से कुछ ज्यादा हुए है।

(2) **Paviland Cave represents the most westerly outpost of the Cro-Magnon race, which extended to the east as far as Moravia (in Austria) and to the south as far as Mentone (in Italy)**

प्रथमलहर—29

कंकाल हैं।(1) अर्थात जिस समय ग्लेशियल(बर्फ से आच्छादित अवस्था) के पश्चात पोस्ट ग्लेशियल(हिमपात की बाद की अवस्था) काल की अवस्था चल रही थी और उस समय ऑरिग्नासियान का काल चल रहा था। अब से बीस हजार साल पहले यह स्थिति थी और उसे ही पोस्ट ग्लेशियल कहा जाता है। उस गहवर में कुछ सामान और हथियार भी पाये गए थे जिससे उस समय की सभ्यता का एक ज्वलन्त उदाहरण भी मिलता है। आश्चर्य की बात है कि उस समय को भी मानव सभ्यता का आदिम काल नहीं कहा जा सकता।

कुछ दिन पहले इंग्लैण्ड के टेम्स नदी के गर्भ में मिट्टी के स्तर के भीतर से एक नर कंकाल मिला है। वह पंजर कम से कम एक लाख सत्तर हजार साल पहले के मनुष्य का बताया है।(अध्यापक कीथ ने)। दूसरी जगह भूगर्भ से प्राप्त बहुत से मृद पात्र(मिट्टी के बर्तन) और कब्र स्थान आदि का परीक्षण करने पर उन्हें कम से कम पचास हजार साल का बताया है।(डाक्टर डाउलार ने)। कुछ दिन पहले इ0 बी0 रेलवे लाइन को जब बढ़ाया जा रहा था तो आसानसोल के करीब एक खण्ड (पेड़ का पत्थर) पत्थर पड़ा मिला, जिसे कलकत्ता के सरकारी चित्रशाला में रखा गया है और कृतविद्य विशेषज्ञों ने उसे डेढ लाख साल का पुराना बताया है। इस तरह के दृष्टान्त और भी बहुत से दिये जा सकते हैं। इसके पश्चात भी पृथ्वी के सृष्टि केवल छः हजार साल आँकी जायेगी? उत्तरोत्तर जिस तरह पुरातत्व विभाग ने नये—नये आविष्कार किये है या करते जा रहे है, इससे पाश्चात्य मत भी बदलते जा रहे है। अनन्त भविष्य में नए—नए मत प्रवर्तन और परिवर्तनों की धारा चलता रहेगा। इसका अन्त कहाँ है— भगवान ही जानें।

प्राचीन इतिहास संग्रह करना एक कठिन विषय है। पाँच छः हजार साल पहले का इतिहास नहीं मिल रहा है, कह कर जो एक बात चली है उसे एकदम अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। किन्तु गहराई से विचार करने पर वर्तमान इतिहास संग्रह की प्रचलित पद्धति इतिहास के उपादान संग्रह करने के संपूर्ण अनुकूल नहीं हैं। प्राचीन स्थापत्य के भग्नावशेषों की(स्थापत्य) शिला लिपि, ताम्र शासन, प्राचीन मुद्राएं और प्राचीन साहित्य इत्यादि के उपादान पुरातत्व संग्रह के लिए विशेष सहायक है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन उनका स्थायित्व ज्यादा नहीं है। इन सभी उपादानों की सहायता से दो हजार सालों का इतिहास सग्रंह करना भी मुश्किल है और इस समय इसी पर ज्यादा निर्भर किया जाता है। इस तरह के अस्थायी उपादानों की सहायता से सुप्राचीन काल का विवरण

---

(1)**Lecture of the Royal Anthropological Institutes delivered by Prof. W.T. Sollas.**

संग्रह की चेष्टा को व्यर्थ प्रयास ही कहना होगा। आर्यो ने एकमात्र धर्म के साथ संश्लिष्ट इतिहास को ही स्थायित्व को अंगीकार किया है। उनके मतानुसार धर्म ग्रन्थ के अलावा प्राचीन इतिहास के अलावा दूसरा कोई भी स्थायी उपादान नहीं है। श्रद्धा के साथ शास्त्रों ग्रन्थों की आलोचना करने के ऊपरान्त, उससे ही इतिहास का उपादान उद्धार किया जा सकता है। आर्यों की राजनीति, समाज नीति, शिल्प नीति और वाणिज्य नीति आदि विषयों की मूलभित्ति एकमात्र धर्म है। अतः धर्म ग्रन्थों में इन विषयों के उपादान का अभाव नहीं है। मानव समाज के इतिहास संग्रह के लिए यह सारे उपादान विशेष मूल्यवान है। केवल वेद पुराण ही नहीं, कुरान, बाईबिल आदि सभी देशों के सभी सम्प्रदायों के धर्मग्रंथादि भी अल्पाधिक इतिहास के उपादानों को अपने भीतर संजोए हुए हैं। उनमें से इन्हें बीछ बीछ(चुन चुन) कर निकालने पर बहुत से प्राचीन समय के विवरण मिल सकते हैं। किन्तु सुप्राचीन अतीत का इतिहास संग्रह करने पर ये सभी उपादान भी पराभूत हो जायेगें। वैदिक काल की बात छोड़, वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर का विवरण संग्रह करने पर भी 39 लाख वर्ष का इतिहास आलोचना करना होगा। फिलहाल यह किसी तरह भी संभव नहीं हो सकता। इसी वजह से पुरातत्व को लेकर नाना तरह के वितर्क का सामने आना स्वाभाविक है और हमेशा यही होता है।

युग के मान विषयक आलोचना युग का मान भी आधुनिक पंडित समाज के लिए ग्रहणीय नहीं है यह हम पहले ही कह चुके हैं। वे जिन युक्तियों के सहारे युगमान अस्वीकार करते है, इसका उल्लेख भी हम पहले कर चुके है। इतिहास के पहले(ईसा पूर्व चार हजार वर्ष पहले) पृथ्वी के अस्तित्व को ही जो नहीं मानते, सुदीर्घ प्राचीन युगमान उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सकता। किन्तु गहराई से सोचने पर या आलोचना करने पर देखा जायेगा आर्य कथित युग प्रर्वत्तना और युग मान का हिसाब तिथि नक्षत्रादि के साथ घनिष्ठ रूप से जुडे हुए हैं। अतएव उसे काल्पनिक और भित्तिहीन कह कर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सत्य, त्रेता और द्वापर युग की बात हमारी धारणाओं से परे है। अतः इन विषयों की आलोचना का प्रयास सर्वथा व्यर्थ होगा। कलियुग की बात भी सम्यक रूप से हृदयगंम करना हमारे लिए साध्यातीत है। किन्तु इस विषय में एक बात कही जा सकती है वर्तमान समय इस 1927 ईस्वी कलिगताब्दा या कल्यब्दा 5027 है। इस हिसाब से 3100 ईसा पूर्व अब्द में कलियुग शुरू हुआ है। शास्त्रों के अनुसार शुक्रवार माघी पूर्णिमा के दिन इस युग की उत्पत्ति हुई है। उस समय सप्तऋषि मण्डल मघा नक्षत्र में था। वराह मिहिर के टीकाकार भट्टोत्पल के बताए गए गर्ग वचन में लिखा गया है– ''कलि और द्वापर युग के संधि काल में विश्व वासियों के मंगलार्थ ऋषियों ने पितृ पुरुषों के अधिष्ठित नक्षत्र में

प्रथमलहर—31

अर्थात मघा नक्षत्र में निवास किया था।'' अधिकांश शास्त्र ग्रंथों का यही मत है। इस सूत्र को अवलम्बन कर हिसाब करने से कल्यब्द मान अस्वीकार नहीं किया जा सकता और इसे प्रलाप वाक्य कहकर उपेक्षा करना भी संगत नहीं है। और भी देखा जा रहा है कि वराह मिहिर के आविर्भाव के काल तक कलिगताब्द या कल्यब्दा को लेकर ही ज्योतिष के गणनादि सभी कार्य सुसम्पन्न होते थे। वराह मिहिर ने ही सर्व प्रथम ज्योतिष गणना में शकाब्द को ग्रहण किया था। तब तक कलिगताब्द और कल्यब्दा परित्यक्त हो गया। जिस अब्द को ज्योतिर्विदों ने ग्रहण किया था उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना युक्ति संगत नहीं हो सकता।

आर्य मतानुसार कलियुग काल का 5027 साल खत्म हो चुका है। मतांतर में पाश्चात्य पंडितों के मतानुसार पृथ्वी की उम्र आज तक छः हजार साल पूरा नहीं हुआ है। इस कठिन तारतम्य का सामंजस्य कब तक होगा, उसे नहीं कहा जा सकता।

चन्द्रवंश व सूर्यवंश की आलोचना प्रसंगवश हम विषयान्तर में बहुत दूर आ गए है। चन्द्रवंश की आलोचना ही हमारा मुख्य विषय है। हम पहले ही बता चुके हैं कि सूर्यवंश का अभ्युदय काल चन्द्रवंश से प्राचीन है और दोनों वंश ही सम्बन्ध सूत्र में एक दूसरे से जुड़े हुए थे। अतएव चन्द्रवंश की आलोचना से पहले सूर्यवंश के क्रम विस्तृति के बारे में दो चार बातें आलोचना करना अप्रासांगिक नहीं होगा।

सूर्यवंश की संक्षिप्त विवरण सूर्यवंशीय राजाओं की प्रथम व प्राचीन राजधानी कोशल राज्य की अयोध्या नगरी थी। यहीं पर इस वंश के प्रथम पुरुष स्वनाम–धन्य महाराज इक्ष्वाकु का राजपाट स्थापित हुआ। यहीं पर उनके परवर्ती 34वें पुरुष भगवतार श्री राम चन्द्र आविर्भूत हुए। श्री राम चन्द्र के पुत्र कुश से लेकर 6वां पुरुष सुमित्र तक ने यहीं पर राजत्व किया था, सुमित्र के परवर्ती राजाओं का इतिहास पुराणादि में नहीं मिलता। वे लोग किस समय और किस कारणवश कोशल राज्य त्याग कर दूसरी जगह चले गए थे, यह निर्णय करना भी कठिन है। केवल इतना ही जाना जाता है कि सुमित्र के बाद अधस्तन चौथे पुरुष कनक सेन नामक राजा अनुमानिक 200 सम्वत् में(144 ई0) सौराष्ट्र प्रदेश को जीतकर उसके अन्तर्गत विराटपुर में अपनी राजधानी की स्थापना की। कनक सेन के पश्चात उनके चौथे पुरुष विजय सेन ने सौराष्ट्र प्रदेश में विजयपुर नामक एक नगरी की प्रतिष्ठा की। वहाँ एक के बाद एक उनके बाद छठवें पुरुष शिलादित्य तक ने राज्यत्व किया। इस समय सूर्यवंशीय लोगों ने ''बालकराय'' की आख्या प्राप्त की थी। काल क्रम में शिलादित्य यवन के द्वारा पराजित और निहत होने पर सौराष्ट्र में सूर्यवंशीय राजाओं का प्रभाव लुप्त हो गया। इसके बाद शिलादित्य का पुत्र ग्रहादित्य ने

प्रथमलहर–32

सौराष्ट्र के समीपवर्ती ''इदर'' नामक जगह पर राजधानी स्थापित किया था। ग्रहादित्य से लेकर उनके अधस्तन कई पुरुष तक यहीं पर राजपाट किया था। इसके बाद यह वंश आहर नामक एक जगह पर चला गया। पूर्व उल्लिखित ग्रहादित्य के छठवें व्यक्ति ने भी ग्रहादित्य का नाम ग्रहण किया था। राजस्थान के वर्तमान शिशोदिय कुल के स्थापक वाप्पारावल बाद वाले ग्रहादित्य के ही वंशधर है। राजपुताना के सूर्यवंश को क्षत्रियगण साधारणतः जो ग्रहलोट या गिल्होट(गहलोत) नाम से परिचित है, वह पूर्व कथित कनक सेन के वंशधर ग्रहादित्य से ही शुरु हुआ माना जाता है। किंवदंती प्रचलित है कि ग्रहादित्य का जन्म गुहा में हुआ था और उस अवस्था को सूचित करने वाला शब्द ही ग्रहलोट या ग्रहलेट कहलाता है। वही शब्द बदलते बदलते इस समय गिलहोट के रूप में रूपांतरित हुआ है। यह गिलहोट कुल 24 भागों में विभक्त है। इनमें आर्घ्य और शिशोदिय कुल ही विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। गिहेलाट कुलतिलक बाप्पारावल से ही राजपुताना में सूर्यवंशीय राजाओं का आधिपत्य संस्थापित हुआ।

अम्बराधिपति महाराज जय सिंह ने कर्नल टाड को सूर्यवंश की जो तालिका प्रदान की थी, यहाँ उसे ही अवलम्ब किया गया है। पुराणादि के मतानुसार इस विषय पर सिद्धान्त लेना सहज साध्य नहीं है। क्योंकि सुमित्र के परवर्ती वंशधरों का नाम किसी पुराण में नहीं मिलता।

यहाँ पर सूर्यवंश की और अधिक विवरण देने की सुविधा भी नहीं उपलब्ध हुई और न ही उसकी आवश्यकता है।

चन्द्रवंश का विवरण महाभारत में चन्द्रवंश के पुरूरवा का नाम ही पहले आता है। हरिवंशादि पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र अत्रि, अत्रि के पुत्र चन्द्र, चन्द्र के पुत्र बुध और बुध के आत्मज पुरूरवा थे। पुरूरवा के परवर्ती वंशधरों के नाम सभी पुराणों में प्रायः एक ही तरह मिलते है।

पुरूरवा की गर्भधारिणी मनु–दुहिता इला थी। इनका जन्म वृतान्त और जीवन वृतान्त वैचित्रयमय है। इस विषय में विष्णु पुराण में लिखा हैः–

इष्टिन्च मित्रावरूणयोर्मनुः पुत्रकामश्चकार। तत्रापहातेहोतुब पचारादिला नाम कन्या बभुव।।
सैव च मित्रावरूण प्रसादात सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेयासित्। पुनश्चेश्वर कोपात् स्त्रीसती सोमसुनो बुधिस्याश्रम समीपे बभ्राम। सानुरागश्च् तस्यार्बुधः पुरूरबस मात्मजम्रत्–पादयामास । जाते च तस्मिन्नमिततेजोभिः परमर्षिभिरिष्टिमय ऋंमयो यजुर्म्मयः साममयोऽर्थर्व्वमयः सर्व्वमयो मनोमयो ज्ञानमयोऽकिंचिन्मयो भगवान यज्ञपुरुषरूपी सुद्युन्नस्य पुंस्तमभिलाष द्विर्यथावदिष्टः।
''तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युन्नोऽभवत्।''

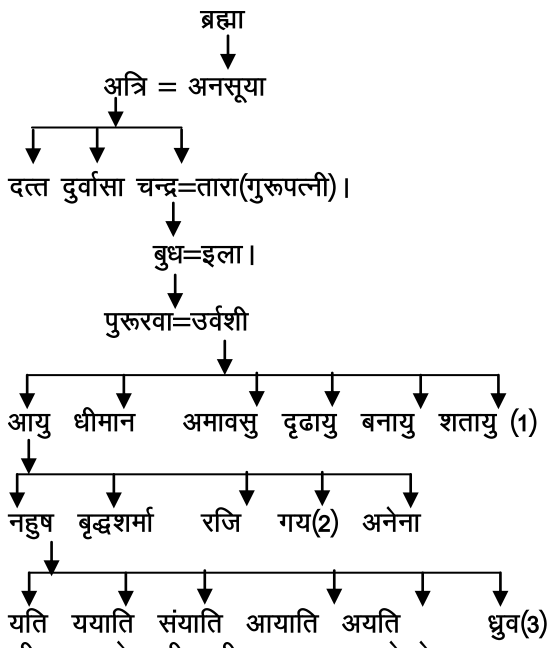
विष्णु पुराण–चतुर्थ अंश प्रथम अध्याय 6–11 श्लोक।

मर्मार्थ– मनु ने पुत्र कामना से 'मित्र' और 'वरूण' नामक दोनों देवताओं की प्रीती के लिए यज्ञ किया था। मनुपत्नी के प्रार्थना के अनुसार से होता, कन्या प्राप्ति के प्रार्थना करने से उस वैकल्पिक

<u>प्रथमलहर–33</u>

यज्ञ से इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वह मैत्रेय, मित्रा वरूण देवों के अनुग्रह से वह इला नाम की मनु–कन्या ही सुदुयन्न नामक पुत्र में रूपान्तरित हुई फिर ईश्वर कोप से वह सुदुयन्न कन्या होकर चन्द्र–पुत्र बुध के आश्रम के करीब घूमने लगी। बुध उस कन्या के प्रति अनुरक्त हुए और बाद में उससे पुरूरवा नामक पुत्र का जन्म हुआ। पुरूरवा के जन्म ग्रहण के पश्चात अमित तेजा परमर्षिगण सुदुयन्न के पुरुष अभिलाष में ऋंमय, यजुर्म्मय, साममय अथर्व्वमय, सर्व्वमय और मनोमय, किन्तु परमार्थतः अकिंचिन्मय भगवान यज्ञ पुरुष रूपी शिव की आराधना करने लगे। भगवान के आशीर्वाद से इला पुनः पुरुष सुदुयन्न हो गई।

इससे यह पता चलता है कि मनु के यज्ञलब्ध यह सन्तान को कभी पुरुष और कभी नारी अवस्था प्राप्त होती थी। उनके पुरुषावस्था का नाम सुदुयन्न और नारी अवस्था का नाम इला था। इसी इला के गर्भ से एवं चन्द्र–पुत्र बुध के औरस से पुरूरवा का जन्म हुआ था। पुरूरवा के औरस से आयु आदि छः पुत्रों का जन्म हुआ था। आयु के नहुष आदि पाँच पुत्र और नहुष के यति और ययाति आदि छः पुत्र हुए थे। उनके वंशधारा को अगर आँका जाय तो वह इस तरह की होगी।



सुदुयन्न या इला कभी पुरुष तो कभी नारी रूप प्राप्त करते थे।

.....

(1) हरिवंश मतानुसार पुरूरवा के पुत्रों के नाम है– आयु, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु बनायु और शतायु था। यहाँ पर सात पुत्रों का नाम मिल रहा है। भागवत के मतानुसार पुत्र संख्या छः है। इनमें से किसी किसी का नाम हरिवंश और विष्णु पुराण से नहीं मिलता।

(2) किसी–किसी पुराण के मतानुसार आयु के पाँच पुत्र थे। उन सभी पुराणों में रजि, गय के जगह राजिंगय लिखा गया है। राजिंगय शब्द द्विधा विभक्त होकर राजि–गर होना कोई आचर्श्य की बात नहीं है। अगर यही सत्य है तो पुत्र संख्या एक और बढ़ जायेगी।

(3) सभी पुराणों में यति और ययाति का नाम अपरिवर्तित मिलता है। दूसरे नामों में कुछ विषमता दिखाई देती है। मत्स्य पुराण के अनुसार नहुष के सात पुत्र थे।

प्रथमलहर—34

यह हम पहले ही कह चुके हैं। वे पहले स्त्री थे इसलिए राज्य भाग से वंचित हो गए। बाद में वशिष्ठ के अनुरोध पर सुदुयन्न के पिता ने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर को दान किया। बाद में वह सुदुयन्न से पुरूरवा को मिला था। इस सन्दर्भ में विष्णु पुराण का वाक्य नीचे दिया जा रहा है।—

"सुदुयन्नस्तु स्त्री पूर्व्वकत्वात् राज्यभागं।
न लेभे।। तत् पित्रातु वशिष्ठ वचनात्।।
प्रतिष्ठानं नाम नगरं सुदुयन्नाय दत्तम्।
तच्चासौ पुरूरवसे प्रादात्।।"

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश प्रथम अध्याय 12—13 श्लोक

पुरूरवा का विवरण उसी समय से पुरूरवा प्रतिष्ठानपुर में अधिष्ठित रहे। यही चन्द्रवंश के प्रथम नरपति हुए। पुरूरवा ने वेद विहित बहुत तरह यज्ञादि के अनुष्ठान के द्वारा भूमण्डल में विशेष ख्याति अर्जन किया था। अमित शौर्य के बल पर उन्मत्त होकर अवैध उपायों से ब्राह्मणों के प्रति अत्याचार एवं उनके धन रत्नादि हरण करते थे। ब्राह्मणों ने इस उपद्रवों के प्रतिकार के लिए असमर्थ होकर मन ही मन खूब क्षुब्ध हो उठे थे। पुरूरवा के इस तरह की प्रवृत्ति के निवारण के लिए देवर्षि सनत् कुमार ने उन्हे अनुदर्श यज्ञ में दीक्षित करना चाहा, किन्तु पुरूरवा सहमत नहीं हुए। इसके बाद वे ब्राह्मणों के शाप से विनष्ट होकर गन्धर्व लोक से यज्ञार्थ त्रिधाग्नि(1) को ले आए। उस समय अप्सरा ललाम उर्वशी को भी ले आए थे(2)। यह उर्वशी 59 सालों तक उनकी पत्नी के रूप में थी। इसी के गर्भ से पुरूरवा के पुत्रों ने जन्म लिया था।

---

(1) गार्हस्पत्य, आहवनीय और दक्षिण नाम की त्रिविध यज्ञाग्नि है।

(2) हरिवंश के अनुसार स्वर्ग विद्याधरी उर्वशी ब्रह्म शाप से नर योनि प्राप्त हुई। पद्म पुराण के अनुसार वह मित्र और वरूण के अभिसम्पात से मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ था। उस समय उर्वशी ने इस शर्त पर पुरूरवा के पत्नीत्व स्वीकार करने पर तैयार हुई कि वह राजा को नग्नावस्था में नहीं देखेगी, जबतब राजा अकामा पत्नी में रत नहीं होंगे और वे दिवस में एक बार घृताहार करेंगे और जब तक उर्वशी की शयया के पास दो मेष बँधे रहेंगे तब तक वे राजा की पत्नी के रूप में रहेंगी। इसकी अन्यथा होने पर वह शापमुक्त होकर राजा को परित्याग करके चली जायेंगी। राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और उर्वशी के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

गंधर्वगण उर्वशी को शाप मुक्त करने के उपाय में जुट गये। एक बार विश्वावसु नामक एक गंधर्व ने रात को उर्वशी के शयया के पार्श्व स्थित दोनों मेषों को हरण कर लिया। उर्वशी ने तत्क्षण ही राजा को इस घटना से अवगत कराया। राजा उस समय नग्नावस्था में सोये थे। उन्होनें

प्रथमलहर–35

नहुष का विवरण आयु के ज्येष्ठ पुत्र नहुष पितृ सिंहासन पर बैठे। ये प्रजा पालक एवं धार्मिक नरपति थे। राजधर्म के प्रभाव से देव, दैत्य, नाग और यक्षादिकों को भी उन्होनें वश्यता स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया था। उनके शासन कौशल के प्रभाव से दुर्दान्त दस्युदल नियंत्रित होकर सर्वदा ऋषिओं को कर प्रदान और पीठ पर लेकर वहन करते थे।

ययाति का विवरण नहुष के 6 पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र यति अपने न्याय और धर्म के अनुसार पितृ राज्य के अधिकारी होने पर भी विषय वितृष्ण वश यौवन काल में ही प्रव्रज्या व्रत का अवलम्बन किया। इसी कारणवश द्वितीय पुत्र ययाति सिंहासन पर बैठे। ये धार्मिक प्रजावत्सल एवं न्याय–परायण सम्राट थे। महाराज ययाति की देवयानि और शर्मिष्ठा नामक दो पत्नियाँ थीं। देवयानि दैत्य गुरू शुक्राचार्य की दुहिता थी और शर्मिष्ठा दैत्य राज वृषपर्वा की कन्या थी।

एक बार दैत्यराज की कन्या शर्मिष्ठा, देवयानि और दूसरी सहचारिओं के साथ जल–विहार कर रही थीं। उनके पहनने वाले कपड़े सरोवर के किनारे थे। देवराज इन्द्र उस सरोवर के किनारे से होते हुए जाते हुए युवतियों को जल क्रीड़ा करते हुए देखकर मुग्ध हो गए एवं सरोवर के किनारे रखे हुए कपड़ों को इकठ्ठा कर कौतुहल ह्वदय से एक तरफ छिप गए, इसके बाद युवतियों ने पानी से निकलकर व्यस्त होकर स्तूपीकृत वस्त्रों में से जिसे जो हाथ लगा, वस्त्रों को पहन लिया। व्यस्तता की वजह से कपड़े बदल गए थे। राज कन्या शर्मिष्ठा ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानि का वस्त्र पहन लेने पर दोनों में कलह उपस्थित हुआ। उनका पारस्परिक कलह हद की सीमा को पार कर एक ऐसी परिस्थिति का उद्भव हुआ कि क्रोधित देवयानि ने शर्मिष्ठा के पहने हुए अपने वस्त्र को खींचना शुरू कर दिया। अभिमानिनी और कुपित शर्मिष्ठा को यह व्यवहार असहनीय हो उठा और वह देवयानि को धक्का देकर, देवयानि को कुएँ में गिराकर पितृ गृह चली गयी।

कुछ क्षणों के पश्चात मृगयाविहारी तृष्णातुर महाराज ययाति ने वहाँ पर उपस्थित हो कुएँ के भीतर देवयानि के विलाप ध्वनि को सुना। उन्होनें कुएँ के भीतर से ताक कर देखा, एक परमासुन्दरी युवती कुएँ के भीतर पड़ी रो रही है। महाराज ययाति ने रमणी का परिचय और उसकी दुर्गति का

....

उसी हालत में गन्धर्व के पीछे दौड़ लगाई। इधर राजा को उलंग अवस्था में देखकर उर्वशी तत्क्षण ही अदृश्य हो गयी और गन्धर्व ने भी मेष को त्याग कर पलायन किया।

(हरिवंश–26 अध्याय)

ऋग्वेद दसवें मण्डल में पुरूरवा और उर्वशी का वर्णन मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक भी इसी घटना को लेकर रचा गया है।

<u>प्रथमलहर—36</u>

कारण जानकर, उसका दक्षिण हस्त धारण कुएँ बाहर निकाला और देवयानि से विदा लेकर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गए।

अपमानिता और क्षुब्धा देवयानि ने पिता के यहां जाकर इस आत्मलांक्षन का विस्तार से निवेदन किया। प्राण प्रतिमा सम कन्या की दुर्गति की बातें सुनकर दुखित और मर्माहत शुक्राचार्य ने दैत्य लोक परित्याग कर कहीं दूसरी जगह जाने के लिए कृत संकल्प हुए।

शुभानुध्यायी कुल गुरू के इस तरह के मनोभाव को जानकर, दैत्यराज वृषपर्वा ने यहां जाकर अपनी लड़की के अपराध की मार्जना के लिए प्रार्थना की। दैत्यराज की स्तुति वाक्य से भार्गव का क्रोधानल कुछ प्रशमित हुआ। धैर्यावलंबन पूर्वक उन्होनें अंगीकार किया कि देवयानि का मनोमलिन्य दूर हो जाने पर वे दैत्य राज्य में रहेंगे।

इसके बाद पिता से सारी बातें सुनकर देवयानि ने कहा ''यदि राजकुमारी शर्मिष्ठा दो हजार दैत्य—कन्याओं के साथ हमारी दासी बन जाए और मैं विवाहोपरान्त स्वामी गृह जब जाउँगी तो वह हमारे साथ अगर वहां जाने पर सम्मत हो तो हमारी मनोवेदना कुछ कम अवश्य होगी। इसके अलावा मेरा और कोई मन्तव्य नहीं है।'' दैत्यराज ने गुरू तनया का अभिप्राय व्यक्त कर शर्मिष्ठा को देवयानि की परिचारिका वृत्ति अवलम्बन करने के लिए अनुरोध किया। अभिमानिनी शर्मिष्ठा के लिए इस अनुरोध की रक्षा करना बहुत बड़ी ग्लानि थी पर पितृ कुल की कल्याण कामना से पिता का आदेश पालन करने पर सम्मति प्रदान कर दी।

कुछ दिनों बाद एक समय देवयानि, शर्मिष्ठा और दूसरी सहचरिओं के साथ पूर्व कथित उसी कुएं के करीब उद्यान में भ्रमण कर रही थी। उसी समय मृगया अनुसरण करते हुए महाराज ययाति ने उद्यान में प्रवेश किया एवं अप्सरा सम परम लावण्यमयी युवतीवृन्दों के रूप माधुर्य से आकृष्ट होकर उनके समीप पहुँचे। यौवन सुलभ चांचल्यमयी देवयानि भी महाराज ययाति के दिव्य रूप का दर्शन कर विमोहित हो गई और ययाति के यहां आत्म समर्पण किया। किन्तु धर्मपरायण ययाति ने उनका परिचय जानने के पश्चात कहा, ''आप ब्राह्मण कन्या है अतः मैं आपका पाणिग्रहण करने में असमर्थ हूं। विशेषतः आपके पिता इस परिणय में किसी भी तरह सम्मति प्रदान नहीं करेगें।'' ये बातें सुनकर देवयानि ने कहा, ''इसके पहले आपने मेरा पाणिग्रहण कर कूप से मुझे बाहर निकाला है। अतः हमारा पाणिग्रहण प्रकारान्तर में पहले ही हो चुका है। अब आपका विमुख होना आपके लिए संगत नहीं होगा— यही आपसे प्रार्थना है।''

प्रथमलहर—37

महाराज ययाति ने ब्रह्म श्राप के भय से देवयानि के आत्मोत्सर्ग की बातों में सम्मति प्रदान नहीं कर सके। इसके पश्चात देवयानि पितृघर जाकर अनुपूर्वक सारी घटनाओं को बताया और प्रार्थना किया कि विपदा से उद्धार करने वाले उस महापुरुष के हाथ उसे सौंप देने के लिए कहा। संतान वत्सल भार्गव ने इस प्रस्ताव में अपनी सम्मति प्रदान करते हुए देवयानि को ययाति के यहां सौंप दिया और कहा ''मैं वर प्रदान करता हूँ कि इस प्रतिलोम विवाह का पाप तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा किन्तु मेरे कन्या की अनुगामिनी दैत्यराज की कन्या शर्मिष्ठा को कभी भी तुम स्त्री रूप में ग्रहण न करना और उसे पूजनीय समझकर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना'' महाराज ने उनका यह आदेश शिरोधार्य कर देवयानि का पाणि ग्रहण किया।

महाराज ययाति नवपरिणीता महिषी के साथ अपने निवास स्थल पर लौट आए और देवयानि को राज अन्तःपुर में और शर्मिष्ठा को अन्तःपुर के करीब अशोक वन में एक निभृत निवास में स्थान देकर सुख स्वछन्द के साथ दिन बिताने लगे। कुछ दिनों के पश्चात देवयानि के गर्भ से ययाति के यदु और तुर्वसु नामक दो कुमारों का जन्म हुआ।

इधर ऋतुमती शर्मिष्ठा ऋतु रक्षार्थ महाराज ययाति के शरणापन्न हुई। सत्यसन्ध ययाति ने, शुक्राचार्य के यहां वचनबद्ध होने की बातों को याद कर, युवती की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। किन्तु शर्मिष्ठा ने नाना तरह की युक्तिओं से ययाति को वशीभूत कर अपना अभिलाष पूर्ण किया। इसके बाद उसके गर्भ से क्रमशः द्रुहयु, अनु और पुरू नाम के तीन पुत्रों का जन्म हुआ।

एक बार देवयानि, ययति के साथ अशोक वन में जाकर उद्यान बिहारी सुकुमार तीन लड़कों को देखकर अवाक् हो गयी और उनका परिचय पूछा। तीनों बालकों ने महाराज ययाति की ओर उँगली दिखाकर विनीत भाव से कहा ''यही हमारे पिता हैं।'' तब देवयानि को परिस्थिति को समझने में देर नहीं हुई और बिना कुछ कहे क्रोधित और रोती हुई देवयानि पितृ गृह जाने के लिए तैयार हो गयी। महाराज ययाति ने भय विह्वल चित्त से विनय पूर्वक महिषी को प्रतिनिवृत्त करने की चेष्टा की, किन्तु कोई हल न हुआ। अन्त में कोई उपाय न देखकर ययाति ने भयभीत और विषन्न मन से अभिमानिनी पत्नी का अनुसरण किया।

ययाति के प्रति शुक्राचार्य का शाप कन्या की इस अवस्था को देखकर, ययाति के व्यवहार की बातें सुनकर, कोपन स्वभाव दैत्य गुरू आँखें तरेरते हुए ययाति की ओर देखकर श्राप दिया और कहा, ''तुमने धर्मनिष्ठ होकर भी सामान्य इन्द्रिय परितृप्ति के वश धर्म विगर्हित कार्य किया है। अतः दुर्जय जरा(बुढ़ापा) अविलम्ब तुम्हारी देह को आक्रमण करे।'' ययाति ने हाथ जोड़कर कहा

प्रथमलहर—38

''मैं शास्त्रानुमोदित धर्म रक्षार्थ आपका आदेश लंघन करने पर मजबूर हो गया। ऋतुमती रमणी के ऋतु रक्षार्थ प्रार्थना को प्रत्याख्यान करना एक पाप कर्म है। इस पाप कर्म से बचने के लिए ही मैं आपके यहां अपराधी हूँ। मैं आज तक यौवन सुख उपभोग कर परितृप्त नहीं हो सका। अतएव आपके चरणों में प्रार्थना करता हूं कि इस कठोर अभिसम्पात से मुक्ति लाभ का विधान बताएं।'' राजा के विनय व्यवहार से शुक्राचार्य ने क्रोध परित्याग कर कहा ''तुम इच्छा करके अपनी जरा किसी दूसरे के शरीर में प्रवेश करा सकते हो।''

महाराज ययाति शुक्राचार्य के वाक्य से कुछ आश्वस्त सा होकर बोले, ''यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरे पाँच पुत्रों में जो मेरे जरा भार को ग्रहण करने के लिए सम्मत होगा उसे ही अपने साम्राज्य का अधिकार सौंपने में समर्थ रहूं— यही वर प्रदान कीजिये।'' शुक्राचार्य ने दयापरवश उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

ययाति का जराभार अर्पण व पुत्रों के प्रति अभिशाप जरा से पीड़ित ययाति क्षुब्ध हृदय से अपनी राजधानी में प्रत्यावर्तन करके ज्येष्ठानुक्रम से हर एक पुत्र को जराभार ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया, सबसे कनिष्ठ पुत्र पुरू को छोड़ कर किसी ने भी पिता के इस कुत्सित और दुखदायी जरा भार को ग्रहण करने में सम्मत नहीं हुआ। तब ययाति ने सबसे कनिष्ठ पुत्र पुरू के ऊपर जरा भार सौंप कर, उनको ही साम्राज्य का उत्तराधिकारी निर्वाचन किया व दूसरे पुत्रों को अभिसंपात कर नाना देशों में उन्हें निर्वासित कर भेज दिया। उन्होंने उन पुत्रों को, जो आदेश दिया था, महाभारत के आदि पर्व के 83 अध्याय से उन्हें निम्न उद्धृत किया जाता है —

यदु के प्रति— ''यत्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्माद् राज्यभाक् तात प्रजा तव भविष्यति।।'' ।9।

अर्थात, ''तुम जब मेरे पुत्र होकर भी मेरे अनुरोध रक्षा के लिए अपने यौवन को नहीं दिया तब इस अतुल ऐश्वर्य के उत्तराधिकारीत्व से वंचित होगे और तुम्हारे उत्तर पुरुष भी राजा नहीं हो सकेंगे।''

तुर्वसु के प्रति— ''यत्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति।। ।13।
संकीर्णचार धर्मेषु प्रतिलोम चरेसु च।
पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ़ राजा भविष्यसि।। ।14।

<u>प्रथमलहर–39</u>

गुरूदार प्रदक्तेषु तिर्यग् योनि गतेषु च ।
पशुधर्मेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि।।'' ।15।

मर्मार्थ– तुम मेरे आत्मज होकर भी मुझे अपना यौवन प्रदान नहीं कर सके। अतएव तुम्हारी वंश धारा धराधाम से विलुप्त हो जायेगी एवं आचार भ्रष्ट राक्षस और म्लेच्छ इत्यादि अन्त्यज जाति के ऊपर तुम आधिपत्य करोगे।

द्रुहयु के प्रतिः– ''यत्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्माद् द्रुहयो प्रियः कामो न ते सम्पतस्यतेक्कचित्।। ।20।
यत्राश्वरथमुख्यानामश्वानां स्याद् गतम् न च।
हस्तिनां पीठकानांच गर्दभानास्तथैव च।। ।21।
उडुपप्लव संतारो यत्र नित्यं भविष्यति।
अराज भोज शब्दन्तं तत्र प्रापस्यसि सान्वयः।। ।22।

मर्मार्थ– तुम मेरे आत्मज होकर भी अपना यौवन प्रदान नहीं कर सके। इसलिए तुम्हारी कोई भी प्रिय अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी। बल्कि अश्व, गज, रथ, पाठक, गर्दभ, छाग, गौ और शिविका इत्यादि यान वाहन से हीन दुर्गम प्रदेश में रहोगे। तुम्हारे अधिकृत स्थानों पर गमन करने के लिए एक मात्र उडूप(भेला) या तैरना छोड़ कर और कोई अवलम्ब नहीं रहेगा। इसके अलावा तुम्हारे वंशधर राजा की उपाधि नहीं प्राप्त होगें।

अनु के प्रतिः– ''यत्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
जरा दोषस्तया प्रोक्तस्तस्मात्वं प्रतिलप्सयसे।। ।25।
प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यस्त्यनोस्तब।
अग्नि प्रस्कन्दन पर स्तं चाप्येबं भविष्यषि ।। ।26।

मर्मार्थ– पुत्र होकर भी जब तुमने मेरे अनुरोध की रक्षा नहीं की तब तुम निश्चय ही अविलम्ब जरा को प्राप्त होगे। तुम्हारे वंशधर यौवन प्राप्त होते ही काल–कवलित होंगे।

कनिष्ठ पुत्र के प्रति जरा भार अर्पण के पश्चात ययाति भोग विलास में सुदीर्घ काल तक व्यतीत कर ययाति ने समझ लिया कि भोग से वासना की परितृप्ति नहीं होती, त्याग ही आवश्यक है। तब उन्होनें लौकिक सुख सम्पदा के प्रति वीतस्पृह होकर पुत्र को यौवन प्रदान कर और पुत्र के अंग में संचारित अपनी जरा को ग्रहण पूर्वक वाणप्रस्थ धर्म का अवलम्बन किया।

प्रथमलहर–40

सम्राट ययाति का राजपाट कहाँ था पुत्रों के प्रति दण्डादेश प्रदान करते समय राज चक्रवर्ती ययाति की राजधानी कहाँ थी, इस निर्णय के लिए वर्तमान काल में बहुत से वितर्क सामने आये हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि उस समय उनका राज पाट वर्तमान भारत से बाहर था। किसी–किसी ने मध्य एशिया की ओर उँगली उठायी है। ययाति के अधस्तन दूसरे स्थानीय दुश्मंत तक भारत के बाहर थे। उनके तनय भरत से भारत वर्ष की स्थापना हुई है। इतिहास में एसे मतों का कोई अभाव नहीं है, किन्तु इन मतों का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। किसी–किसी ने प्रमाण प्रदान करने की कोशिश की है, पर वे प्रमाण नितान्त ही कमज़ोर हैं।

प्राचीन भारत की सीमा वर्तमान की तरह इतनी संकीर्ण नहीं थी। एक समय ससागरा पृथ्वी ही भारत साम्राज्य के अधीन थी। अनन्त काल के अनन्त परिवर्तनों के पश्चात वर्तमान परिस्थिति आज सामने खड़ी हुई है। किन्तु पुरातत्व आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है, साम्राज्य की सीमा चाहे जितनी विशाल हो, सम्राट का राज पाट भारत में ही था। यही से सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं ने नाना देशों में जाकर आर्य निवास की स्थापना और अपना प्रभुत्व कायम किया था। उनके वंशधरों में से कुछ लोगों ने भिन्न नामों से परिचित होकर विभिन्न धर्म अवलम्बन कर सम्पूर्ण रूप से भिन्न देशों और भिन्न जातियों में रहकर वहीं के हो गये और कुछ तो भारत में लौटकर पुनः आर्य समाज में आ मिले।

सूर्यवंशीयों की आदि राजधानी, कोशल राज्य की अयोध्या, वर्तमान भारतवर्ष के बाहर नहीं– यह पावन भूमि मनुष्य के आदि पिता वैवस्वत मनु के द्वारा निर्मित हुई थी। वैवस्वत मनु के पहले, दूसरे देशों में आर्यों का अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता था। सम्राट ययाति के राज पाट के अवस्थान के निर्णय के लिए चन्द्रवंशीय राजाओं के वासस्थान के विषय में आलोचना करना ही, मेरा यहाँ मुख्य उद्देश्य है। इस सम्बन्ध में आलोचना के दौरान देखा जायेगा कि चन्द्रवंशीयों की राजधानी अनादिकाल से ही वर्तमान भारत के अन्तर्गत गंगा यमुना के पावन मिलन तट पर ही थी। उस स्थान का नाम था प्रतिष्ठानपुर। पहले ही कहा गया है कि वैवस्वत मनु के पुत्र सुदुयन्न पहले नारी थे, इसलिए राज्य सिंहासन पर नहीं बैठ सके। बाद में महर्षि वशिष्ठ के अनुरोध से सुदुयन्न के पिता ने सुदुयन्न को प्रतिष्ठान नगर प्रदान किया था। उसे पुरुषानुक्रम से पुरूरवा और उनके वंशधरों को मिला। यह दान प्राप्ति ही चन्द्रवंशियों के साम्राज्य विस्तार का मूल सूत्र रहा है। इस विषय में विष्णु पुराण के

प्रथमलहर–41

मत पहले ही दिखाया गया है। हरिवंश(1) और देवी भागवत्(2) जैसे ग्रन्थों में इस बारे में उल्लेख मिलता है।

प्रतिष्ठानपुर का स्थान निर्णय सुदुयन्न से ही प्रतिष्ठान नगर की प्रतिष्ठा हुई। पुरूरवा ने भी, वही पर राज्य शासन किया था, पुराण के प्रमाणों द्वारा यह भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुका है। अभिप्रतिष्ठान का अवस्तान निकालना आवश्यक है। इस आवश्यकता से भी हमारे शास्त्रकार ऋषिओं के द्वारस्थ होना छोड़ और कोई उपाय नहीं है। पहले हरिवंश को ही लें। उसमें लिखा है– "एवं प्रभावोराजासीदैलस्तु नरसत्तम।

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते।।
राज्यं स करयामास प्रयागे पृथिवीपतिः।
उत्तरे जान्हवी तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः।।"

खिल हरिवंश 26 अध्याय 48–49 श्लोक

मर्मार्थ– पुरुषोत्तम इलानन्द पुरूरवा प्रभाव सम्पन्न थे। उस महा यशस्वी पृथिवीपति पुरूरवा ने महर्षिगण द्वारा प्रशंस्वित पवित्रतम प्रयाग प्रदेश में जान्हवी के उत्तर किनारे पर प्रतिष्ठान नामक नगर में राज्य शासन किया था।

लिंग पुराण में भी यह विषय आलोचित हुया है। उस ग्रन्थ में मिलता हैः–

"सूत ने कहा, हे द्विजगण, रूद्रभक्त प्रतापशाली इलापुत्र श्रीमान् पुरूरवा प्रतिष्ठानपुरी के अधिपति हैं एवं वहां प्रतिष्ठित होकर यमुना के उत्तर किनारे पर मुनिसेवित पुण्यमय प्रयाग क्षेत्र में निष्कन्टक राज्य किया।"

लिंग पुराण पूर्व भाग 66 अध्याय
(बंगला अनुवाद)

---

(1) कन्या भावाच्च सुदुयन्नो नैनं गुणमवाप्तवान।
वशिष्ठ वचनाच्चासीत प्रतिष्ठाने महात्मनः।।
प्रतिष्ठा धर्म राजस्य सुदुयन्नस्य कुरूद्वह।
तत् पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः।।

खिल हरिवंश 11 अध्याय 22–23 श्लोक

(2) सुदुयन्नेतु दिवं याते राज्यंचक्रे पुरूरवाः।
सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारंजन तत्परः।।
प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्व नमस्कृतम्।
चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारंजन तत्परः।।

देवी भागवतं प्रथम स्कन्द 13 अध्याय 1–2 श्लोक।

<u>प्रथमलहर–42</u>

ययाति ने पुरू को राज्य प्रदान के समय जो कुछ कहा था, उससे भी प्रतिष्ठान नगर के अवस्थान निर्णय किया जा सकता है। जैसेः–

"गंगायमुनायोर्मध्ये कृतस्नोऽयं विषयस्तव।" मत्स्य पुराण

कूर्म पुराण के 36वें अध्याय में भी इस तरह के प्रमाण मिलते है। इसके अतिरिक्त शास्त्र वाक्यों की उद्धृति अनावश्यक है।

ईस्वी छठी सदी में जन्में कवि कुल गौरव महाकवि कालिदास विक्रमोर्वशीय नाटक में प्रतिष्ठानपुरी की स्थिति का विवरण प्रदान किया है।– उसकी आलोचना से ज्ञात होता है कि सखि चित्रलेखा ने, उर्वशी से कहा थाः–

"सखी! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व एतत् भगवत्याः भागीरथ्याः यमुना संगम पावनेषु सलिलेषु पुण्येषु अवलोकयतईव आत्मानां प्रतिष्ठानस्य शिखाभरण भूतमिव तस्य राजर्षे(पुरूरवसः) भर्वनमुपगते स्वः।।

विक्रमोर्वशीय नाटक 2 अंक।

कोष ग्रन्थकारगण द्वारा भी विषय उपेक्षित नहीं रहा। विश्वकोष में है–

प्रतिष्ठान– चन्द्रवंशीय प्रथम राजा पुरूरवा की राजधानी था। गंगा और यमुना के संगम स्थल पर प्रयाग के दूसरे किनारे गंगा की बांई ओर स्थित है। वर्तमान नाम झूसी है।

विश्वकोष 12 भाग 303 पृ

प्रकृतिवाद अभिधान से मिलता हैः–

प्रतिष्ठानपुर– चन्द्रवंशीय प्रथम राजा पुरूरवा की राजधानी थी। गंगा यमुना के संगम स्थल पर प्रयाग के दूसरे किनारे गंगा की बांई ओर स्थित है। वर्तमान काल में इसका नाम झूसी है।

प्रकृतिवाद अभिधान 6 संस्करण 1241पृ

आधुनिक प्रत्नतत्वविदों में भी किसी–किसी की दृष्टि इस ओर आकृष्ट हुई थी। बाबू नन्दलाल दे प्रणीत **"The Geological Dictionary of Ancient Medieval India"** नामक ग्रन्थों के 71वें पृष्ठ में लिखा है।

"Jhushi opposite to Allahabad across the Ganges; it is still called Pratisthanpur. It was the capital of Raja Pururavas."

श्रद्धास्पद श्रीयुक्त दुर्गादास लाहिड़ी महाशय ने कहा है–

"वाराणसी प्रसंग में उल्लिखित हुआ है, वह राज्य एक समय प्रतिष्ठान तक विस्तृत हुआ था। रामायण में हमें दिखाई देता है कि मध्य भारत में इला नामक राजा के द्वारा प्रतिष्ठानपुर की प्रतिष्ठा हुई। यह नगरी एक समय पुरूरवा की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी।*** यह प्रयाग या प्रतिष्ठान प्रदेश को ही समझाती है। इसमे कोई सन्देह नहीं, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरूरवा से ययाति तक चन्द्रवंशीय राजाओं के अधीन ही रहा है यह प्रदेश।"

पृथीबीर इतिहास(पृथ्वी का इतिहास) 2 खण्ड 8 परिच्छेद 124 पेज
(बंगला में)

प्रथमलहर—43

श्रद्धेय श्रीयुत राखाल दास बन्द्योपाध्याय महोदय ने बंगला के इतिहास आलोचना में कहा है कि द्वितीय पॉल साम्राज्य के समय भी 'प्रतिष्ठान' नामक नगर का विलोप नहीं हुआ था। उन्होनें लिखा है—

"ईस्वी ग्यारह के शेष भाग में उत्तरापथ में प्रबल राज शक्ति का बहुत अभाव हो गया था। आर्यावर्त के इस घोर दुर्दिन में मुसलमान सेनापति अहमद नियालतिगीन ने अनायास ही इस विस्तृत महादेश को अतिक्रम कर पवित्र वाराणसी नगरी को लूटा था। *** गूर्जरेश्वर प्रयाग में प्रतिष्ठान के छोटे दुर्ग में आत्म रक्षा की चिन्ता में ही डूबे थे।"

(बांगलार इतिहास अर्थात् बंगला का इतिहास) प्र भाग दूसरा संस्करण 263 पृ)

प्रतिष्ठान नगर के अवस्थान के विषय में इसके अतिरिक्त और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर जो इलाहाबाद के उस पार गंगा यमुना के संगम स्थल थी, इसके लिए और प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, उपर बताए गए ही काफी हैं। यही प्रतिष्ठानपुर ही वर्तमान झूसी है।

अब देखा जाता है कि सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी भारत में ही थी। चन्द्रवंशीय राजाओं की राजधानी सम्राट ययाति के शासन काल में भी प्रतिष्ठानपुर ही थी, इस विषय में पौराणिक प्रमाणों का कोई अभाव नहीं है।

ययाति के स्वर्गवास के पश्चात् देवराज पुरन्दर के प्रश्नों के उत्तर में उन्होनें कहा था:—

प्रकृत्यनुमते पुरूं, राज्यं कृत्वेद्रमब्रुबम।
गंगायमुनायोर्मध्ये राजा कृतस्नोऽयं विषयस्तर।।
मध्ये पृथिव्यास्तं राजा भ्रातारोऽतेहधिपास्तव।।"

मत्स्य पुराण 36 अः 6 श्लोक

अर्थात प्रकृति पुंज के अनुमत्यानुसार पुरू का राज्याभिषेक करके मैंने कहा है —कि गंगा और यमुना का मध्यवर्ती सारे भूभाग तुम्हारे हैं। तुम पृथ्वी के मध्य स्थान के राजा हो।"

इस विषय में और भी स्पष्ट और वास्तव प्रमाण है। बाल्मिकी रामायण की आलोचना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ययाति और उसके पुत्र पुरू ने प्रतिष्ठानपुर में बैठकर ही साम्राज्य का शासन कार्य संभाला था। उस ग्रन्थ में लिखा गया है—

"ततःकालेन महता दिष्टांतमुपजग्निवान्।
त्रिदिवं स गतो राजा ययाति नहुषात्मजः।।
पुनश्चकार तद्राज्यं धर्मेण महतावृतः।
प्रतिष्ठाने पुरूरवे काशीराज्ये महायशाः।।"

बाल्मीकी रामायण उत्तरकांड 69 सर्ग 18—19 श्लोक

<u>प्रथमलहर—44</u>

अर्थात, ''बहुत काल व्यतीत होने के पश्चात्, नहुष तनय राजा ययाति स्वर्ग सिधारे। महायशा पुरू महत् धर्म में परिवृत हो के जीवन व्यतीत करते हुए काशी राज्य के अन्तर्गत(1) पुर श्रेष्ठ प्रतिष्ठान नगर में राज्य शासन करने लगे।''

इसके द्वारा ययाति नन्दन पुरू के साम्राज्य काल में प्रतिष्ठानपुर के राजधानी होने का प्रकृष्ठ प्रमाण मिलता है। सही अर्थ में पुरू के अधस्तन 21वीं पीढ़ी स्थानीय सुहोत्र के समय तक राजधानी परिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है। सुहोत्र—नन्दन महाराज हस्ती के राजत्व काल में राज पाट हस्तिनापुर में लाया गया।

ययाति के पुत्र कहां कहां गये थे? सम्राट ययाति ने प्रतिष्ठानपुर की राजधानी से पुत्रों को दिग् दिगन्तों में अर्थात चारों ओर भेजा था, इस बारे में सटीक प्रमाण हमें मिल चुके हैं। अब किस पुत्र को कहां भेजा गया था इसे ही देखना है।

प्रधानतः विष्णु पुराण, हरिवंश और श्रीमद्भागवत् में इस बारे में बहुत से विवरण मिलते है। उन तीनों ग्रन्थों मे से परस्पर मत वैषम्य हैं जो निम्न प्रकार है—

खिल हरिवंश में हैः—

सप्तदीपां ययातिस्त जित्वा पृथ्वीं ससागराम्।
व्यभजत् पंचधा राजन् पुत्रानां नाहुषस्तदा।।
दिशि दक्षिण पूर्वास्यां तुर्बसुं मतिमान नृपः।
प्रतीच्यामूत्तरस्यां च द्रुहयुं चानु च नाहुषः।।
दिशि पुर्व्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठंन्ययोजयत्।
मध्ये पुरूं च राजनमभिषिन्चत नाहुषः।।
तैरियं पृथ्वी सर्वा सप्तद्वीपा स पत्तना।
यथा प्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते।।

खिल हरिवंश 330 अध्याय 16—20 श्लोक

मर्मार्थ— नहुष नन्दन ययाति ने ससागरा सातो द्वीपों वाले पृथ्वी को पुत्रों में विभक्त कर दिया था। महामति नहुष—नन्दन ययाति ने दक्षिण पूर्व की ओर अर्थात अग्नि कोण में तुर्बसु को, पश्चिम और उत्तर की ओर द्रुहयु एवं अणु को, पूर्व उत्तर की ओर ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियोजित किया। मध्य अर्थात कुरू पांचाल देश में पुरू को अभिषिक्त किया था। वे लोग अब भी इस सप्तद्वीप वाले प्रतिष्ठित सारी वसुन्धरा के प्रदेशानुसार धर्मतः पालन कर रहे हैं।

....

(1) ऊपर लिए गये श्लोक में 'काशी राज्ये' शब्द पाठ कर संदिग्ध होने का कोई कारण नहीं है। उस समय प्रतिष्ठान और काशी राज्य में पुरूरवा के वंशधर गण ही शासन की बागड़ोर थामे हुए थे। काशी की राज वंशावली ही इसकी साक्षी है।

<u>प्रथमलहर–45</u>
विष्णु पुराण की कुछ परिमाण हरिवंश का समर्थक होने पर भी सर्वतो भाव से नहीं है। उक्त ग्रन्थ के अनुसारः–

"दिशि दक्षिण पूर्वास्यां तुर्बसु प्रत्यथादिशत।
प्रतीच्यां च द्रुहयुं दक्षिणापथतो यदुम्।
उदिच्याचं तथैवानुं कृत्वा मंडलिनो नृपान्
सर्व पृथ्वीपतिं पुरुं सोऽभिषिच्य वनं ययौ।।"

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश दशम् अध्याय 17–18 श्लोक।

मर्मार्थ– सम्राट ययाति ने दक्षिण पूर्व की ओर तुर्बसु को, पश्चिम ओर द्रुहयु को, दक्षिण की ओर यदु को और उत्तर की ओर अणु, को टुकड़ों में राज्य प्रदान करते हुए पुरु को पृथ्वीपति की मर्यादा से अभिषिक्त करके वन में गमन किया।

पुराण श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत् गीता का मत पुनः भिन्न है। इसमें देखा जाता है–

"दिशि दक्षिण पूर्वस्यां द्रुहयुं दक्षिणतो यदुं।
प्रतीच्यां तुर्बसुंचक्रे उदीच्यामनुमीश्वरं।।
भूमंडलस्य सर्वस्य पुरुमर्हत्तं विशां।
अभिषिच्या प्रजांस्तस्यवशोस्थाप्य वनं ययौ।।"

श्रीमद्भागवत् नवम स्कन्ध 19 अध्याय 6–17 श्लोक।

मर्मार्थ – ययाति ने दक्षिण पूर्व द्रुहयु को, दक्षिण यदु को, पूरब तुर्बसु को और उत्तर दिशा का अधीश्वर अनु को किया। सर्व गुणालंकृत पुरु को समग्र भूमण्डल का अधीश्वर करके अग्रजात तनयों को पुरु के अधीन करके वन की ओर प्रस्थान किया।

द्रुहयु किस ओर गये थे। यही निर्धारण करना हमारा एक मात्र उद्देश्य है। उद्धृत वचनों की आलोचना से माना जाता है, हरिवंश और विष्णु पुराण के अनुसार, द्रुहयु को पश्चिम दिशा में एवं श्रीमद्भागवत् के मतानुसार अग्निकोण में अधिपत्य विस्तार किया था। ये तीनों ग्रन्थ एक ही महापुरुष के(व्यास देव) द्वारा रचित है। इसके बावजूद भी एक ग्रन्थ के साथ दूसरे ग्रन्थ का मत वैषम्य देखा जाता है। इस तरह के मत वैषम्य होने का कारण क्या है ? ऋषि वाक्य एवं पण्डितों के आश्रय में जाने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। जिस महापुरुष के वाक्य में इस तरह के असमंजस्य देखा जा रहा है, उनके ही वाक्य के द्वारा पुनः सामंजस्य कैसे लाया जा सकता है? सबसे पहले यही तो देखना है। इस विषय में आलोचना करने पर देखा जायेगा कि उन तीन पुराणों में श्रीमद्भागवत् ही सभी के अन्त में लिखा गया है। अतएव दूसरे पुराणों के प्रमाद

और विसंवाद श्रीमद्भागवत् द्वारा मीमांसित होना स्वाभाविक है। उन तीन ग्रन्थों के प्रणेता कृष्ण द्वैपायन स्वयं कहते है–

किं श्रुतैर्वहुभिः शास्त्रै पुराणैश्च भ्रमावहैः।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति।।

भागवत् महात्म्य तीसरा अध्याय 28 श्लोक।

इस वाक्य द्वारा सर्वोपरि भागवत् का प्रधान्य स्थापित किया गया है। अतएव हरिवंश और विष्णु पुराण से भागवत् की श्रेष्ठता स्वीकार करने में शास्त्रानुरागी व्यक्तियों की कोई आपत्ति नहीं हो सकती। पण्डितों ने यही स्वीकार भी किया है। इसके भी दो चार दृष्टान्त प्रदान किया जा रहें है।

स्वर्गीय राजा राधाकान्त देव बहादुर के शब्दकल्पद्रुम रचना के समय सभी पुराणों की आलोचना हुई थी। यह बात बहुत से लोगों के लिए अप्रत्यक्ष होने पर भी विश्वास के अयोग्य नहीं है। यह कोष ग्रन्थ उस समय के सुविख्यात और शास्त्रदर्शी पण्डित के सम्मिलत चेष्टा का ही फल है। साधारण लोगों में यह ग्रन्थ प्रमाण्य कह कर ग्रहीत हुआ है। इसमें पुराणों के पूर्वोक्त द्वैत मत का जिस तरह समाधान हुआ है वह यह है–

ययाति मरण समये कनिष्ठ पुत्रं पुरुं
राजचक्रवर्तीनं कृतवान।
यदवे दक्षिण पूर्वास्यां किंचिद्राज्य खण्ड दत्तवान
तथाद्रुहयवे पूर्वास्यां दिशि पश्चिमाया
तुर्बसुवे उत्तरास्या मनषे सर्वाण पुरोराधिनांश्चक्रे

मर्मार्थ– सम्राट ययाति ने मृत्यु के समय कनिष्ठ पुत्र पुरु को राज चक्रवर्ती पद पर आसीन करके, यदु को दक्षिण पूर्व की ओर सामान्य राज खंड प्रदान करके, द्रुहयु को पूर्व दिशा की ओर, तुर्बसु को पश्चिम दिशा में, अनु को उत्तर दिशा में और सम्राट पुरु के अधीन शासनकर्ता बनाया।

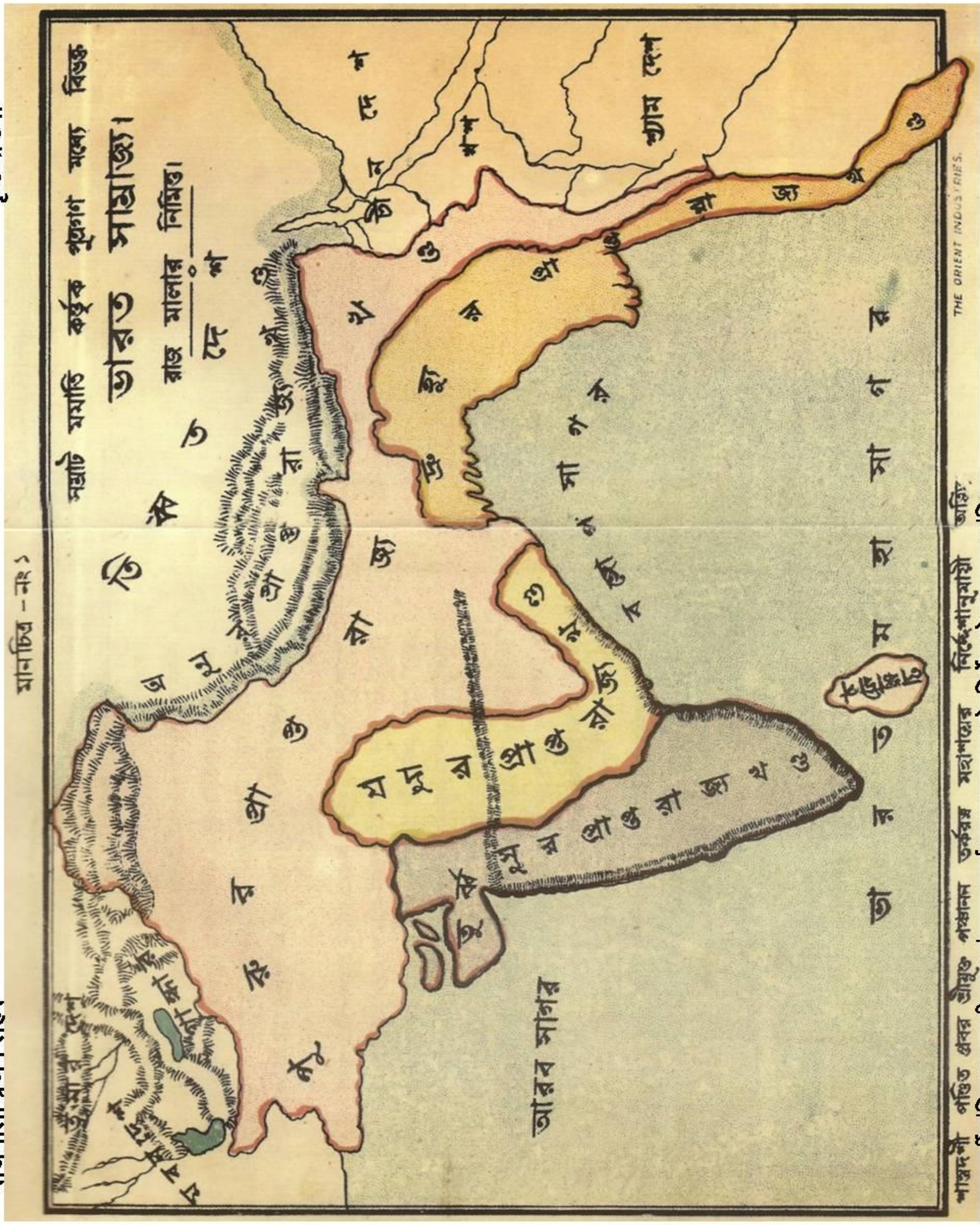
इस सिद्धान्त के द्वारा श्रीमद्भागवत् का मत ही विशेष रुप से पुष्ट हुआ है। ''बंगवासी'' ऑफिस से प्रचारित अधिकांश पुराण ग्रन्थ के अनुवादक व सम्पादक पंडितप्रवर पूज्यपाद श्रीयुत पंचानन तर्क रत्न महाशय ने हमारे पत्र के उत्तर में जो सूचित किया है, उसमें इस विषय की सुमींमासा ही है। उन्होनें भारतवर्ष के मानचित्र में ययाति के पाँचो पुत्र में विभाजित स्थान समूहों की शास्त्रानुमोदित तथ्य चिन्हित करके पत्र के साथ भेजा है। वह मानचित्र यहाँ संयोजित किया जा रहा है। पत्र के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं–

प्रथमलहर–47

(Pratham leher-4-47) चित्र

पृष्ठ संख्या –

राजमाला प्रथम लहर



शास्त्रदर्शी पंडित प्रवर श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न महाशय के निर्देश के अनुसार अंकित

प्रथमलहर–48

हमारे प्राचीन सम्मत उत्तर है– "कल्पभेदादविरुद्धम"। पुराण में जो नाना तरह के मतानैक्य है, वहाँ भिन्न कल्प में विभिन्न प्रकार की व्यवस्था है, उनमें किसी पुराण में एक कल्प की कथा है, दूसरे पुराण में और एक कल्प की कथा है अतएव विरोध कहीं नहीं होता। दृष्टान्त यह है कि यदि किसी ग्रन्थ में लिखा है– भारतवर्ष में बड़ा दुर्भिक्ष है, फिर किसी ग्रन्थ में लिखा है–भारतवर्ष बड़ा ही सुर्भिक्ष है। इन दोनों ग्रन्थों में किन्तु शकाब्द का उल्लेख नहीं है। तब दोनों ग्रन्थों की मीमांसा का संस्थापन किया जा सकता है। एक काल या वर्ष में दुर्भिक्ष है तो दूसरे वर्ष में सुर्भिक्ष है। वर्ष की तरह कल्प भी एक खण्ड काल की संज्ञा है। श्रीमद्भागवत् में जिस कल्प का उल्लेख है, उसका वर्तमान कल्प की तरह मानने से बहुत सा समाधान हो जाता है। नवीन उत्तर की प्रणाली पृष्ठाकिंत मानचित्र में देखी जा सकती है। पुराणों में एक विषय का अनैक्य ही हमारे प्रदर्शित मानचित्र के मूल प्रमाण है।

"पुरु की राजधानी प्रतिष्ठानपुर में होने पर भी उनके राज्य की विसृति जो सबसे अधिक और विशाल थी, इसमें कोई संदेह नही। पाँच भाग करने का जो प्रमाण है, इसमें पूर्व देश जो पुरु के अंश में था यह भी स्पष्ट प्रतीयमान होता है, क्योंकि पूर्वोत्तर, पूर्व दक्षिण का उल्लेख किया गया उत्तर, पश्चिम और दक्षिण का भी उल्लेख है। किन्तु ठीक पूर्व का उल्लेख दूसरे भाग में नहीं है। मन्वादि शास्त्रों में पूर्व पश्चिम सागर की बात भारतवर्ष के देश विभाग की जगह देखा जाता है। "आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात"(मनु प्रथम अध्याय)। वर्तमान श्याम राज्य भी पहले भारतवर्ष के बीच ही था। पूरब के समुद्र से अर्थात वर्तमान चीन समुद्र से पश्चिम समुद्र अर्थात अरब सागर तक की जगह अर्थात मध्य भाग लेकर पुरु राज्य था। मूल वक्ता या श्रोता के वास स्थान आदि के कारण विभिन्न पुराणों में एक ही राज्य की भिन्न संज्ञा निर्दिष्ट किया गया है। सभी पुराणों में पुरु राज्य के भूखण्ड को केन्द्र बनाया गया है– पुरु की राजधानी को नही। मानचित्र देखने पर आपको पता चलेगा कि यदु का राज्य पुरु के राज्य के पूर्वोत्तर में भी है, दक्षिण में भी है। मथुरा इन यदुवंशियों की राजधानी थी। नर्मदा के कुछ अंश भी यदुवंशियों के अधिकार में था। द्रुहयु राज्य त्रिपुरा, मान्दालयादि ब्रह्म भूखण्ड तक था, यह पुरु राज्य के पश्चिम में भी था एवं दक्षिणपूर्व भाग में भी था। अनु राज्य उत्तर भागलपुर आदि मैमन सिंह के पूर्वांश ब्रह्मपुत्र तक फैला था। बाद में अंग बंगादि के विभाग में इसकी सूचना थी। तुर्बसु राज्य पुरु राज्य के पश्चिमांश में दक्षिण पूर्व ओर पूर्वांश के पश्चिम में था। विभिन्न पुराणों के मत का समन्वय मानचित्र में है।"

पंडित महाशय का पत्र सुदीर्घ है। उसे सम्पूर्ण उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। उनके अंकित मानचित्र में द्रुहयु के अधिकृत राज्य को जिस तरह चिन्हित किया गया है, उससे सुन्दरवन से लेकर पूर्व की ओर(बंग देश के दक्षिणांश के साथ) ब्रह्म देश तक द्रुहयु के अधिकार में था।

पुराण समूहों के परस्पर मतानैक्य के विषय में उस पत्र में कुछ मींमासा मिलती है–

1. भिन्न पुराणों में विभिन्न कल्पों की कथा सन्निवेशित होने से एक ही विषयों का अलग पुराणों में अलग तरह का वर्णन किया गया है। इसलिए परस्पर में अनैक्य दिखाई देता है।

प्रथमलहर—49

इसे प्रकृत रुप से विरुद्ध भाव नहीं कहा जा सकता। क्योंकि "कल्पभेदादविरुद्धम "।

2. मूल वक्ता या श्रोता का वास स्थान प्रभृति के भेद हेतु विभिन्न पुराणों में एक ही राज्य को विभिन्न संज्ञा में उल्लेख किया गया है।

3. सभी पुराणों में पुरु राज्य को ही केन्द्र बनाया गया है। पुरु की राजधानी को नही। अतएव सभी पुराणों में एक खास जगह को ही केन्द्र नहीं किया गया है। पुरु राज्य के विभिन्न स्थानों को केन्द्र मानकर दिक् निर्णय करने से पुराणों में परस्पर अनैक्य दिखाई देता है।

4. द्रुहयु राज्य त्रिपुरा मान्दालयादि ब्रह्म—भूखण्ड पुरु राज्य के पश्चिम में भी था और दक्षिण—पूर्व में भी था।

पण्डित समाज, पुराण समूहों का जिस तरह से मत समन्वय करते हैं, उससे जाना जाता है कि वे भी श्रीमद्भागवत् के सर्मथक है। त्रिपुर इतिहास में इस विषय में क्या मिलता है, अब यह भी हमें देखना है। संस्कृत राजमाला में लिखा हैः—

ततो राज्यं निजं राज्ञा स्वपुत्रेन समर्पितं।
पूर्वमाग्नेय भागचं द्रुहयुवे प्रददौ नृपः।।

संस्कृत राजमाला।

त्रिपुरा के दूसरे पुरावृत्त "राजरत्नाकर" ग्रन्थ में भी इस विषय में उल्लेख है—

अग्नेष्यां दिशि ये देशाः समुद्र तटवर्त्तिनः।
तद्देशानामाधिपत्यं ययातिर्द्रुहयुवे ददौ।।

राजरत्नाकर छठवाँ सर्ग तीन श्लोक।

यह श्रीमद्भागवत् के अनुसार ही है। द्रुहयु को अग्नि कोण में राज्य मिला था। अधिकाशतः यही मत निर्णीत हुआ है। ययति ने जहाँ से पुत्रों को नाना दिशाओं में भेजा था, साधारणतः उसी स्थान से दिक् निर्णय करना उचित होगा। अतः द्रुहयु को प्रतिष्ठानपुर से ही अग्नि कोण में भेजा था, यही सिद्धान्त है। किसी—किसी पुराण में द्रुहयु को पश्चिम दिशा की ओर भेजने का भी उल्लेख मिलता है तथा कल्पभेद, मूल वक्ता या श्रोता का निवास स्थान का भेद किंवा दिक् निर्णय के भेद से भी ऐसा हो सकता है— यही बात जाहिर होती है।

द्रुहयु का पहला उपनिवेश स्थान निर्णय द्रुहयु के पिता के द्वारा परित्यक्त होकर, कहाँ उन्होनें अपना पहला उपनिवेश स्थापन किया था, यह एक विषम समस्या है। विभिन्न मतवादियों के मत में वैषम्य के कारण, ये विषय की मीमांषा बहुत जटिल हुआ है। इसके बावजूद पुनः नया मत स्थापन करके कोलाहल की मात्र वृद्धि करने की इच्छा नहीं है— इस स्थान निर्णय के इस विषय में शक्ति का भारी अभाव है। प्रचारित मत समूहों द्वारा

प्रथमलहर—50

आलोचना द्वारा इस विषय की मीमांसा हो सकती है या नहीं, उसी की चेष्टा यहाँ की जायेगी।

कैलाश चन्द्र सिंह की मतावलोचना   परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने द्रुहयु के साथ राजमाला का कोई सम्बन्ध नहीं रखा। अतएव द्रुहयु के उपनिवेश के प्रश्न को लेकर माथा पच्ची की भी आवश्यकता नहीं हुई। उन्होनें अति सहज पथ को अवलम्ब करके कहा है—

"श्यानवंश की एक शाखा ने कामरुप के पूर्वाशं में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, इस राज्य के अधिपति लोगों ने 'फा' उपाधि को ग्रहण किया था। पहाड़ी मनुष्यों द्वारा "फा" वंशज के लोगों को कामरुप से भगा दिया था। राज्य भ्रष्ट नरपति के ज्येष्ठ पुत्र ने वर्तमान नागा पहाड़ में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, यही प्राचीन या कृत्रिम हेड़म्ब राज्य था। दीमापुर ही उनका आदिम राजधानी थी। उसी खोए राज्य कामरुपपति के कनिष्ठ पुत्र अग्रज की तरह आधुनिक काछाड़ के उत्तरांश में द्वितीय राज्य की स्थापना की, यही प्राचीन 'तृपुरा' या 'त्रीपुरा' राज्य था। इसी तृपुरा या त्रिपुरा शब्द से ही आधुनिक त्रिपुरा नाम की रचना हुई है।

कैलाश बाबू की राजमाला, द्वितीय भाग, प्रथम अध्याय, अष्टम् पेज।

उनकी इस उक्ति से नीचे दिये गये तीन विषयों की पुष्टि होती है—

1. कामरुप के पूर्वाशं में 'फा' उपाधिधारी श्यान वंशीय राजाओं का राजत्व था।
2. 'फा' वंशिओं का कामरुप से विताडन होने पर राज्य भ्रष्ट राजा के ज्येष्ठ पुत्र ने वर्तमान नागा पर्वत पर नए राज्य की स्थापना की और उनकी राजधानी का नाम था दिमापुर(वर्तमान डिमापुर)।
3. उन्ही राजा के कनिष्ठ पुत्र ने आज के काछाड़ के उत्तरांश में और एक राज्य की स्थापना की। यही थी वर्तमान त्रिपुरा राज्य की प्रथम उत्पत्ति सूचना।

उन तीनों वाक्यों में से पहले की आलोचना से यह स्पष्ट होता है कि श्यान वंशजो ने 'फ्रा' उपाधि ग्रहण की थी, 'फा' नही। अहोम राजाओं ने बाद में 'फा' उपाधि ग्रहण की, बात सच होने पर भी यह त्रिपुरा के राजाओं की उपाधि ग्रहण के बहुत बाद की घटना है। यह त्रिपुरा के राजाओं की उपाधि का अनुकरण ही था। श्यान वंशजों की 'फ्रा' उपाधि की बात कैलाश बाबू की जानकारी में थी। उन्होनें एक जगह लिखा है—

"हमारे प्रभु शब्द को श्यान ब्रह्म प्रभृति जाति द्वारा अपभ्रंश होकर 'फ्रा' हो गया और वहाँ के नरपतिगण 'फ्रा' उपाधि धारण करते थे।"

कैलाश बाबू की राजमाला— प्रथम भाग, तृतीय अध्याय, 18 पेज।

प्रथमलहर–51

पूर्वोक्त विवरण की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्यान वंशीय राजओं के प्राचीन उपाधि थी 'फ्रा', 'फा' नहीं। अतएव 'फा' उपाधिधारी श्यान लोग काछाड़ और प्राचीन त्रिपुरा राज्य में आने की बात सही नहीं है।

दूसरी वाक्य की आलोचना से यह प्रतिपन्न होता है कि काछाड़ में श्यान वंश का प्राधान्य और दिमापुर(डिमापुर) में राजधानी की स्थापना ज्यादा दिन की बात नहीं है। कामरुप से विताड़ित श्यान वंशज राजा का नाम क्या था, उनके अंशो(पुत्रों) में किसका क्या नाम था एवं उनके कामरुप छोड़ काछाड़ में आगमन किस काल में हुआ, कैलाश बाबू ने यह नहीं कहा है। आसाम की बुरुंजी में मिलता है कि अति प्राचीन काल में महीरंग नामक दानव कामरुप में राजा था। इस दानव का परिचय पता करने का भी कोई उपाय नहीं है। महीरंग के पश्चात उनके वंश के और चार राजाओं ने यहाँ राजत्व किया था। इसके बाद नरकासुर ने विष्णु की कृपा से इस प्रदेश पर अपना अधिकार कायम किया। नरकासुर रामायण के घटनाओं के समकालीन थे।(1) नरकासुर के पुत्र भगदत्त स्वनाम धन्य नरपति थे। प्रागज्योतिषपुर में(गोहाटी में) इनकी राजधानी थी। ये महाभारत युद्ध में दुर्योधन के पक्ष में होकर एक प्रधान नायक की भूमिका निभा रहे थे। अतएव वे महाभारत के समसामायिक राजा थे। भगदत्त के बाद धर्मपाल, रत्नपाल, कामपाल, पृथ्वीपाल और युबाहु इन्ही पाँच राजाओं के नाम हमें मिलते है। कामरुप बुंरुजी के अनुसार ये सभी भगदत्त के वंशज थे। अतएव श्यान वंश कामरुप में प्राधान्यता लाभ किए हुए थे। तो यह इनके शासनकाल के बहुत बाद की बात है। यह स्वीकार करना ही होगा।

यह तो हुई कामरुप की बात। काछाड़ के आलोचना से देखा जाता है कि यह राज्य भी बहुत प्राचीन राज्य था। देशावली के अनुसार काछाड़ का(हेड़म्ब के) प्रथम राजा थे, भीम नन्दन घटोत्कच। पुराणों के द्वारा भी इसका समर्थन मिलता है। घटोत्कच कुरुक्षेत्र के महासमर में कर्ण के हाथों मारे जाने के पश्चात, उनका पुत्र बर्बरीक काछाड़ के राजा हुए। बर्बरीक पश्चात उनका अंश(पुत्र) मेघवर्ण पिता के सिंहासन पर बैठे थे। अब देखा जाता है कि कामरुप के राजा भगदत्त की तरह काछाड़ का

---

(1) किष्किन्धापति सुग्रीव ने सीता की खोज में प्रेरित दूतों को उपदेश प्रदान के समय कहा था–

योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः।
सुवर्णश्रृगः सुमहानगाधे वरुणालये।।
तस्मिृन् बसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः।''
तत्र प्रागज्योतिषं नाम जातरुपमयं पुरम्
बाल्मीकी रामायण– किष्किन्धा काण्ड, 42 सर्ग 30–31 श्लोक।

<u>प्रथमलहर—52</u>

(हेड़म्ब) का राजा घटोत्कच भी महाभारत के समसामायिक राजा थे। उन लोगों के पश्चात भी उनके वंशजो ने कुछ पुरुषों तक कामरुप और काछाड़ में जो राजत्व किया था, इसके प्रमाण मिलते है। अतएव महाभारत के समय श्यान वंश का कामरुप अधिकार करना एवं वहाँ से आकर काछाड़ में नये राज्य की प्रतिष्ठा करना दोनों ही असम्भव बातें है। भगदत्त और घटोत्कच दोनों ही असाधारण पराक्रमी नरपति थे। उन्हें हराकर राज्य स्थापना करना उस समय श्यान जाति के लिए असाध्य बात थी, इन विषयों की आलोचना से कैलाश बाबू की दूसरी बात भी अनुमोदन योग्य नहीं हो सकती। श्यान जाति की काछाड़ में अधिपत्य विस्तार की बात इतिहास में मिलने पर भी उस आधुनिक घटना को प्राचीन काल के घटना के साथ जोड़ देना नहीं चल सकता।

कैलाश बाबू की तीसरी बात भी आधारहीन है। उन्होनें कहा है, ''कामरुप के श्यान राजा को वहाँ से खदेड़ देने के बाद भी उनके कनिष्ठ पुत्र ने जिस राज्य की स्थापना की, वह बाद में त्रिपुर राज्य में बदल गया।'' इसके प्रमाण स्वरुप कैलाश बाबू ने कहा है—

''उन जातिओं के(श्यान और ब्रह्म इत्यादि) राजा गण 'फ्रा' उपाधि धारण करते थे। इसी 'फ्रा' से 'फा' शब्द का उद्भव हुआ है।माणिक्य उपाधि धारण करने के पहले त्रिपुराधिपति सभी 'फा' उपाधि धारण करते थे''।

कैलाश बाबू के राजमाला प्रथम भाग तृतीय अध्याय 18वां पेज।

'फ्रा' तथा 'फा' एक भाषा जात शब्द नहीं है एवं ठीक एकार्थ बोधक भी नहीं है। इन दोनों शब्दों के एकत्व प्रतिपादन की चेष्टा को नितान्त ही व्यर्थ प्रयास कहना होगा। 'फ्रा' शब्द ब्रह्म भाषा से आया है। जिसका अर्थ है प्रभु। और 'फा' शब्द त्रिपुरा भाषा का है जिसका अर्थ है पिता। त्रिपुरा के हालाम भाषा में भी फा पितृवाचक है। किसी किसी के अनुसार संस्कृत का ''पाल'' शब्द से 'पा' और 'पा' से फा हुआ है। चाहे जो भी हो 'प्रभु' और 'पिता' दोनों ही सम्मान सूचक शब्द है। इस माने में दोनों का एकत्व प्रतिपादन होने पर भी उसके अर्थगत और व्यवहारगत पार्थक्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ग्रन्थ के आलोचना से यह स्पष्ट प्रतीयमान होगा कि 'फा' शब्द प्रभु वाचक न होकर पिता वाचक है।(1)

त्रिपुरा के आदि राजा कामरुप से 'फा' उपाधि लेकर त्रिपुरा में आने की बात नितान्त ही काल्पनिक है। त्रिपुर पुरावृत्त में स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि महाराज त्रिपुर के पहले राजागण और उसके बाद 26 राजाओं की इस तरह की कोई उपाधि नहीं थी। त्रिपुर के अधस्तन 27 स्थानीय महाराज ईश्वर(नामान्तर— नीलध्वज)

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 90—91वां पेज।

<u>प्रथमलहर—53</u>

ने 'फा' उपाधि ग्रहण किया था। उसके बाद राजा 'फा'(हरिराय) तक 71 राजाओं ने इस उपाधि को ग्रहण किया था। राजा फा के बाद रत्नमाणिक्य के समय से ''माणिक्य'' उपाधि प्रचलित हुई है। महाराज त्रिपुर के पहले ही(फा उपाधि ग्रहण करने के बहुत पहले) किरात देश में त्रिपुरेश्वरों का राज्य स्थापित हो गया था। अतएव त्रिपुर राजवंश के आदिपुरुष 'फा' उपाधि लेकर त्रिपुरा आगमन की बातें ग्रहण करने का कोई सूत्र नहीं मिल रहा है।

पहले ही कहा गया है कि महाराज त्रिपुर के पहले(उनके पहले के 14वें स्थानीय महाराज प्रतर्द्दन के समय) किरात देश में त्रिपुर राजवंश के अधिपत्य स्थापित हो चुका था। इस बारे में प्रमाणदि बाद में दिया जायेगा। भारत सम्राट युधिष्ठिर और महाराज त्रिपुर समकालीन राजा थे। ग्रन्थ भाग में प्रमाणों के द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है।(1) अतएव पूर्व कथित भगदत्त और घटोत्कच की तरह महाराज त्रिपुर भी महाभारत की घटनाओं के समकालीन थे। पहले यह दिखाया गया है कि भगदत्त इत्यादि उस समय श्यान वंशजो का कामरुप में तथा हेडम्ब देश में अपना प्रभाव विस्तार करना एक असम्भव सी बात थी। कैलाश बाबू के कथित कामरुप से पराजित राजा के कनिष्ठ पुत्र का उस समय त्रिपुरा में आगमन बात भी असम्भव सी लगती है।

कैलाश बाबू की युक्ति जो सुसंगत नहीं है। इस समझाने के लिए किसी अतिरिक्त आलोचना की जरुरत नहीं है। त्रिपुरा में श्यान वंशजों का आगमन नहीं हुआ था। पहले की आलोचना में इसके प्रकृष्ठ प्रमाण मिल गयें है। त्रिपुरेश्वर का त्रिपुर भाषा संभूत 'फा' उपाधि द्वारा कैलाश बाबू ने राजवंश के प्रति जो भाव पोषण किये हैं, उसे उद्देश्य मूलक कहकर बहुत लोगों ने उन पर दोषारोपण किया है। मृत व्यक्ति के ऊपर इस तरह के आरोप संगत नहीं है। फिर भी कैलाश बाबू को यह बात समझना ठीक था कि स्थानीय राजनीति सर्वत्र ही समाज या वंश विशेष के प्रति प्रभाव विस्तार करती है। विशेषतः भूपति वृन्द भी राज भक्त की प्रकृतिपुन्ज से भी स्थानीय भाषा— संभूत उपाधि लाभ करते थे। यहाँ पर भी यही हुआ है। पितृ वाचक उपाधि राजा स्वयं ग्रहण करने से, प्रजाओं से उसे प्राप्त करना अधिक स्वाभाविक और संगत है। यह सहज बोध्य है। त्रिपुरा किंवा हालाम भाषा से आई

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 165वां पेज।

उपाधि ग्रहण या नाम धारण करने से ही अपमानित किंवा अनर्थ होना होगा, इस तरह सोचने का कोई कारण नहीं है। वह देश या काल के प्रभाव का निदर्शन मात्र है। सभी जानते है कि दिल्ली के दरबार में भारत के नृपति वर्ग ने समवेत रुप से साम्राज्ञी विक्टोरिया को ''केशरे हिन्द्'' उपाधि प्रदान किया था। यह शब्द पारसी भाषा का है। भविष्य में ऐतिहासिक ''कैशरे हिन्द्'' उपाधि को मध्य नजर रखते हुए महारानी को मुगल सम्राज्ञी कहकर घोषणा करेगें क्या ? करने पर वे भी कैलाश बाबू की तरह भ्रम में पड़ जायेगें। हमारे देश में 'खां' उपाधि वाले ब्राह्मणों का अस्तित्व भी मिलता है। यह मुसलमानों के द्वारा दी गई उपाधि है। उपाधि के प्रतिलक्ष्य रखकर जाति निर्णय करने का प्रयास करने पर उन सभी ब्राह्मण सन्तानों के भविष्य वंशजों के भाग्य में काशी प्राप्ति या मक्का की प्राप्ति होगी। यह भगवान ही जानते है।

नाम के ऊपर निर्भर करके वंश परिचय करना इस समय सहज साध्य नहीं है। बंग देश में रहने वाले हिन्दुस्तानियों में रमणी मोहन, रसिक लाल इत्यादि नाम प्रायः मिलता है। हिन्दुस्तान में रहने वाले बंगाली संतानों का हिन्दुस्तानी नाम भी दुर्लभ नहीं है। हिन्दु बालको का क्रंजी, जुबियार, मन्टु, झान्टु नाम सुनकर क्या कोई इनका जाति निर्णय कर सकेगा ? वास्तव में मनुष्य की उपाधि की तरह नाम में भी बहुत माने में देश और काल का प्रभाव होता रहता है। अतएव किसी प्राचीन जाति या समाज का प्रचलित नाम या उपाधि के ऊपर निर्भर करके उनका प्रकृत परिचय संग्रह करना हर जगह सम्भव नहीं हो सकता।

विश्वकोष की मत आलोचना विश्वकोष के सम्पादक महाशय का यह मत आलोचना योग्य है। उन्होनें त्रिपुरा विषयक प्रसंग में एक जगह कहा है–

''पुराण के मतानुसार द्रुहयु के पुत्र गान्धार के नाम से गान्धार देश का नामकरण हुआ है। इससे लगता है कि द्रुहयु भारत के पूर्व प्रान्त में न आकर पश्चिम प्रान्त में गमन किये थे– यही पौराणिक मत की स्वीकृति है।''

विश्व कोष आठवाँ भाग, 198–199 पेज।

यह मत हरिवंश और विष्णु पुराण के अनुरुप है। पुराणों की आलोचना से द्रुहयु के अग्नि कोण में गमन करने की कथा पहले ही निर्धारित हो चुकी है। पुनः इसकी चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी यह कहना अवश्य है कि प्राच्य विद्वार्णव महाशय इस वाक्य की सूचना में ही भ्रमावर्त्त में पदचारणा की है। उन्होनें गान्धार को द्रुहयु का पुत्र कहकर उल्लेख किया है। पुराणों के अनुसार गान्धार द्रुहयु के अधस्तन चतुर्थ

प्रथमलहर—55

स्थानीय नृपति थे। विश्वकोष में पुराण कथा आलोचना करके भी गान्धार को द्रुहयु का पुत्र कहने का कारण समझ में नहीं आता। इस बारे में विष्णु पुराण में है—

"द्रुहयुस्तु तनय बभ्रुः।
ततः सेतुः, सेतु पुत्र आरद्वान नाम,
तदात्मज गांधारः – इत्यादि।

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश 17वां अध्याय।

श्रीमद्भागवत्, नवम स्कन्ध 23वां अध्याय, में द्रुहयु का जो वंश विवरण मिलता हैं उनके द्वारा भी गान्धार द्रुहयु के बाद स्थानीय चौथे पुरुष है। यह गान्धार देश, गान्धार के द्वारा ही विजित है और उन्ही के नामानुसार उसका नाम भी पड़ा था। मत्स्य पुराण के 38वें अध्याय एवं अन्यान्य ग्रन्थों में भी इसके उल्लेख मिलते है। सारी परिस्थतियों की आलोचना करने पर लगता है कि गान्धार ने उस प्रदेश पर विजय पाकर भी गान्धार ने वहाँ निवास नहीं किया। उनके बाद पंचम स्थानीय प्रचेता के पुत्र ने पैतृक राजधानी परित्याग कर नाना स्थानों पर उपनिवेश स्थापना किया था। गान्धार देश उन लोगों के द्वारा अध्युषित होने की सम्भावना ही अधिक है। विष्णु पुराण के वचन की सम्यक आलोचना करने पर यही आभास ही मिलेगा। विष्णु पुराण की कथा है—

"द्रुहयुस्तु तनय बभ्रुः।
ततः सेतुः, सेतुपुत्र आरद्वान नाम,
तदात्मजो गांधारः, ततो धर्मः, धर्मात धृतः,
धृतात् दुर्गमः, तत प्रचेता
प्रचेतसः पुत्रशतम् अधर्म बहुलानां।।
म्लेच्छानामुदीच्यादी नामाधिपत्यमकरोत्।।

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश 17 अध्याय 1—2 श्लोक।

इस वाक्य के द्वारा स्पष्ट रुप से यह बात समझ आती है कि द्रुहयु से प्रचेता तक, नवें पुरुषों तक, एक ही स्थान पर रहे थे। प्रचेता के सौ पुत्रों ने पैतृक वास स्थान त्यागकर चारों ओर फैल गये। इस तरह सोचने के और भी बहुत से कारण है। ऊपर दिए गये शास्त्र वाक्य के अनुसार प्रचेता के पुत्रगण म्लेच्छों के राजा हुए थे विशेषतः उन दिनों गान्धार देश आर्यो के निवास के लिए निन्दनीय था, शास्त्रों में यह भी मिलता है।(1) गान्धार जैसे दूषित जगह में निवास करने पर पुराण में इसका उल्लेख रहता। त्रिपुरा के इतिहास की आलोचना करने पर भी गान्धार के ही स्थानान्तर पर रहने की कथा ही प्रमाणित होती है। इस विषय में पूज्यपाद

---

(1) महाभारत कर्ण पर्व 45 अध्याय

प्रथमलहर–56

तर्क रत्न महाशय ने पूर्वोक्त पत्र के एक जगह लिखा है–

"द्रुहयु वंशज गान्धार पुरु वंशज किसी राजा के हाथ से गान्धार प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित करने पर उनके नामानुसार ही उस प्रदेश का नाम गान्धार रखा गया। प्रचेता के बहु पुत्रों में, किसी ने वहाँ पर अपने राजधानी की स्थापना की थी, आपके इस मत का समर्थन करता हूँ, पुत्रों का नाम बहुत अनुसंधान पर भी मुझे नहीं मिला।"

विश्वकोष सम्पादक महोदय के मत को लेकर इन सभी मतों के साथ आलोचना करना आवश्यक है। उनके वाक्य का मत यह है कि, "द्रुहयु के पुत्र, गान्धार के नामानुसार, जब गान्धार देश का नामकरण हुआ हैं तब द्रुहयु ने भारत के पूर्व प्रान्त न आकर, पश्चिम प्रान्त में गमन किया था– यही स्वीकार्य है" गान्धार द्रुहयु के पुत्र नहीं थे बल्कि वे चतुर्थ स्थानीय है। यह पहले ही कहा जा चुका है। अधस्तन पुरुष द्वारा विजित और नामंकित हुआ है, कहकर द्रुहयु ने गान्धार देश में उपनिवेश स्थापित किया था। इस तरह के मत को स्वीकार करने का क्या कारण हो सकता है, समझ में नहीं आता। द्रुहयु भारत के पूर्व प्रान्त में उपनिविष्ट होने पर भी, उनके अधस्तन चतुर्थ स्थानीय गान्धार का पश्चिम भारत में राज्य विस्तार करने में क्या बाधा थी एवं अधस्तन पुरुष के नाम के साथ किसी स्थान का सम्बन्ध देखने पर उनके पूर्वज उसी स्थान के रहने वाले थे इस तरह सोचने का क्या कारण हो सकता है। यह सहज बोधगम्य नहीं हो सकता। इस तरह की युक्तिओं से द्रुहयु को पश्चिम दिशा में प्रतिष्ठित करने में कोई भी सम्मत नहीं होगा।

ढाका के इतिहास प्रणेता की मत आलोचना द्रुहयु के उपनिवेश के बारे में ढाका के इतिहास प्रणेता स्नेहाष्पद श्रीमान् यतीन्द्र मोहन राय महाशय का मत भिन्न है। उन्होनें 'त्रिवेणी' प्रसंग में कहा है–

"ब्रह्मपुत्र, धलेश्वरी और लक्ष्या– तीनों नदियों का संगम स्थल त्रिवेणी नाम से जाना जाता है। यह स्थान नारायण गंज के विपरीत किनारे पर सोनार गाँव परगना में स्थित है।"

"कहा जाता है, ययाति के चारों पुत्रों में महाबल पराक्रान्त तृतीय पुत्र द्रुहयु ने, किरात भूपति को रण में पराजित कर, कोपल(ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर त्रिवेग या त्रिवेणी नगर में संस्थापन पूर्वक यहाँ अपनी राजधानी प्रतिष्ठित किया था।"

ढाका का इतिहास प्रथम खण्ड, 24 अध्याय, 472 पेज

उन्होनें दूसरे एक स्थान पर कहा है–

बन्दर के राय चौधरियों से अध्युसित भद्रासन, राजा कृष्ण देव का दिया हुआ है, इसलिए राजबाड़ी के नाम से विख्यात है। हमारे मतानुसार वह द्रुहयु के बाद उनके वंशज राजा का निवास होने की वजह से उसे राजबाड़ी कहा जाता है।

ढाका का इतिहास प्रथम खण्ड, 24 अध्याय, 488 पेज।

पहली बात तो प्रवाद मूलक है। अनुसंधान करने पर इस प्रवाद की कोई नींव नहीं मिलेगी। द्रुहयु का निर्वासन दण्ड सत्ययुग की घटना है। उस समय का सुवर्ण गाँव त्रिवेणी

नामक स्थान अगाध सागर के जल में निमज्जित था। इसे कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा। अतएव वहाँ द्रुहयु का उपनिवेश स्थान स्थापन सम्भव नहीं हो सकता। यह प्रवाद त्रिपुर इतिहास में भी स्वीकार नहीं है। प्रकृत रुप से सुवर्ण गाँव में हिन्दु और मुसलमान बंगेश्वरों की राजधानी थी। वहाँ पर किसी भी समय त्रिपुरेश्वरों की राजधानी स्थापित नहीं हुई थी।

दूसरी बातों की आलोचना करने पर देखा जायेगा कि सुवर्ण ग्राम के ''राजबाड़ी'' के साथ त्रिपुर राजाओं का परोक्ष सम्पर्क था। समसेर गाजी, लवंग ठाकुर नाम के एक राज परिवार के व्यक्ति को 'लक्ष्मणमाणिक्य' देकर त्रिपुरा के राजा कहकर घोषणा हुई थी। यह लक्ष्मणमाणिक्य, महाराज कृष्णमाणिक्य द्वारा खदेड़ देने पर सुवर्ण गाँव में जाकर आश्रय लिया था। उनका ही आवास बाद में राजबाड़ी कहलाया। इसके अलावा त्रिपुरा के कोई भी राजा सुवर्ण गाँव में नहीं रहे और नहीं वहाँ राजपाट स्थापन नहीं किया। इस विषय में ग्रन्थ के प्रथम भाग में आलोचना की गई है और यहाँ पर ज्यादा आलोचना करने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती।(1) यह विषय राजमाला द्वितीय लहर से संबधित है। इसलिए उस लहर में विशेष रुप से आलोचना करने का संकल्प किया है। सुवर्ण ग्राम की राजबाड़ी द्रुहयु द्वारा स्थापित नहीं है–पूर्व कथित विवरण द्वारा ही वह प्रमाण प्रमाणित होगा।

इस विषय में भिन्न व्यक्तियों का विभिन्न तरह के मतों का जहाँ तक सम्भव आलोचना हुई है। फिलहाल इन सभी विषयों पर उन सभी मतों को लेकर बात आगे बढ़ाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। द्रुहयु के उपनिवेश के बारे में त्रिपुर इतिहास की राय क्या है, अब उसे भी देख लेना आवश्यक समझता हूँ।

राजमाला में महाराज दैत्य का नामोल्लेख रहने पर भी उनके पुत्र महाराज त्रिपुर के शासन काल की घटना से ही उस ग्रन्थ की रचना आरम्भ हुई थी। उनके पहले के राजाओं का विवरण उसमें नहीं है। अतएव द्रुहयु के उपनिवेश स्थापित करने की कोई भी घटना या बातें राजमाला में नहीं मिलती। ''राजरत्नाकर ग्रन्थ'' में इस बारे में विराट रुप से वर्णन है। उसमें हम देखते है।

''द्रुहयु निज गणेः सार्द्धं प्रतिष्ठानाद्वहिर्गतः।
स्वर्धुनी तीरमासाद्य सागरभिमुखौ ययौ।।
हंस सारस दात्युहान् निर्मलानि सरांसि च।
समुन्नत गिरिब्रातान् मृगान् नानाविधानपि।।
सिंह ब्याघ्र समाकीर्ण बनानि निबिडानि च।
साधुनां शांत चित्तानां मुनिनामाश्रमवांस्तथा।।
नदीर्वेगवतीस्तत्र् नदानुर्म्मि समाकुलान्।
शमीताल वटाश्वाथ्थन लता पुष्प सुशोभिताः।।

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 269–270वां पेज।

<u>प्रथमलहर—58</u>

क्वचित् कीचक सन्दोहान् ध्वनतो वायु योगतः।
द्रुहयुः कौतुहलाविष्टः पथि गच्छन ददर्श वै।।
कोकिलानां कलरवं तथान्य पक्षिनामपि।
नाना विधानि गीतानि शुश्राव वन वर्त्मानि।।
क्वचित् शार्दूल सिंहानां गर्जनं ह्वद विदारकम्।
तथा बन्य बराहाणा मृक्षानां भीषणंरवम्।।
कुत्र शिष्यसमेतानामृषीणां ब्रह्मवादिनाम।
ब्रह्मघोषं सुललितं शुश्राव विपिनांतरे।।
एवं गच्छन् सवै राजन् पंचदश दिनान्तरे।
पान्थः सानुचरोद्रुहयुः प्रापजन्होस्तपोबनम्।।
समालोक्याश्रमं तस्य स्नात्वा च जान्हवी जले।
हित्वा पथश्रमं तत्रावाप शान्ति मनुत्तमाम्।।
प्राप्याशिषं मुनेस्तष्मात् प्रीती प्रोत्फुल्लदर्शनः।
कपिलस्याश्रमं सोऽथप्रपेदे पुण्यवर्द्धनम्।।
यत्र दक्षिणगा गंगालेभे सागर संगमम्।
गंगा सागरयोर्मध्ये द्वीप एको मनोरमः।।
यस्मिन् द्वीपे स भगवानुवास कपिलो मुनिः।
यत्र भागीरथी पूण्या तदाश्रम तलंगता।।
कपिलेति समाख्याता सर्वपाप प्रणाशिनी।
गजाश्व रथमुख्यानां गतिर्यत्र न विद्यते।।
बसन्नपि पवित्रेऽत्र भक्तितः कपिलाश्रमे।
पितृशापं चिन्तियित्वा द्रुहयुरुतकंठितोऽभवत।।''

राजरत्नाकर छठवाँ सर्ग 4 से 18वां श्लोक।

स्थूलार्थ :— द्रुहयु स्वजनों के साथ प्रतिष्ठान नगर त्याग करके सुरधुनी के तीरवर्ती पथ से सागर की ओर रवाना हुए। वन पथ से होकर जाते हुए उन्होनें देखा कहीं पर हंस सारसादि विहग वृन्द सेवित निर्मल सलिल सरोवर शोभायमान है। कहीं पर समुन्नत पर्वत के नीचे नाना तरह के मृग निर्भय होकर विचरण कर रहे है। किचिंत सिंह व्याघ्रादि श्वापद संकुल निविड़(घना) वन फैला है, तो कहीं पर प्रशान्त ह्वदय मुनियों का मनोरम आश्रम समूह शोभायमान है। कहीं शमी, ताल, वट इत्यादि वृक्ष है, तथा लता पुष्प से सुशोभित होकर प्रकृति की महिमा घोषणा कर रहे हैं। क्षुब्ध मन द्रुहयु उन सौन्दर्यों को देखकर कौतूहलाविष्ट चित्त से आगे बढ़ने लगे, इस तरह कुछ दूर अग्रसर होने पर उन्होनें देखा कि कलनादिनी स्रोताश्विनी सागर की ओर दौड़ रही है। पुनः

प्रथमलहर–59

नाना जातीय कलकंठ विहंगम कुल के सुमधुर कलरव से वन पथ मुखरित हो रहा है। कहीं सिंह शार्दुलादि का हृदय विदारक गर्जन ध्वनि सुनाई दे रही है। कहीं कहीं पर सामगान मुखरित तपोवन में शिष्यों के साथ ब्रह्मवादी ऋषिगण वेदाध्यापन में निरत है। इन सभी दृश्यों से भरे पथ पर अनुचरों के साथ द्रुहयु पन्द्रह दिन अतिवाहित करके महर्षि जन्हु का पवित्र आश्रय प्राप्त किया और जान्हवी के पवित्र जल में स्नानादि द्वारा अपनी पथ श्रान्ति को दूर किया। महर्षि जन्हु के स्वरुप और अतिथि से परितुष्ट होकर द्रुहयु पुनः अश्वारुढ़ हो कर चलने में प्रवृत हुए। दक्षिण वाहिनी गंगा के किनारे किनारे कुछ दूर अग्रसर होने पर भागीरथी के सागर संगम के करीब एक मनोरम द्वीप उनके नजरों में आया। इस द्वीप में भगवान कपिल मुनि का आश्रम था। सर्वपाप विनाशिनी गंगा इस पवित्र आश्रम का पद स्पर्श करती हुई 'कपिला' नाम से विख्यात है। वहाँ गज, अश्व और रथादि यान वाहनों की गतिविधि नहीं है। द्रुहयु वहाँ जाकर भक्ति युक्त चित्त से रहने लगे। पिता के निदारुण अभिसम्पात को स्मरण कर सदा उत्कठिंत चित्त से काल यापन करने लगे।

सगरद्वीप और सुन्दरवन के साथ द्रुहयु वंश का संबन्ध उद्धृत वाक्य से ज्ञात होता है कि द्रुहयु ने पैतृक राजधानी प्रतिष्ठानपुर से निकलकर गंगा किनारे के पथ को अवलम्बन करके गंगा सागर संगम के करीब महामुनि कपिल का आश्रय ग्रहण किया था। ज्ञान की जीवन्त मूर्ति एवं सर्वतत्वदर्शी यही महामुनि कपिल ही सांख्य दर्शन के प्रणेता एवं सगर वंश के ध्वंस साधनकारी है। उन्होनें ययाति नन्दन द्रुहयु की दूर्वस्था देख कृपा परवश होकर उन्हें अपने आश्रम में आश्रयदान किया। उस समय–

तथोवाच प्रसन्नास्य कपिलस्तं नृपात्मजम।
मद्वरेण च भोगेन क्षयमेनोगमिष्यति।।
ययातेः शापतो मुक्तिलप्स्यन्ते तव वंशजाः।
एतद्वचो निशम्यासो हृष्ट चित्तर्स्ततौऽभवत्।।
स्थापयामास तत्रैव त्रिवेग नगरीं शुभाम्।
प्रभाववानभुत्तत्र राजशब्द तिरोहितः।।
स दोर्दण्ड प्रतापेन बहुदेशान् बशे नयन्।
पालयामास धर्मेण प्रजा आत्म प्रजा इव।।
यद यदधिकृतं राज्यं त्रिवेग पतिना नृप।
तत्तत् सर्वं तदारभ्य त्रिवेग ख्यातिमागतम्।।

राजरत्नाकर षष्ट सर्ग 19–23 श्लोक।

स्थूल मर्म– महर्षि कपिल नृप नन्दन को प्रसन्न–वदन से कहा, मेरे वर से एवं भोग के द्वारा तुम्हारा पाप क्षय होगा एवं तुम्हारे वंशधर ययाति के श्राप से

प्रथमलहर–60

मुक्ति लाभ करेगें। इसके बाद नृपात्मज द्रुहयु ने हृष्ट चित्त से महर्षि के वाक्य प्रबुद्ध होकर वहीं पर त्रिवेग नामक एक उत्कृष्ट नगरी स्थापन किया। वहाँ पर उन्होनें राजा उपाधि ग्रहण नहीं किया।(1) और बहुत ही प्रभावशाली नरपति बने। अपने दोर्दण्ड प्रताप से बहुत से देशों को वशीभूत कर राजधर्म के अनुसार प्रजा पालन करने लगे। उनके द्वारा जीते गये सभी देश त्रिवेग(2) के नाम से प्रख्यात हुए। द्रुहयु के सुन्दरवन स्थित त्रिवेग में राजधानी स्थापना की बात जो लोग स्वीकार नहीं करते, उनके मत की आलोचना पहले ही की जा चुकी है। सगर द्वीप और सुन्दरवन में द्रुहयु वंशज के राज पाट की बातें इतिहास के विस्मृत होने पर भी उस अंचल में प्रभाव विस्तार का निदर्शन वर्तमान काल में भी नितान्त दुर्लभ नहीं है। दो निदर्शन के बारे में दूसरे पृष्ठ में आलोचना की जा रही है।

....

(1) पितृ श्राप के सम्मान हेतु द्रुहयु ने नये राज्य की प्रतिष्ठा करके भी राजा की उपाधि को ग्रहण नहीं किया। उनके पुत्र बभ्रु ने कपिल मुनि के आशीर्वाद से ''राजा'' उपाधि धारण किया था। राजरत्नाकर में लिखा है–

द्रुहयु पुत्र स्ततो बभ्रुः कपिलस्य प्रसादतः।
पितर्युपरते धीरो राजाख्यानमुपेषिवान्।।

राजरत्नाकर सप्तम सर्ग, प्रथम श्लोक।

द्रुहयु के वंशजो ने ययाति के अभिसम्पात को किसी भी समय विस्मृत नहीं किया। काल प्रवाह से वह स्मृति क्रमशः शिथिल भाव धारण किया है– यह बात सही है। ययाति ने नौका विहीन देश में जाने के लिए आदेश दिया था। उसी आदेश की मर्यादा की रक्षा के लिए द्रुहयु के वंशज त्रिपुरेश्वर गण अब भी अपने राज्य में नौका निर्माण नहीं करते। नौका निर्माण की आवश्यकता होने पर वे बाहर से तैयार करा कर ले आते है।

(2) साधारणतः तीन स्रोतों के समीपवर्ती स्थान को त्रिवेग या त्रिवेणी कहा जाता है। शतमुखी गंगा के समीपवर्ती सगर द्वीप और उसके समीपवर्ती राज्य का नाम त्रिवेग होने का कारणों का अनुसंधान करने पर दो बातें सामने आती है। प्रथमतः गंगा का त्रिपथगा नाम से ही 'त्रिवेग' नाम की उत्पत्ति हो सकती है। त्रिपथगा नाम के बारे में पुराण में हम देखते है–

गंगा त्रिपथगा नाम दिव्य भागीरथीति च।
त्रीण् पथो भावयन्तीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृतः।।

बाल्मीकी रामायण आदि काण्ड 44 सर्ग 6ठा श्लोक।

मर्म– यह दिव्यादि गंगा, त्रिपथगा और भागीरथी नाम लोक विख्यात होंगी। तीन धाराओं से त्रिपथ होकर प्रवाहित हुई है। इसलिए इनका त्रिपथगा नाम लोगों में प्रचारित होगा।

द्वितीयतः द्रुहयु का पैत्रिक राज्य त्रिवेणी में(प्रयाग के समीप) थी। उसी त्रिवेणी की स्मृति रक्षार्थ राज्य का नाम त्रिवेग होना स्वाभाविक है। यही अधिकतर संगत जान पड़ता है।

प्रथमलहर—61

1. महाराज त्रिलोचन, चतुर्दश देवता की अर्चना के लिए दण्डी साधुओं को सगर द्वीप लाने के निमित्त दूत प्रेरण किया था। उद्धत और अधार्मिक त्रिपुर उस समय भी जीवित है, सोचकर दण्डी साधु त्रिलोचन के आह्वान पर आने के लिए साहसी नहीं हुए। बाद में राजा को स्वयं सगर द्वीप जाना पड़ा और उन्हें ले आना पड़ा।(1) पारिवारिक विवाद मीमांसा के लिए भी समय समय पर दण्डी लोगों को ले आने का प्रयास का आभास मिलता है।(2) इन सभी घटनाओं के द्वारा स्पष्ट ही समझ में आता है कि सगर द्वीप के साथ त्रिपुरा का घनिष्ठ सम्पर्क था। इन दो स्थानों में सदा संवाद आदान प्रदान की व्यवस्था एवं पारस्परिक बाध्य—बाधकता थी। यहाँ पर दण्डिओं के बारे में पहले से ही त्रिलोचन को खबर थी एवं महाराज त्रिपुर के अनाचार की बातें भी दण्डी साधुओं को ज्ञात थी। राजरत्नाकर के अनुसार ये दण्डी गण पूर्व में द्रुहयु सन्तानों के देवता के सेवक रह चुके थे। महाराज त्रिपुर के अत्याचार के कारण दण्डी लोग उस कार्य को त्याग करने के लिए बाध्य हुए। इन घटनाओं की आलोचना से यह हृदयंगम होता है कि सुन्दरवन में राजधानी के रहने के समय इन साधु पुरुषों की राज वंश के साथ घनिष्ठता हुई थी एवं उसी सूत्र के आधार पर किरात देश में राज्य स्थापन के बाद उन्हें यहाँ लाया गया था।

2. दण्डी(चन्ताई) त्रिपुर राजवंश के विवरण प्राचीन काल से ही संग्रह कर रहे थे। राजमाला, राजरत्नाकर पृभृति त्रिपुरा के इतिहास चन्ताई मुख निःसृत वाक्य अवलम्बन से ही रचित हुआ है। इसके द्वारा भी त्रिपुर राजवंश के साथ सगर द्वीप की घनिष्ठता सूचित होती है। सगर द्वीप में रहने वाले साधु पुरुष गण के द्वारा त्रिपुरा के इतिहास के संकलन में व्रती होने का, अन्य किसी कारण को खोजने पर भी हम नहीं पाते।

3. सुन्दरवन में स्थापित त्रिपुरासुन्दरी मूर्ति द्वारा भी त्रिपुरा के साथ उस प्रदेश का सम्बन्ध सूचित होता है। श्रीयुत कालीदास दत्त महाशय के "सुन्दरवन के प्राचीन

---

(1) राजमाला प्रथम लहर त्रिलोचन खण्ड 27 पृष्ठ । राजरत्नाकर दक्षिण विभाग के चतुर्थ सर्ग में भी इस विषय का उल्लेख है।

(2) **On the death of the Sonless Raja of Hidamba a dispute arose as to which of his Grandsons were to occupy the vacant throne. To solve the difficulty peacefully Trilochana sent messengers to the venerated shrine of Siva on sagar Island, to request the Priests to come and solve the difficulty.**

History of Tripura, page 11.

इतिहास'' शीर्षक प्रबन्ध में त्रिपुरासुन्दरी का नाम भी मिलता है।(1) उनके प्रबन्ध में अम्बुलिंग नाम भी पाया जाता है। उनके प्रबन्ध के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे है:–

''इस समय उक्त प्रदेश प्राचीन तत्व के निदर्शनों से भागीरथी नदी के पश्चिम किनारे पर बडाशी में अम्बुलिंग, छत्र भोग में त्रिपुरासुन्दरी और अन्ध मुनि इत्यादि नाम से कुछ प्राचीन हिन्दू तीर्थ क्षेत्र विद्यमान है।''

'त्रिपुरा सुन्दरी' शब्द के पाद टीका में लिखा गया है–

''त्रिपुरासुन्दरी तीर्थ क्षेत्र में इस समय त्रिपुर बाला भैरवी नाम की एक दारुमयी(लकड़ी की) देवी मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस देवालय के पुरोहित लोग कहते हैं कि यह एक पीठ स्थान है एवं देवी त्रिपुरासुन्दरी शक्ति और बडासी के अम्बुलिंग भैरव है। साधारण लोगों का विश्वास है वहाँ देवी का वक्ष स्थल गिरा था। * * * कथित है कि इस त्रिपुरासुन्दरी देवी का मन्दिर बहुत पहले कृष्णचन्द्रपुर गाँव के निकट काटान दिधि नामक स्थान में था। बाद में वहाँ से छत्र भोग में स्थानान्तरित हुआ। इस समय जो देवी गृह छत्र भोग में है वह भी वहाँ का प्राचीन मन्दिर नहीं है। 1271 साल के वर्षा तूफान से वह प्राचीन मन्दिर गिर जाने पर इस समय मन्दिर गृह का निर्माण किया गया है।''

त्रिपुरासुन्दरी के ऊपर लिखे गये विवरण इस कथित प्रबन्ध में मिलता है। अम्बुलिंग का विवरण ज्यादा नहीं मिलता है। श्री श्री महाप्रभु के नीलाचल यात्रा के पथ प्रसंग में श्रीमत् वृन्दावन दास ठाकुर ने उस विग्रह के कुछ विवरण प्रदान किया है–

एइमत प्रभु जान्हवीर कुले कुले।	इसी तरह प्रभु जान्हवी के किनारे किनारे।
आइलेन छत्रभोग महा कुतुहले।।	आये छत्र भोग महा कौतूहल भरे।।
सेइ छत्रभोगे गंगा होई शतमुखी।	उस छत्र भोग में गंगा होकर शतमुखी।
बहिते आछेन सर्बलोके करि सुखी।	है बहती, कर सर्व लोग को सुखी।।
जलमय शिवलिंग आछे सेई स्थाने।	जलमय शिवलिंग है उस स्थान।
'अम्बुलिंगघाट' करि बोले सर्ब जने।।	अम्बुलिंग घाट कहते है सर्वजन।।
चैतन्य भागवत् अन्त्य खण्ड दूसरी अध्याय	चैतन्य भागवत् अन्त्य खण्ड दूसरी अध्याय

इस अम्बुलिंग उद्भव का एक विवरण भी उस ग्रन्थ में मिलता है। वही सुदीर्घ कहानी यहाँ पर प्रदान करना आवश्यक नहीं है।

कविकंकण मुकुन्दराम ने धनपति के सिंहल जाने के पथ का जो विवरण प्रदान किया है, उसमें भी त्रिपुरासुन्दरी एवं अम्बुलिंग का विवरण आता है। नीचे हम उसे दे रहे हैं।

नाचनगाछा वैष्णवघाटा वामदिके थुइया।	नाचन गाछा वैष्णव घाटा बाँई ओर छोड़।
दक्षिणेते बारासत ग्राम एड़ाइया।।	दक्षिण में वारासत गाँव रखकर।।

(1) भारतवर्ष(मासिक पत्र) – अश्विन 1332

प्रथमलहर—63

दाहिने अनेक ग्राम राखे साधु बाला।	दाहिने अनेक गाँव छोड़ साधु बाला।
छत्रभोगे उत्तरिला अबसान बेला।।	छत्र भोग उतरी दिवसावसान बेला।।
त्रिपुरा पूजिया साधु चलिला सत्वर।	त्रिपुरा को पूज साधु चले सत्वर।
अम्बुलिंगे गिया उत्तरिला सदागर।।	अम्बुलिंग जा पँहुचे सौदागर।।
कविकंकण चण्डी।	कविकंकण चण्डी।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कवियों के समय त्रिपुरासुन्दरी देवी छत्र भोग में थी। इसके भी पहले यह विग्रह काटान दिधि नामक स्थान पर होने के प्रमाण मिले है।

श्रद्धास्पद अध्यापक श्रीयुक्त सतीश चन्द्र मित्र महाशय ने अपने रचित यशोहर खुलना का इतिहास में त्रिपुरासुन्दरी का कोई उल्लेख नहीं किया है। उन्होनें अम्बुलिंग की बातें कही है

''शशांक के राजत्व काल में समतट के नाना स्थान पर शिव मूर्ति प्रतिष्ठित हो रही थी। हातियागढ़ के सुप्रसिद्ध अम्बुलिंग शिव, कालीघाट के नकुलेश्वर, द्विगंगा के गंगेश्वर शिव, कुशदह के यमुना तट, लाऊपाला नामक स्थान पर जलेश्वर शिव, इस समय नव या इसके पश्चात परिवर्ती युग में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। ऐसा विश्वास होता है।''

यशोहर खुलना इतिहास प्रथम खण्ड 179 पेज।

यह तो हुई अम्बुलिंग प्रतिष्ठा की बात । त्रिपुरासुन्दरी की प्रतिष्ठा किसने की थी यह मालूम नही। त्रिपुर इतिहास में इस विषय में जो विवरण हुआ है वह बाद में दिया जायेगा।

पहले के उद्धृत विवरण से हमें ज्ञात हुआ है कि 'त्रिपुरा सुन्दरी' पीठ देवी है। सती का वक्षः स्थल यहाँ गिरने से इस पीठ का उद्भव हुआ है। यही साधारण लोगों का विश्वास है। किन्तु तन्त्र चूड़ामणि, पीठ माला तन्त्र, देवी भागवत्, कालिका पुराण और शिव चरित्र प्रभृति ग्रन्थ में सुन्दरवन में पीठ प्रतिष्ठा की कोई बात नहीं कही गई है। एक मात्र कुब्जिका तन्त्र के सप्तम पटल में, गंगा सागर संगम में सिद्ध पीठ का उल्लेख है, किन्तु देवी के किसी अंग प्रत्यंग द्वारा इस पीठ के उद्भव होने का उल्लेख इस ग्रन्थ में नहीं है। शास्त्रानुसार देवी के अंग न होने से भी सिद्ध पीठ प्रतिष्ठित हो सकता है। तन्त्र विधान में जिस स्थान पर लक्ष पशुबलि हुई है अथवा जहाँ पर एक करोड़ होम या कोटि संख्यक महा विद्या मन्त्र का जप हुआ है। उसी स्थान को सिद्ध पीठ कहते है।

उल्लेख है —

जातोलक्ष बलिर्यत्र होमो या कोटि संख्यकः।
महा विद्या जपः कोटिः सिद्ध पीठः प्रकीर्तितः।।

तन्त्रसार।

प्रथमलहर—64

इसके किसी एक कारण से सागर संगम में सिद्ध पीठ की प्रतिष्ठा शायद हुई होगी। इस सिद्ध पीठ की अधिष्ठात्री देवी का नाम कुब्जिका तन्त्र के अनुसार 'ज्योतिर्मयी' है। यहाँ पर प्राचीन काल में किसी मूर्ति के होने का कोई प्रमाण नहीं है। त्रिपुरासुन्दरी मूर्ति जो बाद में स्थापित हुई थी, सम्यक आलोचना से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

पीठ देवी त्रिपुरासुन्दरी एक मात्र त्रिपुरा में ही अधिष्ठित है। दूसरे पीठ में देवी का यह नाम नहीं है। पीठ स्थान के विवरण सम्बलित सभी शास्त्र ग्रन्थों ने एक वाक्य में कहा है— ''त्रिपुरायां दक्षपाद देवी त्रिपुरासुन्दरी'' इस अवस्था में सुन्दरवन में अवस्थित देवी का नाम 'त्रिपुरा सुन्दरी' नाम कैसे हुआ, इस विग्रह के प्रतिष्ठाता कौन है एवं किस सूत्र से प्रतिष्ठा हुई थी, यह अनुसंधान का विषय है।

सुन्दरवन में त्रिपुरासुन्दरी की मूर्ति किसने स्थापित की ? पहले मिला था कि देवी मूर्ति दारुमयी(लकड़ी की) है। त्रिपुर इतिहास के साथ इस प्रतिमा का एक अच्छेद्य सम्बन्ध मिल रहा है। 'राजरत्नाकर' ग्रन्थ में महाराज प्रतर्द्दन के पौत्र कलिन्द नाम के राजा के विवरण में वर्णित हुआ है—

''त्रिवेगात पूर्वदेशे मन्दिरम् सुमनोहरं।
निर्माय स्थापयामास त्रिपुरासुन्दरी परां।।
चतुर्भुजां दारुमयीं यथोक्त विधि पूर्वकं।
अद्यापि वर्तते राजन् सा मूर्तिः सुप्रतिष्ठित।।''

राजरत्नाकर दाक्षिण विभाग, प्रथम सं, 6—7 श्लोक।

सुन्दरवन में त्रिपुरासुन्दरी मूर्ति के प्रतिष्ठाता कौन सुन्दरवन और सगर द्वीप में द्रुहयु स्थापित राज्य का नाम त्रिवेग था जो पहले ही कहा गया है। राजरत्नाकर में वर्णित मूर्ति और सुन्दरवन में प्रतिष्ठित मूर्ति अभिन्न है। यह अति सहज बोध्य है। अब इस देवी के स्थापन करने वाले का परिचय कर पाना अति आवश्यक है।

राजरत्नाकर से हमें ज्ञात होता है कि द्रुहयु के अधस्तन 24 स्थानीय महाराज शत्रुजीत् तक त्रिवेग के राज पाट में अधिष्ठित था। शत्रुजीत के पुत्र महाराज प्रतर्द्दन ने किरात देश जय करके ब्रह्म पुत्र के किनारे किरात भूमि में नये राज्य प्रतिष्ठा के पश्चात यहाँ पर राजधानी का त्रिवेग नाम ही रखा गया था। काल क्रम से वही त्रिवेग राज्य ही त्रिपुरा हो गया, इस बारे में विवरण बाद में दिया जायेगा। किरात भूमि में नव राज्य के गठन के बाद भी बहुत दिनों तक सुन्दरवन प्रभृति प्रदेश उक्त राज्य के अन्तर्गत रहने के प्रमाण मिलता है।(1) नवविजित

---

(1) **But so late as the 16th century the Raj stretched from Kamrup in Assam to the North up to Arakan in the South, from the empire of Burma on the East to the then densely populated Sunderbans on the west.**

History of Tripura. P- 12.

<u>प्रथमलहर–65</u>
किरात देशों(त्रिपुरा) में पीठ स्थान होने की बातों की चर्चा पहले ही हमने उल्लेख किया है। ग्रन्थ भाग में भी इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।(1) इस पीठ देवी का नाम त्रिपुरासुन्दरी है।

किरात–विजयी प्रतर्द्दन के पुत्र प्रमथ एवं उनके पुत्र कलिन्द(2) थे। ये लोग कभी सागर संगम में तो कभी ब्रह्मपुत्र के किनारे रहकर राज्य शासन करते थे। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने का यथेष्ट कारण विद्यमान है। महाराज कलिन्द के द्वारा सुन्दरवन में त्रिपुरासुन्दरी की प्रतिष्ठा ही इनमें सबसे प्रधान है। त्रिवेगपतिओं ने पुरुष परम्परा से पीठ देवी त्रिपुरासुन्दरी के प्रति विशेष श्रद्धावान थे। राजमाला में इस विषय में बहुत से प्रसंग है। त्रिपुरा के वर्तमान काल में भी भक्ति रस का अनवरत स्वच्छ स्त्रोत समरूप प्रवाहित हो रहा था। ब्रह्मपुत्र के किनारे रहते समय जिस तरह राज्य में स्थापित पीठ देवी की सेवा पूजा द्वारा आनन्द उपयोग किया जाता था, सुन्दरवन में रहते हुए वही शाश्वत आनन्द उपभोग के अभिप्राय से वहाँ भी त्रिपुरासुन्दरी की मूर्ति स्थापित की गई थी। यही स्पष्ट रुप से समझा जाता है। इसके अलावा त्रिपुरा में स्थापित पीठ देवी के नामानुसार त्रिपुरेश्वर के द्वारा सुन्दरवन में द्वितीय मूर्ति स्थापना का दूसरा कोई युक्तिप्रद कारण दिखाई नहीं देता। अम्बुलिंग के साथ इस देवी मूर्ति का विशेष सम्बन्ध है। साधारण लोगों का विश्वास है कि त्रिपुरासुन्दरी भैरवी और अम्बुलिंग भैरव है। यह लिंग–विग्रह शशांक के राजत्व काल में स्थापित किया गया है। इस तरह की धारणा व सतीश बाबू का अनुमान होने पर भी, हम इस विग्रह को देवायतन महाराज कलिन्द की कीर्ति ही समझते है। यह अनुमान निराधार नहीं है। त्रिपुरेश्वर द्वारा सुन्दरवन में शिव मन्दिर निर्माण का जो प्रमाण मिलता है, वह अंबुलिंग मन्दिर होने की सम्भावना ही अधिक है।(3)

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 122 पेज

(2) परलोकं गते तस्मिन महाराजे प्रतर्द्दने।
तत्पुत्रः प्रमथो नाम नृपासन मथारुहत्।।
ततो वीर्येन कृत्वासौ प्रवलारि पराजयं।
निर्ब्बैरं त्रिपुरांमत्वा संवतौ प्रमथो नृपः।।
कलिन्द नाम्नी तत्पुत्रे संभुत्वेतचिरेण सः।
राजरत्नाकर दक्षिण विभाग, प्रथम सं, 1–3 श्लोक।

(3) **"In ancient times there were on Sagar Island a famous Tol or Sanskrit college for Pandits and a shrine of Siva, erected by the Rajas of Tripura when their dominions spread far more westward then they do now."**
Bengal & Assam, Behar & Orrisas- Page 463
Compiled by Somerset playne. F.R.G.S.

प्रथमलहर—66

प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र को छोड़ अधिपत्यविहीन स्थानों पर देवालय या विग्रह प्रतिष्ठा करना किसी भी राजा के लिए सम्भव नहीं हो सकता, अतएव इस विषय में सुन्दरवन के साथ द्रुहयु वंश का जो सम्बन्ध सूचित होता है, वह आधिपत्य सूचक छोड़ कर और कुछ सोचना संगत नहीं होगा।

सगर द्वीप ही द्रुहयु का पहला उपनिवेश स्थान द्रुहयु, जो पहले सगर द्वीप में पंहुचे थे, पूर्वोक्त विवरण समूहों से उसे समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। खासतौर से त्रिपुर इतिहास यह बात स्पष्ट भाषा में घोषणा कर रहा है। इसके विरुद्ध मत पोषण करने वाले कोई इस तरह के सुदृढ़ प्रमाण देने में समर्थ नहीं है। अतएव इस मत को छोड़ उनको समर्थन देना असम्भव सी बात है।

सगर द्वीप और सुन्दरवन के अवस्था विवरण त्रिवेग राज पाट का विशुद्ध अवस्थान निर्णय करना अब सम्भव नहीं होगा। क्योंकि, सगर द्वीप और सुन्दरवन के वक्ष स्थल पर कितना दफे खण्ड प्रलय अभिनय हुआ है, कितनी बार सागर सलिल में वह अंचल निमज्जित हुआ है, कितने ही दफे वह समृद्ध प्रदेश जन प्राणहीन घने अरण्य में परिणित हुआ है, यह सम्यक रुप से निर्णय करना मानवीय शक्ति से परे है। इस प्रदेश के पतन के बाद सौ सौ वर्षो में भी इसका पुनर्उत्थान नहीं हो सका, इस तरह के उत्थान पतन बहुत बार हो चुके है। तूफान, भूकम्प, पवन के साथ मघ और पूर्तगीजों / पूर्तगालीयों के अत्याचारों से इन अंचलों की जो अवस्था हूुई है, जिस तरह की विध्वस्ति होती रही है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। हमें ज्ञात नहीं कि एक के बाद अधिदैविक और अधिभौतिक उपद्रव किसी दूसरे देश में हुआ है या नही। फिर इस अंचल का भूभाग प्राचीन काल की तुलना से दक्षिण की ओर सैकड़ों मील प्रसारित हुआ है। सैकड़ों प्राचीन कीर्ति के समाधि क्षेत्र पर कई नई कीर्ति प्रतिष्ठा हुई है। एक एक स्थान का विवर्तन बहुत बार हो चुका है। इस क्षेत्र से उन प्राचीन तत्वों का संधान करना और पाना किसी तरह भी सम्भव नहीं है।

सगर द्वीप के उत्थान और पतन का विवरण सुन्दरवन की बात छोड़ देने पर एक मात्र सगर द्वीप के उत्थान और पतन का विवरण आलोचना करने पर विष्मय / आश्चर्य होता है। यह द्वीप सुन्दरवन के निम्न देश में बंगाल के खाड़ी में सागर में स्थित है। महामुनि कपिल के पवित्र आश्रम को अपने वक्ष पर धारण कर इस स्थान के धन्य होने की चर्चा हमने पहले ही किया है। आदि काल से यह द्वीप तीर्थ क्षेत्र के नाम से परिचित और आदृत रहा है। इस समय भी माघ महीने में हजारों यात्रियों का समागम होता है। रामायण में पाया जाता है, सूर्यवंशीय सगर राजा के साठ हजार पुत्र महर्षि कपिल के कोपानल से यही विनष्ट हुए थे। भागीरथ के उग्र तपस्या के फलस्वरुप पूण्य सलिला

प्रथमलहर–67

भागीरथी भूतल पर अवतीर्ण होकर उन सभी का उद्धार किया। रघु के दिग्विजय करने के पश्चात् गंगा स्रोत के मध्यवर्ती द्वीप पर जो कीर्ति स्तम्भ स्थापना का उल्लेख मिलता है,(1) वह द्वीप है यही सगर द्वीप। तदन्तर ययाति नन्दन द्रुहयु ने यहाँ पर आकर महामुनि कपिल के यहाँ आश्रय लिया था। उस समय यह स्थान समृद्ध जन पद से भरा था। यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। बाद में भी यहाँ की अवस्था बहुत उन्नत थी। यहाँ के संस्कृत विद्यालय एवं त्रिपुरेश्वर द्वारा स्थापित शिवालय एक समय ख्याति के चरम सीमा पर थे।(2) कविकंकण चण्डी में श्रीमंत सदागर के सिंहल यात्रा के पथ के विवरण में इस स्थान का उल्लेख मिलता है।(3) यह मुसलमान राजत्व काल की घटना है। प्रतापादित्य के शासन काल में यहाँ पर सामरिक नौ– बहार का अड्डा एवं सुदृढ़ दुर्ग था। किसी किसी के अनुसार प्रतापादित्य ही सगर द्वीप के अन्तिम राजा है। विदेशी इतिहासकारों ने प्रतापादित्य को चाण्डिकाण (**Chandecan**) का अधिपति कहा है। श्रद्धेय श्रीयुक्त निखिल नाथ राय महाशय के अनुसार चण्डीकान और सगर द्वीप अभिन्न हैं।(4)

प्रतापादित्य के पश्चात भी सगर द्वीप की समृद्धि कम नहीं थी। यहाँ पर 1688 ई0 में भी दो लाख लोगों के रहने की बात कही गई है। उसी साल

....

(1) बंगान उत्खाय तरसा नेता नौ साधनोद्यतान।
निचखान जय स्तंभान् गंगा स्रोतोऽन्तरेषु समः।।
रघुवंश चतुर्थ सर्ग 36 श्लोक।

(2) **In ancient times there were on Sagar Island a famous Tol or Sanskrit college for Pandits and a shrine of Siva erected by the Rajas of Tripura.**
History of Tripura, page 11,(by E.F. Sandys)

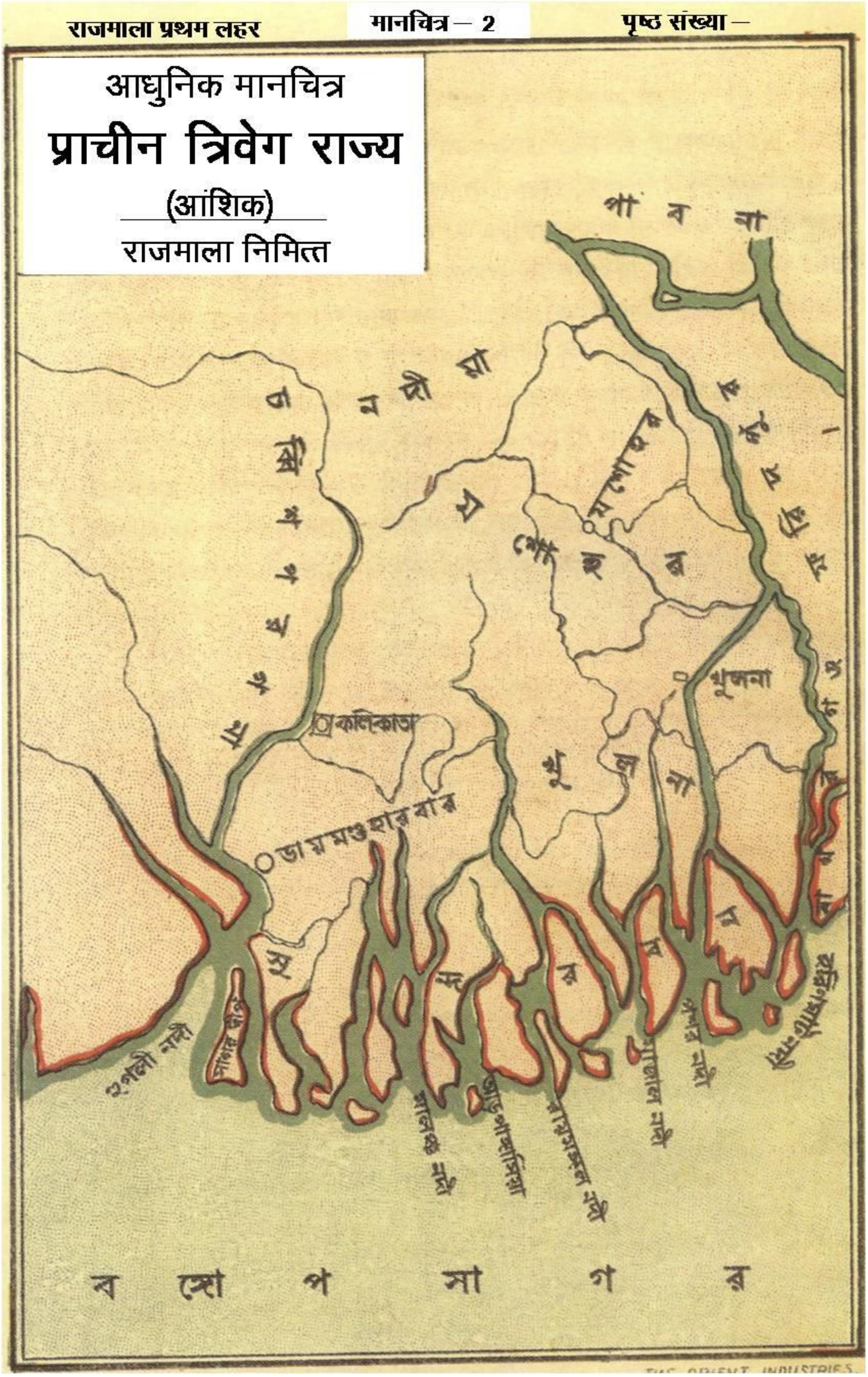
(3)

येखाने सगर वंश ब्रह्म शापे होइलो ध्वंस	जहाँ सगर वंश, ब्रह्म शापवश हुए ध्वंस
अंगार आछिल अबशेष	अंगार था बस अवशेष
परशी गंगार जले, विमाने बैकुन्ठे चले	स्पर्श कर गंगाजल को विमान से चले बैकुन्ठ को।
होइया सब चतुर्भुज वेश	होकर चतुर्भुज रुप सभी
मुक्ति पद एई स्थान, एई खाने करि स्नान	मुक्ति पद यही स्थान, यहीं पर करके स्नान
चल भाई सिंहल नगर	चलो भाई सिंहल नगर
तर्पण करिया जले, डिंगालये साधु चले	तर्पण करके जल में, साधु चले बैठ नाव में
गाइलो मुकुन्द कविवर।	गाया मुकुन्द कविवर।
कविकंकण चण्डी– श्रीमंत की सिंहल यात्रा।	कविकंकण चण्डी– श्रीमंत की सिंहल यात्रा।

(4) प्रतापादित्य–उपक्रमणिका, 136–145 पेज

प्रथमलहर–68

(Pratham leher-5-68) चित्र



प्रथमलहर—69

भीषण जलप्लावन से यह विशाल जनपद विध्वस्त हुआ है। इस वाक्य के प्रमाण स्वरुप नीचे दी गई उद्धृति प्रयोग की जा सकती है:—

Two years before the foundation of Calcutta, it (Sagor Island) contained a population of 2,00,000 souls, which in one night in 1688 was swept away by an inundation.

Calcutta Review -No. XXXVI.

अर्थातः— कलकत्ता नगरी प्रतिष्ठित होने के दो साल पहले इस स्थान की(सगर द्वीप की) लोक संख्या दो लाख थी। 1688 ई0 में एक जलप्लावन उस जनपद को बहा ले गया।

रेवरेन्ड जेम्स लंग साहब भी यही कहा है। वे और भी कहते हैं कि पेरिस नगर में **Bibliotheque Royale** में पुर्तगीजों के द्वारा अंकित बंग देश का एक टुकड़ा मानचित्र उन्होनें देखा था। वह तीन सौ साल पुराना है। उस मानचित्र में सगर द्वीप के समुद्र उपकुल में बसे पाँच नगरों का नाम था।(1) इसके द्वारा भी उस द्वीप को प्राचीन समृद्धि का परिचय मिलता है।

1688 ई0 में जलप्लावन के बाद सगर द्वीप में मनुष्य की बस्ती नहीं बसी।(2)इस समय यह स्थान हिंसक जन्तु जानवरों से भरे, गहन अरण्य में रुपान्तरित हो चुका है। प्रतापादित्य के लुप्तप्राय कीर्ति के भग्नावेश को छोड़ कर सगर द्वीप और सुन्दरवन में अन्य कोई उल्लेख योग्य प्राचीन कीर्ति का निदर्शन नहीं के बराबर है। इस अवस्था में द्रुहयु या उनके वंशजो का इस अंचल में निवास का या अधिपत्य विस्तार का प्रमाण आदि का निदर्शन खोज निकालना असम्भव सा है, इसे सभी अस्वीकार नहीं करेगें। साथ में दिये मानचित्र से इस द्वीप की वर्तमान अवस्था की जानकारी मिल सकती है, लेकिन उससे प्राचीन काल के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलेगी। इसे समझना भी आसान नहीं है।

पूर्वोक्त विवरण समूहों से द्रुहयु के सगर द्वीप में रहने का जो आभास मिलता है उसकी तुलना में दूसरी किसी जगह उनके उपनिवेश स्थापना की युक्ति बहुत ही कमजोर लगती है। अतएव द्रुहयु ने सगर द्वीप में प्रथम आश्रय लिया था, इसे स्वीकार करने में शायद किसी को आपत्ति नहीं होगी।

त्रिपुर राज वंश द्रुहयु सन्तान

राजमाला के विषयीभूत त्रिपुर राजवंश द्रुहयु की सन्तान थी या नहीं, इस बारे में प्रश्न उत्थापन करने में भी लोग नहीं चूकते। अंग्रजो के तरह ही यही प्रश्न का असली सूत्र है। कोई कोई यूरोपीय महापुरुष सद्प्रवृत होकर अनेक लुप्त पुरातत्व के उद्धार द्वारा हमारा अशेष कल्याण

(1) **J.A.S.B. -Vol XIX.**

(2) **Hunters' Statistical Accounts = Vol 0I. Page 106.**

साधन किया है। इस सहृदयता के लिए भारतवासी उनके चिर कृतज्ञ रहेंगें। इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु उनके स्वजातीय अनभिज्ञ व्यक्तिगणों ने पुनः भारत के इतिहास को इस तरह विकृत किया है कि उसे देखने पर हँसी भी आती है और दुख भी होता है। राजा राजेन्द्र लाल मित्र को विशुद्ध ब्राह्मण कहकर सिद्धान्त करना इसी श्रेणी के इतिहासकारों का कार्य है।(बंगला में मित्र उच्च श्रेणी के कार्यस्थ को कहते है मित्र उपाधि कायस्थ की है, ब्राह्मण की नही) इनके लिखित रामायण की समालोचना की बात नहीं उठाना ही बेहतर है। कुछ लोगों ने पुनः अनुसन्धान के कष्टों को लाघव/कम करने की इच्छा से भी, दूसरे के स्कन्ध के सहारे महाभ्रम में, स्वयं को डुबो दिया हैं।

पाश्चात्य इतिहासकारों का मत

इसी श्रेणी के आराम प्रिय इतिहासकार कोई युक्ति और प्रमाण के बिना खाम–खयालीपन से त्रिपुर राज वंश को तिब्बतीय ब्रह्मा(**Tiboeto Barman**) कहकर घोषणा करने से भी नहीं चूकते व कुंठा भाव भी नहीं आता। (1) आलोचना करने से देखा जायेगा कि उन्होनें इस विषय में केवल अनुमान के ऊपर ही सम्पूर्ण रुप से निर्भर किया है। इन सभी निराधार मत को 'गहरी गवेष्णा' कहकर ग्रहण करने में, हमारे देश के कुछ इतिहासकारों ने द्विधा बोध तक नहीं किया। यही अंग्रेज इतिहासकारों की बातों पर निर्भर करके वे लोग चुप्पी साध लेते, तो हम सोचते कि उन लोगो ने इस बारे में प्रमाण संग्रह के लिए किसी तरह की चेष्टा नहीं की, बल्कि दूसरों की बातों को लेकर ही अपना काम समाप्त किया। किन्तु इस बातों को सोचने का भी कोई उपाय नहीं है। इसमें से किसी–किसी वेद पुराणों को लेकर इन विषयों के विचार विश्लेषण करने में भी त्रुटि नहीं की। राजमाला के संग्राहक कैलाश चन्द्र सिंह महाशय उनमें से एक है। उन्होनें कहा है–

ऋग् वेद संहिता के चतुर्थ, सप्तम और अष्टम मंडल में बारम्बार ययाति के पंच पुत्र के नाम का उल्लेख है अतएव वे लोग उससे भी प्राचीन है। विश्व के आदि ग्रन्थ ऋग वेद से प्राचीन द्रुहयु और उनके पुत्र किस तरह त्रिपुरा में आये थे, उसे अब मानस पटल में धारण करना मानव बुद्धि से परे है।

कैलाश बाबू की राजमाला, प्रथम भाग, चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ 32–33।

ऋग् वेद में जिनका नाम आता है, वे वेद से भी प्राचीन होगें, यह धारणा संगत नहीं है। इसी से वेद का नित्यत्व और अपौरुषेयत्व बाधित होता है। इस तरह के प्रश्न प्राचीन काल में भी उठे एवं उसकी मींमासा भी उसी समय हुई है। ब्रह्म सूत्र

---

(1) **Statistical Account of Bengal, Vol - VI, P- 482.**
Lewins Hill Tracts of Chittagong P- 79.
Dulton's Ethnology of Bengal P- 109.

<u>प्रल–71</u>

शायण भाष्य, बृहदारण्यक प्रभृति ग्रन्थों की आलोचना से यह जाना जा सकता है। उस पुरातन बातों को लेकर वाक् वितन्डा करना निरर्थक है। विशेषतः इस तरह की जटिल समस्याओं की मीमांसा करने में उपहास की खुराक की इच्छा भी नहीं है।

द्रुहयु के त्रिपुरा में आने की कहानी कैलाश बाबू की स्वकल्पित वाक्य है। असल में ऋग वेदोक्त प्राचीन द्रुहयु, त्रिपुरा राजवंश के पूर्व पुरुष नहीं हो सकते, यही कहना ही कैलाश बाबू का मुख्य उद्देश्य है। किन्तु उन्होनें यह सोचकर नहीं देखा कि ऋग वेद का द्रुहयु और महाभारत के समय का द्रुहयु एक ही व्यक्ति कहकर, सोचना संगत नहीं होगा। कल्पभेद में महापुरुषों का पुनः पुनः अर्विभाव और तिरोभाव होता रहता है।(1)

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक पूज्यपाद महा–महोपाध्याय श्रीयुक्त आनन्दा चरण तर्कचूड़ामणि महाशय ने हमारे पत्र के जवाब में इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, यहाँ वही उद्धृत किया जाता है।

01. वेद यदि अनादि अपौरुषेय है तो वेद का प्रतिपाद्य विषय काल द्वारा परिच्छेद नहीं हो सकता। द्रुहयु या उनके पुत्र गण इस काल चक्र के एक छोटा बिन्दु मात्र है, वे लोग भी अनेक बार उत्पन्न और प्रध्वस्त हुए है। इस धारावाहिक संसार चक्र की विवृति वेद के अतिरिक्त किसे हो सकती है?

02. वेद यदि 'ईश्वर वाक्य कहकर' अपौरुषेय है तो ईश्वर सर्वज्ञ तीनों कालों में अविदित कुछ भी नहीं है। वेद में यदि भविष्य के बारे में कुछ रहता है तो उसमें दोष या असंगति का कोई कारण नहीं है।

इस उक्ति से भी द्रुहयु आदि के बारम्बार अर्विभाव की कथा आती है। इससे यह भी प्रतिपन्न होता है कि ऋग् वेद में जिन महापुरुषों का नाम आता है, उन सभी के वंश का लोप नहीं हुआ। इससे द्रुहयु के वंश की विद्यमानता अस्वीकार करने की कौन सी युक्ति रह सकती है, मुझे ज्ञात नही। अन्ततः कैलाश बाबू ने किसी युक्ति का आश्रय ग्रहण नहीं किया। "उसे अवधारण करना मानव बुद्धि से परे है", कहकर उन्होनें वाक्य समाप्त कर दिया। उनके मत से बौद्ध विद्वेषी ब्राह्मणों की कृपा से ही त्रिपुरा में क्षत्रियत्व की प्राप्ति हुई है।(2) बुद्ध देव किस समय के थे और त्रिपुरा के क्षत्रिय भी किस काल से है, इसे उन्होनें सोचा तक नही, यही बड़े दुख की बात है। कैलाश बाबू ने इस वंश को श्यान वंश की शाखा कहकर प्रतिपन्न करने में जो

....

(1) श्री भगवान ने अर्जुन से कहा है–

बहुनि मे व्यतितानि जन्मानि भव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेग परन्तप।।

श्रीमद्भागवत् गीता, चतुर्थ अध्याय, पंचम श्लोक।

(2) कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग द्वितीय अध्याय 26 पृ

प्रयासी थे, यह पहले ही कहा जा चुका है। किसी किसी का कहना है उनका यह व्यर्थ प्रयास उद्देश्य मूलक है। हम मृत व्यक्ति के ऊपर इस तरह के दोषारोपण करने के लिए तैयार नहीं हैं– यह बात हम बारम्बार कह रहें हैं। उन्होनें जो भूल किया है उसे यथा–साध्य दर्शाने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

विश्व कोष वर्णित वंश विवरण

विश्व कोष सम्पादक महाशय भी वैदेशिक मत के पक्षपाती हैं। उक्त ग्रन्थ में त्रिपुरा शब्द के विवरण में लिखा हुआ है–

"त्रिलोचन, जो वास्तविक रुप से चन्द्रवंश के नहीं है, राजमाला में उन्हें शिव के ओरस जात कहकर वर्णना करके प्रकारान्तर में स्वीकार किया है। इस ओर पाश्चात्य गवेष्णा से यह स्थिर हुआ है कि मणिपुर राजवंश की तरह त्रिपुरा का राजवंश भी शान या लौहित्य वंशोद्धत है, अथवा यदि चन्द्रवंशीय भी कहना हो तो इसके भी प्रमाण की कोई सुविधा नहीं है।" विश्व कोष अष्टम भाग 200 पृ

अन्यत्र लिखा है–

बहुकाल तक गवेष्णा के बाद स्थिर हुआ है कि यह वंश शान जाति से उत्पन्न हुआ है। शान जाति ही लौहित्य वंश के नाम से परिचित है। अंग्रेजों ने इस जाति को अपनी व्याख्या में **Tiboeto Burman** कहते" हैं। –

विश्व कोष अष्टम भाग.198 पृ

विश्वकोष में, इन उक्तिओं से, नीचे लिखे विषयों को हम पाते हैं।

(1) राजमाला में त्रिलोचन को शिव के ओरस से जन्में कहकर उन्हें चन्द्रवंशीय कहने में बाधा आती है।

(2) पाश्चात्य गवेष्णा में स्थिर हुआ है, त्रिपुर राजवंश शान या लौहित्य वंश का है।

(3) इस वंश को चन्द्रवंशीय कहने में प्रमाण की कोई सुविधा नहीं है। पहली बात की आलोचना में देखा जाता है कि त्रिलोचन को शिवौरस–जात कहकर जो घोषणा की गई है, वह शिव भक्त प्रकृति पुन्ज का कार्य है। इस विषय में राजमाला में लिखा है–

चन्द्रेर वंशेते जन्म चन्द्रेर निशान।
शिब बरे त्रिलोचन त्रिशूल ध्वज तान।।(1)

त्रिपुर की जन्म कथा

शिव भक्तों के द्वारा उद्धृत पाठ में "शिब बरे" वाक्य को बदलकर "शिबौरसे" किया गया है। संस्कृत राजमाला में भी इस तरह के पाठान्तर किये गये हैं। उस समय राज्य में शैव धर्म का ही प्रधान्य था एवं शिव आराधना के फलस्वरुप अजारक त्रिपुरा का भावी राजा त्रिलोचन ने जन्म लिया। इस कारण से–

(1) राजमाला प्रथम लहर पृष्ठ 18

प्रथमलहर–73

शिव भक्त प्रकृति पुन्ज ने शिव का पुत्र कहकर घोषणा किया था। राज महिषी हीरावती ने पुत्र कामना से जो कठोर व्रत का उद्यापन किया था, राजमाला में इसका विषद वर्णन है। उस वर्णन को पाठ कर बहुत से लोग सोचते हैं कि विधवा साम्राज्ञी शिव की कृपा से जब गर्भवती हुई थी और महाराज त्रिलोचन उसी गर्भ जात सन्तान है। इस भ्रान्त धारणा के फलस्वरुप विश्वकोष सम्पादक ने त्रिलोचन को चन्द्रवंशीय कहकर स्वीकार करने में सहमती नहीं दी है। इस बारे में राजरत्नाकर की उक्ति को लेकर आलोचना करने में यह भ्रम दूर हो जायेगा, ऐसी उम्मीद उस ग्रन्थ में हमें दिखाई देती है– त्रिपुर ने महादेव के साथ घोर युद्ध किया और मारा गया। इसके बाद

तं हत्वापि महादेवो न शांतस्तस्यभाविनीं।
हिरावतीं महाक्रोधा द्धन्तुं द्रुतमुपागतः
राजभार्यातू पश्यंती भीममूर्त्तिं पिनाकीनं।
अतीब भीतिसम्पन्ना तुष्टाव भृशमाकुला।।
अन्तर्व्वत्मीं राजपत्नी मवलोक्य महेश्वरः।
स्त्रीवधे भ्रूणहत्यापि भवितेतिन्यवर्तत।।

राजरत्नाकर–दक्षिण विभाग तृतीय सर्ग।

इसके बाद महारानी स्वयं प्रकृति पुंज महादेव के आराधना में प्रवृत्त हुई एवं आशुतोष उनकी तपस्या से तुष्ट हुए–

श्रृत्वातु वचनं तेषां त्रिकालज्ञस्त्रिलोचनः।
प्राह प्रतुष्टो भगवान दुःखितान त्रिपुरौकसः।।
हे वत्सा मयि युष्माभिः न वक्तव्यमितेधिकम्।
बदामि दुःख नाशस्य कारणं यद्भविष्यति्।।
हिरावती महिषीयं त्रिपुरस्य सुलक्षणा।
पुष्ट गर्भाभवत्तस्याः पुत्र एको भविष्यति।।
सपुत्रो मद्रेनैव सर्वविद्या विशारदः।
सद्बुद्धिः सर्वमान्यश्च मादृशः स त्रिलोचनः ।। इत्यादि

राजरत्नाकर दक्षिण विभाग तृतीय सर्ग।

अन्यत्र भी देखने को मिलता है–

त्रिपुरे च महीपाले मृते मासत्रयात् परं।
एकदा तस्य भूपस्य पत्नी हिरावती किल।।
संस्थिता राजभवने निर्मिते गिरिमूर्ध्णि।
यथाकालेच मध्यान्हे शुभ तिथ्यादि संयुते।।
सुसुवे पुत्रमेकन्तु लोचनं त्रितयान्वितं।
राज्ञी तं बालकं दृष्टा राजलक्षण लक्षितं।। इत्यादि

राजरत्नाकर दक्षिण विभाग चतुर्थ सर्ग।

प्रथमलहर—74

इसके द्वारा जाना जाता है, ''महाराज त्रिपुर के निधन के समय राज महिषी गर्भवती थी एवं राजा के परलोक सिधारने के तीन महीने के बाद त्रिलोचन का जन्म हुआ। इस अवस्था में उन्हें शिव पुत्र कहकर चन्द्रवंश से उन्हें बाहर निकालने का क्या कारण रह सकता है ? यह बात एक अनसुलझी पहेली की तरह लगती है। इस बारे में अंग्रेज ऐतिहासिक मत भी दुष्प्राप्य नहीं है। उनमें से केवल एक मात्र मत हम यहाँ पर दे रहे हैं:—

Tripur had left no son to succeed him, but his widow was pregnant. Great was the grief of the innocent and disconsolate rani, and her entreaties, joined to the prayers of the Tripuras, allayed the wrath of Siva, who promised that the rani's unborn child should be a son, who would be the recipient of his godship's favour, And as a sign, he should have on his forehead, the mark of the third or central eye, a distinguishing feature of Siva. In due course Tripur's widowed rani gave birth to a posthumous Son, who bore Siva's promised taken and was accordingly named Trilochana (Three - eyed) in compliment to the God, one of whose names is Trayambaka, having the same meaning.

Bengal & Assam, Behar & Orissa- Page 460.
Compiled by Somerset Playne, F.R.G.S.

स्थूल अर्थ— त्रिपुर को कोई पुत्र सन्तान नहीं थी, किन्तु उनकी विधवा स्त्री उस समय गर्भवती थी। राज्य के उत्तराधिकारी का अभाव होने पर निर्दोष शोक सन्तप्त महारानी तथा अनेक आत्मीय वर्ग बहुत ही दुखी हुए। तब सबने मिलकर भगवान शिव की आराधना की। उनकी अराधना से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने वरदान दिया कि तुम्हारा गर्भ स्थित पुत्र मेरा परम भक्त होगा। उसके ललाट में महादेव की तरह तीसरी आँख होगी। यथा समय त्रिपुर की विधवा पत्नी के गर्भ से ही शिव के ही वरदान से एक पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम शिव के त्रयम्बक नामानुसार त्रिलोचन रखा गया।''

महाराज त्रिपुर चन्द्रवंशीय राजा   यह कथा राजरत्नाकर के वाक्य की ही अनुसृति नहीं है क्या? विदेशीय इतिहासकार जो बिना विचार से स्वीकार करते है, देशीय लोग वह भी स्वीकार नहीं करना चाहते। यही अचरज की बात है। तर्क के खातिर, यदि महाराज त्रिलोचन को राज महिषी के वैधव्य अवस्था की सन्तान कहकर स्वीकार किया जाता है तो इन्हें चन्द्रवंशीय कहकर स्वीकार करने में किस तरह आपत्ति रह सकती है, समझ में नहीं आता। वर्तमान काल की सामाजिक प्रथा को लेकर त्रिलोचन के बारे में विचार में जाना किसी भी तरह

युक्ति युक्त नहीं होगा। वे द्वापर के अन्त में जन्में थे। यहाँ पर पुत्रोपादन और पुत्र ग्रहण की तत्कालीन सामाजिक नियमों को ग्रहण करना होगा। शास्त्रालोचना के द्वारा द्वादस विध पुत्र का परिचय मिलता है–

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढ़ोत्पन्नऽविद्धश्च दायादावान्धवाश्चषट्।।
कानीनश्च सहोढ़श्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादवान्धवाः।।

मनु संहिता 19 अध्याय 59–60 श्लोक।

औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अवविद्ध, कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयं दत्त और शौद्र –इन्ही द्वादस प्रकार पुत्र की कथा भगवान मनु ने उल्लेख किया है। उन सभी पुत्रों की उत्पत्ति का विवरण भी उनके विधान में मिलता है। उसमें क्षेत्रज पुत्र के विषय में लिखा है–

षस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य वा।
स्वधर्मेण नियुक्तायां सपुत्रः क्षेत्रजःस्मृतः।।

इसके अलावा पद्म पुराण के प्रकृति खण्ड में चतुर्विध और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में सप्तविध पुत्रों का उल्लेख है। गरुड पुराण, मार्कण्डेय पुराण एवं मत्स्य पुराण में भी पुत्र के बारे में बहुत सारी बातें है। यहाँ पर उनकी आलोचना की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। एक मात्र क्षेत्रज पुत्र की बात ही हमारा आलोच्य विषय है। मनु के वचनों से मिलता है– पुत्रहीन अवस्था में मृत, नपुंसक अथवा व्याधिग्रस्त व्यक्ति की भार्या स्वधर्मानुसार गुरु तुल्य व्यक्ति द्वारा नियुक्त होकर जो पुत्र को उत्पन्न करती है। उसे क्षेत्रज पुत्र कहते है। ये लोग औरस पुत्र के समकक्ष न होकर भी शास्त्रानुसार पैत्रिक सम्पत्ति और पितृ श्राद्ध के अधिकारी एवं पिता के कुल वर्द्धक होते हैं।

यह हुई शास्त्र की व्यवस्था। समाज के प्रति नजर देने पर देखा जायेगा कि उस समय उच्च समाज में भी यह व्यवस्था सादर पूर्वक ग्रहण की गई थी। पांडवों की जन्म कथा सबकी जानकारी में है। विचित्रवीर्य की विधवा पत्नी ने वेद व्यास द्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति, किसी के लिए अज्ञात नहीं है। इस तरह के और भी उदहारण दिये जा सकते हैं। ये लोग यदि चन्द्रवंशज कहकर समाज में स्वीकृत हुये हैं तो महाराज त्रिलोचन के लिए इतनी आपत्ति क्यों होती है। ये द्वापर के अन्त में अविर्भूत हुए थे एवं युधिष्ठिर के समसामायिक व्यक्ति थे। जो भी हो त्रिलोचन इनके श्रेणी भुक्त नहीं है, यह बात पहले ही कही गई है। अतएव यहाँ विश्वकोष की बात ग्रहणीय नहीं है।

प्रथमलहर–76

दूसरे प्रसंग की आलोचना से ज्ञात होता है कि त्रिपुर राज वंश लौहित्य वंशज कहने के पक्ष में अंग्रेजों की उक्ति ही एक मात्र अवलम्बन है। इसके अलावा अलग कोई भी प्रमाण नहीं है। अपने देश के इतिहासकारों में कैलाश बाबू ने ही यह उक्ति पहले ग्रहण किया है। **Reynold's Tribes of the Eastern Frontier** को अवलम्बन करके उन्होनें कहा है–

"रेनाल्ड साहब ने लिखा है, आकृति द्वारा तिप्रा लोगों को खासिया लोंगों के नजदीकी ज्ञाति जैसा लगता है।"(1)

इन सभी बातों का आधार या मूल्य न रहने पर भी, बहुत से लोगों को प्रकृत तथ्य की अनभिज्ञता की वजह से, इनके ऊपर ही आस्था रखना पड़ा है। असल में लौहित्य वंशीय लोग विश्वामित्र वंशीय है। विश्वामित्र ने चन्द्रवंशीय होकर भी योग बल से ब्राह्मण गौरव को प्राप्त किया था। ऐसी अवस्था में त्रिपुर भूपति वृन्द लौहित्य वंशीय होने पर उसे स्वीकार करने में अगौरव की कोई बात नहीं थी। भला क्यों वे अपने वंश को परित्याग कर अन्य वंश के नाम से अपना परिचय प्रदान करने का प्रयास करेगें, यह बात समझ में नहीं आती। कैलाश बाबू ने रेनाल्ड साहब की उद्धृति देकर त्रिपुरा और कुकी प्रभृति जातियों के साथ राजवंश के आकृत–गत सादृश्य को समझाने में प्रयासी है। उन्होनें जरा सी भी चिन्ता नहीं की कि नव अविष्कृत नृ–विज्ञान अब भी सुप्रतिष्ठित नहीं हुआ है। जिन लोगों को हम विशुद्ध आर्य कहकर निर्विवाद रुप से स्वीकार करते है। नृ–विज्ञान के अनुसार अगर छांटना हो तो उनके वंशधरों में बहुत से लोगों को आर्य समाज से निर्वासित करना होगा। इस श्रेणी के अप्रतिष्ठित विज्ञान पर निर्भर कर जाति विशेष पर मत प्रकाश करना हर जगह पर संगत नहीं हो सकता। खास तौर से त्रिपुर राजवंश के व्यक्तियों की आकृति के बारे में पाँच सौ साल पहले राजमाला में जो कहा गया है, कैलाश बाबू ने उसे देखकर भी नहीं देखा। नीचे हम उसी विवरण को दे रहे हैं–

अबश्य शरीरे चिन्ह रहे त ताहार।	अवश्य तन में है चिन्ह उसके।
गौर वर्ण श्वेत गौर लक्षण हय तार।।	गौर वर्ण श्वेत गौर लक्षण है उनके।
अतिदीर्घ नाहि होय नहे अतिखर्व।	अतिदीर्घ नहीं होते नहीं अतिखर्ब।
अभिरुप मत उच्च दर्प महागर्व।।	अभिरुप की तरह उच्चदर्प महागर्व।।
दीर्घ खर्व नहे नासा कर्ण परिमित।	दीर्घ छोटा नहीं नासा कर्ण है परिमित।
बदन वर्त्तुल प्राय दीर्घ कदाचित।।	बदन गोल प्रायदीर्ध होते कदाचित।।

(1) कैलाश बाबू के राजमाला –पहला भाग, तृतीय अः 17पृ।

प्रथमलहर–77

गजस्कन्ध वृषस्कन्ध सिंहस्कन्ध होय।	गज स्कन्ध वृष स्कन्ध सिंह स्कन्ध उनका
बृहत हृदय, बड़ो उदर ना होय।।	वृहत हृदय पर बड़ा उदर नहीं जिनका।।
महाबल पराक्रम वेगवन्त बड़ो।	महाबल पराक्रम वेगवंत हैं बड़े।
कदलीर तुल्य जानु जंघा मनोहर।।	कदली तुल्य जंघा जिनके हैं सुन्दर।।
मल्ल विद्या अभ्यासेते बाहुस्थूल होय।	मल्ल विद्या अभ्यास से स्थूल बाहु युगल।
येन शाल वृक्ष दृढ़ जानिओ निश्चय।।	जैसे होते वनों में दृढ़ वृक्ष शाल।।
तेजवंत, शुद्ध शांत देखिते आकार।	तेजवंत शुद्ध शांत होते हैं आकार।
निश्चय जानिओ ताके त्रिपुर कुमार।।	निश्चय जानो वही है त्रिपुर राजकुमार।।
हरिहर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति यार।	हरिहर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति जिनकी।
त्रिपुर बंशते जन्म निश्चय ताहार।।	त्रिपुर राजवंश में है जन्म निश्चय उनकी।।

यह वर्णना नृविज्ञान के हिसाब से किस अंश में पड़ती है? क्या यह आर्यो के विशेषतः क्षत्रिय का अविकल चित्र नहीं है? इस बारे में इसके अतिरिक्त बातें करने की कोई आवश्यकता नही। इसके द्वारा विश्वकोष एवं कैलाश बाबू की उक्ति सम्पूर्णतः व्यर्थ सिद्ध होती है।

विश्व कोष की तृतीय बात कुछ अद्भुत तरह की है। त्रिपुर राज वंश को चन्द्रवंशज कहने पर भी प्रमाण की कोई सुविधा नहीं है। अतएव लौहित्य कहना सुविधा जनक है। खास तौर से यह अंग्रेजों का मत है, अतः प्रमाण हो या न हो, इसे ग्रहण करना ही होगा। बाल्यकाल में बहुत से लोगों का विश्वास होता है कि छपाई के अक्षरों से मुद्रित शब्द या वर्ण में कोई भूल नहीं हो सकती। इस समय भी अंग्रेजों के लिखे गये मत सम्पूर्ण निर्मूल हैं, कहकर विश्वास किया जाता है। जो भी है, त्रिपुर राजवंश, जो द्रुहयु का ही वंश है,– इस बारें में हम पहले भी बहुत कुछ लिख चुके हैं। अब इसके बाद हम धारावाहिक रुप से उस पर प्रकाश डालेगें।

सामान्यतया यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि लोगों के या समाज के प्राचीन बद्धमूल संस्कारों की आलोचना से उनके पितृ पुरुषों की रीति–नीति और आचार–विचारों के प्रकृत निदर्शन खोज निकाले जा सकते हैं, पुराने तथ्यों के उद्घाटन के लिए, यही पंथा सबसे अधिक प्रशस्त है। प्रत्नतत्वविद् क्लार्क साहब और टड् साहब आदि पाश्चात्य पण्डितों ने इसी उपाय की सहायता से बहुत से स्थानों पर सफलता भी पाई है। राजमाला और राजरत्नाकर प्रभृति ग्रन्थों की आलोचना से दान यज्ञ, देव विग्रह और देवायतन प्रतिष्ठा इत्यादि से जो प्राचीन संस्कारों के निदर्शन त्रिपुर राजवंश में मिले हैं, इससे भी इस प्राचीन वंश का आर्यत्व ही प्रतिपादित होता है। ये सभी संस्कार जो पुरुष परम्परागत हैं, पूर्वोक्त ग्रन्थों की आलोचना से यह स्पष्ट हो जायेगा।

चन्द्रवंश के शाखा विभाग और एक बात कहने को रह गई है। चन्द्रवंश उत्तरोत्तर बहुत से शाखा प्रशाखाओं में विभक्त हो गया था। उनमें ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का विवरण ही विशेष उल्लेख योग्य है। यह वंश भट्टि, जारिजा आदि आठ शाखाओं में विभक्त हो गया था। भगवान श्रीकृष्ण भी यदुकुल में अविर्भूत होकर इस

कुल को पवित्र किया है। 'तोमर' 'तुयार' को यदु वंश के अन्यतम शाखा बोल कर बहुत से इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। चाँद कवि के अनुसार तोमर कुल पान्डु वंश का शाखा विशेष है। किन्तु पूर्वोक्त विवरण प्रबल और प्रसिद्ध हैं। अबुल फजल, कनिम्हाम् आदि इतिहासकारों ने इस वंश का विवरण प्रदान किया है। तोमर लोगों ने एक समय राजस्थान के षटत्रिंशत् अर्थात 360 राजकुलों में सर्वोच्च आसन अधिकार किया था। उज्जयिनी के अधीश्वर राजचक्रवर्ती विक्रमादित्य और दिल्लीश्वर अनंग पाल, तोमर कुल के ही समुज्ज्वल रत्न हैं। अनंगपाल के बाद उनके ही वंशज बीस नरपतियों में क्रमानुसार इन्द्रप्रस्थ में राजत्व किया था। द्वितीय अनंगपाल के समय दिल्ली का दुर्ग(लालकोट/लालकिला) निर्मित हुआ है। तोमर वंश के शेष राजा तृतीय अनंगपाल के अपुत्र रहने की वजह से उनका दौहित्र चौहान वंशज पृथ्वी राज को उन्होनें सिंहासन दान किया था। इस अनंगपाल के परलोक गमन के साथ ही तोमर वंश के गौरव सूर्य सदा के लिए डूब गए। इस समय आगरा, झाँसी और फरक्काबाद में कुछ तोमर वंशज लोग निप्रभाव होकर निवास कर रहे हैं।

ययाति नन्दन द्रुहयु, पैत्रृक राजधानी प्रतिष्ठानपुर से विच्छिन्न होने के बहुत दिनों के बाद चन्द्रवंश की पूर्वोक्त शाखा प्रशाखा ने विस्तार लाभ किया है। इसी कारण स्पष्टतः यह प्रतीयमान होगा कि द्रुहयु वंशजो के लोग उन सभी शाखाओं के साथ पुरुषानुक्रमिक सम्बन्ध युक्त नहीं है, किन्तु इनमें पारस्परिक जातित्व का सम्बन्ध वर्तमान है। इनमें यादव गण ही द्रुहयु वंशजों में घनिष्ट जाति के रुप में परिचित हैं। अतएव यदुवंशीय तोमर शाखा के साथ द्रुहयु सन्तानों के सम्बन्ध, जो सबसे अधिक घनिष्ट हैं यह अति सहज और स्वाभाविक है। इस समय त्रिपुरा के अलावा अन्य कहीं द्रुहयु वंशजों का अस्तित्व नहीं मिलता।

वंश तालिका पहले ही कहा गया है, राजमाला महाराज दैत्य के शासनकाल का विवरण लेकर आरम्भ हुआ है। इसके पहले के राजन्य वर्ग का विवरण इस ग्रन्थ में नहीं है। सम्भवतः त्रिपुरा में इस राजवंश के शासन सुप्रतिष्ठित होने के समय ही राजमाला रचित हुई थी। एक मात्र राजरत्नाकर में इस वंश का अनुपूर्विक विवरण मिलता है। प्राचीन काल से ही वंश तालिका रखी जाती आ रही है। इस वंश के विवरण संग्रह के लिए वह भी विशेष सहायक है। धारावाहिक विवरण समझाने के लिए वंश की शाखा–प्रशाखाओं को छोड़ कर केवल राजाओं की क्रमिक सूची यहाँ दी जा रही है। पूर्ण वंशावली द्वितीय लहर में दी जायेगी।

प्रथमलहर—79

त्रिपुर राजन्य वर्ग की धारावाहिक सूची
(नाम के बाँई ओर अंक, राजाओं के क्रमिक संख्या ज्ञापक है)

त्रिपुर राजवंश ययाति नन्दन द्रुहयु से उत्पन्न होने पर भी सम्यक रुप से विवरण—ज्ञापक के अभिप्राय से चन्द्रमा देव से पुरुषानुक्रमिक तालिका प्रदान की गई।

(1)	चन्द्र	(16)	
(2)	बुध	(17)	पराबसु
(3)	पुरुरवा(1)	(18)	पारिषद
(4)	आयु	(19)	अरिजित्
(5)	नहुष	(20)	सुजित्(असुजित्)
(6)	ययाति(2)	(21)	पुरुरवा(द्वितीय)
(7)	द्रुहयु	(22)	बिवर्ण
(8)	बभ्रु	(23)	पुरुसेन
(9)	सेतु	(24)	मेघवर्ण
(10)	आनर्त्त(आरब्द / आरद्वान)	(25)	विकर्ण
(11)	गान्धार	(26)	बसुमान
(12)	धर्म(घर्म)	(27)	कीर्ति
(13)	धृत(घृत)	(28)	कनीयान्
(14)	दुर्म्मद	(29)	प्रतिश्रवा
(15)	प्रचेता	(30)	प्रतिष्ठ
(16)	पराचि(शतधर्म)	(31)	शत्रुजित(शत्रूजित)

---

(1) पिता के द्वारा प्रयाग के पार स्थित प्रतिष्ठान नगर में प्रतिष्ठित हुए थे। यह स्थान इस समय ''कुसी'' नाम से परिचित है।। पुरुरवा चन्द्रवंशज प्रथम राजा हुए थे।

(2) इन्होनें पिता के द्वारा अभिशप्त और निर्वासित होकर पैत्रिक राजधानी प्रतिष्ठान नगर को त्यागकर बंगाल की खाड़ी में संगम स्थल में कपिल मुनि के आश्रम सगर द्वीप में आश्रय ग्रहण और वहाँ पर राज्य का विस्तार किया।

<u>प्रथमलहर–80</u>

31		48	
|		|	
(32)	प्रतर्द्दन(1)	(49)	तयदाक्षिण(तैदाक्षिण)
|		|	
(33)	प्रमथ	(50)	सुदाक्षिण
|		|	
(34)	कालन्द	(51)	तरदाक्षिण
|		|	
(35)	क्रम(क्रथ)	(52)	धर्मतरु(धर्मतर)
|		|	
(36)	मित्रारि	(53)	धर्मपाल
|		|	
(37)	बारिवर्ह	(54)	सधर्मा(सुधर्म)
|		|	
(38)	कार्मुक	(55)	तरबंग
|		|	
(39)	कलिंग(कालांग)	(56)	देवांग
|		|	
(40)	भीषण	(57)	नवांगित
|		|	
(41)	भानुमित्र	(58)	धर्मागंद
|		|	
(42)	चित्रसेन(अघ चित्रसेन)	(59)	रुक्मांगद
|		|	
(43)	चित्ररथ	(60)	सोमांगद(सोनांगद)
|		|	
(44)	चित्रायुध	(61)	नौयुगराय(नौगयोग)
|		|	
(45)	दैत्य	(62)	तरजुंग
|		|	
(46)	त्रिपुर(2)	(63)	राजधर्मा(तरराज)
|		|	
(47)	त्रिलोचन(3)	(64)	हामराज
|		|	
(48)	दाक्षिण	(65)	वीरराज

....

(1) इन्होनें सगरद्वीप के राज पाट से, काछाड़ में जाकर नवराज्य प्रतिष्ठा का प्रयास किया। इनके प्रयत्न से ही किरातों को जय करके वर्तमान त्रिपुरा राज्य की प्रतिष्ठा हुई।

(2) इनके समय से ही त्रिपुर राज्य की भित्ति सुदृढ़ हुई है और उन्होनें त्रिपुरा राज्य नाम का प्रर्वतन किया।

(3) इनके ज्येष्ठ पुत्र दृकपति काछाड़ के मातामह का राज्य प्राप्त करने के पश्चात उनके द्वितीय पुत्र दाक्षिण त्रिपुरा के सिंहासन पर बैठे।

प्रथमलहर–81

65
|
(66) श्रीराज
|
(67) श्रीमान्(श्रीमंत)
|
(68) लक्ष्मीतरु
|
(69) रुपवान(तरलक्ष्मी)
|
(70) लक्ष्मीवान(माईलक्ष्मी)
|
(71) नागेश्वर
|
(72) योगेश्वर
|
(73) नीलध्वज(ईश्वर फा)(1)
|
(74) बसुराज(रंगखई)
|
(75) धनराजफा
|
(76) हरिहर(मुंचफा)(2)
|
(77) चन्द्रशेखर(माईचोंगफा)
|
(78) चन्द्रराज(ताभुराज या तरुराज)
|
(79) त्रिपली(तरकनाई)
|
(80) सुमंत

80
|
(81) रुपवन्त(श्रेष्ठ)
|
(82) तरहोम(तरहाम)
|
(83) हरिराज(खाहाम)
|
(84) काशीराज(कतरफा)
|
(85) माधव(कालातरफा)
|
(86) चन्द्रराज(चन्द्र फा)
|
(87) गजेश्वर
|
(88) वीरराज(द्वितीय)
|
(89) नागेश्वर(नागपति)
|
(90) शिखिराज(शिक्षराज)
|
(91) देवराज
|
(92) धुसरांग(दुराशा या धराईश्वर)
|
(93) वार कीर्ति(वीरराज या विराज)
|
(94) सागरफा
|
(95) मलयचन्द्र

(96) सूर्य नारायण(सूर्यराय)

(97) इन्द्रकीर्ति (अचंग फनाई या उत्तंग फणी)

(98) वीर सिंह(चराचर)
|
(99) सुरेन्द्र(हाचुंफा या आचंफा)

---

(1) इनके समय से राजाओं ने 'फा' उपाधि ग्रहण किया था।

(2) इस समय से राजाओं में बहुतों ने हालाम भाषा का एक एक नाम ग्रहण किया था। वर्तमान राजवंश में अपना अधिपत्य विस्तार के पहले त्रिपुरा में हालाम जाति का प्रभुत्व था। राजाओं के हालाम भाषा के नाम ग्रहण करने का और हालाम भाषा प्रचलित रहने का यही मुख्य कारण भी है।

प्रथमलहर–82

(99)
|
(100) विमार
|
(101) कुमार
|
(102) सुकुमार
|
(103) वीरचन्द्र(तैछ राव या तक्ष राव)
|
(104) राज्येश्वर(राजेश्वर)
|

(105)नागेश्वर (क्रोधेश्वर या मिछलीराज)

(106) तैछंफा(तेजंफा)
|
(107) नरेन्द्र
|
(108) इन्द्रकीर्ति
|
(109) विमान(पाईमाराज)
|
(110) यशोराज
|
(111) बंग(नबांग)
|
(112) गंगाराय(राजगंगा)
|
(113) चित्रसेन(शुक्रराय या छाक्रु राय)
|
(114) प्रतीत
|
(115) मरीचि(मिछली या मालछी या मरुसोम)
|
(116) गगन(काकुथ)
|
(117) कीर्ति(नवराज या नव राय)
|
(118) हिमति(युझारु फा या हामतार फा)
|
(119) राजेन्द्र(जंगी फा या जनक फा)
|
(120) पार्थ(देवराज या देवराय)
|
(121) सेबराय(शिवराय)

प्रथमलहर–83

(121)
|
(122) किरीट(आदिधर्म फा, डुंगरुफा दानकुरु फा या हरिराय)(1)
|
(123) रामचन्द(खारुं फा या कुरुँगु फा)

- (124) नृसिंह (छेंफनाइ या सिंह फणी)
- (125) ललित राय

(125) ललित राय
|
(126) मुकुन्द फा(कुन्दा फा)
|
(127) कमल राय
|
(128) कृष्ण दास
|
(129) यशोराज(यश फा)

- (130) उद्धव(मोचं फा)
- (131) साधुराय

(131) साधुराय
|
(132) प्रताप राय
|
(133) विष्णु प्रसाद
|
(134) बाणेश्वर(वाणीश्वर)
|
(135) वीरवाहु
|
(136) सम्राट
|
(137) चम्पकेश्वर(चाम्पा)
|
(138) मेघराज(मेघ)
|
(139) धर्मधर(छेंका छाग्)
|
(140) कीर्तिधर(छेंथुम फा अथवा सिंह तुंग फा)
|
(141) राजसूर्य(आचंग फा अथवा कुंजूहोम फा)
|
(142) मोहन(खिचूं फा)
|
(143) हरिराय(डांगर फा)

---

(1) इनके सम्पादित दान पत्र में 'धर्म पा' लिखा गया है।

<u>प्रथमलहर—84</u>

143

(144) राजा फा (145) रत्नफा(रत्नमाणिक्य)(1)

(146) प्रतापमाणिक्य (147) मुकुटमाणिक्य(मुकुन्द)

(148) महामाणिक्य

(149) धर्ममाणिक्य(द्वितीय) कचुफा(गगन फा या पुरन्दर)

(150) प्रतापमाणिक्य (151) धन्यमाणिक्य (त्रिपुरेश्वरी मन्दिर)

(152) ध्वजमाणिक्य (153) देवमाणिक्य

(154) इन्द्रमाणिक्य (155) विजयमाणिक्य

(157) उदयमाणिक्य(2) (156) अनन्तमाणिक्य

(158) जयमाणिक्य(2)

(159)अमरमाणिक्य(रामदास)

(160)राजधरमाणिक्य

(161)यशोधरमाणिक्य

(162)कल्याणमाणिक्य

(163)गोविन्दमाणिक्य(3) (164) छत्रमाणिक्य(नक्षत्रराय) जगन्नाथ ठाकुर

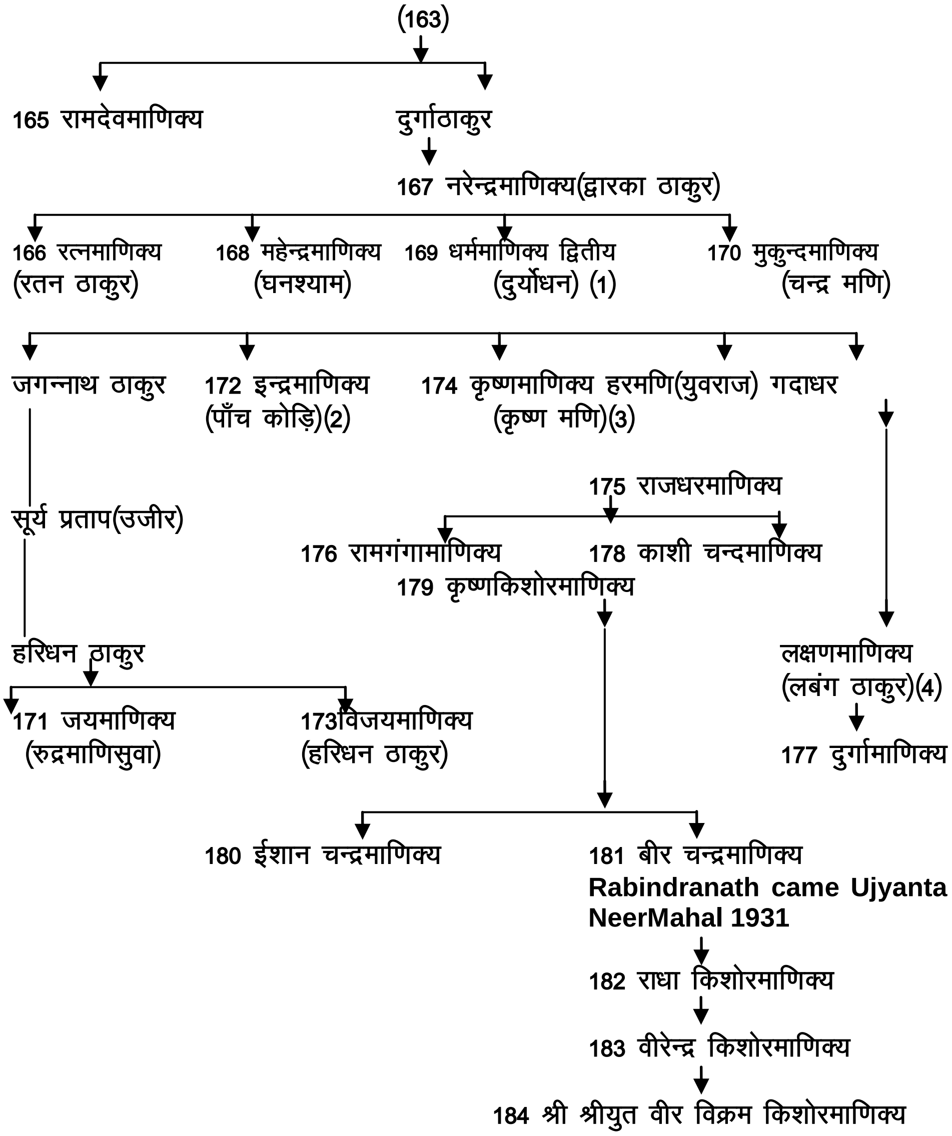
---

(1) इसी समय से त्रिपुरेश्वरों ने माणिक्य उपाधि ग्रहण करना शुरु किया।

(2) 157 तथा 158 क्रमिक संख्या वाले नरपति द्वय भिन्न वंश के हैं।

(3) इन्होनें अपने भाई छत्रमाणिक्य को(नक्षत्र राय) को राजत्व प्रदान कर आराकान की ओर प्रस्थान किया था। छत्रमाणिक्य के परलोक सिधारने के बाद पुनः राज्य भार सम्भाला। इनकी कीर्ति को लेकर ही ''राजर्षि'' और ''विर्सजन'' लिखा गया है।

प्रथमलहर—85



(1) 169 संख्या धर्ममाणिक्य के बाद छत्रमाणिक्य के वंशधर जगत राय मुसलमान शासन कर्ता से सनन्द ग्रहण कर जगतमाणिक्य उपाधि ग्रहण किया था। किन्तु वे सिंहासन प्राप्त नहीं कर सके। अल्प दिनों के लिए जमींदारी दखल मात्र किए थे।

(2) 171 / 172 संख्या के राजा समसामायिक राजा थे। इन दिनों में कलह के सुयोग लेकर धर्ममाणिक्य के पुत्र गंगाधर 'उदयमाणिक्य' नाम धारण कर कुमिल्ला में आए। थोड़े समय में ही उन्हें ढाका लौट जाना पड़ा।

(3) इनके परलोक सिधारने के पश्चात उनके महिषी महारानी जान्हवी महादेवी ने दो सालों तक राज्य शासन किया था

(4) ये शमसेर गाजी के द्वारा त्रिपुरा में नाम मात्र के लिए राजा हुए थे।

प्रथमलहर—86

पहले जो सूची दिखाई गयी है, उनमें चन्द्र से चित्रायुध तक 44 लोगों का नाम या विवरण राजमाला में नहीं है। 45 संख्यक राजा दैत्य से राजमाला का प्रारम्भ होने पर भी इनका नाम मात्र उल्लेख किया गया है। विशेष कोई विवरण दिया नहीं गया है। चन्द्र से लेकर सारा विवरण अगर जानना हो तो हमें राजरत्नाकर का आश्रय लेना होगा। त्रिपुरा राजवंश का प्रर्वतन द्रुहयु से हुआ है। अतएव द्रुहयु से महाराज दैत्य तक का विवरण संक्षेप में हम राजरत्नाकर की सहायता से दे रहे है।

द्रुहयु का विवरण — द्रुहयु —ये भारत सम्राट ययाति के तीसरे पुत्र थे। पिता द्वारा निर्वासित होकर जिस पथ से जिस अवस्था में गंगा सागर संगम के किनारे सगर द्वीप में आश्रय लिया था, इसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। इन्होंने भगवान कपिल के निर्देशानुसार वहाँ पर 'त्रिवेग' नाम की एक नई राज्य की प्रतिष्ठा की थी। किन्तु पितृ श्राप की मर्यादा की रक्षा के निमित्त राजा उपाधि ग्रहण नहीं किया।(1) द्रुहयु ने आस पास के बहुत से राज्यों पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया था। कुछ दिनों तक राज्य भोग करके बुढ़ापे में भगवत् चिंता में रहकर अपने पुण्योचित लोक में गमन किया।

बभ्रु का विवरण — बभ्रु —पुण्य श्लोक द्रुहयु के परलोक गमन के पश्चात, उनके पुत्र बभ्रु पितृ राज्य के अधिपति बने। बभ्रु का औदार्य और शौर्य आदि के गुण से मुग्ध होकर महर्षि कपिल ने उन्हें राजा की उपाधि प्रदान की।(2) तब से उनके वंशधर राजा की उपाधि से परिचित हुए हैं। कथित है, अमिततेजा बभ्रु संग्राम में निर्भीक एवं बहुत ही प्रभावशाली थे। यहाँ तक कि पुरातत्व में वे देवासुर विजेता के रुप में कीर्ति स्थापन कर चुके हैं। इन्होंने अपने भुजबल से भागीरथी के किनारे के प्रदेश से लेकर उत्कल प्रदेश के अधीन वैतरणी के किनारे तक के विशाल भूभाग के राजाओं को युद्ध में पराजित कर अपने करद—राज

---

(1) स्थापयामास तत्रैव त्रिवेग नगरीं शुभाम्।
प्रभाववान भूत्तत्र राज शब्द तिरोहितः।।
स दोर्दण्ड प्रतापेन बहुदेशान् वशे नयन्।
पालयामास धर्मेण प्रजा आत्म प्रजा इव।।
राजरत्नाकर पूर्व विभाग छटवा सर्ग 21—22 श्लोक।

(2) द्रुहयु पुत्रस्ततो बभ्रुः कपिलस्य प्रसादतः।
पितर्षुपरते धीरो राजाख्यानमुपेषिवान।।
राजरत्नाकर सप्तम सर्ग प्रथम श्लोक।

श्रेणी में परिणत किया, इसके अलावा किनारे बसने वाले राजाओं ने बभ्रु के विपुल विक्रम को देखकर भयभीत हो गये। युद्ध के बिना ही वश्यता स्वीकार कर लिया था।(1) अपने सुशासन के गुण से बभ्रु प्रजाओं के असीम भक्ति और श्रद्धा के पात्र हो उठे थे। कहा जाता है देवोपम नृपति को अनुरक्त प्रजाओं के लिए कुछ भी अदेय नहीं था। यहाँ तक कि मत्स्य जीवी लोग भी रत्नाकर के गर्भ से प्राप्त अनमोल रत्नों को स्वयं न लेकर उसे राजा का धन समझकर अम्लान चित्त से उन्ही के चरणों में उत्सर्ग करते थे एवं दुर्दमनीय राक्षसों को पराभूत कर बभ्रु अपार ऐश्वर्य के अधिकारी हुए थे।(2) इन्हीं कारणों से राज कोष अपार धन रत्नों से सदा परिपूर्ण रहता था।

राजचक्रवर्ती बभ्रु विविध ऐश्वर्य—गौरव से विभूषित होकर कुछ साल राज्य सुख उपभोग करने के पश्चात, अपने सर्व सुलक्षण युक्त एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया 'सेतू'। अपने प्रतिभा के बल से राजकुमार थोड़े समय में ही सारी विद्याओं के ज्ञाता बन गये। कुछ दिनों के बाद महाराज बभ्रु सुशिक्षित तथा राजनीति विशारद पुत्र के हाथों राज्य भार अर्पण कर परलोक सिधार गये।

सेतू का विवरण सेतू – सेतू पितृ सिंहासन में अधिष्ठित होकर समदृष्टि से प्रजा पालन करने लगे, वे कभी भी राज धर्म विगर्हित नीति के वशीभूत नहीं हुए। कुलगुरु के प्रति उनकी अचला भक्ति थी। गुरु के आदेश किये बिना वे कोई भी कार्य नहीं करते थे। धर्मपरायण सेतु सदा सद्गुरु से राजनीति, धर्मनीति और समाजनीति आदि विषयों में सदुपदेश ग्रहण करके धार्मिक नाम से विख्यात हुए थे। राजा का अनुकरण करने की प्रवृत्ति प्रजाओं में स्वाभाविक रुप से रहती है। उनकी प्रजा धार्मिक हो उठी थी। उनके राज्य में धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए सभी यत्नवान थे।

....

(1) भागीरथीं समारभ्य यावद् वैतरणी नदीम्।
सर्वान्नृपगणांश्चक्रे करदान् विग्रहादिभिः।।
भयाद् भुपतयः सर्वे ज्ञात्वा तस्य पराक्रमम्।
रत्नाकरोपकुलस्थाः स्वीचक्रुस्तस्य शासनम्।।
राजरत्नाकर सप्तम सर्ग 3—4 श्लोक।

(2) धीवरा बहवो दक्षा मुक्तारत्नादिकं बहु।
प्रणताः समुपाजहूर्दे तस्य महात्मनः।।
जित्वा रक्षोगणान् सर्वान् बहुलैश्वर्य्येसंयतुः।
सम्पु जितो जनैः सर्बैर्बुतुजे विषयान् बहुन्।।
राजरत्नाकर सप्तम सर्ग 5—6 श्लोक।

प्रथमलहर–88

कुछ दिनों के बाद महाराज सेतु ने आरद्वान(1) नामक पुत्र को उत्तराधिकारी रखकर अनंत धाम में प्रयाण किया।

आरद्वान का विवरण आरद्वान –सेतु पुत्र आरद्वान पिता की तरह विविध गणों से अलंकृत थे। सिंहासन प्राप्त कर थोड़े दिनों में ही सुशासन के गुण से प्रकृति पुन्ज के श्रद्धाभाजन हो उठे। उनके शासन काल में जन साधारण बहुत ही ऐश्वर्यशाली और सत्कर्म में रहकर निरुद्वेगपूर्वक जीवन यात्रा का निर्वाह करते थे।

आरद्वान के अश्वमेघ यज्ञ के अनुष्ठान द्वारा देवलोक और पितृलोक का सन्तोष विधान किया था। इसके बाद गान्धार नामक उनका एक सुलक्षणायुक्त पुत्र सन्तान ने जन्म ग्रहण किया। राजकुमार जब युवा हुए तब महाराजा आरद्वान ने राज्य और परिवार का भार पुत्र के ऊपर अर्पण कर प्रव्रज्या व्रत ग्रहण किया। उन्होनें अपना बाकी जीवन अरण्य स्थित पर्ण कुटीर में योग साधन में व्यतीत किया था।

गान्धार का विवरण गान्धार –गान्धार ने पैतृक सिंहासनरुढ़ होकर पूर्व पुरुषों के पूर्वोतीत प्रणालि का अनुसरण कर शासन कार्य शुरु किया। महर्षि कपिल के उपदेशानुसार महाराज गान्धार ने राजधानी त्रिवेग नगर में अग्नि देव की उपासना(अग्निष्टोम यज्ञ) आरम्भ किया। (2) राजा की दृढ़ता से प्रसन्न होकर स्वयं वैश्वानर अविर्भूत हुए। अग्नि देव ने राज्य को अभिलाषित वर प्रार्थना करने के लिए कहा, तो राजा ने धर्नुविद्या प्राप्त करने का वरदान माँगा। भगवान अग्नि देव ने खुश होकर उनकी प्रार्थना को पूर्ण किया था। (3)

गान्धार ने धनुर्विद्या प्राप्त कर परराष्ट्र जीतने की इच्छा से प्रतिनियत युद्ध कार्य में रत रहना शुरु किया। उनके भुज बल से भागीरथी और पद्मा जहाँ से दूसरी ओर प्रवाहित होती है। वहाँ तक

(1) विष्णु पुराण में सेतू के पुत्र का आरद्वान का नाम मिलता है। राजरत्नाकर में भी यही नाम आता है। किन्तु श्रीमद्भागवत् में सेतु के पुत्र का आरब्ध अभिहित किया है। लिपि का प्रमाद ही इसका मुख्य कारण बताया गया है।

(2) पितुः सिंहासनं लब्धा महर्षिनां निदेशतः।
अग्ने रुपासनान्चक्रे त्रिवेग नगरे नृपः।।
राजरत्नाकर अष्टम सर्ग पहला श्लोक।

(3) वैश्वानरस्ततः प्राह श्रुयतां भक्तिपूर्वकम्।
कथयामि धनुर्वेदं भवज्ज्ञान विवर्द्धनम।।
राजरत्नाकर आठवाँ सर्ग 5 श्लोक।

प्रथमलहर–89

उनकी राज्य की सीमा प्रसारित हुई थी।(1) गौड राजधानी के करीब राजमहल के पूर्व की ओर दस कोस की दूरी पर गंगा और पद्मा दो भागों में विभक्त हो गई है। गान्धार ने गंगा के संगम स्थल पर ही बैठकर इतने विशाल साम्राज्य का विस्तार किया था। उस समय भागीरथी सागर संगम होने का जो स्थान है, वह स्थान इस समय की जगह से काफी उत्तर की ओर था। उनके अधिकृत सभी भूभाग त्रिवेग राज्य ही कहलाते थे। गान्धार केवल उन्ही सभी स्थानों तक राज्य विस्तार करके ही चुप साधकर नहीं बैठे बल्कि उत्तर भारत में सिन्धु नदी के आस पास के इलाकों पर भी अपना अधिपत्य विस्तार किया था। गान्धार देश इस महापुरुष के नाम की ही स्मृति वहन कर रहा है। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। पुनरुल्लेख निष्प्रयोजन है। सुदूर पूर्व प्रान्त स्थित ''गान्धार वट्ट'' नाम की स्मृति वहन कर रहा है।

गान्धार प्रबल पराक्रम के साथ दीर्घ काल तक राज्य शासन कर धर्म नाम के सुलक्षण युक्त अपने पुत्र के हाथों राज्य का भार अर्पण करके योग साधक के उद्देश्य से वानप्रस्थ का आश्रय लिया।

धर्म का विवरण — धर्म –गान्धार तनय धर्म पिता के सिंहासन बैठकर राजधर्मानुमोदित पथ पर चलते हुए राज्य शासन करने लगे। वे पिता की तरह ही धनुर्वेद के ज्ञाता थे। वे समान न्याय धार्मिक, सदाचारी, प्रजावात्सल्य थे एवं पिता की तरह न्यायवान राजा की तरह अपने सुशासन से त्रिवेग राज्य में शान्ति फैली थी। कभी भी उन्होनें धर्म विगर्हित कोई काम नहीं किया। राजरत्नाकर के अनुसार वे पान, अक्ष क्रीड़ा, काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, दर्प, नृशंसता, वृथा आलाप, भृत्यों के साथ हास्य परिहास, परद्रोहिता, परनिन्दा, विलास, दीर्घ सूत्रता, मोह, गर्व, आलस्य, निष्फल तर्क, स्त्रैण, अस्थैर्य, कार्पण्य, चांचल्य, अनृत भाषण, प्रभृति दोषों से सदा मुक्त रहते थे। धर्म, अर्थ, दण्ड–नीति, देव द्विज के प्रति भक्ति, शक्ति का सम्मान एवं कुल प्रथा की मर्यादा रक्षा के लिए सदा यत्नवान थे।

इस तरह कुछ काल तक राज्यशासन करके धृत नामक पुत्र के हाथों में राज्य भार सौंपकर महाराज धर्म ने विष्णु लोक में प्रयाण किया।

धृत का विवरण — धृत –पितृ आसन में अभिषिक्त होकर महाराज धृत ने प्रजाओं को पुत्र की

---

(1) यावद् भागीरथी पद्मा विच्छेदं स नराधिपः।
तावद् विस्तारायामास राष्ट्रं त्रिवेग संज्ञितम।
राजरत्नाकर आठवाँ सर्ग श्लोक 110

की तरह पालन करने लगे। वे अपने बाल्यकाल की अवस्था में च्यवन मुनि के प्रसाद से सर्वशास्त्र विशारद हो उठे थे। उनकी विद्या प्राप्ति के विषय में राजरत्नाकर में कहा गया है—

सामर्गयजुरथर्वाख्या वेदाश्चपनिषद्गणाः।
शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषांगतिः।।
च्छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम्।
न्याय वैद्यक गांधर्वं धनुर्वेदार्थ शास्त्रकम्।।
अष्टांगयोग शास्त्रन्च रसशास्त्रमतःपरम्।
एतानि च्यवनादिभ्योऽधिजगे बाल्यकालतः।।

राजरत्नाकर नवम् सर्ग 14—16 श्लोक

महाराज धृत ने सुख्याति के साथ दीर्घ काल तक राज्य शासन करके अन्तिम काल तक बहुत तरह के धर्म कार्य पालन करते हुए साधन भजन पूर्वक अनंत धाम में प्रयाण किया।

दुर्म्मद का विवरण

दुर्म्मद —महाराज धृत के परलोक सिधारने के बाद उनके पुत्र दुर्म्मद राज्याधिकारी हुए। ये पिता की तरह धार्मिक तथा प्रजानुरक्त थे। एक बार जब वे गंगा स्नान गये तो देवानुग्रह से वहाँ च्यवन मुनि के दर्शन हुए। मुनि के श्रीमुख से गंगा महात्म्य सुनकर अपने को उन्होनें धन्य समझा। वे मुनि श्रेष्ठ के उपदेशानुसार राज्य पालन और धर्मानुष्ठान में ही अपना सारा जीवन व्यतीत किया था।

प्रचेता का विवरण

प्रचेता —दुर्म्मद के परलोक सिधारने के पश्चात उनके पुत्र प्रचेता राज सिंहासन पर बैठे। इन्होनें अपने बाल्यकाल में कुलगुरु भगवान कपिल के यहाँ वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कर विशिष्ट ज्ञान से अपने को विभूषित किया।(1) इन्होनें राज्य शासन किया, लेकिन राज्य सुख में आसक्त नहीं थे। उनके संगृहीत राज्यकर का आधा प्रजाओं के कल्याण के लिए और बाकी के एक तिहाई से स्वजनों का भरण पोषण में खर्च किया करते थे। इन खर्चों के पश्चात जो कुछ बच जाता था, वह संचित रहता था। प्रचेता के पराचि आदि शत पुत्र जन्में थे। वार्धक्य में अपने ज्येष्ठ पुत्र के हाथों राज्य भार अर्पण कर महाराज प्रचेता ने दिव्य लोक में प्रस्थान किया।

---

(1) स राजा बाल्यतो वेदानधीत्य कपिलाश्रमे।
विषयेषु विरक्तोऽभुत परमार्थविद्यां वरः।।
राजरत्नाकर नवम सर्ग, 41 श्लोक।

प्रथमलहर–91

पराचि का विवरण पराचि –प्रचेता के पश्चात, उनके ज्येष्ठ पुत्र पराचि त्रिवेग के अधीश्वर बने। वे क्षत्रियोचित धनुर्वेदादि में पारदर्शी थे। उनके शासनकाल में राज्य में सुख शान्ति भरपूर रही। बाहुबल, भातृबल और सैन्यबल से बलवान होकर पराचि सर्वदा दिग्विजय की वासना अपने भीतर संजोये रखते थे।

एक बार महाराज पराचि ने अन्तर में पनपती अपनी वासना को पूर्ण करने के लिए दृढ़ संकल्प किया। उन्होने सोचा दिग्विजय की यात्रा बड़ी भयानक होती है–विपदाओं से भरी है। यदि युद्ध से घर नहीं लौट सकूं तो राज्य मे उच्छृखंला घटने की आशंका रहेगी। इस आशंका के निवारण के लिए अपने पुत्र पराबसु को राज्यभिषिक्त करके, 99 भ्राताओं को साथ लेकर दिग्विजय की कामना से उत्तर की ओर यात्रा किये।(1) पराचि म्लेच्छ देश में उपस्थित होकर विपुल विक्रम के साथ म्लेच्छ राजाओं को युद्ध में पराजित कर वहाँ अपना अधिकार का विस्तार किया। इस म्लेच्छ विजय की कहानी विष्णु पुराण में संक्षेप में उल्लेख की गई है–

प्रचेतसः पुत्रशतमधर्म बहुलानां मुदीच्यादीनां म्लेच्छादीनामाधिपत्य मकरोत्।

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश 17 अध्याय।

टीकाकार श्रीधर स्वामी ने इस वाक्य की विवृति के सम्बन्ध में कहा है।

एतेन ययाति शाप परिणामो म्लेच्छभावः सूचितः। श्रीधर स्वामी

विष्णु पुराण चतुर्थ अंश 17 अध्याय।

इस वाक्य से हमें ज्ञात होता है कि पराचि अपने भ्राताओं के साथ म्लेच्छ भावापन्न होकर उदीच्यादि देश अधिकार कर वहाँ अपना राज्य स्थापन किया था। राजरत्नाकर के अनुसार पराचि अथवा उनके भ्राताओं में कोई भी त्रिवंग राज्य नहीं लौटा। वहाँ पर पराचि नन्दन पराबसु का अधिकार बना रहा।

पराबसु का विवरण पराबसु –पराचि के दिग्विजय यात्रा के पश्चात सिंहासन पर बैठकर पराबसु ने देखा कि पिता के अमित दान के फलस्वरुप राज कोष शून्य हो गया है। उनके असाधारण यत्न और चेष्टा के फलस्वरुप राज कोष में अपार अर्थ संचय हुआ। वे सदा प्राज्ञ और प्रवीण मन्त्रिओं से घिरे रहते थे। उनके सुशासन के गुण से राज्य सुख शान्ति से भरा रहा और

---

(1) एवं सन्चिस्तयन् राजा पराचिनिजमानसम्।
परावसु समाख्याय तनयाय प्रदत्तवान्।।
ततः पराचिरनुजैः सहोनशत संख्यकैः।
विजयाय दिशां वीर औदीच्याभिमुखो ययौ।
राजरत्नाकर नवम सर्ग 49–50 श्लोक।

प्रथमलहर–92

सुसमृद्ध हुए थे। उन्होनें बिना बाधा विपत्तियों के दीर्घकाल तक प्रजा पालन किया और वृद्धावस्था में पुत्र पारिषद के हाथों राज्य का भार अर्पण कर योग साधन के निमित्त वानप्रस्थ का आश्रय लिया था।

पारिषद का विवरण पारिषद –पारिषद ने राज्य प्राप्ति के बाद अपने बाहुबल से विपक्षियों का दलन कर एवं रोग व दारिद्र्य दूर कर, राज्य में सुख शान्ति की प्रतिष्ठा की। दीर्घ काल तक राज्य शासन के बाद पुत्र अरिजित् को राज्य भार सौंपकर स्वर्गधाम को प्रस्थान किया।

अरिजित् का विवरण अरिजित् –महाराज अरिजित् की दया–दाक्षिण्य और शौर्यादि के गुण से उनकी सभी प्रजाएं, सामन्त गण और अधीनस्थ राजगण उनसे परितुष्ट और बाध्य थे। यथा समय उनके कोई पुत्र न होने की वजह से दुखीमन् से वे महामुनि कपिल के शरण में गये। महर्षि के वर से वृद्धावस्था में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम रखा गया सुजित्। इसके कुछ दिनों के पश्चात नृपति अरिजित् मानव लीला समापन कर परलोक सिधारे।

सुजित् का विवरण सुजित् –महाराज सुजित् राजनीति, धर्मनीति और युद्ध विद्या में निपुण थे। उनके शासन काल में राज्य में शान्ति बनी रही। दीर्घ काल तक राज्य ऐश्वर्य भोगने के बाद वार्धक्य में पुत्र पुरुरवा को राज्याभिषिक्त कर अनन्त धाम में चले गये।

पुरुरवा का विवरण पुरुरवा –पुरुरवा के राजत्व काल में राज्य में सुख शान्ति का कभी अभाव नहीं हुआ। इस समय राजा प्रजा के बीच एक सुदुर्लभ पवित्र एक प्रीति भाव संस्थापित हुई थी। राजा सदा त्रिकालज्ञ ऋषियों के उपदेशानुसार राज्य कार्य चलाते थे। नाना तरह के यज्ञ दान दक्षिणादि द्वारा उन्होनें अक्षया कीर्ति और असाधारण पूण्य संचय किया था। अपने वार्धक्य में पुत्र विवर्ण को राज्याभिषिक्त कर, महाराज पुरुरवा नौमिषारण्य में जाकर वानप्रस्थ का अवलम्बन कर वहीं सारा जीवन व्यतीत किया।

विवर्ण का विवरण विवर्ण –विवर्ण धार्मिक एवं नीतिज्ञ राजा थे। अपनी प्रजा को पुत्र की तरह पालते थे। उनकी विद्या, बाहुबल और वैभव, सभी राज्य के हितार्थ खर्च किया करते थे। विवर्ण उम्र हो जाने पर परलोक सिधारे और उनका पुत्र पुरुसेन राज्यधिकारी बने।

पुरुसेन का विवरण पुरुसेन –पुरुसेन विनयी एवं सभी गुणों से अलंकृत थे। वे पूजनीय वृद्ध, पण्डित, मित्र, सामन्त, सचिव और अपने पिता के मित्रों के प्रति विशेष श्रद्धावान थे। देव–द्विज के प्रति असाधारण भक्ति थी।

<u>प्रथमलहर—93</u>
महाराज पुरुसेन ने अयोध्यापति राजचक्रवर्ती दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ में आमन्त्रित हुए थे। पुरुसेन वहाँ पर बहु वेदज्ञ ऋषि और बहुत बड़ी संख्या में सैन्य सामन्त के साथ गये थे।(1)

महाराजा धर्मानुष्ठाानादि और सुख शान्ति उपभोग करके वार्धक्य में परलोक सिधारे।

मेघवर्ण का विवरण

मेघवर्ण —पुरुसेन के परलोक सिधारने के पश्चात तदात्मज मेघवर्ण त्रिवेग के अधिपति बने। वे सत्यव्रतपरायण देव—द्विज के प्रति भक्ति परायण एवं असाधारण धर्मानुरागी थे। उनके शासन के गुण से द्विजगण स्वधर्म परायण, सभी प्रजा धर्मानुरक्त एवं रमणीगण पति—परायण थी। देवता और ब्राह्मणों की अर्चना, अतिथि सेवा, जलाशय खनन इत्यादि पुण्य कार्य साधारण जन जीवन का नित्य कर्म था। राज्य धन धान्य से परिपूर्ण था। उन दिनों त्रिवेग की राजधानी शौर्य, वीर्य एवं ऐश्वर्य में इन्द्र की अमरावती के समान थी। सैनिक दल वीर्यवान एवं समर कुशल थे। विद्यालय, चिकित्सालय, ग्रन्थागार, स्थापनादि जन हितकर कार्यो में राजा की विशेष रुचि थी।

महाराज मेघवर्ण सर्वगुण संपन्न/अकृतदार थे। उन समय चेदी राज्य के अधीश्वर महाबल वीरबाहु सुदक्षिणा नाम की सर्वसुलक्षण सम्पन्न कन्या के निमित्त सुयोग्य पात्र की खोज में थे। इसी समय घटना चक्र से विन्ध्याचल आश्रम में रहने वाले महर्षि जावाली राज दरबार में उपस्थित हुए। राजा के मनोगत भाव से अवगत होकर उन्होनें कहा "तुम्हारे लक्ष्मी स्वरुपा कन्या के लिए एक मात्र उपयुक्त वर है द्रुहयु कुल उत्पन्न त्रिवेग पति महाराज मेघवर्ण। वे शान्त्, दान्त, सज्जन, क्षमाशील, उदार, जितेन्द्रिय, सर्व शास्त्र ज्ञाता, प्रजा रंजनकारी, देव—द्विज में श्रद्धा भक्ति युक्त, अनाथ और दरिद्र के आश्रयदाता, सौम्यमूर्ति, वीर्यवान एवं सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं। वही तुम्हारी कन्या के लिए सर्वोत्त भाव से उपयुक्त वर है। उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दो, यही सबसे श्रेयकर होगा।" राजा के अनुरोध से महर्षि जावाली मध्यस्तता से विवाह का प्रस्ताव स्थिर हो गया। महाराज मेघवर्ण ने स्वयं वर सभा में उपस्थित होकर कन्या को सादर ग्रहण किया।

---

(1) अयोध्यागमनद्वीमान् स्वसैन्यैः परिवेष्टितः।
ऋषिभिर्योगिभि सार्द्धं यज्ञे दशरथस्य सः।।
राज्ञा दशरथे नायं पुरुसेनः प्रपूजितः।
दृष्ट्वाः बहुनि तीर्थानि प्रत्यायातः स्वकं पूरम्।।
राजरत्नाकर नवम सर्ग 86—87 श्लोक

प्रथमलहर—94

कहा जाता है, स्वंवर सभा में देवराज इन्द्र प्रमुख अनेक देवताओं ने भी कन्या लाभ के लिए योगदान किया था। त्रिदिवपति(इन्द्र) भग्न मनोरथ और अपमानित होकर वज्राघात से मेघवर्ण की हत्या करने के लिए कृत संकल्प हुए।

एक बार महाराज मेघवर्ण मृगया के उद्देश्य से जंगल में गये। भारी तूफान और वर्षा की वजह से उनके अनुचर वर्ग चारों ओर दौड़ने लगे, इधर असहाय और विपन्न मेघवर्ण को घनघोर वन में वज्राघात से प्राण त्यागना पड़ा। तूफान रुकने पर अनुचर वर्ग प्रभु की खोज में चारों ओर निकल पड़े। उनकी मृत देह को देखकर शोक्ति हृदय से उनकी मृत देह को लेकर राजधानी में लौट आये। राजमहिषि सहमरण के लिए तैयार हो गई। उनकी गोद में राज्य के उत्तराधिकारी शिशु कुमार रहने की वजह से कुलगुरु ने महारानी को उस संकल्प से निरस्त किया। राजोचित सम्मान और समारोह के साथ उनकी अन्तिम क्रियादि सुसम्पन्न हो गई।

विकर्ण का विवरण

विकर्ण —राजा के अकाल और आकस्मिक निधन से राज्य की अवस्था डाँवाडोल होती देखकर सचिवों ने कोई उपाय न देखकर शिशु राज तनय विकर्ण को राज पद पर अभिषिक्त किया। राजा की उम्र सोलह साल तक न होने पर मंत्रियों ने राज काज सम्भाला। विकर्ण ने पूर्ण वयस्क होकर ही अपने हाथों से राज्य भार लिया था। उनके राजत्व काल में राज्य में किसी तरह की अशान्ति या उपद्रव नहीं हुआ। उन्होनें पुत्र बसुमान को रखकर शेष समय में परलोक गमन किया।

बसुमान का विवरण

बसुमान —बसुमान के राज्य भार ग्रहण कर अपने सुशासन के गुण से थोड़े समय में ही प्रतिष्ठित हो गये थे। उनके राज्य में दारिद्र्य, असत्य व्यवहार, चोरी डकैती इत्यादि उपद्रव का समावेश मात्र भी नहीं था। किन्तु अधिक दिनों तक राज्य सुख भोग करने का सुयोग उनके योग में नहीं था। वे अपने यौवनावस्था में काल के मुंह में समा गए।

महाराज कीर्ति का विवरण

कीर्ति —बसुमान के पश्चात उनके पुत्र कीर्ति ने पिता राज्य का राज्य भार ग्रहण किया। उनके द्वारा पूर्व पुरुषों के अर्जित निर्मल यश को उन्होनें धूमिल कर दिया। वे अपराधी प्रवृत्ति के थे। वासना प्रिय, इन्द्रिय परायण, परस्त्री गमन और व्यभिचारी थे। प्रजाओं के दुःख मोचन की बात तो दूर रही, वे प्रजाओं के नाना तरह के दुःख और यातनाओं के लिए उनके आतंक का कारण बन गये थे। महाराज कीर्ति असंख्य रमणीयों से धिरे हुए हमेशा निर्जन में ही निवास करना पसन्द करते थे। इस तरह राज्य में

प्रथमलहर–95

नाना तरह की अशान्ति और उपद्रव पैदा करके महाराज कीर्ति कम उम्र में ही परलोक सिधार गये।

कनियान का विवरण

कनियान –महाराज कीर्ति के परलोक सिधारने के बाद उनके पुत्र कनियान त्रिवेग राज्य के तख्त पर बैठे। वे धीर, धार्मिक, प्रजा रंजक एवं अतिशय दयालु थे। उनके शासन काल में राज्य में रोग, अन्न कष्ट या दरिद्रता नहीं थी। अपने सुन्दर सुशासन के लिए वे प्रजाओं की हर ओर से श्री वृद्धि करके यथा समय अनन्त धाम में प्रयाण किये।

प्रतिश्रवा का विवरण

प्रतिश्रवा –महाराज कनियान के पश्चात उनके पुत्र प्रतिश्रवा राज्याधिकारी हुए। ये पिता के सभी गुणों के अधिकारी थे। इनमें राज्यशासन स्पृहा से धर्मानुराग ही अधिक था। शेष अवस्था में इन्होनें पुत्र प्रतिष्ठ के हाथों में राज्य भार अर्पण करके योग साधना में लीन हो गये थे।

महाराज प्रतिष्ठ का विवरण

प्रतिष्ठ –महाराज प्रतिष्ठ धर्म के एवं सदागुणालंकृत राजा थे। वे नाना तरह यज्ञों के अनुष्ठानों के द्वारा देव और पितृ लोक की तुष्टि विधान कर अपने परिणित वय में परलोक वासी हुए। उनके पुत्र शत्रुजित सिंहासनरुढ़ हुए थे।

महाराज शत्रुजित का विवरण

शत्रुजित –ये सदा प्रजापालन में तत्पर थे। नियत धर्म कर्म और नीति अनुसरण करने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। इन्होनें शौर्य, वीर्य एवं दया दाक्षिन्य में रत रहकर अपार ख्याति अर्जन की थी। कुछ दिनों के पश्चात प्रतर्दन नामक एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र को राज्योचित सभी विद्याओं में सुरक्षित करने के लिए, तत्वज्ञान शिक्षा निमित्त महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में भेजा था। राज नन्दन प्रतर्दन नाना तीर्थो का परिभ्रमण करते हुए अन्त में महर्षि विश्वमित्र के आश्रम में उपस्थित हुए। महर्षि ने सस्नेह अभिक्षित सारी विद्याओं में पारंगत कर दिया। पुत्र के सुशिक्षित होकर राज्य में लौट आने पर महाराजा ने प्रतर्दन को सिंहासन पर बैठाया। अंत में महाराज शत्रुजित ने वानप्रस्थ ग्रहण कर बदरिकाश्रम में अपना जीवन व्यतीत किया था।

प्रतर्दन का विवरण

प्रतर्दन –महाराज प्रतर्दन ने अपने राजत्व काल में बहुविध सत्कर्मो का अनुष्ठान किया था। उनकी कार्यावली में किरात देश विजय विशेष उल्लेख योग्य है।

महाराज प्रतर्दन विद्याभ्यास के उद्देश्य से कौशिकाश्रम में जाते समय पुण्य सलिला ब्रह्मपुत्र तट के

<u>प्रथमलहर–96</u>

किसी ब्राह्मण के मुख से ब्रह्मपुत्र के महात्म्य, सुविशाल किरात राज्य का विवरण सुनकर एवं वहाँ के पीठ स्थान का महात्म्य आदि सुनकर अवाक् हो गए। तभी से किरात देश जय करने की आंकाक्षा पनपी। प्रतर्द्दन पाठ समाप्त कर स्वगृह लौटे और अपने भीतर अपनी वासना की बात अपने पिता के यहाँ निवेदन की। किन्तु धर्मपारायण शत्रुजित नानाविध और शास्त्रों का उपदेश देकर इस युद्ध की वासना को शान्त कर दिया। पितृभक्त प्रतर्द्दन पितृ आदेश को शिरोधार्य कर उस ओर से अपनी इच्छा को दबा दिया। किन्तु विशाल त्रिवेग राज्य का अधिकार प्राप्त कर उनकी दबी हुई लालसा फिर उद्दीप्त हो उठी और उन्होनें विपुल वाहिनी के साथ किरात के विरुद्ध अभियान किया।

महाराज प्रतर्द्दन ने लौहित्य(ब्रह्मपुत्र) नदी के पश्चिम किनारे शिविर स्थापन कर तीन दिवस तक वहीं बिताया। चौथे दिन ब्रह्मपुत्र को पारकर शिविर स्थापन किया और क्षात्र धर्मानुसार किरात राज्य के विरुद्ध युद्ध घोषणा किया। इस घटना से किरात लोग अति क्रुद्ध और क्षुब्ध हो उठे। वहाँ के नायक गणों ने, विशाल सैन्य बल संग्रह कर, प्रतर्द्दन के विरुद्ध रण भूमि में अवतीर्ण होकर घोर युद्ध आरम्भ कर दिया। विपक्ष के विक्रम और असीम साहसिकता को देखकर महाराज प्रतर्द्दन को आश्चर्य हुआ। इस युद्ध में उन्हें बहुत कष्ट और क्षति का सामना करना पड़ा। चौदह दिनों तक अविश्रांत युद्ध के बाद विजय लक्ष्मी महाराज प्रतर्द्दन की अंकशायिनी हुई। किरातियों ने कोई उपाय न देख अन्त में महाराज प्रतर्द्दन की वश्यता / वशता स्वीकार कर लिया गया।

ब्रह्मपुत्र नदी का नामान्तर कपिला होने पर भी कपिल नामक और एक नदी का अस्तित्व पाया जाता है। यह नदी गोहाटी से कुछ ऊपर जाकर ब्रह्मपुत्र में आत्म–सर्मपण किया है। पार्जिटार(**Pargiter**) साहब के अनुसार इसका प्राचीन नाम ''कृपा'' है। इन दिनों नदियों के संगम स्थान पर महाराज प्रतर्द्दन के नवविजित राज्य की राजधानी की स्थापना की। यह राजधानी भी त्रिवेग नाम से आख्यात हुई। किसी किसी के मतानुसार ब्रह्मपुत्र और कपिला के करीब ही और एक नदी भी थी, जो अब दब गई है। उनके मतानुसार तीन नदियों का संगम स्थल की वजह से राजधानी का नाम ''त्रिवेग'' रखा गया था। सुन्दरवन स्थित त्रिवेग नाम की चर्चा हम पहले कर आये है। प्राचीन राजधानी के नामानुसार इस स्थान का नामकरण हुआ है, यही अधिकतर संगत प्रतीत होता है।

नव प्रतिष्ठित राज्य किरात देश में स्थापित होने पर भी समस्त किरात भूमि इस राज्य के अधीन नहीं हुई थी। किरात देश का विस्तार बहुत बड़ा था। उसका कुछ ही अंश प्रतर्द्दन द्वारा राज्यभुक्त हुआ था।

प्रथमलहर–97

इस नव प्रतिष्ठित राज्य की सीमा के बारे में राजमाला के प्राचीन ग्रन्थों के पाठ करने पर परस्पर मत विरोध दिखाई देता है। संस्कृत राजमाला में लिखा है–

यस्य राज्यस्य पूर्वास्यां मेखलिः सीमतां गतः।
पश्चिमस्यां काचबंगोदेशः सीमति सुन्दरः।।
उत्तरे तैयंग नदी सीमतां यस्य संगता।
आचरंग नाम राज्ये यस्य दक्षिण सीमतः।।
एतन्मध्ये त्रिवेगाख्यां द्रुहयुराज्यं(1) सुशासितं।

प्राचीन राजमाला में राज्य की सीमा के विषय में लिखा है–

त्रिवेग स्थलेते राजा नगर करिलो।	त्रिवेग स्थल में राजन ने बसाया नगर।
कपिल नदीर तीरे राज्य पाट कोइलो।।	राजपाट किया कपिल नदी के तीर।।
उत्तरे तैउंग नदी दक्षिणे आचरंग।	उत्तर दिशा तैउंग नदी दक्षिण में आचरंग।
पूर्वे मेखलि सीमा पश्चिमे काचरंग।।	पूर्व दिशा में मेखली सीमा पश्चिम में काचरंग।।

ग्रन्थान्तर में मिलता है –

त्रिवेग स्थलेते राजा नगर करिलो।	"त्रिवेग स्थल में राजा ने नगर बसाया,
कपिला नदीर तीरे राज्य पाट छिलो।।	कपिला नदी के पार राजपाट किया,,
उत्तरे तैरंग नदी दक्षिणे आचरंग।	उत्तर दिशा में तैरंग नदी दक्षिण में आचरंग।
पूर्वेते मेखलि सीमा पश्चिमे कोच रंग।।	पूर्व में मेखली सीमा पश्चिम में कोच रंग।"

दूसरे ग्रन्थ के पाठ का रूप –

उत्तरे तैरंग नदी दक्षिणे आचरंग।	"उत्तर में तैरंग नदी दक्षिण में आचरंग,
पूर्वेते मेखलि सीमा पश्चिमे कोच रंग।।	पूर्व में मेखली सीमा पश्चिम में कोच रंग।"

और एक ग्रन्थ में नीचे दिया गया पाठ मिलता है –

"राजधानी होइलो कपिल नदी तीरे।	"राजधानी हुआ कपिल नदी के तीर।
" " "	" "
उत्तरे तैरंग होते दक्षिणे आचरंग।	उत्तर में तैरंग से दक्षिण में आचरंग।
पूर्वेते मेखली सीमा पश्चिमे भाचरंग।।"	पूर्व में मेखली सीमा पश्चिम में भाचरंग।।"

उत्तर सीमा में किसी ग्रन्थ में तैरंग नदी, किसी ग्रन्थ में तैयंग या तैउंग नदी लिखा है। यह भेद लिपिकार के प्रमाद के कारण हुआ है, आसानी से पता चलता है। त्रिपुरा भाषा में पानी को 'तुई' कहते हैं, 'उंग' शब्द प्रकर्षार्थद्योतक है। 'तुई–उंग' द्वारा बहुत ज्यादा पानी या पवित्र एवं बड़ी नदी को बताता है। यह 'तुई उंग' शब्द विकृत होकर तैयंग या तैरंग आदि में बदल गया है। असली शब्द जो भी हो, यह ब्रह्मपुत्र नदी को बताता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसी नदी द्वारा राज्य की उत्तर सीमा निर्धारित थी।

---

(1) 'द्रुहयु राज्य' शब्द द्वारा द्रुहयु वंशजो के राज्य को बताया गया।

<u>प्रथमलहर–98</u>

थी। सभी ग्रन्थों में दक्षिण सीमा में ''आचरंग'' का नाम आता है। यह आचरंग त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी रांगामाटी(उदयपुर के) करीब है।(1) इस समय यह स्थान ''आचलं'' नाम से परिचित है। एक नदी के नाम से उनके तटवर्ती स्थान का यह नाम हुआ है। पूर्व की ओर ''मेखली'' शब्द भी ग्रन्थों में आता है। आसाम के लोग मणिपुर राज्य को ''मेखली देश'' कहते है। पूर्व की ओर यह राज्य त्रिपुरा के प्रत्यन्त देश था। पश्चिम सीमा में ही गोलमाल कुछ ज्यादा था। काचरंग, कोचरंग, काचबंग, कोचबंग, भाचरंग आदि शब्दों में कौन सा शब्द विशुद्ध है, यह निर्णय करना दुःसाध्य है। कोई कोई कोचरंग को ही सही मानते है। कोच राज्य और रंगपुर उनका लक्ष्य स्थल है। इस पाठ के द्वारा राज्य की पश्चिम सीमा को चिन्हित नहीं किया जा सकता, ऐसी बात नहीं है। कोच राज्य काछार के करीब था। राजमाला में ही इसका निदर्शन मिलता है। रंगपुर बंग देश के अधीन था, पर संस्कृत राजमाला का काचवंग और बंगला किसी किसी ग्रन्थों का कोचवंग पाठ के अनुसार कोच राज्य और बंग देश को पश्चिम सीमा कहकर निर्धारण करना ही ज्यादा समीचीन लगता है। इस हिसाब से किरात देश का जो अंश त्रिवेग राज्य के अधीन थे, यहाँ पर दिया गया मानचित्र में उसे प्रदर्शित किया गया।

सभी ग्रन्थों में ही लिखा गया है कि 'कपिला नदी के किनारे' राजपाट प्रतिष्ठित हुआ था। किसी किसी पुराण के अनुसार ब्रह्म बिल शब्द से उत्पन्न ब्रह्मपुत्र और कपिला नदी अभिन्न है।(2) इतिहासकारों में भी कुछ लोगों ने इस मत को ग्रहण किया है। जयंतिया पर्वत के उत्तर के किनारे कपिलि या कपिला नाम की और एक नदी का अस्तित्व मिलता है। यह नदी ब्रह्मपुत्र की उप नदी है। यह नदी गोहाटी के कुछ ऊपर की ओर 255 डिग्री उत्तर लघिमा / अक्ष एवं 9231 डिग्री पूर्व द्राघिमा जंयतिया पर्वत से निकलकर

---

(1) राजमाला के राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड68पृ में है–

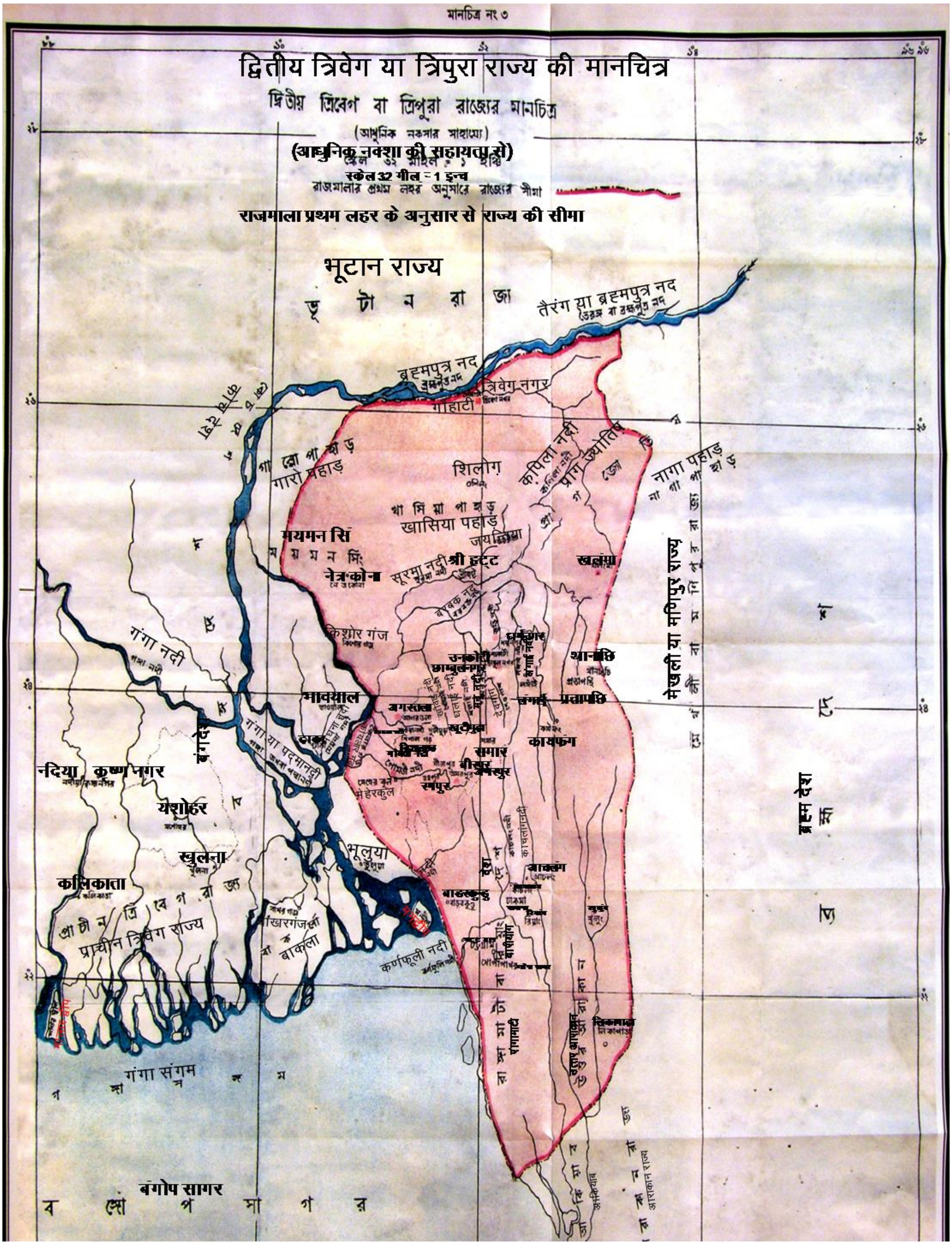
त्रिपुर भूम आचरंग दक्षिण सीमा।।	त्रिपुर भूमि आचरंग दक्षिण सीमाना।।
तारपोरे रागांमाटी करिलो आपना।	इसके पश्चात् रंगामाटी किया अपना।
उदयपुर पूर्ब उत्तर कोने आचरंग।।	उदयपुर पूर्व उत्तर कोने में आचरंग।।
त्रिपुर राजार थाना जाने सर्ब बंग।।	त्रिपुर राजा का थाना को जाने सारा बंग।।

(2)
कज्जलाचल शैलात्तु पूर्वस्मिन्छभ्र पर्वतः।
तत्पूर्वश्यात् महादेवी नदी कपिल गंगिका।।
कामाख्या निलयात् पूर्वं दक्षिणस्यां तथादिशि।
विद्यते महदावर्तुं भूवि ब्रह्मविलं महत्।।
तस्मादायाति सा नदी सिताम्भोऽपम तोयभाक्।

कालिका पुराण 81 अध्याय

प्रथमलहर—99

मानचित्र **(Pratham leher-6-99)**



<u>प्रथमलहर–100</u>
नवगाँव जिला के भीतर से, कलं नदी के साथ मिलित भाव से ब्रह्मपुत्र जा मिली है। इस नदी के द्वारा वर्तमान नौगाँव और काछाड़ जिला विच्छिन्न हुआ है। यह कपिली एवं राजमाला की कपिला अभिन्न नदी है।पार्जिटार(**Pargiter**) साहब के अनुसार इसका प्राचीन नाम ''कृपा'' है– यह बात हम पहले भी कह चुके हैं। मार्कण्डेय पुराण में भी कृपा नदी का नामोल्लेख है।

'कपिला' नाम के उतपत्ति का कारण बताना इस समय सहज साध्य नहीं है। राजरत्नाकर की आलोचना करने पर सगरद्वीप में भगवान कपिल का आश्रम होने के नाते उसके नीचे बहने वाली गंगा को –''कपिला गंगा'' नाम से पुकारा जाता था। (1) कामरुप प्रदेश में भी कपिलाश्रम रहने के प्रमाण मिलते है।(2) यहाँ पर भी कपिला मुनि के नामानुसार नदी का नाम ''कपिलि'' होने की सम्भावना अधिक है। इसके अलावा युक्ति युक्त और कोई कारण अनुसंधान से प्राप्त नहीं हुआ। पवित्र ब्रह्मपुत्र इस नदी के संस्पर्श में आकर कपिलि या कपिला नाम प्राप्त हुई है। आलोचना से भी यही बात स्पष्ट होती है। इन्ही दिनों नदियों के करीब त्रिवेग राजपाट प्रतिष्ठित हुआ था।

....

(1) यत्र दक्षिणगा गंगा लभे सागर संगमम्।
गंगासागरयोर्मध्ये द्वीप एको मनोरमः।।
यस्मिन् द्वीपे स भगवानुवास कपिलोमुनि।
यत्र भागीरथी पुण्या तदाश्रम तलंगता।।
कपिलेति समाख्याता सर्वपाप प्रणाशिनी। आदि
राजरत्नाकर 6ठां सर्ग। 15–17 श्लोक

(2) ''उनकोटि तीर्थ महात्म्य'' नामक हस्तलिखित पुस्तिका में है–
विन्ध्यान्द्रेः पादसम्भूतो बरबक्रसुपुण्यदः।
अनयोरन्तरा राजन् उनकोटि गिरिर्महान्।।
यत्र तेपे तपः पूर्वं सुमहत् कपिलो मुनिः।
तत्रवै कपिलं तीर्थं कपिलेन प्रकाशितम्।।

वायु पुराण में भी कपिल तीर्थ का उल्लेख है–जैसे
यत्रतेपे तपः पूर्वं सुमहत् कपिलमुनिः।
यत्रवै कपिलं तीर्थं तत्र सिद्धेश्वर हरिः।।

सिद्धेश्वर शिव कपिल मुनि के आश्रम में उनके द्वारा ही प्रतिष्ठित हुए थे। यह स्थान काछाड़ तथा श्रीहट्ट के मध्य सीमा में है। वारुणी उपलक्ष में यहां एकपक्ष काल तक मेला लगता है।

कामरुप में छत्रकोर पर्वत के उत्तर की ओर 20 धनु के अन्तर पर और एक कपिलाश्रम का अस्तित्व मिलता है। यह स्थान आज भी तीर्थ क्षेत्र के रुप में सेवित है।

प्रथमलहर–101

इसके बाद नाना समय पर नाना कारणों से राज पाट स्थानान्तरित होता रहता है। राजमाला के दूसरे लहर में उसे सविस्तार पूर्वक कहेगें।

कुछ दिनों तक निरापद से राज्य शासन करने के बाद महाराज प्रतर्द्दन पुत्र प्रमथ के हाथों में विशाल साम्राज्य का भार अर्पण कर परलोक सिधार गये।

महाराज प्रमथ का विवरण

प्रमथ –प्रतर्द्दन के परलोक गमन के पश्चात उनके पुत्र महाराज प्रमथ ने विपुल विक्रम के साथ साम्राज्य के साथ राज्य शासन का भार सम्भाला। उनके शासन से राज्य बैरी शून्य और शान्तिपूर्ण रहा।

एक समय महाराज प्रमथ ने मृगयार्थ वन में गमन किया और सारा दिन कोशिश करने के बाद भी किसी हिरण का पता नहीं चला। तपन देव के अस्ताचल में जाने के मुहूर्त में किसी एक क्षीण तपस्वी मुनि अपने पुत्र के साथ सन्ध्या अवगाहन के लिए नदी के तीर पर उपस्थित हुए, तो महाराज ने मृग के भ्रम वश उनके ऊपर शर निक्षेप किया और तीक्ष्ण शराघात से तापस तनय की मृत्यु हो गई। इस घटना से महाराज भयभीत और अनुतप्त होकर अपने आचरण के लिए क्षमा याचना की। पुत्र शोकातुर ऋषि ने क्रोध में अधीर होकर राजा के विनाश कामना करके अभिसम्पात करने पर महाराज प्रमथ लोकान्तर को प्राप्त हो गये।

महाराज कलिन्द का विवरण

कलिन्द –महाराज प्रमथ के परलोक गमन के पश्चात उनके पुत्र कलिन्द ने राज्य का शासन भार सम्भाला। ये धीर, प्राज्ञ एवं राजनीति कुशल नृपति थे। इनके शासनकाल में प्राचीन त्रिवेग राज्य में(सुन्दरवन में) त्रिपुरासुन्दरी मूर्ति की प्रतिष्ठा का विवरण हम पहले ही दे चुके हैं– यहाँ पर उसका पुनः उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है।

महाराज कलिन्द दानशील, धर्मपरायण और दया के आधार थे। प्रजा रंजन करना ही उनके जीवन का मुख्य व्रत था। दीर्घ कालों तक राज्य सुख भोग करने के पश्चात वार्द्धक्य में अपने पुत्र के हाथों राज्य का भार सौंपकर विष्णु लोक में गमन किया।

महाराज क्रम का विवरण

क्रम –अपने सुशासन के गुण से इन्होनें प्रजा वर्ग को एक तरह वश में कर लिया था। दीर्घ कालों तक राजत्व करने के पश्चात अपने सुयोग्य पुत्र के हाथों राजत्व का भार सौंप परलोक सिधारे।

मित्रारि का विवरण

मित्रारि –महाराज क्रम के पुत्र ने कार्य द्वारा अपने नाम की सार्थकता की पूर्ति की। राज्य लाभ करते ही मित्र वर्ग के विपक्ष आचरण में वे प्रवृत्त हुए। राजा राजकार्य में उदासीन एवं सर्वदा दीन/नीच कार्य सम्पादन की चिन्ता में ही व्यस्त रहते थे, उनके आचरण से अमात्य गण परेशान हो उठे। इसका ही सुयोग लेकर सुजित् नामक प्रधान आमत्य ने राजा की परवाह करते हुए प्राचीन त्रिवेग राज्य का शासन भार हाथ में ले लिया।

प्रथमलहर—102

वारिवाई / वारिवई का विवरण   वारिवाई —मित्रारि के पुत्र वारिवाई ने पितृ सिंहांसन पर अधिकृत होकर त्रिवेग राज्य का पुनः उद्धार के लिए विशेष यत्न किया है। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। एक मात्र किरात राज्य लेकर ही उन्हें राजत्व करना पड़ा।

पूर्वोक्त अवस्था की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि महाराज क्रम पुत्र मित्रारि के समय से ही प्राचीन त्रिवेग राज्य(सुन्दरवन प्रदेश) द्रुहयु वंशजों से हस्तच्युत हो गया। उसके बाद किस समय किस सूत्र से वह प्रदेश किस वंशीय राजा के हस्तगत हुआ था, यह कहना मुश्किल है। महाराज मित्रारि द्वापर युग के राजा थे। उनके विवेकहीन हठकारिता से जो भयंकर क्षति हुई थी, वह कभी भी पूर्ण नहीं हुई। इसी समय से त्रिवेग पति को नव विजित किरात राज्य को लेकर ही सन्तुष्ट रहना पड़ा।

कार्मुक का विवरण   कार्मुक —वारिवाई के पुत्र महाराज कार्मुक ने शौर्य वीर्य में विशेष ख्याति अर्जन किया थे। वे धनुर्विद्या विशारद थे। रणभूमि में निर्भय चित्त रहने का विवरण राजरत्नाकर में हमें मिलता है। समर भूमि में ही उन्होनें जीवन दान किया था। यह युद्ध किसके साथ हुआ है। यह कहना मुश्किल है।

कालांग का विवरण   कालांग —कार्मुक नन्दन कालांग विशेष बलशाली और गदायुद्ध विशारद थे। उनके अत्याचारों से परेशान बहुत से लोागें ने राज्य का त्याग किया और दूसरे राज्य में चले गये।

महाराज भीषण का विवरण   भीषण —कालांग के पश्चात उनका पुत्र भीषण राज्याधिकारी बने। वे वीरत्व में पिता के समान होने पर भी राज्य पालन में पितृ स्वभाव के विपरीत थे। दया दाक्षिण्य आदि सद्गुणों से वे युक्त थे। पिता द्वारा अत्याचारित और देशान्तरित प्रजाओं को उन्होनें पुनः प्रतिष्ठित किया था। दीर्घ दिनों तक यश के साथ राज्य शासन करके वार्द्धक्य आने पर एक दिन अपनी भवलीला उन्हें भी समाप्त करनी पड़ी।

भानुमित्र का विवरण   भानुमित्र —भीषण नन्दन भानुमित्र सद्गुणान्वित, सद्चरित्र, विद्वान एवं दयालु स्वभाव के थे। उनके शासन काल में राज्य धन धान्य समन्वित एवं शान्ति पूर्ण था।

चित्रसेन का विवरण   चित्रसेन —भानुमित्र के पुत्र महाराज चित्रसेन वीर, धीर, दयालु एवं प्रजा रंजक राजा थे। उन्होनें अपने पड़ोसी राज्य को अपने बाहुबल से परास्त कर अपने आधीन कर लिया था। महाराज चित्रसेन ने अपने वार्द्धक्य में पुत्र को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर वन गमन कर योग साधना में प्रवृत हो गये। कहा जाता है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्री भगवान का दर्शन लाभ किया था और अन्त में बैकुण्ठ धाम में गमन किया।

प्रथमलहर—103

चित्ररथ का विवरण
चित्ररथ —ये महाराज चित्रसेन के पुत्र थे। इनके शासनकाल में प्रजाओं को कभी कर भार से पीड़ित होना नहीं पड़ा। ये शौर्यशाली, दयावान, धीर, विद्वान एवं विविध सद्‌गुणों से अलंकृत थे। सदा देव—धर्म श्रद्धावान एवं सदा यज्ञानुष्ठान में रत रहते थे।

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इन्होंने गमन किया था। राजरत्नाकर का भी यही मत है। यह मत जो भ्रम—युक्त है, ग्रन्थ भाग में यह प्रदर्शित किया गया है।

महाराज चित्ररथ के सुशीला नाम की महिषी के गर्भ से क्रमानुसार चित्रायुध, चित्रयोधि और दैत्य नाम के तीन पुत्रों का जन्म हुआ। कुछ दिनों पश्चात महाराज चित्ररथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र चित्रायुध को राज्याधिकारी बनाकर पंचत्व को प्राप्त किया।

चित्रायुध का विवरण
चित्रायुध— महाराज चित्रायुध वीर, धीर एवं प्रजारंजक नरपति थे। प्रतिनियत समरांगण में रहना और परराष्ट्र विजय उनके जीवन का प्रधान व्रत था। अमित क्षात्र वीर्य ने ही उन्हें अकाल में ही काल ग्रसित कर दिया। अपने अनुज चित्रयोधि के साथ समर भूमि में ही प्राण त्याग करना पड़ा था।

दोनों ज्येष्ठ्य पुत्रों के परलोक गमन के पश्चात राजमाता सुशीला शिशु पुत्र दैत्य को लेकर एक विपद सागर में ही जैसे उनको डूबना पड़ रहा था। उन्होनें सोचा, शत्रुओं के बीच राजाहीन राज्य में आत्म रक्षा और शिशु पुत्र की रक्षा करना असम्भव होगा। अतः राज महिषी और राजमाता होकर भी आश्रयहीन की तरह शिशु पुत्र को छाती से लगाकर गोपनीयता के साथ राज्य त्याग किया और गौतमाश्रम में जाकर फल मूलादि खाकर जीवन निर्वाह करने लगी।

एक समय दैत्य ने अकेले जंगलों में घूमते हुए उस घनघोर जंगल में एक मन्दिर में जाकर कालिका देवी का दर्शन लाभ किया और भक्ति के साथ देवी की अर्चना की। इसके थोड़े समय के पश्चात वहां अश्वस्थामा के साथ उनकी मुलाकात हुई और उनके यहाँ इन्होनें धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त की। इस महापुरुष के उपदेशानुसार दैत्य ने पृथुराज की अर्चना कर विजय पताका अर्जन किया।(1) इसके पश्चात वे पितृ राज्य लौट आये थे।

(1) पुनश्च त्रिपुर राज्यं लब्धुं भुपात्मजाय सः।
समादिदेश दैत्याय पृथुराजस्य पूजनम्।।
द्रौण्यादिष्ट विधानेन गिरिमध्येऽप्याथार्चयत्।
अभीष्ट पूर्वकं दैत्यः पृथुराजं प्रयत्नतः।।
पुजायित्वा पताकान्त विजयां लब्धांस्तदा।
ततो गेहे समागम्य सर्वं मात्रेन्यवेदयेत्।।

राजरत्नाकर दक्षिण विभाग, द्वितीय सर्ग।146—148 श्लोक

राजरत्नाकर में भगवद्‌रहस्य के गौतम गालव संवाद में इस घटना का उल्लेख है। दैत्य के पश्चात भी किसी किसी त्रिपुरेश्वर के आने वाले अमंगल की आशंका से पृथुराज की अर्चना कर विजय पताका धारण किया था। स्वर्गीय महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादुर ने पृथ्वी राज्य की अर्चना की थी।

प्रथमलहर–104

महाराज दैत्य का विवरण दैत्य –अमात्य वर्ग राज कुमार के अनुसंधान में लगे हुए थे एवं उनके आगमन तक प्रतिपक्ष से किसी तरह राज्य की रक्षा कर रहे थे। अकस्मात् राजपुत्र के आगमन से सभी को आनन्द हुआ एवं प्रजावर्ग ने उनको आदर से ग्रहण किया था।

दीर्घ दिनों तक राज्य अराजक अवस्था में था, पार्श्ववर्ती किरातों को अधिकांश राज्यांश हड़प लेने का सुअवसर मिला था। महाराज दैत्य को पितृ सिंहासन पर बैठने पर उन्होनें राज्याशों का उद्धार किया एवं आसाम एवं मल्ल देश आदि प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर राज्य की नींव को सुदृढ़ कर लिया। महाराज दैत्य ने चेदीश्वर की दुहिता मांड़वी का पाणिग्रहण किया। मांड़वी के गर्भ से त्रिपुर नामक पुत्र का जन्म हुआ। दीर्घ काल राज्य सुख भोग करने पश्चात पुत्र त्रिपुर के हाथों में राज्यभार सौंप वानप्रस्थाश्रम का आश्रय लिया।

महाराज दैत्य के शासन काल में किरात प्रदेश में उनका शासन सुदृढ़ हो उठा था। इसके बाद बहुत से घात प्रतिघातों को सह कर भी इस प्रदेश का शासन पुरुष परम्परा से अक्षुण्ण रह गया था। दैत्य के विवरण को लेकर राजमाला की रचना आरम्भ होने पर भी ग्रन्थ भाग में उनका नाम मात्र उल्लेख किया है। उनका विवरण ज्यादा उपलब्ध भी नहीं है।

महाराज त्रिपुर का विवरण त्रिपुर –दैत्य के पश्चात महाराज त्रिपुर ने राज्य भार सम्भाला। ये अत्यधिक उद्धृत, अनाचारी, धर्म द्वेषी एवं प्रजा पीड़क थे। वे अपने को देवता समझते थे। राजा की पूजा के अलावा और किसी देवी देवता की पूजा अर्चना भी बन्द करा दिया। किरातों के संग सहचर्य से उनकी यह दुर्गति हुई थी। धर्मद्वेषिता के फलस्वरुप उन्हें असमय में मौत का शिकार होना पड़ा। ग्रन्थ भाग में इसका विस्तृत विवरण दिया जायेगा।

महाराज त्रिपुरा परिवर्ती राजाओं के बारे में राजमाला में जो विवरण दिया गया है, उसके अतिरिक्त और कुछ कहना का उपाय नहीं है। अतएव इस विषय में मुझे यहीं पर सन्तोष करना पड़ रहा है।

त्रिपुरा नामोत्पत्ति के मूल का अनुसंधान बहुत से लोगों का विश्वास है कि महाराज त्रिपुर के समय से ही त्रिपुर के अधिकृत राज्य का नाम त्रिपुरा हुआ है। इसके अलावा त्रिवेग में जन्म के कारण राजा का नाम त्रिपुर हुआ था, बहुत से लोगों का यह भी कहना है। शेष मत का अनुमोदन राजमाला में भी अनुमोदित हुआ है।(1) ये सभी मत

---

(1) त्रिवेगेते जन्म नाम त्रिपुर राखिल।
"राजमाला" प्रथम लहर 6 पृष्ठ।

हिन्दी– "त्रिवेग में जन्म नाम रखा त्रिपुर।"

प्रथमलहर—105

परित्याज्य नहीं है। फिर भी सम्यक रुप से ग्रहणीय नहीं है। इस बारे में थोड़ी आलोचना की भी आवश्यकता है।

यह बात स्पष्ट समझ में आती है कि द्रुहयु के संतानो के द्वारा अधिकृत राज्य का नाम त्रिपुरा होने के पहले उस प्रदेश का नाम ''किरात भूमि'' के नाम से प्रख्यात था।(1) कुछ लोगों का मत है टलेमि के कथित किरादिया एवं किरात देश या त्रिपुर राज्य अभिन्न है।(2) इस किरात राज्य नाम किस समय और किस कारण से त्रिपुरा नाम पड़ा था, इस विषय में परस्पर विरुद्ध भावपन्न अनेक मत प्रचलित है। कैलाश बाबू के अनुसार त्रिपुरा भाषा में पानी को ''तुई'' कहते हैं। यही ''तुई'' शब्द के सहित ''प्रा'' शब्द के योग से ''तुईप्रा'' शब्द निष्पन्न हुआ है। इससे ही क्रमशः तिप्रा, तृपुरा, त्रीपुरा और त्रिपुरा शब्द की उत्पत्ति हुई है।(3)उनके अनुसार, ''प्रा'' का अर्थ समुद्र है एवं समुद्र के उपकुलवर्ती होने के नाते ''तुईप्रा'' नाम हुआ था। यह कैलाश बाबू का स्वकार्य गवेष्णा है, दूसरे किसी प्रमाण पर आधारित नहीं है। विश्वकोष सम्पादक महाशय का सिद्धान्त भिन्न रुप है। मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण और वामन पुराण में ''प्रवंग'' कहा गया है।(4) विश्व कोष के अनुसार यह स्थान त्रिपुर का अंश मात्र है।(5) इस वाक्य का आधार क्या है? यह कहना बहुत मुश्किल है। अतएव यह मत ग्रहण योग्य है या नहीं, यह भी कहना मुश्किल है। यह सभी मत ग्रहणीय है या नहीं यह भी निर्णय करना कठिन है।

महाराज त्रिपुर का नाम ही से त्रिपुरा नामकरण ही मूल सूत्र नहीं है। राजरत्नाकर के वाक्य द्वारा जाना जाता है कि त्रिपुर के जन्म के पहले से ही किरात देश के अंश विशेष का नाम त्रिपुरा था और उस देश में जन्म हेतु महाराज दैत्य

---

(1) तप्तकुंड समारभ्य रामक्षेत्रान्तक शिवे।
किरात देशो देवेशि विन्ध्यशैलेऽवतिष्ठति।।

(2) ढाका का इतिहास 2 रा खण्ड। प्रथम अध्याय पांचवां पृष्ठ।

(3) कैलाश बाबू की राजमाला उपक्रमणिका 2—3 पेज

(4) मार्कण्डेय पुराण 57 / 43, मत्स्य पुराण 113, 44
कुर्म पुराण 13 / 44

(5) विश्व कोष — आर्यावर्त्त शब्द देखियेगा।

ने अपने पुत्र का "त्रिपुर" नाम रखा था।(1) फिर भी समग्र राज्य के नामकरण के बारे में त्रिपुर के नाम का सम्बन्ध है— यह हम बाद में चर्चा करेगें।

त्रिपुरा नाम का प्राचीनत्व गहरे ध्यान से शास्त्र ग्रन्थ और इतिहास की आलोचना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान त्रिपुर राज्य त्रिपुर और त्रिपुरा दोनों ही नामों से परिचित था। और यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि त्रिपुर और त्रिपुरा शब्द आधुनिक नहीं हैं। परन्तु यह शब्द सर्वत्र ही देश वाचक रुप से व्यवहृत नही होता है। वेदो में, ऐतरेय, कोषितकि, गोपथ, शतपथ, प्रभृति ब्राह्मण ग्रन्थों में एवं मैत्रेयानी, काठक और तैत्तिरीय आदि संहिता ग्रन्थों में "त्रिपुर" नाम का उल्लेख है। किन्तु यह देश का नाम नहीं है। इसके द्वारा असुरों के पुरत्रय को उद्‌देश्य करके कहा गया है। पौराणिक युग में रामायण, श्रीमद्‌भागवत् और हरिवंश आदि ग्रन्थों में एवं महाभारत के किसी किसी अंश को त्रिपुर शब्द पूर्वोक्त अर्थ में ही व्यवहृत हुआ है। फिर महाभारत में ही देश वाचक "त्रिपुर" शब्द भी आता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

1. त्रिपुरं स्ववशे कृत्वा राजानममितौ जसं।
निजग्रह महाबाहस्त्वरसा पौरवेश्वरः।।
सभापर्व 31वाँ अध्याय 60 श्लोक।

2. द्रोणादनंतरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मागधैश्च कलिंगैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते।।
प्रागजोतिषादनुनृपः कोशल्योहय वृहद्वलः।।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः।
भीष्म पर्व 87 अध्याय 8—9 श्लोक।

3. पूर्वां दिशां विनिर्जित्य वत्सभूमि तथागमत्।
वत्सभूमिः विनिर्ज्जित्य केरलीं मृत्तिकावतीं।।
मोहनं पत्तनन्चैव त्रिपुरां कोशलां तथा।
एतान् सर्वान् विनिर्ज्जित्य करमादाय सर्वशः।।
दाक्षिणां दिशमास्थाय कर्णोजित्वा महारमाण।
वन पर्व 253 अध्याय 9—11 श्लोक।

---

(1) महाराज दैत्य के पुत्र लाभ के विषय में राजरत्नाकर में लिखा है—
माण्डव्या गर्भ संभूतः पुत्र एको धरापते।
वभूव त्रिपुरायान्तु जनना त्रिपुरेश्वरं
नामचक्रे महाराजो राज्या नामनुसारतः।
राजरत्नाकर दक्षिण विभाग द्वितीय अध्याय।

<u>प्रथमलहर–107</u>

त्रिपुरा का अवस्थान निर्णय उद्धृत श्लोकों में आया ''त्रिपुर'' अथवा ''त्रिपुरा'' शब्द देशवाचक है। और इस तरह के और भी बहुत से श्लोक हैं, उन्हें संयोजन करना निष्प्रयोजन है। इसी त्रिपुरा के अवस्थान को लेकर नाना व्यति नाना तरह की बातें करते हैं। किसी किसी के मत से इसका अवस्थान दक्षिण पथ में है तो किसी के अनुसार यह मध्यभारत में था। त्रिपुरा शब्द वर्तमान त्रिपुर राज्य के प्रति प्रयुक्त करने की असम्मत है। किन्तु प्रागज्योतिष, मेकल आदि के साथ त्रिपुरा का नामोल्लेख हुआ है, इसे त्रिपुरा राज्य कहकर ही संबोधन करना युक्त संगत है। इस विषय में हम पहले ही आलोचना कर चुके हैं।(1) यहाँ पर केवल एक प्रमाण ही आवश्यक प्रतीत होता है।

भविष्य पुराण के ब्रह्म खण्ड में है–

वरेन्द्र ताम्रलिप्तन्च हेड़म्बम णिपुरकम्।
लौहित्य स्त्रैपुरं चैव जयंताख्यं सुसंगकम्।।

लौहित्य ''ब्रह्मपुत्र'' हेड़म्ब, मणिपुर, जयन्ता(जयन्तिया) एवं सुसंग के साथ त्रिपुरा नाम आता है। यह सभी स्थान त्रिपुरा राज्य के खूब करीब थे। इस अवस्था में भी क्या श्लोक के त्रिपुरा को दक्षिणात्य में या मध्य भारत में स्थित है कहना होगा? असल में इस श्लोक का त्रिपुरा और महाभारत में त्रिपुरा अभिन्न है। उसकी गम्भीरता से आलोचना करने पर कोई सन्देह नहीं रह सकता। इसके द्वारा त्रिपुरा नाम का प्राचीनत्य ही सूचित होता है।

बराहमिहिर कृत 'बृहत संहिता'' में जो भौगोलिक विवरण मिलता है, उसमें भी त्रिपुरा नाम का उल्लेख मिलता है। किसी किसी के मत से यह विवरण पराशर के ग्रन्थ से लिया गया है। पराशर अति प्राचीन काल के ऋषि थे। अब तक उनके अर्विभाव का काल निर्णीत नहीं हो पाया है। वे जो ईशा से पूर्व शतक के थे, इसे बहुत से पण्डितों ने स्वीकार कर लिया है। **Weber** आदि प्रमुख प्रत्नतत्वविदों ने भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं।(2) इसके अलावा इतिहासकार **Kerm** ने भी इसकी प्राचीनता के बहुत से प्रमाण भी प्रदर्शन किये है।(3) इसे प्राचीन ऋषि वाक्य को आधार मानकर

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 169
(2) **Inidoche Liter P. 225.**
(3) **Kerm – Oeschichte. Vol- IV.**

प्रथमलहर–108

ईस्वी छठवीं सदी के प्रारम्भ काल में बराहमिहिर ने कहा है–

आग्नेयां दिशि कोशल कलिंग वंगोपबंग जठरांगाः।
कैलिंग विदर्भ वत्सान्ध्र चेदिकाश्चोर्धकाठाश्च।।
वृषनालिकेय चर्म द्वीपा विन्ध्यान्तवासिन स्त्रीपुरी।
श्मश्रुधर हेमकुट्य व्यालग्रीवा महाग्रीवाः।।

बृहत संहिता चतुर्थ अध्याय 8–9 श्लोक।

श्लोकोक्त– विन्ध्यगिरि काछाड़ और श्रीहट्ट जिला के विशाल क्षेत्र को लेकर यह देश विराजमान है। इस विषय की आलोचना इस ग्रन्थ के पहले कर चुके है।(1) इस पर्वत वाहिनी बरबक्र(बराक) नदी काछाड़ एवं श्रीहट्ट जिले का भी प्रधान नदी के रुप में प्रसिद्ध प्राप्त कर चुके हैं।(2) ग्रीबा पीठ श्रीहट्ट की तीर्थ भूमि है। विन्ध्याशैल, व्यालग्रीबा और महाग्रीबा के साथ त्रिपुर राज्य के नामोल्लेख होने से, यह सारे स्थान के आज के त्रिपुर राज्य में है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। इसके द्वारा भी त्रिपुरा नाम का प्राचीनत्व लक्षित होता है।

तन्त्र ग्रन्थ में भी त्रिपुरा का नाम है। यह इस प्रकार है।

त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरासुन्दरी।
भैरव स्त्रीपुरेशश्च सर्व्वाभिष्ट प्रदायकः।।

पीठ माला तन्त्र।

अन्यत्र भी है–

त्रिपुरायां दक्षपादो देवता त्रिपुरा माता।
भैरव स्त्रीपुरेशश्च सर्व्वाभिष्ट फलप्रदः।।

तन्त्र चूड़ामणि।

इस तरह के वचन और भी संग्रह किए जा सकते हैं। वह त्रिपुरा जो वर्तमान त्रिपुरा राज्य है, पीठ देवी त्रिपुरासुन्दरी इसके समुज्ज्वल प्रमाण स्वरुप विद्यमान है। उद्धृत इन श्लोकों द्वारा यह स्पष्ट प्रमाण होता है कि पीठ प्रतिष्ठा के पहले से ही इस स्थान का नाम 'त्रिपुरा' था। किस समय और किस कारण से यह नाम प्रचलित हुआ है, यह निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है। इतिहास इस विषय में मौन साधे हुए है।

ज्योतिषतत्वधृत कुर्मचक्र के वचनों से एवं चैतन्य भागवत्, कविकंकण चंडी और क्षितिष वंशावली प्रभृति आधुनिक बहुत से ग्रन्थों में त्रिपुरा नाम का उल्लेख मिलता है। इसके द्वारा भी वर्तमान त्रिपुर को ही कहा गया है।

---

(1) राजमाला प्रथम लहर 86

(2) विन्ध्यपाद समुद्भूतो बरवक्र सुपुण्यदः।
वायु पुराण।

प्रथमलहर—109

राज्य का नाम त्रिपुरा होने का कारण सारे विवरण की आलोचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि किरात देश में बहने वाली गोमती नदी के किनारे के भूभाग को, चाहे किसी अज्ञात कारण से ही हो, इतिहास के अगोचर काल से त्रिपुरा नाम प्राप्त है। वहीं पर पीठ की प्रतिष्ठा होने से ''त्रिपुरा'' नाम की विशेष ख्याति हो गई थी। उसी सूत्र के आधार पर पीठ देवी का नाम भी ''त्रिपुरा देवी'' या त्रिपुरासुन्दरी पड़ा। इसके बाद महाराज त्रिपुर के शासन काल में पीठ स्थान के नाम की मर्यादा के लिए अथवा अपने नाम को स्मरणीय करने के अभिप्राय से उनके अधिकृत सभी राज्यों का नाम त्रिपुरा ही रखा था। यही निर्धारण किया जा सकता है, त्रिपुर के धर्म के प्रति अनास्था की बातें सोचने पर यही प्रतीत होता है कि पीठ देवी के नाम को अधिक अपने नाम को उजागर करना ही शायद उसका मुख्य लक्ष्य रहा होगा। इससे अधिक कहने योग्य कोई सूत्र नहीं मिलता है।

किरात देश में आर्य मिलाप का निदर्शन किरात देश(त्रिपुरा) के साथ आर्य संश्रव होना कितने दिनों से हैं यह इतिहास के भी अगोचर है। प्राचीन निदर्शनादि भी आलोचना से जाना है कि द्रुहयु वंशजों के आगमन के समय से आर्य अध्युषित होने पर भी इसके बहुत पहले ही से आर्य संश्रव वहाँ हुआ था। रघुनन्दन, वेतलिंग शिव, खोई शिव एवं चन्द्रशेखर आदि पर्वत तथा श्रृंग के नाम, गोमती, मनु, कर्ण फूली, देउगांग लक्ष्मी, पावनी आदि नदी और शाखा का नाम, कैलाशहर, ऋष्यमुख आदि जगहों के नाम द्वारा प्राचीन आर्य संश्रव ही सुजित् होता है। देवता मुडा, ब्रह्म कुन्ड, चट्टल—पीठ, त्रिपुरा—पीठ, कामाख्या—पीठ, उनकोटि—तीर्थ, सीताकुन्ड और आदिनाथ तीर्थ इत्यादि आर्य संश्रय के ही ज्वलन्त निदर्शन है। मनु आश्रम, कपिल आश्रम आदि के नाम भी यहाँ उल्लेख योग्य हैं। इन निदर्शनों से यह स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है कि प्राग—ऐतिहासिक युग में उत्तर में काछाड़ से लेकर दक्षिण में बंगोपसागर की गोद में द्वीप समूहों तक फैले विशाल भूभाग आर्य संस्पृष्ट एवं शैव और शाक्त धर्म का केन्द्र स्थल हो गया था। किरात भूमि के कुछ अंशों का इस युग में त्रिपुरा नाम से आख्या होना कोई विचित्र बात नहीं है।

शैव धर्म का प्रभाव द्रुहयु वंश का आवास भूमि में परिणत होने के बाद भी उस प्रदेश में शैव धर्म का प्राधान्य था। महाराज त्रिपुर के निधन और त्रिलोचन का विवरण ही इसका साक्ष्य प्रदान कर रहा है। त्रिपुरा के कुलदेवता(चतुर्दश देवता) प्रतिष्ठा के मूल है महादेव। राजमाला के अनुसार शिव के आज्ञा से ही यह सभी देवता यहाँ प्रतिष्ठित हुए हैं। चतुर्दश देवताओं में महादेव ही प्रथम देवता है। चतुर्दश देवता के बीच में बूढा देवता ''शिव'' महाकाल जिसे कहा जाता है कि वे शिव ही है। सब के बीच में महाकाल

प्रथमलहर–110

मूर्ति में खड़े होकर सर्वोपरि प्रभाव विस्तार कर रहे है। यह शैव धर्म का प्राधान्य व्यंजक है। किन्तु उस समय अनार्य समाज में सर्वथा भाव से आर्य प्रभाव के प्रविष्ट होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस प्रभाव के विशाल पैमाने पर फैलाने में सुदीर्घ समय लगा था। इस समय भी किसी किसी पार्वत्य आदिम जाति में आदि धर्म विश्वासी और उनके प्राचीन आचार विचार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। किसी किसी जाति ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया है और कुछ वैष्णव मतावलम्बी हुए थे। इस समय ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से किसी किसी जाति में ईसाई धर्म ग्रहण करने का एक झोंक दिखाई देता है। इसका विस्तार से वर्णन हम दूसरे लहर में करेगें। इसके प्रतिकार के लिए त्रिपुरेश्वर एवं मणि पुराधिपति की सदय दृष्टि की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

धर्म समन्वय संबन्धी का विवरण

महाराज त्रिलोचन के समय से शैव धर्म के साथ शाक्त और वैष्णव धर्म का समन्वय हुआ था। चतुर्दश देवता ही इसके प्रमाण है। त्रिपुरेश्वर गण बाद में वैष्णव धर्मावलम्बी होने पर किसी भी समय धर्म के विषय में उन्होनें साम्प्रदायिकता का पोषण नहीं किया। हिन्दुओं के सभी प्रकार के धर्माचरण को वे लोग श्रद्धा के साथ पालन करते आये हैं। इसके अलावा मुहम्मदीय, ईसाई और बौद्ध आदि सभी धर्मो को वे पोषण करते है। इसे राजा का एकान्त कर्तव्य समझ कर विश्वास करते है। इसके बहुत से दृष्टान्त विद्यमान है।

ब्राह्मणों के अभाव की वजह से कष्ट

सगर द्वीप और सुन्दरवन से किरात देशों में आगमन के पश्चात त्रिपुरा राजवंश को कुछ दिनों तक ब्राह्मणों के अभाव की वजह से कष्ट भोग करना पड़ा था। प्राचीन काल में क्षत्रिय लोग राज्य विस्तार के उद्देश्य से नाना स्थानों पर उपनिवेश स्थापित करते थे। किन्तु वे लोग नवविजित प्रदेश में सुप्रतिष्ठित होने के पहले ब्राह्मण समाज वहाँ जाने के लिए सम्मत नहीं होते थे। इसी वजह से धर्म कार्य के विलोप के कारण बहुत से क्षत्रिय पतित एवं विभिन्न धर्मावलम्बी हो गये।(1) त्रिपुरेश्वरों की ठीक एक ही अवस्था नहीं होने पर भी दण्डियों के अलावा अन्य ब्राह्मणों का अभाव एवं इसी कारण धर्म और नीति के विषय में

---

(1) इस बारे में महर्षि मनु ने कहा है–

शनैकस्त क्रिया लोपात् ईमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्व गता लोके ब्राह्मणदर्शनेन च।।

मनुसंहिता–10 / 53

<u>प्रथमलहर–111</u>
अवनति हुई थी, यी जाना जाता है। महाराज दैत्य के पुत्र त्रिपुर चरित्र ही इसका सुस्पष्ट प्रमाण है–
राजमाला में है–

जन्मावधि ना देखिलो द्विज साधुधर्म।	जन्मावधि न देखा द्विज साधु – धर्म।
सेई हेतु त्रिपुर होइलो क्रूर कर्म।।	इसलिए त्रिपुर हुआ क्रूर कर्म।।
दान धर्म ना देखिलो आगम पुराण।	दान धर्म न देखा, न देखा आगम पुराण।
वेद शास्त्र न पठिलो नाहि कोनो ज्ञान।।	वेद शास्त्र पढा नही, नहीं कोई ज्ञान।।
इत्यादि	इत्यादि

ब्राह्मण उपनिवेश का सूत्रपात

इस उक्ति के द्वारा ब्राह्मणों का अभाव स्पष्ट ही प्रमाणित होता है। उन दिनों दण्डी लोग ही इनके पुरोहित का काम करते थे। जाति और धर्म की रक्षा किये थे। किन्तु त्रिपुरा के नरपतियों को यह अभाव भोग, ज्यादा दिनों तक करना नहीं पड़ा। त्रिपुर के पुत्र त्रिलोचन के समय से ही राज्य में ब्राह्मणों के उपनिवेश का सूत्रपात हुआ था। राजमाला के त्रिलोचन खण्ड में लिखा है–

सुख्याति सुनिया आसे नानादेशी द्विज।	सुख्याति सुन आये नानादेशी द्विज।
ताहाते शिखिलो विद्या जतो पाई बीज।।	उसने सीखा विद्या चाहे जितना मिले बीच।।

इसके बाद क्रमशः ब्राह्मणों का उपनिवेश बढ़ने के बहुत से प्रमाण राजमाला में हमें मिलते है। इस समय से यहाँ के राजन्य वर्ग को दान और यज्ञादि धर्म कार्यानुष्ठान द्वारा विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। उसी स्मरणातीत काल से निर्मल रुप से वह धर्म स्त्रोत आज तक अक्षुण्ण रुप से प्रवाहित हो रहा है।

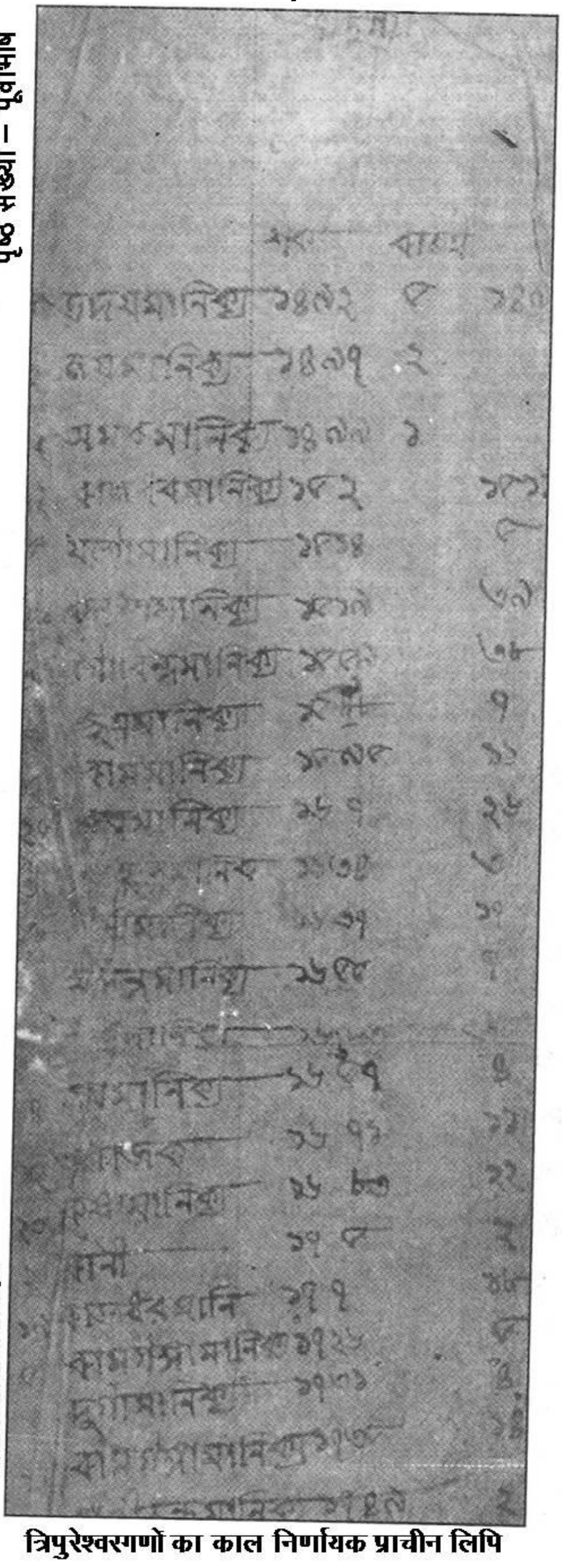
राजन्य वर्ग का काल निर्णय करना दुःसाध्य

प्राचीन राजन्य वर्ग का काल निर्णय करना एक असाध्य विषय है। बहुत कोशिश के बावजूद कोई सूत्र नहीं मिला। बाद के कुछ राजाओं के, समय निर्णायक एक प्राचीन तालिका(सूची) अगरतल्ला स्थित उजीर(वजीर) भवन में मिली है। उसकी आलोचना से यह जाना जाता है कि उस समय अंक की एक विशेष प्रणाली प्रचलित थी। दो अंकों के बीच शुन्य(0) को लिखा नहीं जाता था। शुन्य(0) की तरह किंचित फाँक रखा जाता था। यहाँ पर संयोजित सूची की प्रतिकृति में देखा जायेगा कि महाराज राजधरमाणिक्य के सिंहासन प्राप्ति 1502 शक की जगह ''15 2'' है। रत्नमाणिक्य के राज्याभिषेक का काल 1607 शक की जगह ''16 7'' है। महारानी जान्हवी महादेवी का शासन काल 1705 शक की जगह ''17 5'' और महाराज राजधरमाणिक्य(दूसरे) के राज्य प्राप्ति का काल 1707 शक की जगह ''17 7'' अंक लिखा गया है। प्राचीन शिलालिपि एवं इष्टक में भी यही प्रणाली के अंक के उत्कीर्ण होने का प्रमाण मिलता है। यही हुआ दो अंक की मध्यवर्ती शून्य व्यवस्था

प्रथमलहर—106

(Pratham leher-6-112) चित्र

पृष्ठ संख्या – पूर्वाभाष



राजमाला प्रथम लहर

त्रिपुरेश्वरगणों का काल निर्णायक प्राचीन लिपि

अंक की मध्यवर्ती शून्य व्यवस्था। शेष (अंतिम) अंक के दक्षिण में शून्य रहने पर फांक देने की सुविधा नहीं है। इस जगह शून्य(0) न लिखकर क्रास चिन्ह(X) लिखा जाता था। त्रिपुरा के भूतपूर्व सर्वे सुपरिटेन्डेन्ट स्वर्गीय चन्द्रकान्त वसु महाशय द्वारा संग्रहीत प्राचीन इष्टक फ़लक में '1490' शक की जगह ''149X'' उत्कीर्ण किया गया था। त्रिपुरा के अंकपात में कुछ दिनों तक यही नियम चला था। जो लोग इस नियम से अवगत नहीं थे, उनके लिए बहुत जगहों में इन सारे अंको को देखकर असली समय निर्णय करना निश्चय कष्टसाध्य होगा, इसलिए बताना सही लगा।

त्रिपुरा में हालाम जाति का प्राधान्य — जन प्रवाद में जाना जाता है कि किरात देश में द्रुहयु वंशज द्वारा अधिकृत होने से पहले हालाम जाति उस प्रदेश के अधिनायक थे। इस प्रवाद की सत्यता ज्ञापक निदर्शन बहुत से है। अतएव यह अविश्वास नहीं किया जा सकता।

त्रिपुर दरबार में हालाम भाषा के बहुत सारे शब्द गृहीत हुए हैं। प्राचीन राजाओं के नाम और उपाधि में हालाम भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। इस सारे विषय को उस प्रवाद के पोषक प्रमाण कहकर ग्रहण किया जा सकता है। आज के राजदरबार में हालाम लोगों के जो सम्मान और प्रतिपत्ति के जो निदर्शन मिलते हैं वे इस जाति के अतीत गौरव की शेष निशानी लगता है।

प्रजा का प्रधान्य — पुराकाल में हर जगह राजा के उपर प्रजा का बहुत प्रभाव था। नवीन भूपति के राज्याभिषेक के समय प्रजा का अभिमत लेना आवश्यक था। बाल्मिकि रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् और अद्भुत रामायण इत्यादि ग्रन्थों में इस तरह के दृष्टान्तों की कमी नहीं है। राजस्थान के इतिहास में प्रजा का प्रधान्य का बहुत निदर्शन है। त्रिपुर राज्य में पुराने समय में यह प्रथा प्रचलित थी। राजमाला के प्रथम लहर में मिलता है कि महाराजा त्रिलोचन, अमात्य और राज्य के प्रधान व्यक्तियों के अभिमत से सिहासन पर बैठा था। मुचुं फा का भाई साधुराय ने प्रजा के अभिमत से राज्यलाभ किया था। अमात्यवर्ग के द्वारा प्रतापमाणिक्य की हत्या के बाद मुकुटमाणिक्य ने सिंहासन प्राप्त किया था। राजमाला के बाद के लहर में ऐसे बहुत सारे उदाहरण हैं, वे एक एक करके पता लगेगा।

पारिवारिक प्रथा — त्रिपुर राजपरिवार में प्रचलित सारे प्रथा के जो विवरण ग्रन्थ भाग में दिये गये हैं उनके अलावा दो एक प्रथा का उल्लेख करना

प्रथमलहर—114

आवश्यक है। महाराज त्रिलोचन के जन्म विवरण से जाना जाता है।

दशमास अतीते जन्मिल त्रिलोचन।	दशमास के बाद जन्में त्रिलोचन।
परम उत्सव होइलो किरात भवन।।	परम उत्सव हुआ किरात भवन।।
X X X	
यथाविधि कुलमते सप्तदिन गेलो।	यथाविधि कुल प्रथा में बीता सप्त दिन।
पात्र मन्त्री सैन्य सबे देखिते आसिलो।।	पात्र मन्त्री सैन्य सभी आये करने दर्शन।।
राजमाला प्रथम लहर 17 पेज।	राजमाला प्रथम लहर 17 पेज।

इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में शिशु जन्म के सप्तम दिवस पर कुल प्रथानुसार एक उत्सव किया जाता था। इस उत्सव का निदर्शन राज परिवार के अलावा अन्यत्र भी मिलता है। मयनामती के गीतों में पुत्र जन्म ग्रहण कर लेने के सातवें दिवस में ''सादिना'' उत्सव का उल्लेख है।

त्रिपुर राज परिवार और दो एक प्रथाएँ बहुत प्राचीन काल से चली आ रही हैं। ये लोग नाना कार्यों में नाना तरह से अर्द्धचन्द्र चिन्ह व्यवहार करते हैं। चतुर्दश देवता के हर मस्तक पर अर्द्धचन्द्र से सजाया गया है। त्रिपुरा के प्राचीन इष्टक में, मन्दिर की दीवार में, राज चिन्ह में अर्द्धचन्द्र विराजित है। यह चन्द्रवंश का ज्ञापक चिन्ह है।

पूर्वाभाष अतिरिक्त मात्रा में दीर्घायित करके भी सभी बातें कहने का सुयोग नहीं हुआ। पाठकवर्ग की धैर्य—च्युति के भय से इस बार यहीं तक कहा गया। परवर्ती लहर समूह में क्रमशः अवशिष्ट विवरण प्रदान करने की आशा रखता हूं।

श्रीकाली प्रसन्न सेन।

प्रथमलहर–115

सूची पत्र

मंगलाचरण 1–3
प्रस्तावना 3–4

ग्रंथारंभ

ययाति का विवरण 5–6

दैत्य खण्ड

दैत्य का विवरण(6), त्रिपुर का विवरण(6), आर्यावर्त और तीर्थ समूहों का विवरण(7), त्रिपुर वंश का आख्यान(8)।

6–10

त्रिपुर खण्ड

त्रिपुर का चरित्र(10), शिव का आविर्भाव व त्रिपुर संहार (11), राज्य की दुरावस्था(11), प्रजाओं की शिव आराधना(12), शिव का वर प्रदान(12), चतुर्दश देवता की पूजा विधि(15), त्रिलोचन का जन्म(17), त्रिलोचन का राज्यभिषेक(18)।

10–19

त्रिलोचन खण्ड

विवाह प्रसंग(19), त्रिलोचन का पुत्र, हेड़म्ब में (24), बारघर त्रिपुरा(25), चतुर्दश देवता पूजा(26), देउड़ाई आनयन(28), चतुर्दश देवताओं के नाम(30), त्रिलोचन दिग्विजय(32), त्रिलोचन का हस्तिना गमन(33), त्रिलोचन की स्वर्ग प्राप्ति(34)।

19–34

दाक्षिण खण्ड

भ्रातृ विरोध(34), खलंमा में राजपाट(36), सुरा का प्रभाव(37)।

34–38

तैदाक्षिण खण्ड

राजवंश माला(38), शिक्षराज का राज्य त्याग(40), छाम्बुल नगर में शिवाधिष्ठान(42), मैछिली राज्योपाख्यान(44)।

38–46

प्रतीत खण्ड

प्रतिज्ञा निबन्ध(46), हेड़म्ब और त्रिपुरेश्वर का विरोध(47)।

46–49

युझार फा खण्ड

लिका अभियान(49), रांगामाटी विजय और राज पाट(51), बंग विजय(52), राजवंश माला(53)।

49–54

प्रथमलहर–116

छें थुम फा खण्ड

महारानी की वीरता(55), गौड़ के साथ युद्ध(57), जामाता सेनापति(59), मेहेर कुल विजय(59)। 55–59

डांगर फा खण्ड

कुमारों की बुद्धि की परीक्षा(60), राज्य विभाग(62), रत्न फा गौड में(63)। 60–66

रत्नमाणिक्य खण्ड

माणिक्य ख्याति(66), बंग उपनिवेश(67), रत्नमाणिक्य का स्वर्ग लाभ(69), प्रतापमाणिक्य(69), मुकुटमाणिक्य, महामाणिक्य और श्रीधर्ममाणिक्य(70), पुराण प्रसंग(70)। 66–71

मध्य– मणि(टीका)

राजमाला प्रथम लहर और उसके रचियतागण

बंग भाषा में रचना का प्रारम्भ काल(75), राजावली(75), राजमाला(76), राजमाला के रचियतागण(77), बाणेश्वर और शुक्रेश्वर का परिचय(77), पंडितद्वय का प्रकृत परिचय(79), ब्रह्मोत्र भूमि विवरण(79), राजमाला का प्राचीनत्व(81), राजमाला ही बंगभाषा का प्रथम इतिहास(82), राजमाला राजगणों का इतिहास(82)। 75–83

किरात देश और उनके अवस्थान

राजमाला का मत और पुराण प्रसंग(83), किरात देश का अवस्थान निर्णय(83), किरात देश की विस्तृति(83), किरात देश आर्यावर्त्त के अन्तर्भूक्त है या नहीं ?(87)। 83–88

पारिवारिक कथा

राजा समाज के अधीन नहीं है(88), त्रिपुर ख्याति(89), ''फा'' उपाधि(90), वैवाहिक विवरण(91), बहु विवाह का प्रश्रय(92), प्राचीन पद्धति अक्षुण्ण रखने का आग्रह(92), राजा रानी का एक नाम(93), राजा और राज परिवार का शिक्षा अनुराग(93), मल्ल विषय चर्चा(94)। 88–95

धर्ममत और धर्माचरण

धर्म मत संबंधीय आभाष(95), धर्म मत के बारे में उदारता(95), छाम्बुल नगर का अवस्थान निर्णय(97), यज्ञ विवरण(98), आदि धर्म फा का यज्ञ और साग्निक ब्राह्मण लाना(99), आदि धर्म फा का ताम्र शासन(100), मैथिल ब्राह्मणों का उपनिवेश स्थापन(101), ताम्र फलक विषयक आलोचना(102), महाराज धर्मधर(105), निधिपति का प्रभाव(105), धर्मधर का यज्ञ(106), धर्मधर

प्रथमलहर–117
का ताम्र शासन(106), साम्प्रदायिक ब्राह्मण श्रेणी की प्रतिपत्ति(108), भ्रमात्मक मत खण्डन(109), आदिशूर के यज्ञ के बारे में मतभेद(111), गौड के ब्राह्मणों का आगमन का समय(111), राजाओं का वानप्रस्थ अवलम्बन(112)।

95–113

शिल्प चर्चा
शिल्प चर्चा का सूत्रपात(113), सुबडाई राजा के द्वारा शिल्पोन्नति(113), राज अन्तःपुर में शिल्प चर्चा(115), अरण्यवासियों की शिल्प चर्चा(116), कांचली का शिल्प नैपुण्य(116), त्रिपुर राज्य में वक्ष आवरणी(चोली) का आदर(116)।

113–118

उत्तराधिकारी निर्वाचन पद्धति
दाय भाग की कथा(119), त्रिपुर राज्य और दाय–भाग(119), पैतृक धन के विभाजन की प्रणाली(120)।

119–120

राज्याभिषेक पद्धति
पूर्व कृत्य कार्य(120), अभिषेक प्रणाली(121), राज चिन्ह धारण और मुद्रा प्रस्तुत(121)।

120–121

पीठ देवी
पीठ प्रतिष्ठा का मूल सूत्र(122), त्रिपुरा में पीठ स्थान(124), त्रिपुरासुन्दरी का मंदिर(124), त्रिपुरासुन्दरी मूर्ति का विवरण(124), सुख–सागर(126), कल्याण–सागर(127), सेवा–पूजा का बन्दोबस्त(128), भैरव लिंग(128), शिव चतुर्दशी का मेला(129), विजय–सागर(129)।

122–129

कुल देवता
महाराज त्रिपुर का अत्याचार और निधन(130), महाराज त्रिपुर के निधन के बारे में राजरत्नाकर का मत(130), चतुर्दश देवता का विवरण(131), चतुर्दश देवता के बारे में भ्रांत मत(132), चतुर्दश देवता का प्राचीनत्व(134), चतुर्दश देवता पहाड़ियों के देवता नहीं हैं(135), चंताई का विवरण(136), देउड़ाई गणों का विवरण(136), चंताई और देउड़ाई पार्वत्य जाति नहीं है(137), श्रीक्षेत्र के पूजकगण(137), चतुर्दश देवता की पूजा विधि(139), खार्ची पूजा(143), केर पूजा(143), केर पूजा का मूल तत्वानुसंधान(144), चतुर्दश देवता का प्रभाव(145), चंताई का प्राधान्य(146), चतुर्दश देवता का सिंहासन(147), आराकान के राजा का प्रदत्त सिंहासन(148), नरबलि(148)।

129–148

प्रथमलहर–118

राज चिन्ह

राज प्रतीक(लांछन)(149), राज प्रतीक का प्राचीनत्व(149), राज चिन्हों के नाम और विवरण(150), राज प्रतीक(लांछन) में व्यवहार किये गये चिन्हों के विवरण(155), पंच–श्री व्यवहार का तात्पर्य(156), प्रवचन (MOTTO)(157), सिंहासन का आकार और प्राचीनत्व(157), सिंहासन की मौलिकता नष्ट नहीं हुई(158), सिंहासन की अर्चना विधि(158), माणिक्य उपाधि(159), माणिक्य उपाधि की प्राप्ति(159), मुसलमानों–प्रदत्त राज चिन्ह(161)।

149–161

राजसूय यज्ञ में त्रिपुरेश्वर

त्रिपुरेश्वर के यज्ञ गमन की कथा(161), महाराज त्रिलोचन का हस्तिना गमन(162), पुरु और त्रिपुर की वंश तालिका तुलना(162), विरूद्धवादियों का मत खण्डन(165)।

161–170

सामरिक बल और समर विवरण

सैन्य संख्या का आभाष(170), सेनानायक(171), राजा के भ्राता सेनापति(171), जामाता सेनापति(172), सेनापति के प्रति देवत्व आरोप(172), रणभेरी(172), युद्धास्त्र(173), आग्नेय अस्त्र का प्रचलन(173), राजा की युद्ध यात्रा(173), महाराज त्रिपुर का अभियान(173), महाराज त्रिलोचन का अभियान(174), दूसरे राजाओं का अभियान(174), बंग देश के प्रति हस्तक्षेप(175), गौडाधिपति के साथ युद्ध का सूत्रपात(175) महारानी की युद्ध यात्रा और विजय प्राप्ति(176), युद्ध का प्रतिपक्ष निर्धारण(176), तुग्रल खाँ और जाज नगर(177), विजित गौडेश्वर का अनुसंधान(177), विजयश्री विभूषिता महारानी का नाम(181), आत्मविरोध व गौरव हानि(182), अभियान और सैन्य चालन(182), अभियान काल की सतर्कता(182), सैनिकों की उश्रृंखलता(183), सेना विभाग में सुरा का प्रभाव(183)।

170–184

राज्य की अवस्था

राजधानी(184), किरात देश का प्रथम राज पाट(184), खलंमा नामक स्थान में राज पाट(184), कैलाशहर में राजपाट(185), त्रिपुर और हेड़म्ब राज्य का व्यवहार(185), नाना जगहों में राजधानी की प्रतिष्ठा(185), उदयपुर में राजपाट(186), डांगर फा द्वारा राज्य विभाजन(186), राज्य विस्तार(187), महाराज त्रिलोचन के शासन काल में राज्य विस्तार(187), त्रिलोचन के पश्चात राज्य का विवरण(187), त्रिपुरेश्वर के साथ गौडेश्वर का युद्ध(188), त्रिपुरा पर्वत के हाथियों का विवरण(188), आत्म विरोध(188), गौड की सहायता ग्रहण(188), रत्न फा के प्रति भ्रातृ वध का अपवाद(189), रत्न फा के सहायक गौडेश्वर(191), शासन तंत्र(193), राजकर(193), बंगाली उपनिवेश(193)।

184–194

राजाओं का काल निर्णय

महाराज त्रिपुर, त्रिलोचन, ईश्वर फा, चन्द्रशेखर, युझार फा, डुगुंर फा, कीर्तिधर, रत्नमाणिक्य और प्रतापमाणिक्य आदि राजाओं का काल ज्ञापक विवरण–

194–196

प्रथमलहर—119

त्रिपुराब्द

त्रिपुराब्द और बंगाब्द का पार्थक्य(197), त्रिपुराब्द के बारे में विद्याविनोद महाशय का मत(197), वीरराज के बारे में प्रचलित मत(198), कैलाशचन्द्र सिंह महाशय का मत(200), परेश नाथ बन्धोपाध्याय महाशय का मत(200), विश्वकोष संकलियता का मत(203), महाराज प्रतीत के बारे में मत(203), श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता का मत(207), अब्द प्रवर्तक के बारे में शेष सिद्धान्त(208)।

197—208

काताल और काकचाँद

काताल और काकचाँद का वास स्थान(209), कैलाशहर में दुर्भिक्ष(209), काताल के परिवार वर्ग की मृत्यु(210), काताल का तालाब(210), काताल की आत्महत्या(210), काकचाँद का तालाब(210), सपरिवार काकचाँद की मृत्यु(210), काताल और काकचाँद का परिचय(211)।

209—211

अगुरू काष्ठ

किरात देश में अगुरू(211), अगुरू वृक्ष का विवरण(212), अगुरू की कार्य कारिता(212), अगरतल्ला के साथ अगुरू का संबंध(213)।

211—213

किरात जाति

किरात जाति के बारे में पाश्चात्य पण्डितों के मत(213), शास्त्र ग्रंथो में किरात का विवरण(214), किरात भूमि का अवस्थान निर्णय(215), किरात जाति की अवस्था(215)।

213—215

हदा के लोग

हदा का विवरण(216), वाछाल(216), सिउक(217), कुइया तुइया(217), दैत्य सिंह(217), हुजुरिया और छिलटिया(217), आपाइया(218), छत्रतुइया(218), गालिम(218), सूबे नाराण(218), सेना(218)।

216—218

राजमाला की उक्तियों के साथ शास्त्र वाक्यों का सादृश्य

सप्तदीप का विवरण(219), अपने प्रति देवत्व का आरोप(220), विष्णु संक्रमण में श्राद्ध(224), गज कच्छप युद्ध(225), यदुवंश ध्वंस का विवरण(228), रण क्षेत्र में कबन्ध दर्शन(231), मंडल(232), देवता का दर्शन(234)।

219—236

राजमाला में आये नाम और स्थान समूहों के विवरण —

237—274

राजमाला में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम और विवरण —

274—296

प्रथमलहर–120

चित्र सूची

01. श्रीश्रीचन्द्रमादेव –मुख पृष्ठ
02. स्व0 महाराज बीरचन्द्रमाणिक्य–मुख पृष्ठ
03. राजमाला का प्रथम पृष्ठ प्रल–18
06. बाणेश्वर छेंगा की भूमि विषयक आदेश लिपि 80
07. धर्म सागर का चित्र 81
08. विवाह वेदी 92
09. स्व0 महाराज रामेश्वर सिंह और स्व0 महाराज राधा किशोरमाणिक्य 96
10. वयन रत कुकी युवतियाँ 116
11. पीठ देवी श्री श्री त्रिपुरासुन्दरी 126
12. श्रीश्री चतुर्दश देवता 131
13. चतुर्दश देवता का प्राचीन मंदिर 134
14. उक्त देवता का आधुनिक मंदिर 135
15. श्रीयुक्त राज चन्द्र चंताई 136
04. राजाओं के काल निर्णायक प्राचीन लिपि प्रल–112
05. किरात युवक गण 18
16., 17. चतुर्दश देवता विग्रह 139–141
18. चतुर्दश देवता का सिंहासन स्थिति ताम्र फलक147
19. चतुर्दश देवता का सिंहासन 148
20. चन्द्रध्वज और त्रिशूलध्वज धारीद्वव 150
21. माई मूरत धारी 152
22. श्वेत छत्रधारी 153
23. आरंगी, ताम्बुलपत्र और पंजाधारी 155
24. राज प्रतीक(लांछन) Coat of Arms 156
25. त्रिपुर सिंहासन 158
26. श्वेत पताका धारी द्वय 158
27. आसा और सोटा धारी 161

मानचित्र

01. सम्राट ययाति द्वारा पुत्रों में विभाजित भारतवर्ष 47
02. प्राचीन त्रिवेग राज्य और सगर द्वीप 68
03. द्वितीय त्रिवेग या त्रिपुरा राज्य 5
04. प्राचीन किरात देश 215

कृतज्ञता स्वीकार

त्रिपुरा राज्य के सर्वे सुपरिटेंडेंट श्रद्धेय सुहृद् श्रीयुत कामिनीकुमार कर महाशय ने 3 नं0 मानचित्र को अंकन किया है एवं पंच श्रीयुत महाराज माणिक्य बहादुर के नियोजित चित्र–शिल्पी सुहृदवर श्रीयुक्त श्यामाचरण चक्रवर्ती महाशय ने ग्रंथ का प्रच्छद–पट अंकन किया है। इस सौजन्य के लिए उनके यहाँ चिर कृतज्ञता के पास में आबद्ध रहूँगा।

श्रीकाली प्रसन्न सेन।

प्रल—00

श्रीराजमाला

प्रथम लहर

विषयः यथाति से महामाणिक्य तक का विवरण
वक्ताः बाणेश्वर, शुक्रेश्वर और दुर्ल्लभेन्द्र चन्ताइ
श्रोताः महाराज धर्म्ममाणिक्य
रचना कालः पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्यभाग

प्रल–01

ऊँ नमो सरस्वत्यै

श्री राजमाला

(प्रथम लहर)

मंगला चरण

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।

नमो नारायण देब प्रभु निरंजन।	नमो नारायण देव प्रभु निरंजन।
सृष्टि स्थिति प्रलयेर परम कारण।।	सृष्टि स्थिति प्रलय के परम कारण।।
गुणत्रय(1) विभिन्न होइलेमूर्ति होइये हरि।	गुणत्रय(1) विभिन्न होने पर मूर्ति होकर हरि।
कोरिछे ओपार लीला दस रूप(2) धरि।।	करते हैं अपार लीला दस रूप(2) धारी।।
आद्य(3) अन्त(4) मध्य(5) तिन पुरुष प्रधान(6)।	आद्य(3) अन्त(4) मध्य(5) तीन पुरूष प्रधान(6)।
ब्रह्मा आदि देवे ओबिरत करे ध्यान।।	ब्रह्मा आदि देवगण करते हैं अविरत ध्यान।।
बेदागम पुराणादि शास्त्र यतो तन्त्र।	वेदागम पुराणादि शास्त्र जितने तन्त्र।
आधार आधेय धर्मा धर्म योग मन्त्र।।	आधार आधेय धर्मा धर्म योग मन्त्र।।

(1) गुणत्रय– सत्व, रजः, तमः – यही तीन गुण हैं सत्व गुण से जगत पालन, रजो गुण से सृष्टि और तमो गुण से ध्वंस होता है।

(2) दसरूप– मत्स्य, कूर्म, वाराहादि भगवान के दस अवतार

(3) आद्य पुरुष– सृष्टि कर्ता या ब्रह्मा, (4)अंत पुरुष –संहारकर्ता अर्थात् शंकर और (5)मध्य पुरुष– पालन कर्ता अर्थात विष्णु। (6)यहां पर नारायण को आद्य और अन्त मध्य इन तीनों पुरुषों का प्रधान अर्थात सत्व, रजः और तमः त्रिगुणान्वित कहा गया है।

स्वयं भगवान ने भी यही कहा है–

अहमात्मा गुड़ाकेश सर्वभुताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यन्च भूतानामंत एव च।।

गीता दशम् अः 20 श्लोक

हे, गुडाकेश, गुप्त रूप से सभी भूतों के ह्रदय स्थित आत्मा मैं हूँ एवं मैं ही सभी भूतों की उत्पत्ति स्थिति और मृत्यु का कारण हूँ। अर्थात मैं ही जन्म, स्थिति और मृत्यु का कारण हूँ।

प्रल–02

अन्य चराचर यतो स्थाबर जंगम।	अन्य चराचर जितने स्थावर जंगम।
सव तव भव(1) स्थिति(2) ध्वंस(3) नरोत्तम।।	सभी तुम्हारी भव(1) स्थिति(2) ध्वंस(3) नरोतम।।
निराकार रूपा(4) नित्यानन्द ब्रह्ममय।	निराकार रूप(4) नित्यानन्द ब्रह्ममय।
अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्ड(5) रोमकूपे हय(6)।।	अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्ड(5) रोम कूप में होय(6)।।
महाकाल पुरुष बोलिया कहे सबे।	महाकाल पुरुष कहकर कहते हैं सब को।
हरिकृष्ण विष्णुनाम बलये वैष्णवे।।	हरिकृष्ण विष्णु नाम कहते हैं वैष्णव।।
नारायण ऋषिकेश अनन्त अब्यय(7)।	नारायण ऋषिकेश अनन्त अव्यय(7)।
शैबे बोले शिब शंभू हर मृत्युंजय।।	शैव कहते शिव शम्भू हर मृत्युंजय।।

---

(1) भव– सृजन।

(2) स्थिति– पालन

(3) ध्वंस– प्रलय

(4) निराकार रूप– अनियत रूप विशिष्ट अर्थात– भगवान का कोई निर्दिष्ट रूप नहीं है। जब जिस रूप की इच्छा हो उसे धारण कर लेते हैं। इस विषय में ऋग वेद में कहा है–

चतुर्भिः साकं नवतिं नामभिष्चक्रं न वृत्तं व्यातिरबिविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्कभिर्युबा कुमारः प्रत्येत्याहवं।।

ऋग वेद प्रथम मण्डल 155 सूक्त 6ठां ऋक

विष्णु विशेष गति द्वारा विविध स्वभाव विशिष्ट चतुर्नवति काल बय को चक्र के समान चालित कर रहे है। विष्णु वृहत शरीर विशिष्ट होकर भी स्तुति द्वारा परिमेय है। ये युवा अकुमार एवं आह्वान से आगमन करते है।

दूसरी जगह मिलता है–

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–
स्तस्यैब आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्।।

कठोपनिषद प्रथम अध्याय द्वितीय बल्ली

जो परमात्मा को पाने के लिए प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उनके यहाँ निज परमार्थिकी तनु प्रकाश करते हैं।

उपासकों के द्वारा भी भगवान का रूप कल्पित हो सकता है। इस विषय पर महानिर्वाण तन्त्र में लिखा है–

उपासकानां कार्याय पूरैव कथितं प्रिये।
गुणक्रियानुसारेण रूपं दैव्याः प्रकल्पितम्।।

महा निवार्ण तन्त्र, 1300 उल्लास।

(5) ब्रह्माण्ड भाण्ड– ब्रह्माण्ड का आधार।

(6) भगवान के प्रति रोम कूप में असंख्य ब्रह्माण्ड रह सकते हैं। श्री मद्भागवत् गीता में भगवान ने स्वयं इस विषय में विशद–भाव से व्यक्त किया है। एकान्त अनुरक्त भक्त अर्जुन को विश्व रूप का दर्शन कराकर अपनी असीमता का परिचय प्रदान किया है।

(7) अव्यय – नित्य।

प्रल—03

शक्तिरूपे भजिले कालिका दुर्गा बोले	शक्ति रूपेमाना कालिका दुर्गा पुकारते।
ब्रह्मा ना पाइछे अंत योगध्यान—बले।।	ब्रह्मा न पाये अंत योग ध्यान करके।।
काय—मन—वाक्ये बन्दि हरिपद—द्वन्द्व।	काय मन वाक्यों से वन्दना किया हरिपद द्वन्द्व।
बिरचिब राजमाला पयार प्रबन्ध।	रचित होगी राजमाला पयार प्रबन्धों में।
तत्रैव गंगा यमुना च तत्र गोदाबरी तत्र सरस्वती च।	तत्र गंगा यमुना च तत्र गोदावरी तत्र सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसती तत्र यत्राच्युतोदार कथाप्रसंगः।।	सर्वाणि तीर्थानि बसंति तत्र यत्रा च्युतोदार कथा प्रसगः।।
इति प्रथमारम्भे कात्यायनीध्यायः।(1)	इति प्रथमारम्भे कात्यायनीध्यायः।(1)

प्रस्तावना

त्रिलोचनवंशे महामणिक्य नृपति।(2)	त्रिलोचन वंश में महामणिक्य हे नृपति(2)।
तान(3) पुत्र श्रीधर्ममाणिक्य नामख्याति।।	उनके(3)पुत्र श्री धर्ममाणिक्य नाम ख्याति।।
बहुधर्मशील राजा धर्मपरायण।	बहु धर्म शील राजा धर्म परायण।
धर्मशास्त्र क्रमे प्रजा कोरिछे पालन।।	धर्म शास्त्र मान करते प्रजा पालन।।
एक काले महाराजा बोसि धर्मासने।	एक समय महाराजा बैठे सिंहासन।
राजवंशावली कीर्ती श्रवणेच्छा मने।।	राजवंशावली कीर्ति श्रवण हित मन।।
दुर्लभेन्द्र नाम छिल चन्ताई(4) प्रधान।	दुर्लभेन्द्र नाम था चन्ताई(4) प्रधान।
चतुर्दश देबता(5) पुजाते दिव्य ज्ञान।	चतुर्दश देवता(5) पूजा में दिव्य ज्ञान।
त्रिपुरेर वंशावली आछोए ओशेष।।	त्रिपुर की वंशावली है अशेष।।
राजकुल—कीर्ति सब जानेन विशेष।	राज कुल कीर्ति सभी जानते विशेष।
बाणेश्वर शुक्रेश्वर दुई द्विजवर।।	बाणेश्वर शुक्रेश्वर दो द्विजवर।।
आगमादि तन्त्रतत्व जानेन विस्तर।	आगमादि तंत्र तत्व जानते विस्तर।

---

1 नारायण की स्तुतिवाद लिपि करने के बाद कात्यायनीध्यायः लिखने की सार्थकता की उपलब्धि करना दुःसाध्य है।

2 महामाणिक्य, त्रिलोचन के अधस्तन एकाधिक सौवां स्थानीय हैं। वंशलता आलोचना में यह प्रतिपन्न हुआ है।

3 तान –ताहार(उनके) शब्द साधारण रुप से 'तार' कहते है। सन्मान के साथ तान बोला जाता है।

4 चतुर्दश देवता के प्रधान पुरोहित को चन्ताई कहा जाता है। त्रिपुरा राज्य में ये लार्ड बिशप के समान है।

5 चतुर्दश त्रिपुर राजवंश के कुल देवता हैं। इस लहर के अगली टीका में इस बारे में विस्तृत आलोचना की जायेगी।

प्रल–04

राजमालिका(1) आर योगिनी–मालिका।(2)	राजमालिका(1) और योगिनी मालिका।(2)
बारण्यकाय निर्णयादि(3) लक्षण–मालिका।।(4)	वारण्य काय निर्णयादि(3) लक्षण मालिका।।(4)
हरगौरी संवाद होइलो भष्माचले।(5)	हरगौरी संवाद हुआ भस्माचल में।(5)
नवखण्ड वर्षादिते बोलिछे कुतुहले(6)।।	नव खण्ड वर्षा में कह रहा कौतूहल में।।(6)
एइ चारि तन्त्रे आछे राजार निर्णय।	इस चार तंत्रों में है राजा का निर्णय।
तीनेते जिज्ञासा राजा कोरे ए विषय।।	तीनों से जिज्ञासा किया राजा ने यह विषय।।
तारा तीने कोहे राजा कोरो अवधान।	उन तीनों ने कहा राजा करो अवधान।
तोमार बंशेर कथा निश्चय प्रमाण।।	तुम्हारी वंश की कथा होगी निश्चय प्रमाण।।
भाषाते(7) ना कहि तन्त्र ताते पाप हय।	भाषा में न(7) कहते तन्त्र इससे होता पाप।
त्रिपुर भाषाते चन्ताई राजाते कहय।।	त्रिपुर भाषा में चंताई राजा से कहता है।।
चन्ताई कहिलो तत्व सुने नरपति।	चन्ताई ने कहा तत्व सुनते रहे नरपति।
त्रिपुरबंश ये मते होइछे उत्पत्ति।।	त्रिपुर वंश की कैसे हुई उत्पत्ति।।

....

(1) राजमालिका– यह संस्कृत भाषा में रचित त्रिपुरा का प्राचीन इतिहास है। पंडित मुकुन्द द्वारा रचित 1674 शक उक्त ग्रन्थ का एक संक्षिप्त सार संग्रह किया गया था। उसे "संस्कृत राजमाला" के नाम से अभिहित किया गया है। मूल राजमालिका ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है– बल्कि दुष्प्राप्य है।

(2) योगिनी मालिका– बहुत अनुसंधान के बाद भी इस ग्रन्थ के विषय में कोई जानकारी नहीं मिली। संभवतः इस नाम की राज लक्षण सम्बन्धी कोई ग्रन्थ था। योगिनी तन्त्र होना भी कोई अचरज की बात नहीं।

(3) वारण्यकायनिर्णय– इस समय इस ग्रन्थ का कोई अस्तित्व नहीं। किसी किसी का अनुमान है यह हस्त्यायुर्वेद की तरह कोई प्राचीन ग्रन्थ हो सकता है। "वारण्यकाय निर्णय" और "हस्त्यायुर्वेद" इन दानों का अर्थगत सादृश्य रहने पर भी इसमें राजा का निर्णय की कोई संभावना रह सकती है, समझ में नहीं आता।

(4) लक्षण–मालिका– यह राज लक्षण समन्वित ग्रन्थ है। लेकिन इस समय इसके बारे में और कोई भी जानकारी नहीं मिलती है।

(5) भस्माचल– यह कामाख्या का एक पर्वत है। यहीं पर महादेव की नेत्राग्नि से कामदेव भस्म हो गये थे। इसलिए इस पर्वत का नाम भस्माचल रखा गया है। योगनी तन्त्र के मतानुसार हयाचल के पूर्व और ईशान कोण में यह पर्वत स्थित है।

(5)–(6) इन दोनों पंक्तियों से यही समझ में आता है कि वर्ष के प्रारम्भ में भस्माचल पर शिव पार्वती के बीच जो कथोपकथन होता है उस समय यह नव खण्ड(नूतन खण्ड राज विवरण) में ही हुआ था। अर्थात हर गौरी संवाद के आड़ में राजमाला परिवर्तित हुई है। इस तरह के बहुत से उदाहरण हैं। नये पंचाग के प्रणयन में इस पद्धति का सहारा लिया जाता है।

"हरप्रति प्रिय भाषे कहे हैमवती" इत्यादि।

हमारी यह धारणा राजमाला के नीचे लिखे वचन द्वारा समर्पित होती है –

"याहा जिज्ञासिला नृप बोलि तत्वसार।
जन्मिव विशिष्ट राजा वंशे त्रिपुरार
हरगौरी संवादेते कोहिछे शंकर।" इत्यादि रत्नमाणिक्य खण्ड

नृप ने जो जिज्ञासा किया उनके उत्तर में एक तत्व आया है कि त्रिपुरा के विशिष्ट राजवंश में वे जन्म लेगें। हर गौरी संवाद में भगवान शंकर ने यह कहा है।

(7) भाषाते – बंग भाषाते। पहले भाषा और प्राकृत शब्द द्वारा बांग्ला भाषा को लक्ष्य किया था।

प्रल–5

ग्रन्थारम्भ

ययाति विवरण

चन्द्रवंशे महाराजा ययाति नृपति।
सप्तद्वीप(1) जिनिलेक एकरथे गति(2)।।
तान पंच सुत बहुगुणयुत गुरू।(3)
यदुज्येष्ठ तुर्बसु ये द्रुहयु अनुपुरू।।
शुक्र कन्या देबयानी गर्भे पुत्रद्वय ।
राज कन्या शर्मिष्ठार गर्भे तीन हय।।
दैबगति भूपति के शुक्रे शाप दिलो।
पितृजरा दिते पुत्र सभेते याचिलो।।
ज्येष्ठ चारिपुत्रे तान न राखिलो कथा।
महाराज ययाति पाईलो मोने व्यथा।।
पितृवाक्य गुरूमानि पुरू ए राखिलो।
हस्तिनाते(4) पुरू राजा से हेतु होईलो।।
मथुरा राज्येते दिया यदु के राखिलो।
तूर्बसु यवनराज्ये नृपति होईलो।।
बृषपर्बार कन्या ये शमिष्ठा तनय।
द्रुहयु नाम राजा होईलो किरात आलय।।

ग्रन्थारम्भ

ययाति विवरण

चन्द्रवंशी महाराजा ययाति नृपति।
सप्तद्वीप(1) जीत एक रथे गति।।(2)
उनके पंच सुत और बहु गुण युत गुरू।(3)
यदु ज्येष्ठ तुर्बसु और द्रुहयु अनु पुरू।।
शुक्र कन्या देवयानी गर्भ में पुत्र द्वय।
राज कन्या शर्मिष्ठा के गर्भ तीन पुत्र होय।।
देवगति भूपति को शुक्र ने शाप दिया।
पितृ जरा लेने सारे पुत्रों को कहा।
बड़े चार पुत्रों ने उनकी बात न मानी।।
महाराज ययाति ने मन में पाया व्यथा।
पितृवाक्य को गुरूमान पुरु ने माना।
हस्तिनापुर(4) राजा पुरु इसलिए हुआ।।
मथुरा राज्य में यदु को रखा।
तूर्बसु यवन राज्य में नृपति हुआ।।
बृषपर्वा की कन्या जो शर्मिष्ठा तनय।
द्रुहयु नाम राजा हुआ किरात आलय।।

---

(1) सप्तद्वीप– जम्बू, प्लक्ष, शल्मली, कुश, क्रौन्च, शाक और पुष्कर यही है सप्तद्वीप। श्रीमद्भागवत् में उल्लेख है, सूर्य देव सुमेरू को प्रदक्षिण करते हैं इसलिए आधी पृथ्वी आलोक प्राप्त होती है और आधी अन्धकार में डूब जाती है। राजा प्रियब्रत ने तपः प्रभाव से प्रदीप्त होकर, सूर्य रथ तुल्य वेगशाली ज्योतिर्मय रथ द्वारा रजनी में भी दिन करूँगा, इसी तरह प्रतिज्ञा कर, सात बार द्वितीय सूर्य की तरह सूर्य के पीछे पीछे परिभ्रमण किया था और इनके ही रथ नेमि से सप्त समुद्र की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं सात समुद्रों से पूर्वोक्त सात द्वीप बने हैं। श्रीमद्भागवत् 5 स्कन्ध।

(2) एकरथे गति –अप्रतिहत गति। गतिरोध करने लायक कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था।

(3) गुरु –श्रेष्ठ, सम्मानार्ह

(4) ययाति की राजधानी हस्तिनापुर में नहीं थी। ययाति के बहुत बाद में महाराज हस्ती ने हस्तिनापुर को बसाया था। पुरूरवा से लेकर बहु पुरुष तक प्रतिष्ठान नगर में चन्द्रवंशीय राजाओं की राजधानी स्थापित थी। पहले ही इस विषय में विस्तृत विवरण दिया गया है।

प्रल–06

अनुके ये राजा कोरिलेन पूर्व देशे।	अनु को जो राजा बनाया पूर्व देश में।
एईक्रमे सब दूर कोईलो मनरोषे।(1)	इसी तरह सभी को दूर किया मनः रोष में।।(1)
त्रिवेग स्थलेते द्रुहयु नगर कोरिलो।	त्रिवेग स्थल पर द्रुहयु ने बसाया नगर।
कपिल नदीर तीरे राज्य पाट छिलो।	राज पाट था कपिल नदी तट पर।।
उत्तरे तैरंग नदी दक्षिणे आचरंग।	उत्तर में तैरंग नदी दक्षिण में आचरंग।
पूर्वेते मेखली सीमा पश्चिमें कोछ बगं।।(2)	पूरब में मेखली सीमा पश्चिम में कोछ बंग।।(2)

दैत्य खण्ड	दैत्य खण्ड
दैत्येर विवरण	दैत्य का विवरण
द्रुहयु बंशे दैत्य राजा(3) किरात नगर।	द्रुहयु वंश में दैत्य राजा(3) किरात नगर।
अनेक सहस्र वर्ष होइलो अमर।।	अनेक सहस्र वर्ष हुआ अमर।।
बहु काल परे तान पुत्र उपजिलो।	बहु काल बीता पुत्र उपजा उनके घर।
त्रिवेगेते जन्म नाम त्रिपुर राखिलो।।(4)	त्रिवेग में जन्म हुआ नाम रखा त्रिपुर।।(4)
जन्माविधि ना देखिलो द्विज साधु धर्म।	जन्माविधि ना देखा द्विज साधु धर्म।
सेई हेतु त्रिपुर होईलो क्रूरकर्म।।	इसी वजह त्रिपुर हुआ क्रूर कर्म।।
दान धर्म ना देखिलो आगम पुराण।	न देखा दान धर्म आगम पुराण।
बेद शास्त्र न पठिलो नाहि कोनो ज्ञान।।	वेद शास्त्र न किया पाठ नहीं उपजा कोई ज्ञान।।
दीक्षित न होईलो देब गुरू ना चिनिलो।	पहचाना नहीं देव गुरू दीक्षित न हुआ किसी का।
सल्लोकेर व्यवहार किछु न देखिलो।।	सत लोगों का व्यवहार न देखा।।
किरात प्रकृति होईलो किरात–आचार।	किरात प्रकृति हुआ, किरात आचार।
साधु संग न घटिलो कखने ताहार।।	साधु संग न हुआ कभी–कभार।।
त्रिपुरेर विवरण	त्रिपुर का विवरण
पुत्रेर चरित्र देखि दैत्य महाराजा।	पुत्र चरित्र देख दैत्य महाराजा।
निज कर्म स्मरि बने दिछे पिता प्रजा।।	निज कर्म स्मरण करें वन में पिता ने दिया है प्रजा।।

1 इस विषय के पुराण वाले विवरण पूर्वाभाष में दिया गया है।

2 राज्य के सीमा वर्णन विवरण पूर्वाभाष में दिया गया है।

3 "दुहयु वंश के दैत्यराजा" इस उक्ति द्वारा बहुतों ने दैत्य को द्रुहयु के अपत्य कहा है। परन्तु यह धारणा एक भ्रम है। दैत्य दुहयु के अधस्तन 38वे थे।(वंशलता)

4 संस्कृत भाषा में 'पुर' शब्द का अर्थ प्रवाह या वेग है। त्रिवेग नगरी तीन नदी के पास थी। उस स्थान में जन्म होने से त्रिपुर नाम हुआ था। क्रम में वर्णविन्यास परिवर्तन से त्रिपुर हुआ है, कोई कोई इसी रुप में सिद्धान्त लेते हैं। त्रिवेग वर्णन विवरण पूर्वाभाष में दिया गया है।

प्रल–07

किरात आलय सब अग्नि कोण देश।	किरात आलय सब अग्नि कोण देश।
एई राज्य पिता आमा दियाछे विशेष।।(1)	यही राज्य पिता मुझे दिया विशेष।।(1)
आर्यावर्त्त एवं तीर्थ समूहेर विवरण	आर्यावर्त्त और तीर्थ समूहों का विवरण
आर्यावर्त्त(2) हैते भूमि नाहि पृथिवीते।	आर्यावर्त्त(2) जैसी नहीं है भूमि पृथ्वी पर।
त्रैलोक्य दुर्ल्लभ्भ स्थल जगत विदिते।।	त्रैलोक्य दुर्ल्लभ्भ स्थल जगत विदिते।।
ये स्थाने जन्मिते इच्छा करे देवगण।	इसी स्थान जन्म हो इच्छा करे देवगण।
साधु संग लभे धर्म त्यजिया गगन।।(3)	साधु संग लाभ धर्म त्यागा गगन।।(3)
अयोध्या मथुरा माया काशी अवन्तिका।	अयोध्या मथुरा माया काशी अवन्तिका।
उत्कल नैमिषारण्य मायादि द्वारिका।।	उत्कल नैमिषारण्य मायादि द्वारिका।।
तीर्थराज गंगा हरिद्वार मुख्य धाम।	तीर्थराज गंगा हरिद्वार मुख्य धाम।
कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र अवन्तिका नाम।।(4)	कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र अवन्तिका नाम।।(4)
सिन्धुसंग प्रयागादि नाना तीर्थस्थान।	सिन्धुसंग प्रयागादि नाना तीर्थस्थान।
धन्य माणिकर्णिकादि तीर्थेर प्रधान।।	धन्य माणिकर्णिका आदि तीर्थों के प्रधान।।
ए सब तीर्थेर नाम लए येई जन।	इन सब तीर्थों का नाम ले जो जन।
प्रभाते जागिया येवा करये श्रवण।।	प्रभात में जागे जो करे श्रवण।।
से जने परम पद पाए(5) अन्तपरे(6)।	वह जन परम पद पाए(5) अन्तसमय(6)।
यमभय नाहि तारपुण्य कलेवरे।।(7)	यम भय नहि पुण्य कलेवर को।।(7
हरिपद प्राप्तिर ये ए सब कारण।	हरिपद प्राप्ति ये सब कारण।
दृढ़भक्ति करि सबे करह श्रवण।।	दृढ़भक्ति कर सभी करो श्रवण।।

---

(1)पाठांतर–

पुत्रेर चरित्र देखि दैत्य महाराजा।।	पुत्र का चरित्र देख दैत्य महाराज।
चिंताऐ दुःखित, बोले बापे दिछे प्रजा।।	चिन्ता से ग्रसित बोले बाप ने दिया प्रजा।।
किरात–आलय यतो अग्नि कोण देशे।	किरात आलय जितने हैं अग्नि कोण देश में।
भालो राज्य बापे मोरे दियाछे विशेषे।।	अच्छा राज्य बाप ने मुझे दिया है विशेष।।
कतेक जन्मेर आछे पापेर संचय।	कुछ जन्मों के हैं पाप संचय।
ते कारणे बापे दिछे किरात आलय।।	इसी कारण बाप ने दिया किरात आलय।।

किरात देश की अवस्था के बारे में इस लहर की टीका में लिखित विवरण देखा जा सकता है।

(2) आर्यावर्त– उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल तक के प्रदेश।

(3) धर्म, स्वर्ग परित्याग कर आर्यावर्त में आकर साधु संग लाभ किया।

(4) पठांतर सागर संगम गंगा पुण्य आदि कोरि।
कुरूक्षेत्र धर्म क्षेत्र अवन्तिका पुरी।

(5) पाए –पाये, प्राप्त होता है।

(6) अन्तपरे –अन्त के बाद अर्थात मृत्यु के बाद।

(7) उनकी पुण्य देह में यम का भय नहीं रहता अर्थात पुण्यात्मा के प्रति यम का अधिकार नहीं रहता। वे विष्णु लोक जाकर परम पद प्राप्त करते हैं।

प्रल–08

एई मात्र देखितेछि किरात आलय।	एक मात्र देखता हूं किरात आलय।
भयंकर पशु यत सिंहेर उदय।।	भयंकर पशु जैसे सिंह का उदय।।
नारायण विष्णु कथा पुराण श्रवण।	नारायण विष्णु कथा पुराण श्रवण।
यतेक(यथाय?) सकलतीर्थ तथा सर्वक्षण।।(1)	जिस स्थान में सकलतीर्थ सर्व क्षण।।(1)
वेदवेदांगेर तत्व वक्ता नहीं संगे।	वेदवेदांग के तत्व वक्ता नहीं संग।
पुत्र आमा(2) मूर्ख होइलो के पाठाबे रंगे।।(3)	पुत्र हमारा(2) मूर्ख हुआ, कौन भेजेगा आल्हादित होकर।।(3)
एई सब दुखे राजा चिन्तित होइलो।	इन दुखों से राजा चिन्तित हुए।
पठाइते यत्न कैल पुत्रे ना पठिल।।	भेजने का यत्न किया पुत्र ना गया।।
अनेक सहस्त्र वर्ष राज्य करि भोग।	अनेक सहस्त्र वर्ष किया राज्य भोग।
पुत्रे समर्पिल राज्य मने वान्छा योग।।(4)	राज्य समर्पित पुत्र को, अब इच्छा योग।।(4)
वने गिया योग साधि राजा मृत्यु होइलो।	वन गया योग साधा, राजा गया स्वर्गलोक।
तान पुत्र त्रिपुर किरातपति छिलो।।	उसका पुत्र त्रिपुर किरातपति हुआ।।
इति दैत्य खण्डे दैत्य स्वर्गारोहण कथनं।	इति दैत्य खण्ड, दैत्य स्वर्गारोहण कथन।

त्रिपुर वंशेर आख्यान	त्रिपुर वंश आख्यान
श्री धर्ममाणिक्य राजा परे जिज्ञासिल।	श्री धर्ममाणिक्य राजा ने किया जिज्ञासा।
क्षत्रिय वंशेते केन त्रिपुर नाम हइल।।	क्षत्रिय वंश में कैसे त्रिपुर नाम हुआ।।
चन्ताई कहे महाराज ताहा बलि आमि	चन्ताई कहे महाराज मैं बोलू अभी।
येई मते क्षत्रिय वंशे त्रिपुर हैला तुमि।	किस मत से क्षत्रिय वंश में त्रिपुर हुए तुम।
दक्षकन्या सती अंग पतन ये स्थाने।।	दक्षकन्या सती–अंग पतन जिस स्थान।।
महापीठ निर्णय मुनि बलिछे पुराणे।	महापीठ निर्णय, मुनि बोले पुराण में।
शिववाक्य पीठमाला तन्त्रे प्रमाण।।	शिववाक्य पीठमाला तन्त्र का प्रमाण।।
येई राज्ये येई अंग सेई पीठस्थान।।	जिस राज्य में जो अंग वही पीठस्थान।।

---

(1) नारायण के प्रसंग और पुराण श्रवण आदि और सारे तीर्थ वहां(आर्यावर्त में) हर समय है।

(2) आमा –मेरे

(3) रंगे –आदर के साथ

पाठान्तर 1. पुत्र होइलो मूर्ख के पाठाबे बंगे।।

2. पुत्र होइलो मूर्ख मोर के पाठाइबो रंगे।।

(4) योग साधन के वांछा(इच्छा) होने पर पुत्र को राज्यभार अर्पण किया।

प्रल–09

सेई राज्ये एक देवी भैरव आर जन ।
दुई नामें पीठस्थान कोरे निरूपण।।(1)
अथ पीठ माला तंत्र प्रमाण श्लोकः
त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरा सुन्दरी।
भैरवस्त्रिपुरेशश्च(2) सर्वाभिष्टप्रदायकः।।
पद बन्ध
सतीर दक्षिण पद पड़े त्रिपुराते।
त्रिपुरासुन्दरी ख्याति त्रिपुर भूमिते।।
त्रिपुरेश नाम शिव त्रिपुरा राज्येते।
तान बरे त्रिलोचन त्रिपुर पत्नीते।।(3)
सेई से कारणे क्षत्री त्रिपुर जाति बोले।
अवधान करो राजा मन कुतुहले।।
त्रिपुर वंशेर प्रमाण आर यथोचित।
पंचवेद महाभारत प्रमाण लिखित।।
महाभारतेर सभापर्वेते लिखिछे।
सहदेव दिग्विजय दक्षिणे गियाछे।।

अथ श्लोकः सभापर्वणि।
त्रिपुरं स्ववशे कृत्वा राजानमोमितौजसम्।
निजग्राहमहाबाहुस्तरसा पौरवेश्रः।।
तथार पयार
त्रिपुरा के वशकोरि राजा महौजस
आनिलेक महाबाहु पौरबेश्वर वश।।
भीष्मपर्वे अष्टम् दिवस भीष्मरणे।
ब्युहरचनेर मध्ये सब राजागणे।।

अथ प्रमाणं भीष्मपर्वणि।
प्रागजोतिषादनु नृपः कोशलोऽथ बृहद्वलः।
मेखलैस्त्रेपुरैश्चैव बर्व्वरैश्च समन्वितः।।

उस देश में एक देवी भैरव दूसरे जन।
दो स्थानों से पीठ स्थान करें निरूपण।।
अथ पीठ माला तंत्र प्रमाण श्लोकः
त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरा सुन्दरी।
भैरवस्त्रिपुरेशश्च(2) सर्वाभिष्टप्रदायकः।।
पद बन्ध।
सती का दक्षिण पद पड़ा त्रिपुरा में।
त्रिपुरासुन्दरी ख्याति त्रिपुर भूमि में।।
त्रिपुरेश नाम शिव त्रिपुरा राज्य में।
उनके वर से त्रिलोचन जन्में त्रिपुर पत्नी में।।(2)
उसी कारण क्षत्रिय कहते त्रिपुरा जाति को।
अवधान करो राजा मन के कौतूहल को।।
त्रिपुर वंश के प्रमाण और यथोचित।
पंचवेद महाभारत प्रमाण लिखित।।
महाभारत के सभापर्व में लिख रहे हैं।
सहदेव दिग्विजय हेतु दक्षिण में गए हैं।।

अथ श्लोकः सभापर्वणि।
त्रिपुरं स्ववशे कृत्वा राजानमोमितौजसम्।
निजग्राहमहाबाहुस्तरसा पौरवेश्रः।।
उनके पयार
त्रिपुरा को वश करके राजा महायश।
लाए महाबाहु पौरवेश्वर को वश।।
भीष्म पर्व में अष्ट दिवस भीष्म रण।
व्युह रचना के बीच सभी राजा गण।।

अथ प्रमाणं भीष्मपर्वणि।
प्रागजोतिषादनु नृपः कोशलोऽथ बृहद्वलः।
मेखलैस्त्रेपुरैश्चैव बर्व्वरैश्च समन्वितः।।

---

(1) पीठस्थान के बारे में इस लहर के टीका में लिखा जायेगा।

(2) किसी किसी तंत्र में भैरव का नाम 'नल' लिखा गया है। इस तरह के मतभेद के कारण निर्णय करना दुःसाध्य है। ''भैरवस्त्रिपुरेशश्च'' इस वाक्य के किसी किसी मतानुसार त्रिपुरा में कोई भैरव नहीं है –त्रिपुराधिपति ही भैरव स्थानीय है। यह नितान्त ही भ्रांत धारण है। उदयपुर विभागीय आफिस के करीब भैरव लिंग प्रतिष्ठत है। देबालय को शिबेर बाड़ी अर्थात शिवजी का घर कहते है।

(3) पाठान्तर– से औरसे त्रिलोचन त्रिपुर पत्नीते।

अर्थात कहा जाता है कि शिवजी के औरस से ही त्रिपुर पत्नी के गर्भ से शिवजी का जन्म हुआ।

प्रल–10

अथ् श्लोकेर पयार	अथ् श्लोक के पयार
प्रागज्योतिषदनु आर कौशल नृपगण।	प्रागज्योतिष और कौशल नृपगण।
मेखल त्रिपुर बर्व्बर राजाते बेष्टन।।	मेखल त्रिपुर में बर्बर राजा बैठा।।
एइतो कहिलो त्रिपुर बंशेर आख्यान।	यही तो कहा है त्रिपुर वंश का आख्यान।
बेदे तंत्रे धरियाछे येमन प्रमाण।।	वेद और तंत्र में जैसा दिया है प्रमाण।।

त्रिपुर खण्ड	त्रिपुर खण्ड
त्रिपुरेर चरित्र	त्रिपुर का चरित्र
दैत्य मृत्युपरे राजा नामेते त्रिपुर।	दैत्य मृत्यु के बाद राजा हुए नाम त्रिपुर।
किरात प्रकृति छिलो धर्म होईलो दूर।।	किरात प्रकृति थी धर्म से हुआ दूर।।
अनेक बत्सराबधि कोईलो राज्य पीड़ा।	बहुत बत्सराविधि किया राज्य पीड़ा।
युद्धाकांक्षा अविरत मारे हस्ती घोड़ा।।	युद्धाकांक्षा अविरत मारे हस्ती घोड़ा।।
अन्यत्र(1) नृपति नाहि पारे युद्ध बले।	दूसरे नृपति नहीं जीत सके युद्ध बल से।(1)
सकलेरे जय कोरे निज बाहुबले।।	सभी को जीत लिया निज बाहु बल से।।
पर्वतवासीय आछे जतो नृपगण।	पर्वत वासी हैं जतो नृप गण।
आपनार वश कोईलो(2) से सब राजन्।।	अपने वश में किया उन सभी राजन।।(2)
धर्मेर नाहिक लेश अधर्मे मजिलो।	धर्म का नहीं लेश मात्र अधर्म में डूबा।
अल्प अपराधे प्राणी अनेक बधिलो।।	अल्प अपराध से ही उनके प्राणी वधा।।
काट मार बिने शब्द नाहिक ताहार।	मार काट बिना, शब्द नहीं निकले उसके मुख से।
क्रोध युक्त अभिमान बहु अहंकार।।(3)	क्रोध युक्त अभिमान बहु अहंकार उसके।।(3)
अपना के आपने देवता कोरे ज्ञान।	अपने को स्वयं देवता रूप करता ज्ञान।
माना कोरे अन्येयदि कोरे यज्ञ दान।।	मना करता दूसरे यदि करते यज्ञ दान।।
अकर्ममेते अविरत स्थिर नाहि मति।	अकर्म में अविरत स्थिर नहीं मति।
अविचार जतो तार नाहि एतो स्फिति।(4)	अविचार जितने हैं, उनकी नहीं स्फिति।(4)
परनारी परधन होरे बलात्कारे।।(5)	परनारी परधन हरता करता बलात्कार।(5)
यदि बादी होय केहो तखने संहारे।।	यदि बन्दी हुआ कोई तभी करता संहार।।

(1) अन्यत्र– दूसरा स्थान

(2) ''कोईलो'' का बंगाली में ''कहा है'' अर्थ होता है। लेकिन यहाँ कोईलो का माने कोरिलो अर्थात किया है अर्थ होगा। हिन्दी में इसलिए 'किया' लिखा गया है।

(3) राजा क्रोध युक्त, अभिमानी एवं बहुत अहंकारी था।

(4) स्फिति– सीमा , उनका जितना व्यभिचार था उतना पृथ्वी में नहीं है।

(5) बलात्कार– यौन परपीड़न

प्रल–11

अनेक बत्सर से ये छिलो एइ मते।	अनेक वर्ष यह तो था इसी मन में।
शिवेर आविर्भाव एवं त्रिपुर संहार	शिव का आविर्भाव व त्रिपुर संहार
द्वापर शेषेते शिव आसिलो देखिते।।	द्वापर अंत शिव आये देखने।।
अपना होइते से ये ना जानिलो बड़ो।	अपने से बड़ा न जाना कहीं किसी कों।
कालवश होईलो राजा ना चिने ईश्वर।।	कालवश हुआ राजा ने पहचाना नहीं ईश्वर को।।
ताहा देखि कुपित होईलो पशुपति।	यह देख कुपित हुए पशुपति।
सकल मंगल शिव नाहि अब्याहति।।	सभी मंगल हित नाहि अव्याहति।।
बज्र सम हृदय जगत कोरे क्षय।	वज्र सम हृदय जगत करें क्षय।
यतो सृष्टि कोरियाछे कोरिछे प्रलय।।	जितनी सृष्टि कर चुके हैं कर रहे प्रलय।।
बज्रतुल्य हृदयेते बज्र अस्त्र दिया।	वज्र तुल्य हृदय में से वज्र अस्त्र से।
दुष्ट मारि साधु सब राखे बाँचाइया।।	दुष्ट मारि साधु सज्जनों को बचाया दुष्ट तास से।।
मारिलेक शूल अस्त्र हृदय ऊपर।	मारा शूल अस्त्र हृदय ऊपर।
शिव मुख हेरि राजा त्याजे कलेवर।।	शिव मुख देख राजा त्यागे कलेवर।।
राज्येर दुरावस्था	राज्य की दुरावस्था
स्वर्गे गेलो त्रिपुर शिबेर हस्ते मारि।	स्वर्ग गया त्रिपुर शिव हाथ मरकर।
तार(1) यतो प्रजा गण खाय भिक्षा कोरि।।	उसके(1) सभी प्रजा गण खाते भिक्षा कर।।
हेड़म्ब राज्येते(2) याइया सकल राहिलो।	हेड़म्ब(2) राज्य में जाकर सभी लगे रहने।
बहु कष्ट करि सबे काल काटाइलो।	बहुत कष्ट करके सारा काल बिताया।
बस्त्राभाबे तारा सबे बृक्ष छाल पोइरे।।(3)	वस्त्राभाव वश वे लोग वृक्ष छाल पहने।।(3)
और एक दिन गेलो भिक्षा कोरि बारे।	और एक दिन गये वहाँ भिक्षा करने।
हेड़म्ब सकले भिक्षा केहो नाहि दिलो।।	हेड़म्ब आदि सबने भिक्षा नहीं दिया।।
बहुगालि दिया तारा दुःखित कोरिलो।।	भरदी झोली गालियों से, दुःखित कर दिया।।

---

(1) तार ताहार, उनके

(2) हेड़म्ब राज्य –काछाड़ जिला। वर्तमान काछाड़ जिला के उत्तर में कपिलि और दियं नदी है। पूर्व दिशा में मणिपुर और नागा पहाड़ दक्षिण में लुसाई गिरि श्रृखंलाएँ हैं। पश्चिम में श्रीहट्ट और जयन्ती(जयंतिया) पहाड़ है। इस प्रदेश की प्रधान नदी है बरबक्र(आज बराक) रणचण्डी यहाँ की अधिष्ठात्री देवी है।

शास्त्रों में है– "हेड़म्बदेशमध्ये च रणचण्डी विराजते।
बरबक्रा–सरित्पार्श्वे हिडिम्बा लोकदूर्जया।।"
भविष्य पुराण ब्रह्मखण्ड,22 / 41

भीम पुत्र घटोत्कच द्वारा हेड़म्ब राज्य की स्थापना हुई है। कुरूक्षेत्र की लड़ाई में कर्ण के हाथों इनकी मृत्यु होने के बाद, इनके वंशधरों ने दीर्घकाल तक यहाँ राज्य किया था। काछाड़ के भूतपूर्व **Deputy Commissionr Adgar** (एडगर) साहब के अनुसार निर्भय नारायण काछाड़ राजवंश के प्रतिष्ठाता थे। इस मतभेद की आलोचना यहाँ पर अनावश्यक है।

(3) पैरे –परिधान करें / पहनता है।

प्रल–12

एईमते गालि सबे सुनि बहुतर।	इस तरह गालियां सबने सुना बहुबार।
लज्जा पाई आसिलेक पात्र मंत्रीवर।।	लज्जा पाकर आये पात्र मंत्रीवर।।
दुख मने लोके कहे जीबने कि काज।	दुख भरे मन से कहे अब जीवन किस काज।
चल येई पथे गेछे त्रिपुरार राज।।	चलो उसी पथ पर जहाँ गए त्रिपुर राज।।
जीवनेते धिक् धिक् धिक् भिक्षा कोरि।	धिक्कार इस जीवन को हमने भिक्षा किया।
मंत्रणा कोरिलो सबे भिक्षा परिहरि।।	मंतव्य किया सबने भिक्षा त्याग दिया।।
फलबंत बृक्ष येनो पोडिले बातासे।	फलबन्त वृक्ष जैसे गिर आंधिओं से।
फल छाया गेले पक्षी जाये अन्य देशे।।	अन्य देश जायें पक्षी फल छायाहीन वृक्षों से।।
सैन्य गण चलिलो सकले धीरे धीरे।	धीरे धीरे चले सभी सैन्य गण।
त्रिपुरार राज्ये राजा कोरिबो स्वत्वरे।।	त्रिपुरा में राजा बनायेगें सत्वर सभी दृढ़मन।।
अपराध दुख भोग कोरिलो विस्तर।	अपराध दुख भोग किया अपार।
प्रजार शिव आराधना	प्रजा की शिव आराधना
कार्य सिद्धि होबे सबे भजिले शंकर।।	कार्य सिद्ध होगा यदि सभी भजे शंकर।।
मंत्रणा कोरिया दृढ़ निश्चय कोरिलो।	दृढ़ निश्चय किया सभी ने मंत्रणा कर।
एकत्रे होईया सबे पर्वते चलिलो।।	एकत्र होकर सभी चले पर्वत की ओर।।
किरातेर मते सबे पूजा आरंभिया।	किरात मतानुसार सभी ने पूजा आरम्भ किया।
बलिदान कोईलो बहु छाग आदि दिया।।	बलिदान किया बहु छाग आदि बलि दिया।।
सप्त दिन सप्त रात्रि उत्सव कोरिलो।	सप्त दिन सप्त रात्रि उत्सव किया।
किरातेर मते यंत्रे गीत वाद्य कोइलो।।	किरात मतानुसार यंत्र बजे गीत वाद्य किया।।

शिबेर बरप्रदान	शिव का वर प्रदान
त्रिनयन पंचानन आशुतोष शिव।	त्रिनयन पंचानन आशुतोष शिव।
बहु कष्ट पाइतेछे देखि सब जीब।।	अति कष्ट भोग रहे देख सभी जीव।।
सकल मंगलालय भव–भगबान्।	सकल मंगलालय भव–भगवान।
प्रसन्न होइया आसे पूजा जेई स्थान।।	प्रसन्न हो आए पूजा जिस स्थान।।
बृषभ बाहन भष्म बिभूषित अंग।	वृषभ वाहन भस्म विभूषित अंग।
शिरेते पिंगल जटा गंगार तंरग।।	सिर पर पिंगल जटा गंगा तरंग।।

प्रल–13

परे हर ब्याघ्राम्बर गले फणि–हार।	पहने हर व्याघ्राम्बर गले में फणि हार।
अर्ध–चन्द्र ललाटे त विराज जाहार।।	अर्ध चन्द्र ललाट पर विराजे शोभा अपार।।
हस्ते शिंगा डम्बरू जे धीरे धीरे बजे।	हस्त में शिंगा डमरू जो धीरे धीरे बजे।
नन्दी भृंगी रंगे संगे विराजित साजे।।	नन्दी भृंगी संगे साथ विराजित हैं सजे।।
पूजा स्थाने असिलेन अखिलेर नाथ।	पूजा स्थल आए अखिल के नाथ।
देखि दण्डवत होईलो त्रिपुरा अनाथ।।(1)	देख दण्डवत किया त्रिपुरा अनाथ।।(1)
पुलकित होइया सबे करूणा(2) कोरिया।	पुलकित होकर सभी ने करूण भाव कर।(2)
निज निवेदन कोईलो करजोड़ होइया।।	निज निज निवेदन किया कर जोड़कर।।
आमादिगे(3) अपराध होईछे बिस्तर।	हमसे(3) अपराध हुआ है विस्तर।
दया कोरि रक्षा कोरो अधम किंकर।।	दया कर रक्षा करो हम हैं अधम किंकर।।
नहीं सहे आर दुःख पाप कलेवर।	सहा नहीं जाता और दुःख पाप कलेवर।
भिक्षा कोरि प्राण राखियाछि घरे घर।।	भिक्षा करके प्राण रक्षा किये घर घर।।
त्रिपुरे कोरिछे पाप फल भोगि तार।	त्रिपुरा ने किया पाप फल भोगते हैं उसका।
दयामय दया होय(4) कोरहो उद्धार।।	दयामय की दया हो(4) करो उद्धार सबका।।
राजाहीन राज्य प्रजा के ताके पालिबो।(5)	राजाहीन राज्य प्रजा कौन उसे पाले(5) अब।
लक्ष्यहीन जन सब रक्षा कोरो शिब।।	लक्ष्यहीन जन सभी रक्षा करो हे शिव।।
महा वृक्ष पोड़िले जे फल छाया जाये।	महा वृक्ष गिरने से, फल छाया जाते हैं।
वृक्ष मुल निबासिये बहु दुःख पाये।।	वृक्ष मूल निवासी सभी बहु दुःख पाते हैं।
सरोबर शुकाइले जेनो मरे मीन।	सरोवर सूखने पर जैसे मरे मीन।
अनाथिनी नारी जैनो स्वामीर विहीन।।	अनाथिनी नारी जैसे स्वामी विहीन।।
बलहीन मृग जेनो कुक्कुरे जे धरे।	बलहीन मृग को जैसे कुत्ते लेते धर।
युद्धे भय कोरे जेनो अल्पबल नरे।।	युद्ध में भय करते जैसे अल्प बल नर।।
पिता माता मोइले स्थले घटे जे विस्तर।	पिता माता के मरने से घट होाता है बेहाल।
राजाहीन राज्ये बास बड़ ही दुष्कर।	राजाहीन राज्य में वास बड़ा ही दुष्कर जंजाल।।
त्रिपुर मारिलो सबे बड़ दुःख पाई।।	त्रिपुर मरा है हम बड़ा दुख पाते हैं।
देशे देशे जाइया सबे भिक्षा कोरे खाई।।	देश देश जाकर सब भिक्षा कर खाते हैं।

---

(1) त्रिपुरा अनाथ — सहायहीन त्रिपुरा
(2) करुणा — यहां करुण अर्थ बोधक है। करुणा करिया –शोकार्त होकर
(3) आमादिगे — हमारे
(4) दयाहय — दया करके
(5) पालिव — पालन करना

प्रल–14

बृख छाल पोइरी(1) गेलो भिक्षा कोरिवारे।	वृक्ष छाल पहन(1) गए भिक्षा हेतु।
ना दिया हेड़म्बे भिक्षा फिरि गालिपाडे।।	ना दी भिक्षा हेड़म्ब ने लौटे सुन गालियां।।
जतो अपराध कोइलो पाइलो तार फल।	जितना अपराध किया पाया उसका फल।
अपराध क्षम प्रभु होई विकल।।	अपराध क्षम प्रभु हुए हैं विकल।।
प्रसन्न ह्रदय होय(2) त्रिलोकेर पतिः।	प्रसन्न ह्रदय होकर(2) त्रिलोक पति।
राजा एक देहो सबे पाई अब्याहति।।	राजा एक दो सभी पाएं अव्याहति।।
आशुतोष भोलानाथ पतित पावन।	आशुतोष भोलानाथ पतित पावन।
सदय ह्रदय पात्रे(3) कोहिलो तखन।।	सदय ह्रदय पात्रे(3) कहे उसी क्षण।।
चलिला अर्धम पथे पाइला बहु क्लेश।	चले अधर्म पथ पाये बहु क्लेश।
भिक्षा कोरि खइछो सबे जतो इतिदेश।।	भिक्षा कर खाते हो सभी जितने हैं यहाँ देश।।
असाधुर पथे कष्ट साधु पथे भालो।	असाधु के पथ पर कष्ट साधु पथ ही मंगल।
धर्मे रक्षा कोरे साधू न घटे जंजाल।।	धर्म की रक्षा करते साधु न होय जंजाल।।
तोमा सबे(4) दिबो आमि एक महाराजा।	तुम सभी को दूंगा मै एक महाराजा।
आमार तनय होईया पलिबेक प्रजा।।	मेरा तनय होकर वह पालेगा प्रजा।।
आमार समान होबे आकृति प्रकृति।	मेरे समान होगी उसकी आकृत प्रकृति।
चन्द्रवंश ख्याति होबे शासिबेक क्षिति।।	चन्द्रवंश की ख्याति होगी शासित होगी क्षिति।।
त्रिपुर रमणी आछे हीरावती नाम।	त्रिपुरा रमणी है एक हीरावती नाम।
करूक मदन पूजा कोरि पुत्र काम।।	करे मदन पूजा करके पुत्र काम।।
चैत्र मासेर शुक्ला द्वादसी तिथीते।(5)	चैत्र माह शुक्ला द्वादशी तिथि(5) में।
आरम्भ करूक पूजा ब्रह्मचर्य मते।।	आरम्भ कर दें पूजा ब्रह्मचर्य मत से।।
प्रति शुक्ला द्वादसीते पूजा निरन्तर।	प्रति शुक्ला द्वादसी में पूजा हो निरन्तर।
निरमिष एकाहार शुचि कलेबर।।	निरमिष एकाहार शुचि कलेवर।।
द्वितीये करिया व्रत बायुपुत्र(6) आशे।	द्वितीय व्रत किया वायुपुत्र(6) का।
आमार आज्ञाय पुत्र होइबे विशेषे।।	मेरी आज्ञा से पुत्र होगा ही विशेष।।
तीन चक्षु होइबेक पुरुष प्रधान।	तीन चक्षु विशिष्ट होगा पुरुष प्रधान।
आमार तनय आमा हेनो(7) कर ज्ञान।।	मेरे पुत्र हमारी तरह ही(7) सदा करो ज्ञान।।

(1) पोइरे –पहन कर
(2) होय –होकर
(3) पात्र– मंत्री
(4) तोमा सबे –तुम सभी को
(5) पाठान्तर –प्रतिवर्ष चैत्र मास शुक्ल पक्ष द्वादशी में पूजा करना
(6) बहुपुत्र?
(7) आमा हनो –हमारी तरह

प्रल–15

सुबडाई(1) राजा बोलि स्वदेशे बोलिबो।
बेदमार्गी(2) साधुजन त्रिलोचन कोहिबो।।
त्रिपुरेर पत्नी गर्भे जन्मेर कारणे।
त्रिपुरेर राजा ताके कबे सर्वजने।।
दुई ध्वज कोरिबा जे तार आगे चिन्ह।
चन्द्रवंश चन्द्रध्वज त्रिशूलध्वज(3) भिन्न।।
कलियुग आरम्भे होइबे श्रेष्ठ राजा।
तार सेवा कोरिबेक जतो सब प्रजा।।
धर्मपथ–गामी होइबो साधुर पालन।
नीतिये पालिबो राज्य पात्र मित्र गण।।
धर्म होइते बृद्धि होय अर्धमें प्रलय।
यदि बा अर्धमे बाड़े एकि काले क्षय।।
धर्म पथे जेबा थाके दुखे बाडे धीरे।
कलिये धर्मेर बंश नासिते ना पारे।।
नित्य स्नान गुरू सेवा देबता अर्चना।
क्रमे दान यथा शक्ति प्राणी अहिंसन।।
कुलक्रम धर्मपथ न छाडिबो नय।
सेई से परम साधु मोइलेह अमर।।

सुबडाई(1) राजा कहकर स्वदेश में बोलेगें।
वेदमार्गी(2) साधुजन त्रिलोचन कहेगें।।
त्रिपुरा के पत्नी गर्भ में जन्म के कारण।
त्रिपुरा के राजा उसे कहेगें सर्वजन।।
दो ध्वज रखोगे उसके आगे चिन्ह।
चन्द्रवंश चन्द्र ध्वज त्रिशूल ध्वज(3) भिन्न।।
कलियुग आरम्भ में होगा श्रेष्ठ राजा।
उसकी सेवा करेगी सभी प्रजा।।
धर्म पथ गामी होगा, करेगा साधु पालन।
नीति से पालेगें राज्य पात्र मित्र गण।।
धर्म से वृद्धि होती अधर्म से प्रलय।
यदि अधर्म बढ़ता है तो एक ही समय क्षय।।
धर्म पथ में जो रहते हैं दुख बढ़ता है धीरे।
कलि में धर्म के वंश को नाश न कर सके।।
नित्य स्नान गुरू सेवा देवता की अर्चना।
क्रमशः दान यथा शक्ति करे प्राणी अहिंसना।।
कुल क्रम धर्म पथ न छोड़े नर।
वही तो परम साधु होता है अमर।।

चतुर्दश देवेर पूजा विधि

चतुर्दश देव पूजा कोरिबो(4) सकले।
आषाढ़ मासेर शुक्ला अष्टमी होइले।।
पुनः जिज्ञासिलो मंत्री षोड़ कोरि कर।
किमत विधाने पूजा कोरिबो ईश्वर।।
महादेबे विधि कोहे सुने मंत्रीगणे।
करपुटांजली होइया सुने सर्व जने।।

चतुर्दश देव पूजा विधि

चतुर्दश देव पूजा करें(4) जैसे सभी।
आषाढ़ माह की शुक्ला अष्टमी हो जभी।।
पुनः जिज्ञासा की मंत्री ने हाथ जोड़कर।
किस मत विधान से पूजा करें ईश्वर।।
महादेव ने विधि कहा सुने मंत्रीगण।
कर पुटांजली हो सुने सर्वजन।।

---

(1) त्रिलोचन 'सुबडाई' नाम से विख्यात हुए थे। त्रिपुरा में सुबडाई राजा की अनेक प्राचीन कहानी प्रचलित है।

(2) वेदमार्गी –वेदज्ञ, वेद के मतावलम्बी

(3) चन्द्रध्वज, त्रिशूल ध्वज इत्यादि राज चिन्ह हैं अगली टीका में इनका विस्तृत विवरण दिया गया है।

(4) कोरिबो –करेगा

प्रल–16

हर उमा हरि मा बाणि कुमार गणेश।	हर उमा हरि मा वाणि कुमार गणेश।
ब्रह्मा पृथ्वी गंगा अब्दि अग्नि जे कामेश।।	ब्रह्मा पृथ्वी गंगा तक अग्नि जो कामेश।।
हिमालय अन्त कोरि चतुर्दश देवा।	हिमालय छोड़ चतुर्दश देवता।
अग्रेजे पूजिबो सूर्य पाछे चन्द्रसेबा।।	अग्र पूजन सूर्य, पीछे चन्द्र सेवा।।
त्रिलोचन राजा के लोइया तोमा सबे।	त्रिलोचन राजा को लेकर तुम सभी।
पूजिबा नानान द्रब्य बलि उपलाभे(1)।।	पूजोगे नाना द्रव्य उपचार बलि आदि।।(1)
पूजाय जे पूर्व दिन प्रातःकाल लाभे।	पूजा के दिन प्रातः काल की बेला।
संयम कोरिबे चन्ताई देउड़ाई सबे।।	संयम करेगें चन्ताई देउड़ाई सभी, नहीं अकेला।।
पूजाविधि देउड़ाई(2) सबे ताके जाने।	पूजा विधि देउड़ाई(2) सभी, उसे जाने।
समुद्रेर द्वीपे तारा रहिछे निर्जने।।	समुद्र द्वीप वे रहते हैं निर्जने।।
ताहाके अनिवा जाइया राजार सहिते।	उन्हे ले आओगे राजा के साथ।
जेखाने पूजिबा आमि आसिब साक्षाते।।	जहाँ पूजोगे मैं आउँगा साक्षात्।।
जेइबर चाहे राजा पाइबा सत्वर।	जो वर चाहे राजा मिलेगा सत्वर।
अनेक राज्येर राजा होबे नृपबर।।(3)	अनेक राज्यों के राजा होंगे नृपवर।।(3)
चतुर्दश देवतार चतुर्दश मुख।(4)	चतुर्दश देवता का चतुर्दश मुख।(4)
निर्माइया दिल शिबे आपना सन्मुख।।	निर्माण कराया शिव ने अपने सन्मुख।।
जे काले होइबो राजार धन बहुतर।	जब होगें राजा के धन बहुतेरे।
स्वर्ण रोप्य ताम्रे देब निर्मिब सत्वर।।	स्वर्ण रौप्य ताम्र से देव बनाउँगा शीघ्र।।
ए बोलिया महादेब निजस्थाने गेलो।	यह कहकर महादेव निज धाम सिधारे।
पात्र मंत्री अमात्ये त ब्रह्म(5) मानि लोइलो।।	पात्र मन्त्री अमात्य सभी ने ब्रह्म(5) मान लिया।।
शिवेर आदेशे ब्रत कोरे हीरावती।	शिव के आदेशानुसार व्रत करती हीरावती।
एकाग्र देखिया तुष्ट होईला पशुपति।।	एकाग्र देख तुष्ट हुए पशुपति।।
त्रिलोचन(6) बरे पुत्र गर्भेते धरिलो।	त्रिलोचन(6) वर से पुत्र गर्भ में किया धारण।
त्रिलोचन(7) जन्मिबेक शिब आज्ञा होईलो।।(8)	त्रिलोचन(7) जन्मे, शिव आज्ञा उच्चारण।।(8)

(1) उपलाभ– यह उपचार शब्द का अपभ्रंश है? इसलिए हिन्दी में उपलाभ को उपचार कहा गया है।

(2) देउड़ाई– चतुर्दश देवता के पूजक। चतुर्दश देवता के पूजन विधि की इन्हें जानकारी है।

(3) नृपति बहुत राज्य जय करके राजा बनेगें।

(4) चतुर्दश देवता के चतुर्दश मुण्डमात्र को पूजा जाता है। मुण्ड के अलावा और कोई अवयव नहीं है।

(5) ब्रह्म –वेद, महादेव के वाक्य को वेद गान माना।

(6) व(7) एक जगह त्रिलोचन शब्द शिव के रूप में आया है और दूसरी दफे राजा के रूप में आया है। शंकर जी का भी एक नाम त्रिलोचन है।

(8)पाठान्तर में है–

क्रमे संवत्सर ब्रत कोरे हीरावती। ऋतुकाल जानिया आसे पशुपति।।
शिबेरे औरसे पुत्र गर्भेते धरिलो। त्रिलोचन जन्मिबेक शिब आज्ञा होइलो।।

अर्थात– क्रमानुसार सवंत्सर व्रत करती रही हीरावती। ऋतु काल जानकर शिवजी ने पदार्पण किया। शिव के औरस से हीरावती ने गर्भ धारण किया। त्रिलोचन जन्म लेगा ऐसी शिवजी की आज्ञा हुई।

प्रल—17

त्रिलोचनेर जन्म	त्रिलोचन का जन्म
दसमास अतीते जन्मिलो त्रिलोचन।	दस मास बाद जन्मा त्रिलोचन।
परम उत्सव होईलो किरात भवन।।	परम उत्सव हुआ किरात भवन।।
द्वितीय प्रहर बेला मुहूर्त अभिजित्(1)।	द्वितीय प्रहर बेला(1) मुहूर्त अभिजित।
गर्भ होइते त्रिलोचन जन्में प्रथिबीत।।	गर्भ से त्रिलोचन जन्मे पृथ्वी के बीच।।
यथाविधि कुल मते सप्तदिन गेलो।	यथा विधि कुलानुसार बीता सप्त दिवस।
पात्र मंत्री सैन्य सबे देखिते आसिलो।।	पात्र मंत्री सैन्य सभी आये देखने की आस।।
जार जेई शक्ति मते दिलो यथोचित।	जिसकी जैंसी शक्ति सभी दिये यथोचित।
रमणी पुरुष आइसे राजार विदित।।	रमणी पुरुष आते नृप गृह प्रसन्नचित।।
दण्डवत प्रणाम कोरिलो त्रिलोचन(2)।	दण्डवत प्रणाम किया त्रिलोचन को।(2)
आनन्द ह्रदय होईलो सैन्य सेनागण।।	आनन्द ह्रदय हुए सैन्य सेना गण।।
मनुष्य शरीरे देखे शोभा त्रि—नयन(3)।	मनुष्य देह में देखे शोभित त्रिनयन।(3)
पात्र मंत्री सैन्य सेना सबे तुष्ट मन।।	पात्र मंत्री सैन्य सेना सभी तुष्ट मन।।
श्रीमंत शरीर देखे देवता आकार।	श्रीमंत शरीर देख देवता आकार।
निश्चय बुझिलो सबे होईबो उद्धार।।	निश्चिंत हुए सभी बोला होगा उद्धार।।
एहान(4) प्रसादे सबे सुखेते बन्चिब।	इनके प्रसाद से सभी सुख से रहेगें।
सेवा कोरि नर नारी दुःख घुचाईबो।।	सेवा कर नर नारी के दुख मिटेगें ।।
एमत बोलिया सबे कोहिछे वचन।	इस तरह की बातें हुए सबके वचन।
आपना समाजे जतो नरनारीगण।।	अपने समाज में जितने थे नर नारी गण।।
मासान्ते अशौच गेल जानि मंत्रिवरे।	मासांत में अशौच गया जाने मंत्रीवर।
धराइल नवदण्ड छत्र शिरोपरे।।	पकड़ाया नव दण्ड छत्र सिर पर।।
बोसाइलो सिंहासने मोहर मारिलो।(5)	बैठाउँगा सिंहासन पर मोहर(5) लगाकर।
शिव आज्ञा अनुसारे द्वि—ध्वज करिलो।।	द्विध्वज किया शिव आज्ञा अनुसार।।

---

(1) अभिजित— एक नक्षत्र। "अभिजयति उर्द्धाधः स्थियत्वा अपरानि नक्षत्रणि कर्त्तरि क्किप्।।" अभिजित नक्षत्र दो तारा विशिष्ट है, देखने में सींग जैसा है। ब्रह्मा इसके अधिपति हैं। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के शेष 15 दण्ड एवं श्रावणा नक्षत्र के प्रथम चार दण्ड हैं अर्थात इसी 19 दण्ड में अभिजित हैं। इस नक्षत्र जन्म होने से जातक सुन्दर, सुखी और ज्ञानी होते हैं।

(2) त्रिलोचन— त्रिलोचन को

(3) त्रिलोचन— महाराज त्रिलोचन भूमिष्ट होने पश्चात उनके ललाट में और एक आँख दिखाई दी थी। इस घटना से आज तक त्रिपुर वंश में पुरुषों की शादी में विवाह संस्कार के अनुसार ललाट में एक तीसरी आँख अंकित की जाती है। यह एक कुलाचार में बदला गया है।

(4) एहान —शब्द पुराना बंग्ला है— जिसका अर्थ है इनका।

(5) मोहर लगाना या मोहर मारना— मुद्रा प्रस्तुत करना। त्रिपुरा के राजाओं के राज्यभिषेक इत्यादि के समय निज नाम पर स्वर्ण और रौप्य(चान्दी) मुद्रायें तैयार की जाती थी। किसी राज्य पर विजय प्राप्त करने पर भी उनकी स्मृति की मुद्रायें निकलती थी।

प्रल—18

त्रिलोचनेर राज्याभिषेक	त्रिलोचन का राज्याभिषेक
चन्द्रेर वंशते जन्म चन्द्रेर निशान।	चन्द्रवंश में चन्द्र जन्म का निशान।
शिबबरे त्रिलोचन त्रिशूलध्वज तान।।(1)	शिव वर से त्रिशूल ध्वज त्रिलोचन नाम।।(1)
से हेतू त्रिपुर राजार होये दुई ध्वज।	इस तरह त्रिपुर राजा का हुआ दो ध्वज।
दिने दिने भेट आसे जतो अश्व गज।।	दिनों दिन भेंट आती बहुत अश्व गज।।
वार्षिक लोइया आसे सकल किरात।	वार्षिकी लेकर आते सभी किरात।
कनक रजत ताम्र, वस्त्र जे ताहात।।	कनक रजत ताम्र वस्त्र आदि की सौगात।।
गबय(2) कुकिया छाग(3) श्रृंग विपरीत।(4)	गबय(2) कुकिया छाग(3) श्रृंग विपरीत।(4)
शुभ्र रोम दाड़ि सब अति शुसोभित।।	शुभ्र रोम दाढ़ी सभी अति सुशोभित।।
अगुरू(5) पित्तल लौह कांस्य बादय घोंघ(6)।	अगुरू(5) पीतल लौह कांस्य वाद्य घोंघ।(6)
किरातेर घोर रब दिगम्बर अंग।।	किरात का घोर रव दिगम्बर अंग।।
हस्ती घोड़ा खाये तारा मुशिक मार्जार।	हाथी घोड़ा खाते वे सब और मुषिक मार्जार।
व्याघ्र कुक्करादि सर्प भक्षण ताहार।।	व्याघ्र कुकरादि सर्प भक्षण उनके हैं आहार।।
नृपति के त्रि—लोचन ताहारा देखिलो।	नृपति के त्रिलोचन लोगों ने देखा।
बहु भक्ति कोरि सबे सापक्ष होईलो।	बहु भक्ति करके प्रत्यक्ष हुआ।
चन्द्रकला दिने दिने जेनो बृद्धि पाय।	चन्द्रकला दिनों दिन जैसी वृद्धि पाये।
क्रमे क्रमे कार्य योग्य होईलो नृपराय।।	क्रमशः कार्य योग्य नृपराय हुए।।
सुप्रकृति सुचरित्र सदा तुष्ट मन।	सुप्रकृति सुचरित्र सदा तुष्ट मन।
पराक्रम देखि तुष्ट सब प्रजा गण।।	पराक्रम देख तुष्ट हुए सभी प्रजा गण।।
नित्य शिव हरिदुर्गा प्रति भक्ति अति।	नित्य शिव, हरि दुर्गा के प्रति भक्ति है अति।
सदय ह्रदय चित्त पुण्य कर्मे मति।।	सदय ह्रदय चित पुण्य कर्म में मति।।

(1) पाठान्तर — "शिब औरसे त्रिलोचन त्रिशूलध्वजतान।।"

(2) गबय— गोयाल, कुछ लोग इसका अर्थ लगाते हैं कि गोबय याने गाय, लेकिन यह भ्रम है। गौ और भैंस से मिली जुली प्राणी है। अलीपुर के चिड़ियाखाना में भी इस तरह के पशु है।। त्रिपुरा के जंगलों में ये झुण्ड के साथ घूमते मिलते हैं।

(3) कुकिया छाग— यह प्राणी तिब्बती बकरियों की तरह है। शरीर के रोयें बहुत बड़े बड़े होते हैं। इनके श्रृंग सुगठित तुलनात्मक रुप से बड़े होते हैं। इन प्रजातियों को कुकी लोग पालते हैं। इसलिए कुकिया छाग नाम हुआ है। ये देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं।

(4) विपरीत —स्वभाव के विपर्य्यय, बड़ा

(5) अगरू —यह चन्दन के तरह का एक पेड़ है। त्रिपुरा व श्रीहट्ट में इसे आगर/अगर कहते हैं। त्रिपुर राज्य में अभी भी बहुत पैदा होता है।

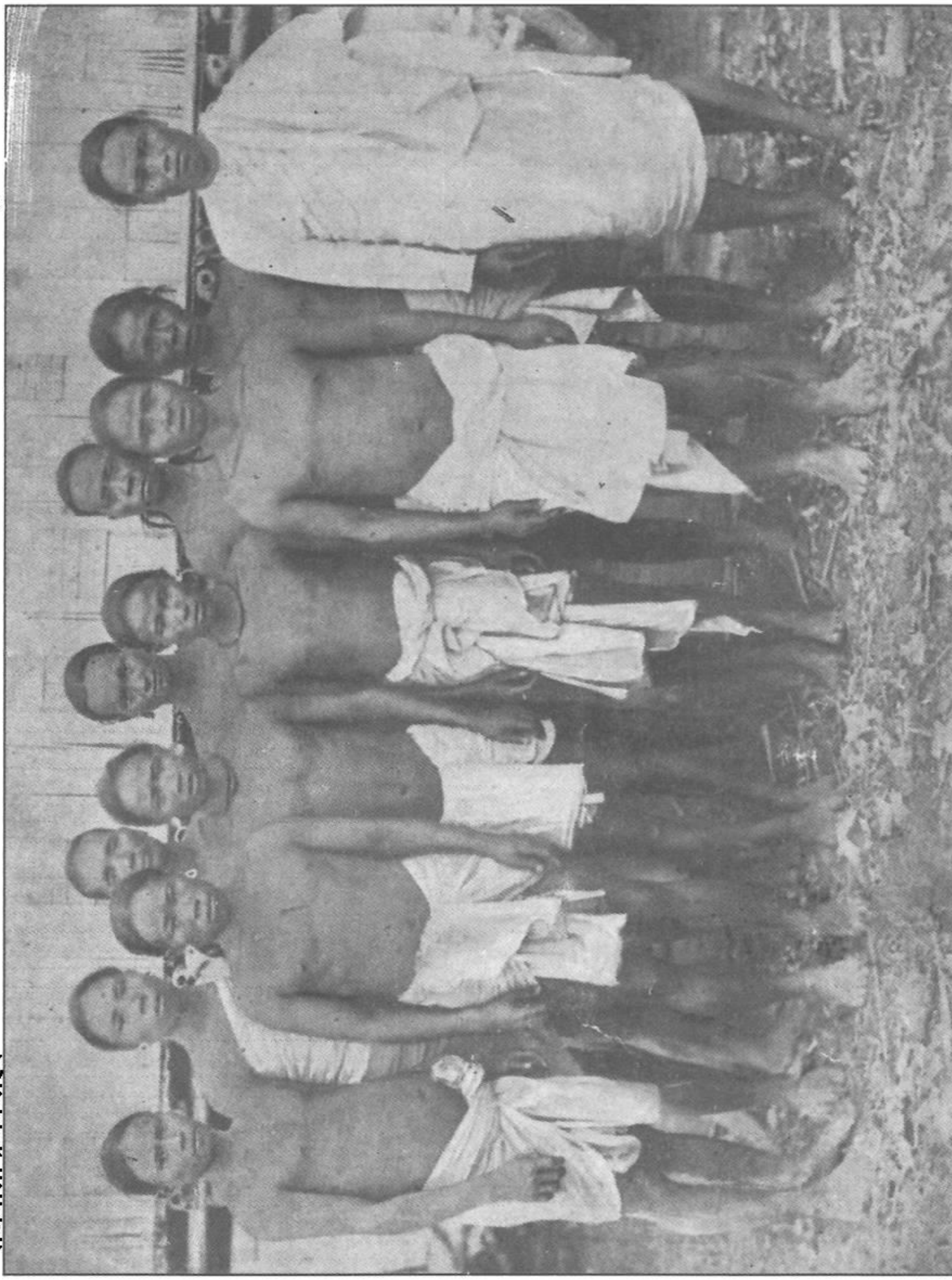
(6) घोंघ— यह कुकियों का एक तरह का वाद्य यन्त्र है। कांसे के धातु का एक बड़ा कटोरी की तरह का होता है। बीच में कुछ ऊपर उठा हुआ एक गोलाकार जगह है— ठीक बीच में। उसी पर आघात करके इसे बजाया जाता है। इसकी आवाज बहुत गंभीर और दूरगामी होती है। दूरी पर रहने वालों को करीब बुलाने के लिए एवं कभी कभी युद्ध एवं उत्सव के अवसर पर इसे बजाया जाता है।

प्रल–18

(Pratham leher-18) चित्र

राजमाला प्रथम लहर

पृष्ठ संख्या – 18



प्रल–19

त्रिपुर राजार वंश पापे हैल क्षय।
शिव आराधिया प्रजा वंश रक्षा हय।।(1)
सेइतो प्रजार हानि राजा चाहे यवे।
तखने राजार हानि करिवेक शिवे।।
इति त्रिलोचन जन्मकथनं समाप्तं।

त्रिलोचन खण्ड

विवाह प्रसंग

वर्द्धमान(2) हइलेक त्रिलोचन वीर।
पूर्व अनुसारे राज्य हईल सुस्थिर।।(3)
वयःक्रम होइलो राजार द्वादश वत्सर।
आसे पासे क्षुद्र राजा मिलिल विस्तर।।(4)
महाराजा सुचरित्र प्रकृति सुन्दर।
साधुभाव देवरूप विनय विस्तर।।
उन्मत्त(5) मात्सर्य(6) हिन्सा नाहिक ताहार।
जेई जन जेई मत सेई व्यवहार।।(7)
अहंकार क्रोधवश करिल उत्तम।
नरदेहे त्रि–लोचन के वा तान सम।।
युद्धेते अग्निर तुल्य क्षमाये पृथिवी।
नवीन कन्दर्प रूपे तेजे महा रवि।।
वाक्ये बृहस्पति सम शुक्र तुल्य ज्ञान।
नानाविध यन्त्र शिक्षा ताले छिल ज्ञान।।
सुख्याति शुनिया आईसे नाना देशी द्विज।
ताहाते शिखिलो विद्या यत पाई बीज।।(8)

त्रिपुर राजा वंश पाप से हुआ क्षय।
शिव पूजा से प्रजा वंश रक्षा हुई।।(1)
प्रजा हानि, राजा चाहे यदि।
तभी राजा हानि करेगें शिव।।
इति त्रिलोचन जन्मकथन समाप्त।

त्रिलोचन खण्ड

विवाह प्रसंग

वर्द्धमान(2) हुए त्रिलोचन वीर।
पूर्व अनुसार राज्य हुआ सुस्थिर।।(3)
वयःक्रम हुआ राजा द्वादश वत्सर।
आसे पासे क्षुद्र राजा मिले विस्तर।।(4)
महाराजा सुचरित्र प्रकृति सुन्दर।
साधुभाव देवरूप विनय विस्तर।।
उन्मत्त(5) मात्सर्य(6) हिन्सा नहीं उनमें।
जैसा जन जैसा मत वैसा व्यवहार।।(7)
अहंकार क्रोध, किया वश उत्तम।
नरदेह त्रि–लोचन के कौन सम।।
युद्ध में अग्नि तुल्य क्षमा में पृथ्वी।
नवीन कन्दर्प रूप तेज में महा रवि।।
वाक्य में बृहस्पति सम, शुक्र तुल्य ज्ञान।
नानाविध यन्त्र शिक्षा था ज्ञान।।
सुख्याति सुन आए नाना देशी द्विज।
उनसे प्राप्त की विद्या यथा बीज।।(8)

---

(1) शिव आराधना करके प्रजा के वंश की रक्षा हुई है।
(2) वर्द्धमान –वर्द्धित, वयः प्राप्त।
(3) सुस्थिर –दृढ़, सुश्रृखंल।
(4) आस पास के बहुत से क्षुद्र राजाओं ने वश्यता स्वीकार की।
(5) उन्मत्त –हित अहित विचार किए बिना किसी विषय में मत होना
(6) मात्सर्य –परश्रीकातरता।
(7) पात्र विवेचना में उपयुक्त व्यवहार करना।
(8) बीज –मूल, तत्व।

प्रल—20

वैष्णवचरित्र सब साधुर आचार।	वैष्णव चरित्र सभी साधु के आचार।
निपुण होईला राजा कालव्यवहार(1)।।	निपुण हुए राजा कालोचित व्यवहार।।
एईमते गुणशिक्षा कोरे नरपति।	इस तरह गुण शिक्षा करें नरपति।
लोकमुखे सुनिलेक हेड़म्बेर पति।।	लोक मुख सुना यह हेड़म्ब का पति।।
हीनपराक्रम बृद्ध हेड़म्बेर पति।	हीन पराक्रम वृद्ध हेड़म्ब के पति।
मनेते भाबिलो कन्या दिब कि संगति।।	सोचा कन्या दूँ पर क्या है संगति।।
मेलच्छ(2) कोच(3) आदि सबे राज्य आसि लोईलो।	म्लेच्छ(2) कोच(3) आदि आकर राज्य किया।
बृद्ध समये आमार विघ्न उपजिलो।।	वृद्धावस्था में आकर यह कैसा विघ्न मिला।।

---

1. काल व्यवहार —समय देख कर उसका सद्व्यवहार करना।

2. म्लेच्छ — शास्त्र ग्रन्थों की आलोचना से पता चला है कि हेड़म्ब राज्य के करीब कामरूप प्रदेश को 'म्लेच्छ' आख्या मिली थी। कालिका पुराण में लिखा है— पूर्व काल में बहुत से लोग महापीठ कामरूप में वहाँ नदी में स्नान, उसके जल का पान करते थे। वहाँ एक देवता पूजा के प्रभाव से स्वर्ग जाने लगे। किसी किसी को निर्वाण, मुक्ति लाभ एवं शिवत्व की प्राप्ति भी होने लगी। यम, पार्वती के भय से उन्हें निषेध करना या अपने यहाँ ले जाने में सक्षम नहीं हो पाये। यम दूतों के वहाँ जाने पर, शंकर दूत उन्हें बाधा देने लगे। शंकर जी के दूत, यम दूतों को जाने ही नहीं देते थे। यमदूत वहाँ पर प्रेरित होने पर भी, डर के मारे वहाँ नहीं जा पाते थे। अन्त में यम ने अपना काम बन्द कर दिया। एक दिन वे विधाता के पास जाकर बोले— हे विधाता, कामरूप में जाकर लोग स्नान पानादि देवपूजादि करके मरणोपरान्त कामाख्या देवी के या शिव के पार्श्वचर बन जाते हैं। मेरा वहाँ पर कोई अधिकार नहीं है। उन्हें निषेध करने में मैं असमर्थ हूँ। अगर असम्भव न हो तो आप इसकी कोई व्यवस्था करें।''

लोकपितामह ब्रह्मा जी ने यम की बातें सुनकर उन्हें साथ लेकर भगवान विष्णु के यहाँ पँहुचे। सर्वलोक के ब्रह्मा ने भगवान विष्णु से यम की सारी बातें विस्तार से कही। विष्णु ने उनकी बातें ध्यान से सुनी। इसके बाद ब्रह्मा, यम को साथ लेकर विष्णु शिवजी के पास गये। भगवान शिव ने आदर अभ्यर्थना करके आगमन प्रयोजन पूछा। भगवान विष्णु ने यह सरल वाक्य बोला, — कि कामरूप कामाख्या सभी तीर्थो में श्रेष्ठ है, इनके समान और कोई श्रेष्ठ तीर्थ नहीं है। लोगों के इस पीठ में आने पर, उसके बाद मरने पर सीधे स्वर्ग जा रहे हैं, मुक्ति पाकर और कोई उनका पार्श्वचर भी बन जाता है। उनके ऊपर यम का कोई अधिकार नहीं है। अतएव, हे महादेव, ऐसी कोई व्यवस्था कीजिए, जिससे वहाँ पर मनुष्यों के उपर यम का भी अधिकार हो। यम का भय न होने पर इस पीठ का नियम भी ठीक से प्रतिपालित नहीं होगा।

शिव ने ब्रह्मा और विष्णु की बातें सुनकर मन में यह सोच लिया कि वे इनकी बातों का पालन करेगें। +++शिव ने देवी उग्र तारा को और अपने गणों को कहा —जल्द ही इस कामरुप पीठ से सभी लोगों को हटाओ। ++इसके बाद सभी गण, अपराजिता देवी ''उग्र तारा'' ने मिलकर कामरूप पीठ को गोपन करने के लिए तथा

प्रल–21

कन्या के विवाह दिते चाहि जे सत्वर।	कन्या का विवाह देना चाहता सत्वर।
शीघ्र गति बैला(1) आईसो त्रिलोचन बर।।	शीघ्र गति कहके(1) आओ त्रिलोचन ही हे वर।।
हेड़म्ब राजार आज्ञा शिरेते बन्दिया।	हेड़म्ब राजा की आज्ञा पर सिर नवाया।
चलिलो सुजाति(2) दूत आनन्द होईया।।	चला ब्राह्मण(2) दूत मन में आनन्द पाय।।
त्रिलोचने दिले कन्या होइबो विशेष।	त्रिलोचन देकर कन्या होउँगा विशेष।
दोहे मिली बहु राज्य जिनिबो अशेष।।	दोनों मिल बहु राज्य जीतेगें अशेष।।
रूप गुणे बृहस्पति शुनि कुतुहल।	रूप गुण में बृहस्पति सुनकर हुआ कौतूहल।
हेड़म्बे कहिलो दूत एईक्षणे चलो।।	हेड़म्ब को कहा दूत चलिए वहाँ इसी पल।।
कोतो दिने उतरिलो(3) राजार नगर।	कितने पर पँहुचे(3) राजा के नगर।
त्रिलोचन छिलो जेई स्थाने नृपबर।।	जहाँ थे हमारे त्रिलोचन नृपवर।।

वहाँ से सभी लोगों को हटाने लगे।++ सन्ध्याचल स्थित मुनिवर वशिष्ठ को खदेड़ने के लिए पकड़ने पर उन्होनें भयानक अभिसंपात प्रदान करते हुए कहा, हे वामें, मैं मुनि हूँ तथापि तुमने हमें खदेड़ने के लिए पकड़ा इसलिए तुम मातृ गणों के साथ वामा भाव से(श्रुति विरूद्ध प्रथानुसार से) पूजनीया होगी। तुम्हारे प्रमथ गण मदमस्त चित से म्लेच्छ की तरह भ्रमण करते हैं, इसलिए ये कामरूप क्षेत्र में म्लेच्छ होकर रहेगें++। यह कामरूप क्षेत्र म्लेच्छ मय हो उठे। जब तक भगवान विष्णु यहाँ नहीं आयेगें तब तक यह इसी तरह रहेगा।''

कालिका पुराण 81 अध्याय 1 से 26 श्लोक
(बंगवासी आफिस का अनुवाद)

योगिनी तंत्र के मतानुसार कामरूप क्षेत्र म्लेच्छ संज्ञा प्राप्त है।

यथा– षोडशाब्दे गते शाके भूमहिरिपुचुल्वके।
विगतो भविता न्युनं सौमारकामपृष्ठयोः।।
षन्मासं तत्र संपूज्य उत्तराकालकोषयोः।
गमिष्यन्ति च राजानः सर्वे युद्धविशारदाः।।
कुवाचैर्यवनैश्चान्द्रैर्बहुसैन्यसमाकुलैः।
त्रिभिर्म्लेच्छः समाकीर्णं महायुद्धं भविष्यति।।
अश्वमुण्डैर्नरमुण्डैर्गजमुण्डैर्विशेषतः।

योगिनी तंत्र 1/12 पटल

''सोलह साल के बाद सौमार एवं कामपीठ में एक युद्ध उपस्थित होगा। छः महीने युद्ध के बाद ये सभी योद्धा उत्तर काल शेष में उपस्थित होकर भयंकर युद्ध करेगें। इस युद्ध में कुबाच(कोच) यवन और चान्द्र यह त्रिविध म्लेच्छ सेनाओं में बहु संख्यक सेना और अश्व गजादि विनष्ट होगें।''

3. कोच –कामरूप के प्राचीन मानचित्र देखने पर यह पता चलता है कि कोचों की आवास भूमि कामरूप के करीब ही कहीं थी। योगिनी तंत्र का जो वचन ऊपर उद्धृत किया गया है, उसमें कोच का उल्लेख मिलता है।

---

(1) बैला –बोला, कह के।
(2) सुजाति –ब्राह्मण, पुर्व काल में ब्राह्मणगण राजाओं के विवाह में घटक का काम करते थे।
(3) उत्तरिल –उपस्थित हुआ।

प्रल–22

भक्ति कोरि कहे दूत राजार आदेशे।
शुभ क्षणे चलो नृप हेड़म्बेर देशे।।
हेड़म्बेर पति मोके दिछे पठाइया।
हेड़म्ब राजार कन्या विभा करो गिया।।
सुनिया मंगल कथा जतो मंत्रीगण।
सर्वलोक पुलकित कहे जने जन।।
त्रिपुरकुलेर बृद्धि होबे हेनो देखि।
देखिबो हेड़म्ब राजा यदि संगे थाकि।।
शुभदिने त्रिलोचन चलिलो हेड़म्ब।(1)
संगेते चलिलो कोतो राजा कर्ण–लम्ब(2)।।
हस्ती घोड़ा चलिलो अमात्य मंत्री सेना।
किरात चलिलो बहु न जाये गणना।।
कोतोदिने पाइलेक हेड़म्ब–आलय।
शुभ प्रातः काले दुई नृपे देखा होय।।
तृषित चातक जेनो मेघ जल पाइलो।
त्रिलोचन देखिया हेड़म्ब तुष्ट होईलो।।
चन्द्र–ध्वज त्रिशूल–ध्वज अग्रेते निशाना।
संगे जतो लोक चले नाहिक गणना।।
नवदण्ड श्वेत छत्र आरंगी गावल।
पात्र मंत्री संगे गेलो आनन्द बहुल।।
तारागण मध्ये जेनो शोभे शशधर।
हेड़म्ब उज्जवल कोईलो(3) त्रिलोचन वर।।
दूर होईते हेड़म्बेरपतिये देखिया।
पात्र मंत्री समभ्यारे(4) निलो आगु होईया।।
बयोधिक बृद्ध मान्य हेड़म्बेर पति।
सेई हेतू त्रिलोचने ताके कोईलो नति।।
विनय भव्यता(5) देखि बृद्ध नरेश्वर।
पुत्र तुल्य स्नेहे कोल दिलेक सत्वर।।

भक्ति कर कहे दूत राजा के आदेश पर।
शुभ क्षण चलो नृप हेड़म्ब के देश पर।।
हेडेम्बधिपति ने मुझे भेज दिया यहाँ।
हेड़म्ब राज कन्या से विवाह करो यहाँ।।
सुन इस मंगल वचन जितने मंत्रीगण।
सभी लोग पुलकित कहें हर जन।।
त्रिपुर कुल की वृद्धि होगी रहा मैं देख।
देखेगें हेड़म्ब राजा यदि साथ पंहुचे उनके देश।।
शुभ दिन पर त्रिलोचन चले हेड़म्ब(1) की ओर।
साथ चले कितने राजगण कर्णलम्ब(2)।।
हस्ती घोड़ा और चले अमात्य मंत्री सेना।
और किरात चले जिनका नामुमकिन था गिनना।।
बहुत दिनों बाद मिला हेड़म्ब–आलय।
शुभ प्रातः काल जब मिले परस्पर नृप द्वय।।
तृषित चातक को ज्यों मिला मेघ जल।
त्रिलोचन को देख हेड़म्ब की तुष्ट आँखे हो गई सजल।
चन्द्र ध्वज त्रिशूल ध्वज सामने रहे निशाना।
संग चले लोग इतने कौन करे गणना।।
नव दण्ड श्वेते छत्र आरंगी गावल।
पात्र मंत्री साथ गये हृदय आनन्द उछल।।
तारागण मध्य जैसे शोभित शशधर।
हेड़म्ब गृह उज्जवल किया(3) त्रिलोचन वर।।
दूर से ही हेड़म्ब पति को देखकर।
पात्र मंत्री साथ में(4) सभी गए आगे बढ़कर।।
वयो वृद्ध मान्य अति हेड़म्ब के पति।
इसलिए त्रिलोचन ने किया उनको नति।।
विनय भव्यता(5) देख वृद्ध नरेश्वर।
पुत्र तुल्य स्नेह दिया नृपति ने सत्वर।।

---

1. हेड़म्ब –हेड़म्बदेश।
2. कर्णलम्ब –किरात। ये लोग सोने की पतली छड़ से अपने कर्णलतिका में छेद करके बड़े आकार के गोलाकार पदार्थ घुसाकर उसे लम्बा करते हैं। वजनदार पदार्थ पहनने से कान की लतिका नीचे झूलकर लम्बी हो जाती है। इसलिए इन्हें कर्णलम्ब कहा गया है।
3. कोईलो –करिल / किया
4. समभ्यारे –समभिव्यवहार, साथ में।
5. भव्यता –शिष्टाचार।

प्रल–23

आजि आमा धन्य होइलो हेड़म्ब नगरी।	आज धन्य हुई मेरी हेड़म्ब नगरी।
शिबपुत्र त्रिलोचन आसे आमा पुरी।।	शिव पुत्र त्रिलोचन आये मेरी पुरी।।
जतेक सन्मान कोइलो तार नाहि पार।	इतना सन्मान किया जिसका नहीं पार।
पुस्तक विस्तार होये ना कोहिलो आर।।	पुस्तक विस्तार भय से नहीं कहा कुछ और।।
अशेष प्रकारे राजा विनय विस्तर।	अशेष तरह से राजा किये विनय से भरपूर।
ससैन्ये रहिते स्थान दिलो मनोहर।।	ससैन्य रहने का स्थान दिया मनोहर।।
प्रातः काले शुभ क्षणे कन्या विभा दिलो।(1)	प्रातः काल शुभ क्षण में कन्या विवाह दिया।(1)
सप्तमीर नवरात्र उत्सव कोरिलो।।	सप्तमी के नवरात्र में उत्सव भी किया।।
मद्य मांस भक्ष भोज्य छिलो घाटे पथे।	मद्य मांस भक्ष्य भोज्य था जहाँ तहाँ।
बाद्य–भाण्ड नृत्य गीत कोइलो बहुमते।।	वाद्य भाण्ड नृत्य गीतादि बहुमतों से हुए वहाँ।।
दिबा रात्र भेद नाहि मद्य मांस खाइया।	दिवा रात्रि का नहीं भेद मद्य मांस खाकर।
सुभाषाते(2) नृत्य गीत कोइलो प्रकाशिया।।	सुभाषा में(2) नृत्य गीत किया जी खोलकर।।
घोंग(3) दुगरि(4) वाद्य सांरगी(5) बाँशीते।	घोंग(3) दुगरि(4) वाद्य सांरगी(5) और बाँसुरी।
दुई देशेर(6) यंत्र शब्द होइलो विधिमते।।	दोनों देशों(6) का यन्त्र शब्दों से सुधा जैसी झरी।।
रेसेम(7) किराती यंत्र आर यंत्र कोतो।	रेसेम(7) किराती यंत्र और यंत्र अशेश।
एई सब यंत्र बाजे छागलेर अन्त(8)।।	बजते सभी यंत्र बकरी का आन्त(8) विशेष।।

---

(1) शास्त्र में दिवा भाग में विवाह निषिद्ध माना गया है। यथाः–

विवाहे तू दिवाभागे कन्या स्यात पुत्रवर्ज्जिता।
विवाहानलदग्धा सा नियतं स्वामीघातिनी।।
(उद्वाह तत्व)

इस प्रकार शास्त्र विधान रहने पर भी किसी किसी प्रदेश में क्षत्रियगण के दिवा भाग में विवाह होते देखा गया है। सम्भवतः गन्धर्व विवाह से इस प्रथा की सृष्टि हुई है। सम्भवतः इसी विधान के अन्तर्गत प्रातः काल में त्रिलोचन का विवाह हुआ था। अतः त्रिपुर राज्य में इस प्रथा का प्रचलन विरल होने पर भी दुष्प्राप्य नहीं है।

(2) सुभाषा –उत्तम भाषा। यहाँ बंग भाषा को इंगित किया गया है।
(3) घोंग –कुकिओं की काँसा का एक वाद्य यन्त्र है।
(4) दुगरि –डंका, डगर।
(5) सारंगी –सारंग, यह यंत्र अति प्राचीन काल से भारतवर्ष में प्रचलित है।
(6) दुई देश –हेडम्ब और त्रिपुरा।
(7) रेसेम –किरातियों का एक तन्त्र विशिष्ट वाद्य यन्त्र।
(8) आन्त –अन्त्र, आन्त, बकरी के आँत की डोरी से रेसेम यंत्र के तन्त्री/तार बनाये जाते है।

प्रल–24

महिष छागल गबय(1) खाय पूंजे पूंजे।
हेड़म्ब नृपति रंग देखे बोसि मंचे।।
बसन भुषण जने दिलेक विस्तर।
तुष्ट कोरि दिलो सोना हेडम्ब ईश्वर।।
नबदिन नवरात्र रहिलो उत्सवे।
दस दिनान्तरे नृप बिदाय होइलो जबे।।
जौतुक दिलेक बहुत बस्त्र अलंकार।
अश्व गज बहु दिलो दास दासी आर।।
आगुबाड़ि हेड़म्ब राजा दिलो कोतो दूर।
त्रिलोचन चलि आसे आपनार पूर।।
कोतो दिने त्रिलोचन राज्ये उतरिलो।
सस्त्रीक आनन्द मने पुरे प्रवेशिलो।।
अनेक वत्सर राजा सस्त्रीक आछिलो।
हेड़म्ब दुहिता संगे राजभोग छिलो।।
प्रातः कृत्य कोरि राजा प्रत्यूषे आपन।
पंच–कषा(2) जले स्नान करये राजन।।
भिजा गामछा हस्ते लोइया नृपबरे।
मस्तक मुछिया पोरे फेलाय जे दूरे।।
दुई बाहु हृदयेते अन्य वस्त्रे पैछे।
नाभि आदि दुई पद अन्य वस्त्रे पौछे।।
शुक्ल जोड़ पोइरी पूजा भोजन करय।
विष्णु शिव दुर्गा विने अन्य ना जानय।।
एईक्रमे रहिलो राजा त्रिलोचन धीर।
कोरिलो अनेक सुख सुधीर सुस्थिर।।

त्रिलोचन पुत्र, हेडम्बें

कोयेक वत्सर पोरे हेड़म्बनन्दिनी।
प्रथम धरिलो गर्भ पति सोहागिनी।।
जेई दिन दसमास सम्पूर्ण होईलो।
अति मनोहर पुत्र प्रसब कोरिलो।।
हेड़म्ब नृपति सुनि दौहित्र जन्मिल।
पुत्र नाहि तुष्ट होइया दौहित्र पालिलो।।

भैंस बकरी गबय(1) खाय जी भर कर।
हेड़म्ब नृपति रंग देखकर बैठे मंच पर।।
वसन भूषण सबको दिया अढेल।
तुष्ट किया सोना देकर हेड़म्ब नृपति ने जी खोल।।
नौ दिन नौ रात्र उत्सव में रहे।
नृप हुए विदा, दस दिवस बीत गए।।
दहेज दिये बहुत वस्त्र अलंकार।
अश्व गज बहुत दिया दास दासी और।।
आगे बढ़कर हेड़म्ब राजा ने विदा दी इतनी दूर।
त्रिलोचन चले आये अपने पुर।।
कितने दिनों के बाद त्रिलोचन उतरे राज्य।
सस्त्रीक आनन्द मन प्रवेश किया पुर आज।।
अनेक सालों तक राजा रहे सस्त्रीक।
हेड़म्ब दुहिता साथ भोग राज सुख।।
प्रातः कृत्य करके राजा सवेरे अपना।
पंच कषा(2) पानी में था रोज नहाना।।
भीगा गमछा ले हाथ में रोज नृपवर।
मस्तक पौंछ अन्त में फेंकते थे दूरी पर।।
दोनो बाहु हृदय दूसरे वस्त्रों से पौंछे।
नाभि आदि दोनों पैर अन्य वस्त्रों से पौंछे।।
शुक्ल जोड़ पहन कर पूजा और करते भोजन।
विष्णु शिव दुर्गा छोड़ और नहीं करते भजन।।
इसी क्रम से रहते राजा त्रिलोचन वीर।
किये बहुत सुख भोग सुधिर सुस्थिर।।

त्रिलोचन का पुत्र, हेडम्ब में

कई सालों के बाद हेड़म्ब नन्दिनी।
प्रथम धारण किया गर्भ स्वामी सुहागिनी।।
जिस दिन दस मास हुआ सम्पूर्ण।
अति मनोहर पुत्र रत्न का जन्म हुआ शुभ दिन।।
हेड़म्ब नृपति ने सुना दौहित्र का हुआ जन्म।
पुत्र नहीं होकर, तुष्ट किया दौहित्र का पालन।।

---

(1) गबय –भैंस और बकरी के समान एक तरह की प्रजाति जो त्रिपुरा में झुण्ड के झुण्ड पायी जाती है।

(2) पंच कषा –जामुन, शालमली, बेडेला, बकुल और बदर यही है पंच कषा।

प्रल—25

सेई पुत्र रहिलेक हेड़म्बेर देशे।	वह पुत्र गया हेड़म्ब देश।
क्रमे क्रमे एकादश पुत्र होइलो शेषै।।	क्रम से पुत्र हुए एकादश।।
द्वादस तनय होइलो त्रिलोचन घरे।	द्वादस तनय हुए त्रिलोचन के घर।
केहो कारो न्युन नहे तुल्य परस्परे।।	कोई किसी से न्यून नहीं तुल्य परस्पर।।

वारघर त्रिपुर	बारहघर त्रिपुर
त्रिलोचन घरे(1) वार पुत्र उपजिल।	त्रिलोचन के घर(1) पुत्र जन्में बारह।
बारघर त्रिपुर(2) नाम तार ख्याति होइलो।।	बारह घर(2) त्रिपुर ख्याति हुई यह।।
राजवंश त्रिपुरा से राजा होइते पारे।	राजवंश त्रिपुरा वही राजा हो सके।
त्रिपुरा राज्येते छत्र अन्ये नाहि धरे।।	त्रिपुरा राज्य में छत्र अन्य धर न सके।।
दैबगति राजार ना हये यदि पुत्र।	दैव गति से यदि राजा का न होता पुत्र।
तबे राजा होइते पारे त्रिपुरेर सूत्र।।(3)	तभी राजा हो सके त्रिपुर का सूत्र।(3)
द्वादस घरेते जेनो पुत्र जन्म होय।	द्वादस घर में जैसे पुत्र जन्म होय।
राजवंश त्रिपुरा ताहाके लोके कोय।।	राजवंश त्रिपुरा उसे कहे सब कोय।।
अवश्य शरीरे चिन्ह रहेतो ताहार।	अवश्य शरीर पर चिन्ह रहते हैं उनके
गौरवर्ण श्वेत गौर लक्षण हये तार।।	गौर वर्ण श्वेत गौर लक्षण हैं उनके।
अतिदीर्घ नाहि होय नहे अति खर्व्व।	नहीं अति दीर्घ, नही अति खर्व।
अभिरुप(4) मत उच्च्व दर्प महागर्व।।	अनुरुप(4) जितना उच्च्व दर्प महागर्व।।
दीर्घ खर्ब नहे नासा कर्ण परिमिति।	नासा नहीं दीर्घ खर्व, कर्ण परिमिति।
बदन बर्तुल प्राय दीर्घ कदाचित।।	वर्तुल बदन प्रायः दीर्घ कदाचित।
गजस्कन्ध(5) वृषस्कन्ध(6) सिंहस्कन्ध(7) हय।	गजस्कन्ध,(5) वृषस्कन्ध,(6) सिंहस्कन्ध(7) उनका।
बृहत ह्रदय, बड़ो उदर ना हय।।	बृहत ह्रदय, बड़ा उदर नहीं जिनका।।

---

(1) घर —संसार, वंश

(2) बारहधर त्रिपुर —राजवंश में गिना जा सकता है, वे राजा हो सकते हैं। त्रिपुरा राज वंश के व्यतीत अन्य कोई छत्र धारण नहीं कर सकता अर्थात राजा नहीं हो सकता।

(3) सूत्र —भ्राता प्रभृति ज्ञाति लोग।

(4) अभिरुप —लक्षण के अनुसार, अनुरुप। बर्तुल —गोलाकार

(5) गज स्कन्ध —हाथी के स्कन्ध की तरह स्कन्ध है जिनका।

(6) वृष स्कन्ध —वृष के स्कन्ध की तरह है स्कन्ध जिनका।

(7) सिंह स्कन्ध —सिंह के स्कन्ध की तरह स्कन्ध वाला अर्थात विशाल स्कन्ध।

कालिका पुराण के सप्तविंश अध्याय में विस्तीर्ण नयन, सिंह स्कन्ध, उन्नत बाहु, प्रशस्त वक्ष लड़कों का उल्लेख है।

गज स्कन्ध और सिंह स्कन्ध इत्यादि सुलक्षणों में आते है एवं वीर्यवान के परिचायक हैं। रघुवंश में इसका उल्लेख है।

प्रल—26

महाबल पराक्रम बेगवन्त बड़ो।	महाबल, पराक्रम वेगवन्त हैं बड़े।
कदलीर तुल्य जानु जंघा मनोहर।।	कदली तुल्य जंघा जिनकी हैं सुगढ़।।
मल्ल विद्या अभ्यासेत बाहु स्थूल होय।	मल्ल विद्या अभ्यास से स्थूल बाहु युगल।
जेनो शाल बृक्ष दृढ़ जानिओ निश्चय।।	जैसे होते हैं वनो में दृढ़ वृक्ष शाल।।
तेजबन्त शुद्ध शान्त देखिते आकार।	तेजवंत शुद्ध शान्त होता है आकार।
निश्चय जानिओ ताके त्रिपुर कुमार।।	निश्चय जानो वही है त्रिपुर कुमार।।
हरि हर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति जार।	हरि हर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति जिनकी।
त्रिपुर वंशेते जन्म निश्चय ताहार।।	त्रिपुर वंश में है निश्चय जन्म उनकी।।
श्री धर्ममाणिक्य राजा पुनः जिज्ञासिल।	श्री धर्ममाणिक्य राजा ने पुनः की जिज्ञासा।
राजपुत्र एकादशे किमते बंचिलो।।	राजपुत्र एकादश की बंचना की कहो भाषा।।
ज्येष्ठ पुत्र रहिलेक हेड़म्ब भवन।	ज्येष्ठ पुत्र रह गये हेड़म्ब भवन।
बिस्तारिया कहो सुनि से सब कारण।।	कहो सविस्तार सुनु वे सभी कारण।।
दुर्ल्लभेन्द्र बोले सुनो बोली महाराजे।	दुर्ल्लभेन्द्र ने कहा, कहता हूँ सुने महाराज।
भातृ सबे कलह होइलो राज्य—काजे।। (1)	भाईयों में हुआ कलह राज—काज।।(1)
हेड़म्ब राजार देशे बड पुत्र छिलो।	हेड़म्ब राजा के देश था बड़ा पुत्र।
कतोकाले बृद्ध राजा कालवश होइलो।।	अन्त में काल वश हुआ राजा वृद्ध।।
दौहित्र पालिया छिलो हेड़म्बे राखिया।	दौहित्र पाला था अपने घर रखकर।
स्वर्गप्राप्तिकाले राज्य गेलो समर्पिया।।	स्वर्ग प्राप्ति काल राज्य दिया सौंपकर।।
पिंड श्राद्ध कोरिलो दौहित्र अनुसारी।(2)	पिंड श्राद्ध किया दौहित्र शास्त्र अनुसार।(2)
त्रिलोचन प्रधान पुत्र हेड़म्बाधिकारी।।	त्रिलोचन प्रधान पुत्र हुआ हेड़म्ब अधिकार।।
एई मोते सेई वंशे सेई नरपति।	इसी तरह उस वंश में हुआ वही नरपति।
एकादश पुत्र छिलो पितार संहति।।(3)	एकादश पुत्र थे पिता की संहति।(3)

चतुर्दश—देव—पूजा	चतुर्दश—देव—पूजा
एथा त्रिलोचन राजा शिवेर आज्ञाय।	पाकर शिवा देश यहाँ त्रिलोचन राज।
देउड़ाई आनिबारे दूतके पाठाय।।	देउड़ाई को लाने अपना दूत भेजा।।
समुद्रेर द्वीपेते देउड़ाई रोहिछे।	समुद्र द्वीप में गए देउड़ाई रहने।
चतुर्दशदेव पुजार शिबे आज्ञा दिछे।।	चतुर्दशदेव पूजा का शिवा देश उन्हे कहने।।

(1) राज्यकाले— राज कार्य

(2) अनुसारी— अनुयायी, दौहित्र के शास्त्रानुसार श्राद्ध करने का जो नियम है वही नियमानुयायी।

(3) संहति— मिलित भाव से, एक साथ।

प्रल–27

तोमरा आसिले होबे देवतार पूजा।	तुम लोग आने से होगी देवता की पूजा।
सेई से कारणे आमा पठाइछे राजा।।	यही कारण से ही हमें भेजा है राजा।।
सुनिया देउड़ाई सबे भय उपजिल।	सुनकर देउड़ाई के मन उपजा भय एक।
एबहे त्रिपुर दुष्ट बाँचिया रहिल।।	अब तक त्रिपुर के दुष्ट क्यों रह गया जीवित।।
अग्नि अवतार से जे धर्म नाहि जाने।	अग्नि अवतार वह जो धर्म नहीं जाने।
देबता ब्राह्मण गुरु किछु नाहि माने।।	देवता ब्राह्मण गुरु किसी को न माने।।
म्लेच्छवृत्ति करे राजा कहितेहि काटे।	म्लेच्छ वृत्ति करता राजा, कहते नहीं बनता।
कि मते जाइते पारि ताहार निकटे।।	कैसे जाएं वहाँ उसके सामने।।
परे दूते प्रणमिया वलिल बचन।	पद युगलों में प्रणत हो, कहा दूत ने वचन।
अधार्मिक त्रिपुर शिवे कोरिछे निधन।।	अधार्मिक त्रिपुर का शिव द्वारा निधन।।
तार नारी गर्भे जन्म त्रिलोचन राजा।	उसकी नारी गर्भ से जन्म त्रिलोचन राजा।
शिवेर बरेते जन्म धर्मे पाले प्रजा।।(1)	शिव वर से जन्म उसका धर्महित पालते प्रजा।।(1)
त्रिलोचन जन्म कथा कहे विरचिया।	त्रिलोचन जन्म कथा कहा प्राण भरकर।
विस्मित होइलो देउड़ाई एकथा सुनिया।।	विस्मित देउड़ाई सारी बातें सुनकर।।
दूतेर साक्षाते तारा दृढ़ कोरि कय।	दूत समक्ष कहा उन्होनें दृढ़ होकर।
आपने आसिले राजा जाइबो निश्चय। ।	निश्चय है जाना, स्वयं नृपति के आने पर।।
एइ वाक्य सुनि दूते आसिलो तत्पर।	यह वाक्य सुन दूत आया शीघ्र लौटकर।
सुनिया चलिलो राजा संगे मन्त्रीवर।।	सुनते ही चले राजा साथ मन्त्रीवर।।
बहु दिनान्तरे राजा से द्वीप पाइलो।	बहुत दिनों पर राजा ने पाया वह द्वीप।
चंताई देउड़ाई सबे आगु बाड़ि निलो।।	आगे बढ़ चंताई देउड़ाई स्वागत किया अधिक।।
देउड़ाई गालिम(2) पूजक तारा यति(3)।	देउड़ाई गालिम(2) पूजक है वे यति(3)।
सबे आसि देखिलेक त्रिलोचन पति।।	सभी ने आकर देखा त्रिलोचन पति।।
धर्मरुप देखि तुष्ट होइलो सर्व्वजन।	देखि धर्मरुप तुष्ट हुए सभी जन।
जाइबो राजार संगे स्थिर कोइलो मन।।	जाना राजा संग स्थिर किया अपना मन।।
तारा सबे नृपतिके सत्य कोराइलो।	वे सभी नृपति को दिलाई शपथ।
जतेक मनेर बांछा दिव्य दियाछिलो।।	जितनी थी मनोवांछानाए सभी को किया संकल्प बद्ध।।

---

(1) पाठान्तर –शिवेर औरसे जन्म धर्मे पाले प्रजा।

(2) गालिम –चतुर्दश देवता के अन्यतम पुजारी। बलिच्छेद भी इन्ही के कर्तव्यों में आता है।

(2) यति –सन्यासी, तपस्वी।

प्रल–28

तोमार कुलेते जे देउड़ाई हिंसय।(1)	देउड़ाई से हिंसा करे यदि तुम्हारे वंश में कोई।(1)
काटा मारा जेई कोरे तार वंश क्षय।।	काटना मारना जो करे वंश क्षय उसका।।
इत्यादि कोरिया तारा जोतो सत्य विधि।	इन्ही सभी बातों की शपथ करायी विधिवत्।
कोरिलो नृपति सत्य यथा रूचि साधि।।	शपथ किया नृपति ने भी यथा रूचि बत।।
कराघात पाईले देउड़ाई जाति जाये।	कराघात से देउड़ाई के, जाति जाती है।
अपराध पाइले ताके बाँशे बाडियाये(2)।।	होने पर अपराधी बाँस से आघात की जाती है(2)।
शुकरादि कोरि तारा यतेक अभक्ष्य।	शुकरादि मांस चाहे जितना करे भक्षण।
नारीर रंधन तारा नाहिँ कोरे भक्ष(3)।।	पर नहीं करते भक्ष(3) किसी नारी का रंधन।।
नित्य–स्नान धौत वस्त्र आकाशे सुखाये।	नित्य स्नान धौत वस्त्र जो आकाश में सुखाते।
आकाशे सुकाइया वस्त्र पवित्रे पौरये।।	आकाश में सूखा वस्त्र पवित्र वह पहनते।।
स्वहस्ते रंधन कोरि भोजन करय।	स्वहस्त रंधन कर भोजन हैं करते।
देवता पुजिते भक्ति तारा अतिशय।।	भक्ति है उनकी अपार देवता पूजते।।
देउड़ाई आनयन	**देउड़ाई का आना**
शुभदिने देउड़ाई राजार सहिते।	शुभ दिन पर देउड़ाई आये राजा साथ।
राजधानी असिलेन मन–हर्षिते।।	आये राजधानी सभी हर्षित मन आज।।
चतुर्दश देवता के समर्पिल राजा।	चतुर्दश देवता को समर्पित किया राजा।
तद्वधि देउड़ाई नित्य करे पूजा।।	तद्विधि देउड़ाई नित्य करे पूजा।।
चतुर्दश पूजाक्रम तारा सबे जाने।	चतुर्दश पूजा क्रम जानते वे सभी।
पांचालीते ना लिखिलो अन्ये पाछे सुने।।	चालीसा ने लिखा दूसरे न सुनें कभी।।
आषाढ़ मासेर शुक्ला अष्टमी तिथिते।(4)	आषाढ़ महीने शुक्ला अष्टमी तिथि।(4)
आनिलो नानान द्रव्य पूजाविधिमते।।	आये नाना द्रव्य पूजा धर्म विधि से।।
महीष गबय(5) छाग दिलो लक्ष बलि।	महिष गबय(5) छाग दिया लक्ष्य बलि।
किराते आनिया दिछे येसब सकलि।।	लाये किरात वहाँ देने बलि सभी।।
मत्स्य कूर्म बराह आनिल भारे भार।	मत्स्य, कूर्म, बराह लाये संख्या भारी।
मेष हंस(6) आदि बलि पिष्टक अपार।।	मेष हंसादि(6) बलि दिया पिष्टक अपार।।

---

(1) पाठान्तर –तोमार कुलेते जेई देउड़ाई हिंसय।
काट मार जेई कोरे कुल होइबो क्षय।।
इत्यादि करिया आर जबो सत्य विधि।
करिला नृपति सत्य जोतो रुचे बुद्धि।।

हिन्दी उपा चार पंक्तियों में है।

(2) देउड़ाईयों को कराघात करने से वे जाति भ्रष्ट होते हैं। उनके अपराध पर दण्ड देना हो तो उन्हें केवल बाँस से आघात किया जाता है।

(3) वे किसी स्त्री के हाथों पकाया खाना नहीं खाते।

(4) आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी तिथि में चतुर्दश देवता की वार्षिक विशेष अर्चना होती है। इसे खार्चि पूजा कहते हैं।

(5) गबय त्रिपुरा के जंगलों में भैंस और गाय के बीच की प्रजाति की एक किस्म के पशु बहुतायत से उन दोनों मिलते थे। अब ये दोनों नहीं मिलते।

(6) कामरूप प्रदेश में हंस और कबूतर(पारावत) आदि का भक्षण करना शास्त्रानुमादित है। और यह

प्रल–29

अन्य जातीय लोक नागा कुकि आर।	अन्य जाति के लोग नागा और कुकी।
बलिदान बिधिमते कोरिछे पूजार।।	बलिदान किया पूजा की मान विधि।।
राज देवड़ाई सब पवित्र होइबो।	राज देवड़ाई साथ पवित्र होगें।
एईतो प्रकार विधि पूजा बलि दिबो।।	यही पूजा विधिमान बलि देगें।।
शिब दुर्गा प्रभृति आसिलो एकादश।	शिव दुर्गा प्रभृति आये एकादश।
सेबा नाहि होए ना आइसे ऋषिकेश।।(1)	सेवा न होगी बिना आये ऋषिकेश।।(1)
शिब आज्ञा अनुसारे चंताई नृपति।	शिव आज्ञा अनुसार चंताई नृपति।
क्षीरोदेर(2) तीरे गेलो अति शीघ्रगति।।	क्षीर सागर(2) तीर गये अति शीघ्र गति।।
यथाते आछये विष्णु गोलोकाधिकारी।	जहां हैं विष्णु गोलोकाधिकारी।
अनंतरे शयया परे(3) बसिछेन हरि।।	अनंत की शैया(3) पर बैठे हैं हरि।।

देवार्चन में व्यह्वत होता है। योगिनी तंत्र में कामरूपाधिकार नामक द्वितीय भाग के अष्टम पटल में लिखा है।

हंसपारावतं भक्ष्यं वराहं कौर्म्ममेवच।
कामरूपे परित्यागात् दुर्गतिस्तस्य संभवेत्।।

त्रिपुरा राज्य कामरूप के अधीन है, अतएव वहां हंस और पारावत(कबूतर) बलिदान द्वारा देवता की अर्चना करना शास्त्र संगत है। कामाख्या तंत्र में कामरूप प्रदेश की सीमा और परिणाम फल निम्न रूप से निर्धारित हुआ है –

करतोयां समारभ्य यावदि्दक्करवासिनीं।
उत्तरे बटकीनाम्नी दक्षिणे चन्द्रशेखरः।।
तन्मध्ये योनीपीठन्च नीलपर्वत–वेष्टितं।
शत–योजन–विस्तीर्णं कामरूपं महेश्वरी।।

श्रीहट्ट त्रिपुरा के प्रभृति प्रदेश इस सीमा के अन्तर्गत थे। उक्त तंत्र में कामरूप के अन्तर्गत सप्त पर्वतों के नामोल्लेख की जगह पहले ही त्रिपुरा का नाम आता है –

त्रिपुरा कैकिका चैव जयंती मणि–चन्द्रिका।
काछाड़ी मागधी देवी अस्यामी सप्त पर्वताः।।

योगिनी तंत्र के अनुसार त्रिपुरा कामरूप के अन्तर्गत कहकर निर्धारित किया गया है। बराह और कूर्म बलि शास्त्र विगर्हित न होने पर भी चतुर्दश देवता के पूजा में इन्हें नहीं दिया जाता है। किरातों की पूजा में बराह और कुक्कुटादि की बलि प्रदान की जाती हैं।

(1) ऋषिकेश – विष्णु, नारायण।
(2) क्षीरोद – दूध का समुद्र। देवता और दैत्यों ने मिलकर इस समुद्र के मंथन द्वारा विविध रत्न और अमृत प्राप्त किया था।
(3) अनंत शैय्या – शेष नाग के उपर शैय्या। प्रलय काल में नारायण की इस शैय्या पर शयन करते हैं। इस विषय में कालिका पुराण में कहा गया है।

प्रल–30

मणिमाणिक्येर स्तंभ कोरिछे उज्ज्वल।	मणिमाणिक्य का स्तंभ कर रहा उज्जवल।
जड़ित कनक रत्ने कोरे झल मल।।	जड़ित कनक रत्न कर रहा झल मल।।
सहस्त्र स्तम्भेर मध्ये सहस्र लक्ष्मी स्थिति।	सहस्र स्तंभ बीच सहस्र लक्ष्मी स्थिति।
नाना यंत्र वाद्य गीत कोरे सरस्वती।।	नाना यंत्र वाद्य गीत कर रही सरस्वती।।
महाभक्त सकले हूंकारध्वनि कोरे।	महाभक्त सभी हूंकार ध्वनि करते।
सामवेद छन्दे गाय प्रभु अर्थ कोरे।।	सामवेद छन्द में गाते और प्रभु अर्थ करते।।
चतुर्दश देवतार नाम	**चतुर्दश देवताओं के नाम**
सेईक्षणे वाद्यध्वनि कोरिलो नृपति।	उसी क्षण वाद्य ध्वनि किया नृपति नें।
सुनिया प्रसन्न होइलो अखिलेर पति।।	सुन प्रसन्नता व्यक्त की अखिल पति ने।।
चंताई राजा के द्वारे राखि गेलो आगे।	राजा को द्वार पर आगे रखा चंताई ने।
शिब आग्या अनुसारे कहिबार लागे(1)।।	शिव आज्ञा अनुसार कहने लगा।।(1)
चन्ताई आसिछि प्रभू राजा रहे द्वारे।	चन्ताई आए और प्रभू राजा रहे द्वार।
वार्षिक पूजन नाथ पूजिबार तरे।।	यह वार्षिक पूजन है नाथ, पूजा का दरबार।।
सुनिया हासिलो प्रभु त्रिभुवनपति।	सुनकर हंसे प्रभु त्रिभुवन पति।
कोन कोन देव पूजा करिबा भूपति।।	कौन कौन देव पूजा करेगें भूपति।।
चंताई कहिलो तबे दडंवत होइया।	चंताई ने कहा तब करके दंडवत।
शिवादि देवता रहे तोमा उद्देशिया।।	शिवादि देवता हैं तुम्हारे लिए विधिवत।।
शिव दुर्गा कुमार आसिछे गजानन।	शिव, दुर्गा, कुमार और आते हैं गजानन।
व्रह्मा पृथ्वी गंगा अब्धि आर हुतासन।।	ब्रह्मा, विष्णु, गंगा तक और हुतासन।।
कामदेव आसिलेक आर हिमालय।	आये कामदेव और पीछे से हिमालय।
ईश्वर जाइवा हेरि पथ निरीक्षय।।	ईश्वर जायेगें देख आये करने पर निरीक्षय।।
तथाते चलेन यदि प्रभु दयामय।	वहां से चले गये यदि प्रभु दयामय।
समभ्यारे जाइबेन देवी पद्मालय।।(2)	सबके साथ जायेगें देवी पद्मालय।।(2)

जहां क्षीर समुद्र में, नारायण लक्ष्मी के साथ निद्राभिलाषी हैं। शेष नामक परमेश्वर महा बलवंत अनंत हैं। तैलोक्यग्रास तृप्त उस परमेश्वर की मध्यम फण धारण करते हैं। पूर्व फण को पद्माकर में उपर की ओर फैला कर उन्हें आच्छादित कर देते हैं। दक्षिण फण से उनका उपाधान कर देते हैं व उत्तर फण उनकी पादोपधान करती हैं। महाबल अनंतरूपी विष्णु पश्चिम फण को तालवृन्त कर निद्राभिलाषी देव देव को स्वयं व्यंजन करते हैं। वे नारायण के शंख, चक्र, नन्दक, खड्ग, तूणीद्वय एवं गरूड़ को ईशान फण द्वारा धारण करते हैं। और गदा, पद्म, शांग धनु एवं अन्य सारे अस्त्र आग्नेय फण द्वारा धारण करते हैं। अनंत में इसी तरह अपनी देह को शयन करके, जलमग्न पृथ्वी के उपर स्थापन कर अपने ही शरीर के भीतर जगत कारण जगदीश नित्यानन्द वेदमय ब्रह्मण्य जगत् कारण कर्ता भूत भविष्य वर्तमानाधिपति परावर गति सपरिष्द लक्ष्मी सहचर नारायण को मस्तक में हम धारण करते हैं।

कालिका पुराण 27 अध्याय।(बंगवासी आफिस अनुवाद)

(1) कहना आरंभ किया।
(2) पद्मालय, कमला।

प्रल–31

तबे तुष्ट होइया विष्णु अभ्युत्थान(1) होइलो।	तुष्ट हो तब हुआ विष्णु का अभ्युत्थान।(1)
त्रिलोचन भाग्य बोले पूजा लोइते आइलो।।	भाग्य त्रिलोचन का हुआ पूजा लेने आगमन।।
पूजा गृहे आसिलेक हरिलक्ष्मीपति।	पूजा गृह में है अब स्वयं हरि लक्ष्मी पति।
शिवादि देवता सबे कोरिआछे स्तुति।।	शिवादि देवता सभी ने किया है स्तुति।।
हरो मा(2) हरि मा(3) बाणि कुमार गण(4) विधि।(5)	हर, उमा(2), विष्णु, लक्ष्मी(3), कुमारगण(4) विधि(5)।
एईक्रमे बोसाइलो देब अद्याबधि।।	इसी क्रम बसाया मध्य शेष बेठे अद्यावधि।।
पर बेदी माझे आर छय देब बोइसे।	दूसरी बेदी मध्य शेष बैठे और छह देव।
खाद्धि(6) गंगा अग्नि काम हिमाद्रि जे शेषे।।	पृथ्वी समुद्र गंगा अग्नि काम और हिमालय।।(6)
पात्र मंत्री सैन्य सेना लोइया राजाय।	लिया साथ राजा ने पात्र मंत्री और सैन्य सेना।
नमस्कार कोरिलेन सर्बदेव पाय।।	नमन किया राजा ने सभी देवों के चरण।।
हस्ति अश्व योगान रहिलो बहुतर।	हस्ती अश्व की व्यवस्था थी बहुतर।
नवदण्ड छत्र गावल आरंगी सुन्दर।।	नव दण्ड छत्र गावल आरंगी सुन्दर।।
पताका अनेक शोभे प्रति फौजे फौजे।	शोभित पताका अनेक प्रति फौज के साथ।
सहस्राबधि स्वर्ण ढाली छिलो तीरोन्दाजे।।(7)	हजारों स्वर्ण ढाल से सजे तीरंदाज।।(7)
कृष्णवर्ण लोइछे अस्त्र अग्निसम वाण।	लेकर कृष्ण वर्ण अस्त्र और अग्निसम वाण।
गजपृष्ठे बीर सब लोहार समान।।	गज पृष्ठ वीर बैठे सभी लौह के समान।।
नानाविध वाद्य कोरे ढोल जे दगड़ि।	नानाविध वाद्य बाजे ढोल और दगड़ी।
भेबर(8) कर्णाल(9) शिंगा(10) दुन्दुभि(11) मोहरी।।	भेवर(8) कर्णाल(9) शिंगा(10) दुन्दुभि मोहरी।।
पंचशब्दी वाद्य बाजे मृदंग करताल।	पांच शब्दी वाद्य बाजे मृदंग करताल।
कांस्येर किराती घोंग बाजिछे विशाल।।	कांस्य किराती घोंग बज रहा विशाल।।
कोरिलो अनेक पूजा नानाविध मते।	नाना मतों से किया बहुत पूजन।
शिब दुर्गा विष्णु आज्ञा होइलो राजाते।।	शिव दुर्गा विष्णु की हुई राजा को आज्ञा।।
त्रिपुरेर राजा जेई एई वंशे हय।	त्रिपुर का राजा इस वंश में जो होगा।
पूजार मण्डपमध्ये आसिबो निश्चय।।	पूजा मण्डप में वह निश्चय आयेगा।।
चंताइते शिव दुर्गा विष्णु कहे आपने।	चंताई को शिव दुर्गा विष्णु ने कहा स्वयं।
त्रिपुर राजाते कहे चंताई साबधाने।।	त्रिपुर राजा से कहा चंताई ने उसी क्षण।।
तीन बलि नृपतिए स्वहस्ते छेदिबो।	नृपति स्वहस्त देगें बलि तीन।
तीन देबता भिन्न रूधिरे तार्पब।।	तरपेगें रूधिर से तीन देव भिन्न भिन्न।।

---

(1) अभ्युत्थान –उत्थान। (2) हरोमा –हर और उमा। (3) मॉ –लक्ष्मी। (4) गण –गणेश।(5) विधि –ब्रह्मा। (6) खाद्धि –पृथ्वी और समुद्र। (7) तीरंदाज –जो तीरों से युद्ध करते हैं।(8) भेवर –यह पीतल का बना जोर से आवाज करने वाला एक वक्राकार फूकनेवाला यंत्र। (9) कर्णाल –यह भी पीतल का बना हुआ फूकनेवाला एक वाद्य यंत्र। (10) शिंगा –भैंस के सींग से बना हुआ आवाज भरने वाला फूकनेवाला यंत्र। (11) दुन्दुभि –ढ़ाक या नगाड़ा।

प्रल–32

अन्य जतो बलि सब मण्डप बाहिरे।	अन्य बलि सभी मण्डप के बाहर।
चंताई दिब धारा(1) देबड़ाई छेद कोरे।।	देवड़ाई देंगे बलि चंताई देंगे धार(1)।।
एईमते सप्तदिन पूजा प्रचारिलो।	इसी तरह सप्तदिवस हुआ पूजा प्रचार।
तुष्ट होइया देब सबे नृपे बर दिलो।।	तुष्ट हो देवों ने दिये अमुक वर।।
एई जे मण्डले(2) तुमि महाराजा होइला।	यह जो मण्डल(2) है जहां तुम हुए महाराजा।
जिनिबा सकल राजा आमा बर पाइला।।	दिया वर हमने जीतेगें सभी राजा।।
चन्द्रादित्यावधि(3) तब सन्तति रहिबो।	चन्द्रादित्यावधि(3) रहेगी तब संतति।
जखने करह पूजा सत्वरे आसिबो।।	पूजा जब करोगे आयेगें यह सत्य है अति।।
ए बोलिया देव गेलो जार जेई स्थान।	वर दे चले गये सभी देव निज स्थान।
तदबधि वार्षिक पूजा होइलो प्रमाण।।	तद्वधि वार्षिक पूजा हुई सब प्रमाण

त्रिलोचन – दिग्विजय	त्रिलोचन – दिग्विजय
एईमते नरपति बन्चे(4) कोतो काल।	इसी तरह राज्य करें कुछ काल(4)।
नानान जातीय बहु छिलो महीपाल।।	नाना जातीय बहुत थे वहां महीपाल।।
काइफेंग चाकमा आर खुलंग लंगाई।	काइफेंग चाकमा और लंगाई खुलंग।
तनाउ तैयंग आर रयां आदि ठाई।।	और थे रयां आदि तनाउ तैयंग।।
थानांछि प्रतापसिंह आछे जतो देश।	थानांछि प्रताप सिंह है जितने देश।
लिका नामे आर राजा रांगामाटी शेष।।	लिका नाम और राजा रांगामाटी शेष।।
एई सब जिनीबारे इच्छा मने होइलो।	ये राज्य जीतने की जागी मन में वासना।
पात्र मंत्री संगे राजा मंत्रणा कोरिलो।।	पात्र मंत्री आदि साथ करे राजा मंत्रणा।।
पात्रादिर अनुमति लोइया त्रिलोचने।	पात्रादि की अनुमति लिया त्रिलोचन।
युद्धसज्जा कोरिया चलिलो सेनासने।।	युद्ध सज्जा कर चले करने सेनागण।।
राजार आदेश पाइया सकल साजिया।	राजा की आज्ञा पाकर सभी चले सजकर।
क्रमे क्रमे सर्बराजा विक्रमे जिनिया।।	सभी राजा राज्य जीता एक एक कर।।
तार राजा दूर कोरि युद्ध क्षमा दिलो।	सेनाओं ने त्यागा राजा और युद्ध।
त्रिलोचन सेना मध्ये सकल आसिलो।।	आ मिले सहर्ष त्रिलोचन सेना मध्य।।

---

(1) बलि के पहले, चंताई स्वयं देवालय के द्वार से बलि के स्थान तक बिना रूके जल की धारा प्रवाहित करते हैं। यह धारा शुरु होने के बाद बलि शुरु होती है। बलि के अंत तक यह धारा प्रवाहित की जाती है। बीच में बन्द करना निषिद्ध है।

(2) मण्डल – प्रदेश, राज्य।

(3) चन्द्रादित्यवधि – जब तक चन्द्र, सूर्य है।

(4) बन्चे – वास्तव में, काल वय

प्रल–33

त्रिलोचनेर हस्तिना गमन	त्रिलोचन का हस्तिना गमन
एईमते त्रिलोचन गेलो अग्निकोने।(1)	इस तरह त्रिलोचन गये अग्निकोण।(1)
राजा युधिष्ठर देखा कराये भीमसेने।।	राजा युधिष्ठर से मिलाये भीम सेन।।
त्रिलोचन देखिया बिस्तर कैलो मान।	त्रिलोचन को देख उन्होनें किया बहुत मान।
राखिलेक राजा यत्ने दिया दिव्य स्थान।।	रखा यत्न से नृपति को देकर दिव्य स्थान।।
तृणमय घरे थाके त्रिलोचन राजा।	तृणमय घर में रहे त्रिलोचन राजा।
अग्निकोन होइते आइसे लोइया निज प्रजा।।	अग्निकोण से लेकर आये अपनी प्रजा।।
मेखलीर(2) राजा आइसे ताहान सहित।	मेखली(2) के राजा भी आये उनके साथ।
युधिष्ठर द्वारे राजा देखिछे विहित।।	देखते विहित राजा आये युधिष्ठर द्वार।।
ताहा देखि दुःखित जे राजा दुर्योधने।	यह देख दुःखित हुआ राजा दुर्योधन।
धृतराष्ट्रस्थाने कहे अति क्रोध मने।।	कहा धृतराष्ट्र से अति क्रोधित मन।।
तथा राजा मान्य पाइया आसिलो स्वदेश।	मान पाकर वहां से, राजा आये स्वदेश।
अनेक बत्सर छिलो शुभ्र होइया केश।।	बहुत वर्षो तक किया राज्य अब शुभ्र हुआ है केश।।
पृथिबीते जतो धर्म कोरिते उचित।	पृथ्वी में जितना धर्म करना है उचित।
कोरिलो से सब धर्म अति विपरीत।।	किया वे सभी धर्म परस्पर अति विपरीत।।
दुर्गोत्सव दोलोत्सव जलोत्सव चैत्रे।	दुर्गोत्सव, दोलोत्सव, जलोत्सव महा चैत्र।
माघमासे सूर्यपूजा कोरिलो पवित्रे।।	माघ महीने सूर्य पूजा किया पवित्र।
श्रावण मासेते पूजा कोरे पद्मावती।	श्रावण माह पूजा करें पद्मावती।
ग्राममूद्रा(3) कोरिछिलो जेनो राजनीति।।	ग्राम मुद्रा(3) किया जैसे राजनीति।।
बिषु संक्रमने पितृलोक श्राद्ध कोरे।	पितृ लोक का श्राद्ध करें जब बिषु संक्रमण।
ब्राह्मणे अन्नादि दान प्राते निरन्तरे।।	प्रातः निरंतर ब्राह्मणों को अन्नादि दान।।
नित्य नैमित्तिक जतो क्रिया क्रमे छिलो।	क्रिया क्रम नित्य नैमितिक जितना था क्रम।
द्वादस पुत्रेर घरे बहु पुत्र होइलो।।	द्वादस पुत्रों के घर बहु पुत्रों ने ले लिया था जन्म।।

---

(1) पाठान्तर

एही मते महाराजा होइलो अग्निकोने।	इसी तरह महाराजा हुए अग्निकोण।
युधिष्ठिर चाहिवार निलो भीमसेन।।	युधिष्ठिर के देखने हेतू ले गये भीमसेन।।

यह पाठ ही शुद्ध और संगत प्रतीत होता है। युधिष्ठर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। त्रिपुरा से इन्द्रप्रस्थ अग्निकोण में नही है, अतएव *गए अग्निकोण* यह संगत नही हो सकता। महाराज त्रिलोचन अग्निकोण में नही गए थे। ''अग्निकोण से आये लेकर अपनी प्रजा'' यही सही है। *गए अग्निकोण* शब्द भ्रमात्मक है।

(2) मेखली – मणिपुर।

(3) ग्राम मुद्रा – ग्राम की रक्षा के लिए एक विशेष दैव क्रिया।

प्रल–34

त्रिलोचनेर स्वर्गप्राप्ति	त्रिलोचन की स्वर्गप्राप्ति
कालक्रमे त्रिलोचन अति बृद्ध होइया।	काल क्रम से अति वृद्ध हुए त्रिलोचन।
दाक्षिण पुत्रेते राज्य समर्पण दिया।।	पुत्र दाक्षिण को राज्य किया समर्पण।।
शिबलोके गेलो राजा मर्त्यलोके त्याजि।	शिवलोक गये राजा त्याग मर्त्यलोक।
दाक्षिण कोरिलो राजा सर्बलोक राजी।।	दाक्षिण को किया राजा, खुशी सभी लोग।।
त्रिलोचन खण्डं समाप्तं।	त्रिलोचन खण्ड समाप्त।

दाक्षिण–खण्ड	दाक्षिण खण्ड
भ्रातृ विरोध	भातृ विरोध
स्वर्गामी होइलेक राजा त्रिलोचन।	स्वर्गवासी हुए राजा त्रिलोचन।
दाक्षिण होइलो राजा तुष्ट प्रजागण।।	दाक्षिण हुए राजा तुष्ट प्रजागण।।
श्राद्धव्यय होइया धन पितार यतेक।	पितृ श्राद्धोपरांत बचा जो पितृ धन।
एकादश भाई बॉटि लोइलो पृथक।।	एकादश भाइयों ने मिलकर किया बंटन।।
एकादश अंश धन कोरि परिमित।(1)	धन का एकादश अंश करके परिमित।(1)
तार माझे दुईभाग नृपेर विहित।।	उससे दो भाग हुआ नृप का विहित।।
एईक्रमे बिवर्तिया(2) निलो पितृधन।	इस तरह विवर्तित(2) कर लिया पितृ धन।
एकादश भाई मिलि बन्चिल आपन।।	एकादश भाईयों ने किया अपना ही वंचन।।
राजार अनुज दस होइलो सेनापति।	राजा के अनुज दस हुए सेनापति।
सर्ब सेना भाग कोरि दिलो भ्रातृप्रति।।	सभी सेना विभाजित हुई अनुज प्रति।।
पन्च पन्च सहस्र सेना एक अंश पाय।	पंच सहस्र के हिसाब सेना एक अंश के प्रति।
पुरुषानुक्रमे एई रीति होये ताय।।	पुरुषानुक्रम से चली आ रही यह रीति।।
राजार निजेर सेना किरात सकल।	राजा की अपनी सेना में थे किरातों के दल।
पूर्वे द्रुहयु संगे आइसे क्षत्रियेर बल।।	पहले द्रुहयु साथ आया था क्षत्रियों का बल।।
त्रिलोचने युद्धे राजा जतो जिनिछिलो।	युद्ध में जीते थे जो भी त्रिलोचन।
राजाये से सब सेना दस भाइके दिलो।।	बॉटा दस भाईयों में राजा ने खुशी मन।।

---

(1) पाठान्तर –

द्वादस भाग धन कोरिया प्रमाण।	द्वादस भाग करके धन कर दिया प्रमाण।
राजा दुई भाग पाइलो एक भाग आन।।	दो भाग राजा को एक भाग अन्य जन।।

यही पाठ शुद्ध है। ग्यारह भाईयों में धन का भाग हुआ। राजा को दो भाग मिला। अतएव बारह भाग न होने पर इस नियम से धन बन्टन नही हो सकता।

(2) बिबर्तिया – यहां पर भाग करके बांटने विशेष अर्थ में विपत्ति को लेना होगा।

प्रल–35

त्रिलोचने स्वर्गे भ्रातृ राज्यधन निलो।	त्रिलोचन स्वर्ग गये भाइयों ने लिया राज्य धन।
सुनिया हेड़म्ब राजा मने दुःख पाइलो।।	सुनकर हेडम्ब राजा हुए दुःखत मन।।
प्रधान तनय आमि त्रिलोचन घरे।	प्रधान तनय मैं हूं त्रिलोचन के घर।
मातामहे दिछे आमा जनक ईश्वरे।।	मातामह को जनक रूप दिया है ईश्वर।।
राज्यधन जन जतो ज्येष्ठ पुत्रे पाये।	राज्य धन जन मिलता है पुत्र ज्येष्ठ को।
अमि ज्येष्ठ जीवमाने(1) कनिष्ठे निया जाये।।	मैं ज्येष्ठ पुत्र जीवित(1) नहीं मिलेगा कनिष्ठ को।।
पश्चाते हेडम्बपति भ्रातृके लिखिलो।	हेडम्बपति ने लिखा भाई को पश्चात।
एई सब तत्व पत्रे दूत पाठाइलो।।	ये सभी तत्वों से भरे पत्र को ले आया वहां दूत।।
दूत गिया पत्र तत्व कोरिलो गोचर।	जाकर वहां दूत ने पत्र तत्व का पूरा किया बखान।
एकादश भाई सने दिलेक उत्तर।।	एकादश भाइयों ने मिलकर दिया खुला बयान।।
जेई तत्व लिखियाछो ताहा मिथ्या नय।	जो तत्व लिखा उन्होनें, वह मिथ्या नही है।
राजार प्रधान पुत्रे राज्यपाट–लय।।	राजा का प्रधान पुत्र ही पाता है राज पाट सदा।।
हेडम्बपतिये तोमा पुत्र मान्ये निछे।	हेडम्बपति ने तुम्हें मान लिया है पुत्र।
पिता वर्तमाने तोमा स्वतंत्र कोरिछे।।	पिता ने अपने रहते तुम्हें कर दिया स्वतंत्र।।
यदि पिता तोमा राज्य धन जन दितो।	यदि पिता तुम्हें यहां राज्य धन देते हैं।
पिता वर्तमाने तोमा स्वदेशे आनितो।।(2)	अपने रहते वे तुम्हें यहां अवश्य ले आते।।(2)
दाक्षिणेके राज्य दिलो पिता स्वर्ग होइते।(3)	राज्य दिया दाक्षिण को स्वर्ग से पिता ने।(3)
आमरा तोमा के ताहा दिबो जे कि मते।।	हम तुम्हें यह राज्य देकर क्यों लाये बैठाने।।
सुनिया ए सब कथा दूत फिरि जाये।	सुनकर उनकी बातें दूत आया लौटकर।
सुनिया हेडम्बपति दुःखित ताहाये।।	सुनकर हेडम्बपति को हुआ दुख अपार।।
हेडम्ब होइया क्रोध युद्ध सज्जा कोरे।	हेडम्ब हुए बडा ही क्रुद्ध, शुरु की युद्ध की तैयारी।
पात्र मित्र सैन्य पाठाय युद्ध कोरिबारे।।	पात्र मित्र सैन्य को भेजा युद्ध करने।।
होइलो तुमुल युद्ध दुई सैन्य माझे।	हुआ तुमुल संग्राम दो सेनाओं के मध्य।
ढोल दगड़ भेरी नाना बाद्य बाजे।।	ढोल दगड़ भेरी आदि बज उठे सब वाद्य।।
हस्ती घोड़ा बहु सैन्य हेडम्बेर ठाट।	हस्ती घोडे बहु सैन्य हेडम्ब की ठाट।
सप्त दिन युद्धे होइलो त्रिपुरार पाट।।(4)	सप्त दिवस का युद्ध हुया त्रिपुरा के पाट।।(4)

---

(1) जीवमाने – जीवित रहते।

(2) यदि तुम्हें राज्य धन देने की पिता की इच्छा होती तो अपने रहते तुम्हें स्वदेश लौटा ले आते।

(3) दाक्षिण को स्वर्ग से पिता ने राज्य दिया है। इसका अर्थ है स्वर्गवास के समय।

(4) त्रिपुरा के पाट का अर्थ है– त्रिपुर राजधानी से।

प्रल—36

कपिला नदीर तीरे पाट छाड़ि दिया।	कपिला नदी के तीर राजधानी को छोड़कर।
एकादश भाई मिलि मंत्रणा कोरिया।।	एकादश भाईयों ने मंत्रणा की मिलकर।।
सैन्य सेना सने राजा स्थानांतरे गेलो।	सैन्य सेना साथ राजा गए स्थानांतर।
बरबक्र उजानेते खलंमा(1) रहिलो।।	उपरी भाग बरबक्र बसे खलंमा(1) जाकर।।
....	....
खलंमाय राज्य पाट	खलंमा में राज्य पाट
तार तीरे कोइलो पाट(2) दाक्षिण नृपति।	उसके तीर किया राजधानी(2) दाक्षिण नृपति।
नानामते तथा सर्ब लोकेर बसति।।	नाना मत के लोगों की थी वह बसती।।
एईमते युद्ध कोईलो सर्ब सहोदर।	इस तरह युद्ध किये सभी सहोदर मिलकर।
गज कच्छपेर मतो जूझिलो(3) विस्तर।।	गज कच्छप की भांति जूझे(3) विस्तृत परस्पर।।
आत्म कलह भातृ धनेर जन्य हय।(4)	आत्म कलह धन के लिए हुआ वहां।(4)
पितृ धन जन हेतू बहु सेना क्षय।।	पितृ धन जन के लिए बहुत सेना मरी जहां।।
खलंमा कोरिलो राज्य दाक्षिण नृपति।	खलंमा में किया राज्य दाक्षिण नृपति।
कपिला नदीर तीरे हेडम्ब बसति।।	कपिला नदी के तीर बसी थी हेडम्ब बसति।।

....

(1) खलंमा —बरबक्र(बराक) नदी के तीरवर्ती प्रदेश खलंमा नाम से प्रसिद्ध है।

(2) पाट —राजधानी।

(3) गज—कच्छप का उपाख्यान —विभावसु नाम के एक अति कोपन स्वभाव महर्षि थे। उनके कनिष्ठ सहोदर सुप्रतीक भ्राता के साथ एक साथ रहने में अनिच्छुक होकर सदा अग्रज के यहां सम्पति का बंटवारा करने का प्रस्ताव उत्थापन करते थे। एक दिन विभावसु ने क्रोधित होकर अनुज से कहा, भ्रातृगण पैतृक धन के बंटवारे के परस्पर धन गर्व में मत होकर विरोध आरम्भ करते हैं एवं इसलिए नाना तरह से अनिष्ठ भी संसाधित होते हैं। इसलिए पैतृक धन का बटवांरा करना साधुओं का अभिप्रेत नहीं है। मेरे मना करने पर भी तुम इस विषय में चुप नहीं हो रहे, इसलिए तुम्हें श्राप दे रहा हूं कि तुम वारण योनि प्राप्त करो। इसके बाद सुप्रतीक ने भी उन्हें श्राप दिया कि तुम भी कच्छप योनि प्राप्त हो जाओ। श्राप के प्रभाव से दोनों भाई गज और कच्छप हो गए।

ये लोग भी जन्मांतर बैर भाव को पोषण देते हैं और बैरी भाव को लेकर प्रतिक्षण घोर युद्ध में रत रहते हैं। उन्हें पकड़कर पक्षीराज गरूड़ द्वारा खा जाने के बाद इस झगड़े का अवसान हुआ। महाभारत आदि पर्व 29 अध्याय।

(4) भ्राताओं में धन को लेकर आत्म कलह हुआ।

प्रल–37

लांगरोंग(1) आदि प्रजा कुकि तथा बोइसे।
दिलेक हेडम्बेश्वरे सीमाना जे शेषे।।
बहुकाल वास करे एई क्रमे सबे।
परम हरिषे लोके नृपतिके सेबे।।
मल्लविद्‌या–विशारद होइलो सेनाजन।
खड़ग चर्म लोइया पांचा खेले(2) ढालीगण।।
खलंमा नदीर तीरे पाषाण पड़िछे।
मला होइले खड़ग लेन्जा(3) ताथे धाराइछे।।
खलंमा नदीर तीरे बालुचर आछे।
बीर सबेर खड़ग चर्म(4) ताथे राखियाछे।।
बड़ बड़ योद्धा सब बीर अतिशय।
महाबल पदभारे क्षिति कम्प होय।।
मद्य मांसे रत सब गोयार प्रकृति।
तृण प्राय देखे तारा गजमत्त–मति(5)।।
त्रिपुरार कुले पुनः बहु बीर होइलो।

सुरार प्रभाव

मद्‌य पान कोरि सबे कलह कोरिलो।।
तुमुल होइलो युद्ध घोर परस्पर।
ताहा निबारिते नाहि पारे नृपबर।।
आत्मकुल कलहेते महायुद्ध छिलो।
पड़िलो अनेक बीर रक्ते नदी होइलो।।
तर्जन गर्जन कोरे बड़ अहंकार।
अस्त्राघाते पड़े जतो नाहि सीमा तार।।
दीर्घ निद्रागत(6) बीरगणे भूमि पूर्ण।
भूपतिर जतो गर्ब सब होइलो चूर्ण।।
पचांस सहस्र बीर से स्थाने मरिलो।
एई स्थानेर एई गुण राजाये जानिलो।।

लांगरोंग (1) आदि प्रजा कुकि का वहां वास।
दिया सीमाना अंत में वहां करने को निवास।।
बहुकाल किया निवास इसी तरह सबने।
परम हर्ष से सेवा की नृपति की उन्होनें।।
मल्ल विद्या विशारद हुई सेना गण।
खड्ग चर्म ले नकली युद्ध(2) करे ढाली गण।।
खलंमा नदी के तीर फैले असंख्या पाषाण।
मल्ल होता, धार देते खड़ग शूल(3) पर।।
खलंमा नदी के तीर हैं विशाल बालुचर।
सभी वीरों ने खडग ढ़ाल(4) छुपाया उसमें।।
बड़े बड़े बलवान योद्धा सभी वीर भयानक।
महा बलवानों के पदभार से धरती रहती प्रकम्पित।।
मद्‌य मांस रत सभी गंवार प्रकृति।
तृण सम देखे सभी मद मत्त हस्ति(5)।।
त्रिपुरा के कुल में पुनः हुआ बहुत से वीर।

सुरा का प्रभाव

मद्‌य पान कर, करते सभी महा कलह गम्भीर।।
पुनः हुआ तुमुल युद्ध घोर परस्पर।
रोक न सके उन्हें स्वयं त्रिपुरेश्वर।।
आत्म कुल कलह से वहां महायुद्ध हुआ।
मरे अनेक वीर नदी का खून बहा।।
तर्जन गर्जन करते फैला महा अहंकार।
अस्त्राघात पड़े कितने, सीमा नही उसकी ।।
दीर्घ निद्रागत(6) वीरों से भूमि पूर्ण।
भूपति का गर्व हुआ क्षण में चूर्ण।।
पचास हजार वीर मरे वहां।
यह गुण भूमिका राजा को मिला यहां।।

---

(1) लांगरोंग –कुकी जाति का सम्प्रदाय विशेष।
(2) पांचा खेला –कृत्रिम युद्ध।
(3) लेन्जा –शूल।
(4) चर्म –ढाल।
(5) गजमत्तमति –मदमत्त हाथी।
(6) दीर्घ निद्रागत –मृत।

प्रल—38

यदुवंश(1) क्षय जेनो मुहूर्तेके होइलो।	यदुवंश(1) का क्षय जैसे हो गया क्षण में।
चितांए विकल राजा सर्ब सैन्य मोइलो।।	चिंता में विकल राजा, सारी सेना मरी रण में।।
महाबल ऐई स्थाने बीर जन्म हय।	महाबल वीरों का जन्म होता है यहां।
एई मात्र दोष आछे पुनः कोरे क्षय।।	पुनः मात्र दोष है वे क्षय प्राप्त होते यहां।।
ना रहिबो एथाते जाइबो अन्य स्थान।	नही रहूंगा यहां, जाउँगा अन्य स्थान।
मन स्थिर कोरे जाइते ताहार उजान।।	मन स्थिर किया उपरी भाग में जाने का।।
अद्य कल्य जाइबो मने बासना ना त्यजे।	आज कल में जाएगें, मनोवासना न त्यागी।
सेई स्थाने कालबश होइलो महाराजे।।	उसी स्थान पर कालवश हुए महाराजा।।

तैदाक्षिण खण्ड	तैदाक्षिण खण्ड
राज—वंशमाला	राज—वंशमाला
दाक्षिण मरिलो राजा तार पुत्र छिलो।	दाक्षिण मरा उसका पुत्र राजा हुआ।
तैदाक्षिण नाम राजा तखने कोरिलो।।	तैदाक्षिण नाम राजा उसी क्षण किया।।
प्रधान तनय से जे होइलो महाबल।	हुआ महाबल वह जो तनय प्रधान।
शांत धर्म मतिमंत बहु गुण स्थल।।	बहु गुण भरा वह शांत धर्म मतिमंत।।
बहुकाल सेई स्थाने पालिलेक प्रजा।	बहुकाल उसी स्थान पाला अपनी प्रजा।
मेखली राजार कन्या विभा कोइलो राजा।।(2)	मेखलीराजकन्या से विवाह किया राजा ने।।(2)

---

(1) यदुवंश ध्वंस विवरण —एक बार महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारद द्वारिका नगरी में आए। सारण आदि अनेक वीरों ने दर्शन कर दैव दुर्विपाकवश शाम्ब को स्त्री वेश धारण कराकर उनके यहां जाकर कहा, हे महर्षिगण, ये अमित पराक्रमी बभ्रु की पत्नी है। महात्मा बभ्रु पुत्र के लिए बड़े ही अभिलाषी हैं। अतः आप बताइये कि ये क्या प्रसव करेगी।

सर्वज्ञ ऋर्षियों ने इस प्रकरण से बहुत रोष प्रकट किया और कहा, ऐ दुर्वृत गण सुनों। यह वासुदेव तनय शाम्ब, वृष्णि और अंधक वंश विनाश के निमित्त भयानक लौह मुसल प्रसव करेगा। उस मुसल के प्रभाव से जर्नादन और बलदेव को छोड़ यदुवंश सभी ध्वंस हो जायेगें।

इसके बाद वासुदेव के उपदेशानुसार यादव गणों ने सपरिवार प्रयास तीर्थों में गमन किया एवं ब्रह्म श्राप की वजह से उन्होंने सुरामत्त अवस्था में परस्पर घोर कलह के फलस्वरूप एक दूसरे का विनाश किया। इस तरह यदु कुल के निर्मूल हो जाने के पश्चात बलदेव ने सर्प आकार धारण कर लिया(अर्थात वे शेष नाग के अवतार थे) और वासुदेव शायित अवस्था में जरा नामक व्याध के शराधात से लीला संवरण किया। ब्रह्म श्राप आदेश के अनुसार ये यादवगण सुरामत्त होकर आत्मकलह से ध्वंस हो गये।

महाभारत मुसल पर्व

(2) इस समय से मेखली(मणिपुर) के साथ त्रिपुरा का वैवाहिक समबन्ध का पहला सूत्रपात हुआ। किसी राजा की लड़की से विवाह हुआ। यह निर्णय जरा असाध्य है।

प्रल–39

ताहार औरसे पुत्र सुदाक्षिण नाम।	उनके औरस से पुत्र सुदाक्षिण नाम।
रूपे गुणे सुदाक्षिण बडे अनुपाम।।	रूप गुण में सुदाक्षिण थे बडे अनुपम।।
बहुकाल सेई राजा रहिलो तथात।	बहुत दिनों तक वह राजा रहे वहां ही।
सेई स्थाने राजार मृत्यु होइलो उत्पात।।	हुई मौत वहीं राजा की मचा उत्पात बड़ा ही।।
तरदाक्षिण नाम राजा ताहार तनय।	तरदाक्षिण नाम राजा थे उनके तनय।
बहुकाल पाले प्रजा निति यज्ञमय।।	बहुकाल पाले प्रजा को रहे नित्य यज्ञ मय।।
धर्मतर नामे होइलो ताहार नन्दन।	धर्मतर नाम हुआ उनका नन्दन।
बहुकाल रक्षा कोइलो राज्य धन जन।।	बहुकाल रक्षा किया राज्य धन और जन।।
तान पुत्र धर्मपाल होइलो नरपति।	उनके पुत्र धर्मपाल हुए वहां नरपति।
जीवहिंसा ना कोरिलो पालिलेक क्षिति।।	नही की जीव हिसां पाल अपनी क्षिति।।
सुधर्म नामेते होए ताहार तनय।	सुधर्म नाम से हुए तनय उनके
सुखे प्रजा राखिलेक सदय ह्रदय।।	सुख से रखे प्रजा सदय ह्रदय थे उनके।
तरबंग होइलो राजा ताहार नन्दन।	तरबंग हुए राजा उनके ही नन्दन।
तान पुत्र देबांग पालिलो सर्बजन।।	उनके पुत्र देबांग पाले प्रजा सर्व जन।।
तान सुत नरांगित पोरे होइलो राजा।	उनका पुत्र नरांगित पीछे हुआ राजा।
तान पुत्र धर्मागंद पालिलेक प्रजा।।	उनके पुत्र धर्मागंद पालन किया प्रजा।।
रूक्मागंद होइलो राजा सुमांग तत्पर।	रूक्मागंद हुए नृपति सुमांग हुए पश्चात।
नौगयोग राय राजा ताहार अंतर।।	नौगयोग राय राजा हुए धर्म रक्षार्थ।।
तरजुंग राजा होइलो ताहान तनय।	तरजुंग राजा थे उनकी ही संतान।
तरराज तान सुत बड़ो साधु होय।।	उनके पुत्र तरराज बड़े ही थे साधु सज्जन।।
हामराज तार पुत्र भालो राजा होइलो।	हामराज पुत्र उनके बने राजा अति सुसज्जन।
तान पुत्र बीरराज युद्ध कोरि मोइलो।।	उनके पुत्र वीरराज ने रण में किया मृत्यु वरण।।
श्रीराज तान पुत्र अति शुद्धमति।	श्रीराज पुत्र उनके अति शुद्ध मति।
कोतो धनजन तार नाहि संख्य यति।।	कितने धन जन थे उनके नहीं थी संख्या गति।।
ताहान नन्दन होइलो श्रीमंत भूपति।	उनके नन्दन हुए वहां श्रीमंत भूपति।
लक्ष्मीतर होइलो तान पुत्रेर आख्याति।।	लक्ष्मीहीन हुए उनके सुत की अख्याति।।
लक्ष्मीतर पुत्र छिलो तरलक्ष्मी नाम।	लक्ष्मीहीन पुत्र था उनका तरलक्ष्मी नाम।
माईलक्ष्मी सुत तान गुणे अनुपाम।।	माईलक्ष्मी नाम तनय का गुण में अनुपम।।
नागेश्वर नाम होइलो ताहार तनय।	उनके सुत का नाम पड़ा नागेश्वर।
योगेश्वर पुत्र तार पोरे राजा होय।।	उसके बाद बना राजा जिसका नाम योगेश्वर।।

प्रल–40

ईश्वर फा नामे हाईले नन्दन ताहार।	ईश्वर फा नाम का पुत्र हुआ उसके।
करिल चौरासि वर्ष राज्य अधिकार।।	किया चौरासी वर्ष राज्य अधिभार।।
तार पुत्र रंखाई हईले सु–राजन।	उसका पुत्र रंखाई हुआ सुराजन।
रहिल अनेक वर्ष पालिल भुवन।।	राजा ने अनेक वर्ष राज्य पालन किया।
धनराज फा नाम छिल ताहान पुत्र।	धनराज फा नाम का उसके पुत्र हुआ।
मौचंग ताहान पुत्र पाये राज–छत्र।।	मौचंग उसका पुत्र पाया राजछत्र।।
माईचौंग नामे राजा जन्में तान घरे।	माईचौंग राजा जन्में उसके घर।
उनसाइट वर्ष से ये राज्य भोग करे।।	उनसठ वर्ष राज्यभोग किया उसने।।
ताभुराज नाम हईल ताहार नन्दन।	ताभुराज नाम से हुआ उसका पुत्र।
तरफालाई फा छिल राजा अति शुद्ध मन।।	तरफालाई फा हुआ राजा अति शुद्ध मन।।
ताहान तनय हईल नृपति सुमन्त।	उाका पुत्र हुआ नृपति सुमन्त।
तार सुत राजा छिल श्रेष्ठ रुपबन्त।।	उसका सुत राजा था रुपबन्त।।
रुपबन्त नृपतिर पुत्र तरहाम।	रुपबन्त नृपति का पुत्र तरहाम।
ताहान तनय छिल नृपति खाहाम।।	उसका तनय था नृपति खाहाम।।
कतर फा तार पुत्र हईल नृपति।	कतर फा उसका पुत्र हुआ नृपति।
विष्णुभक्ति परायान धर्म श्रुद्ध मति।।	विष्णु भक्ति परायण धर्म शुद्ध मति।।
कालातर फा नाम हईल ताहार।	कालातर फा नाम हुआ उसका।
स्वजातिते तार प्रति बहु ब्यवहार।।	स्वजाति ने उसको चाहा बहुत ज्यादा।।
तानघरे चन्द्र फा नामे तनय हईल ।	उसके घर चन्द्र फा नाम का पुत्र हुआ।
बहुकाल राज्य प्रजा सब से पालिल।।	बहुकाल राज्य प्रजा सब को पाला।।
गजेश्वर नामे छिल नृपति नन्दन।	गजेश्वर नाम का था भूपति नन्दन।
पालिलो अनेक काल राज्य प्रजागन।।	पाला अनेक काल राज्य प्रजागण।।
बीरराज हईल तान घरे एक सुत।।	बीरराज हुआ उसके घर एक सुत।।
तान पुत्र नागपति बहु गुणयुत।	उसका पुत्र नागपति बहु गुणयुत।

शिक्षराजेर राज्य त्याग	शिक्षराज का राज्य त्याग
तान पुत्र शिक्षराज होईलो महाराजा।	उसका पुत्र शिक्षराज हुआ महाराज।
नरमांस खाये से ये छाड़े राज्य प्रजा।।	नरमांस खाने के बाद राज प्रजा छोड़ दिया।।
मृगयाते गेल राजा मृग ना मिलिल।	मृग हेतु निकले पर मृग नहीं मिला।
क्षुधाए ब्याकुल होइया पाचके बलिल।।	भूख से व्याकुल राजा ने कहा पाचक को।।

प्रल–41

मांस पाक कोरि आजि दिवा जे आमारे।	मांस पकाकर आज मुझे है देना।
ए कथा कोहिया गेलो स्नान कोरिबारे।।	कहकर यह बात चले गए नहाने।।
भय पाइया पाचक मनुष्य मांस आने।	भयभीत हो पाचक ले आया नर मांस।
अष्टमीते नरबलि चौद्ददेब स्थाने।	अष्टमी को नरबलि चतुर्दश देव स्थान।
सेई मांस आनि पाक कोरि विधिमते।।	वही मांस लाकर पकाया विधिमान।।
सुगंधि बहुल दिलो ना पारे चिनिते।।	सुगंधि मिलाया न कर सके पहचान।।
सुपक्क हयेछे मांस गंधे आमोदित।	सुपक्क हुआ मांस सुगंध से आमोदित।
खाइलो भूपति मांस क्षुधाये पीड़ित।।	खाये भूपति मांस को क्षुधा से पीड़ित।।
एमत सुस्वाद मांस ना खाईछि आर।	ऐसा सुस्वादु मांस न खाया कहीं और।
निश्चय कोरिया कहो ए मांस काहार।।	निश्चित बता किसका लाया है ये मांस।।
भयेते पाचक सब कम्पित होइलो।	भयवश पाचक का सब कम्पित बदन।
त्रस्त होइया तारा सबे कहिते लागिलो।।	भय से त्रस्त दिया सही बयान।।
मांस ना पाइया भये कोरेछि कुकर्म्म।	न पाकर मांस मैंने कर दिया कुकर्म।
मनुष्येर मांस दिया कोरिल अधर्म।।	नर मांस देकर मैंने कर दिया अधर्म।।
कम्प होइल नरपति वृतान्त सुनिया।	कम्पित हुआ नरपति सुनकर वृतान्त।
पाप कर्म कैला केने आमा भय पाइया।।	पाप कर्म क्यो कर किया भय से नितांत।।
आर ना कोरिबो आमि राज्येर पालन।	अब नही करूंगा मैं प्रजा का पालन।
योग साधनाते आमि चले जाब बन।।(1)	योग साधना हित मैं जाउंगा वन।।(1)

---

(1)

नागपतेः सुतो जात शिक्षराज इतीरितः।
स एकदा वनं यातो मृगयार्थं महीपतिः।।
बहुकालं बनं भ्रान्ता मृगं न प्राप्तवान् नृपः।
अतिश्रान्तस्ततो राजा निजमंदिरमगमत्।।
ततः क्षुधार्त्तो नृपतिर्मांसपाकार्थमुक्तवान्।
मृगमासंम् ना प्राप्य विह्वलः पाचकस्तदा।।
अष्टम्यां देवदत्तस्य नरस्य मांसमानयत्।
तन्मांसमति सत्पक्कं भोजयामास भूमिपं।।
शिक्षराजस्तु तद्भुत्वा सन्तुष्टः प्राह पाचकं।
ईद्रिशं सुरसं मासं कूतस्तं समुपेतबान्।।
पाचकस्त ततः प्राह भूमिपं सुभयातुरः।
देबदत्त नरस्मै तन्मांसं भोजितं मया।।
इति श्रुत्वा ततो राजा कम्पान्वितकलेवरः।
हरे त्राहि हरे त्राहि विमृष्यति पुनः पुनः।।
महावैराग्यमास्थाय बनबासमुपाश्रितः।
संस्कृत राजमाला।

प्रल–42

भूपति करिल पुत्र देबराज नाम।
चलिल नृपति बने निज मनस्काम।।
पुत्र आदि सेनागन काँदिते काँदिते।
आगुबाडि दिल निया कोतो दूर पथे।।
हर्ष होइया नरपति बिदाय दिलो प्रजा।
नमस्कार करिया फिरिलो देबराजा।।
देवराज घरे पुत्र होइलो दुराशा।
विराज ताहान पुत्र विष्णु भक्ति आशा।।
राम कृष्ण, विष्णु शिब मुखे जपे नित्य।
सुचरित्र मद्य मांसे रत नाहि चित्त।।
तार पुत्र सागर फा होइल महाराजा।
अनेक बत्सर सेहो पालिलेक प्रजा।।
मलयजचन्द्र राजा ताहान तनय।
सूर्यराय नामे राजा तार परे होय।।
तार पुत्र आचुंगफालाई राजा होइल।
तार पुत्र चरातर नामे राजा छिल।।
तार घरे पुत्र नाहि भाई होइल राजा।
आचंग ताहार नाम बड़हि सुतेजा।।
बिमार होइलो राजा ताहार तनय।
तार पुत्र कुमार परेते राजा होय।।

भूपति से जन्मा पुत्र देवराज नाम।
नरपति चले वन पथ पर लेकर मनस्काम।।
रोते रोते पुत्र आदि और सेना गण।
आगे बढ़ ले गये बहुत दूर तक राजन।।
हर्षातिरेक से नरपति ने दिया विदाई प्रजा को।
नमस्कार कर लौटे देवराज महाराज को।।
देवराज के घर पुत्र हुआ नाम दुराशा।
विराज हुए उनके पुत्र विष्णु भक्ति आशा।।
राम कृष्ण विष्णु शिव मुख से जपते नित्य।
सुचरित्र मद्य मांस में रत नहीं था चित्त।।
उनके पुत्र सागर फा हुए महाराजा।
अनेक सालों उन्होनें पाली अपनी प्रजा।।
मलयजचन्द्र राजा थे तनय उनके
सूर्यराय नाम के राजा वहां हुए थे।।
उनके पुत्र आचुंग फालाई हुए वहाँ के राजा।
चरातर नाम उनके पुत्र हुए महाराजा।।
उनके घर कोई पुत्र नहीं, भाई हुआ था राजा।
आचंग नाम उसका था निकला बड़ा सुतेजा।।
हुए राजा उनके तनय नाम हुआ बिमार।
उसके बाद राजा हुए उनके पुत्र कुमार।।

छाम्बुल नगरे शिवाधिष्ठान

किरात अलये आछे छाम्बुल नगर।
सेई राज्ये गियाछिल शिव भक्ति तर।।(1)

छाम्बुल नगर में शिवाधिष्ठान

किरात देश में है छाम्बुल एक नगर।
उस राज्य में गया था शिव भक्ति तर।।(1)

---

(1) विमारस्य सुतो जातः कुमारः पृथ्वीपतिः।।
स राजा भुवनख्यातः शिवभक्तिपरायणः।
किरातराज्ये स नृपश्छाम्बुल नगरान्तरे।।
शिवलिंगं समद्राक्षीत् सुबड़ाई–कृत–मठे।
ततः शिवं समभ्यर्चे नित्यं तुष्टाव भूमिपः।।
संस्कृत राजमाला।

प्रल–43

सुबड़ाई खुंग नाम महादेव स्थान।	सुबड़ाई खुंग नाम है महादेव स्थान।
करिल प्रनति भक्ति सेई भाग्यबान।।	किया प्रणति भक्ति वह भाग्यवान।।
महादेबे राखिछिलो कुकी स्त्री के निया।	रखा था महादेव ने कुकी स्त्री लाकर।
ताते पार्बती उद्देश करिलेक गिया।।	वहाँ पावती ने प्रवेश किया जाकर।।
चुलेते धरिया निल गले दिल पारा।	केश पकड़ गले पर दिया पैर।
ताहाते कुकीर स्त्रीर गला गेल चिरा।।	इससे कुकी स्त्री का गला गया चीर।।
से अबधि कुकीर स्त्रीर शब्द नहे बड़ो।	तब से कुकी स्त्री कर नहीं पाती शब्द अधिक।
ऐई कथा त्रिपुराते प्रचार जे दड़(1)।।	यह बात त्रिपुरा में हुई प्रचारित खूब(1)।।
छाम्बुल नगरे एक विचित्र काहनी।	छाम्बुल नगर की एक कहानी है अनुपम।
लिंगरुप धरे शिब से स्थाने आपनि।।	लिंग रुप धारी शिव वहाँ रहते स्वयं।।
रात्रिजोगे कुकीनिते शिवे क्रीडा करे।	रात में कुकी भी शिव पर क्रीडा करते
प्रस्तर जानिया तारे फेलाए अन्तरे।	पत्थर जान उसे सब फेंकते कुछ अन्तर।
सेई स्थानेते लोक गेलो शते दुई शते।।	वहाँ गये लोग शत दो शत।।
एक जन वृद्धि होए ना चिने पश्चाते।	बढ़ जाता एक पहचानता नहीं कोई पश्चात।
एक मोचा अन्न निले आर मोचा(2) बाडे(3)।	एक मोचा(2) अन्न लेते पर बढ़(3) जाता एक और।
तथापिह नाहि चिने धरिते नाहि पारे।।	पहचान नहीं सका तथापि न सका कहीं पकड़।।
गुप्त भाबे आछे तथा अखिलेर पति।	गुप्त भाव से है वहाँ सदा अखिल पति।
मनुराज सत्य युगे पूजिछिलो अति।।(4)	मनुराज ने सत्ययुग में तप किया वहाँ अति(4)।।
मनुनदी तीरे मनु बहु तप कोइलो।	मनु नदी पर मनु ने किया घोर तप।
तद्विधि मनु नदी पुण्य नाम होइलो।।	तब से मनु नदी का हुआ महा पुण्य नाम।।
कुमारेर सुत राजा सुकुमार नाम।	कुमार के सुत राजा सुकुमार जिसका नाम।
बहुकाल राज्य कोरे पुण्य मनस्काम।।	बहुत काल किया राज्य हुआ पूर्ण मनस्काम।।

---

(1) दड़ –दृढ़

(2) मोचा –पार्वत्य जातियों में एक प्रथा प्रचलित है। वे अगर कहीं दूर जाते हैं या पहाड़ी झुम खेत (अर्थात पहाड़ों पर जो धान लगाया जाता है, उस किस्म के धान को जुम/झुम धान और उस जगह को जुम/झुम खेत कहते है।) जाते हैं तो, एक तरह का पत्ता वहाँ मिलता है, जिसके पत्तों से पोटली बनाकर उसमें भात रखते हैं और वह भात बहुत देर तक गर्म रहता है। इसी पोटली को मोचा, व भात को ''मोचा भात'' कहते हैं

(3) पठान्तर–शत मोचा अन्न निले एक मोचा बाडे। अर्थात एक सौ मोचा अन्न लेने पर एक मोचा बढ़ जाता है।

(4) पूरा कृतयुगे राजन् मनुना पूजितः शिवः
तत्रैव विरले स्थाने मनुनाम नदी तटे।
गुप्तभावेन देवेशः किरातनगरेऽबसत्।
संस्कृत राजमाला धृत तथा योगिनी तन्त्र वचन।

प्रल—44

तैछराव राज पुत्र नृपति तखन।
राजेश्वर तार पुत्र होइलो राजन।।
तार दुई सुत होइलो अति गुणवान।
महाबल अति क्रोध अग्निर समान।।

तैछराव राज पुत्र नृपति महान।
राजेश्वर उनका पुत्र हुआ राजन।।
उनके दो पुत्र हुए अति गुणवान।
महाबल अतिक्रोध अनल समान।।

मैछिली राजो आख्यान

ज्येष्ठ भाई राजा होइलो पितृस्वर्ग पर।
पुत्रेर कामना कोरि पूजिलो ईश्वर।।
अनेक वत्सर राजा देवता पूजिलो।
दैवेर निर्बन्धे तान पुत्र ना जन्मिलो।।
आषाढ़ मासरे शुक्ला अष्टमी तिथिते।
पूजा गृहे गेले राजा चन्ताई सहिते।।
चतुर्दश देवताके प्रत्यक्ष देखिलो।
जार जेई निजासने बोसि प्रजा लोइलो।।
बर मागिलेन राजा पुत्रेर कारणे।
ना होइबो तब पुत्र कहे त्रिलोचने।।
क्रोध होइलो नृपति मृत्यु ना जानिलो।
मारिलो शिवेरे तीर पायेते पडिलो।।
क्रोध होइया पशुपति ताके शाप दिलो।।
सेईक्षणे महाराजा अन्ध होइयाछिलो।
शापेर मोचन कथा जिज्ञासे चन्ताई।।
अधमे कोरिछे पाप क्षमहो गोसाई।
ताहा सुनि शिबे कोहे चन्ताइर प्रति।।
कलियुगे जतो लोक होइबो पापमति।
देखा नाहि दिब आमि पुजार समय।।
पदचिन्ह पाइबेक जे सबे पूजय।
ना होइवो तान पुत्र राजा पापमति।।
पाप कर्म कोरि तार कि होइबो अब्याहति।
भालो होबे मनुष्येर रक्त चिरि लोइबो।
सेई रक्त दिया परे भूत बलि दिबो।।

मैछिली राजा का आख्यान

ज्येष्ठ पुत्र राजा हुआ पिता के स्वर्ग जाने पर।
पुत्र की कामना से उसने पूजा ईश्वर।।
अनेक वर्ष तक राजा ने किया देवों का पूजन।
पुत्र न जन्मा उनके घर या दैव का निर्बन्ध।।
आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी तिथि में।
पूजा गृह गये राजा ले चन्ताई को साथ में।।
चतुर्दश देवता का किया प्रत्यक्ष दर्शन।
प्रजा लिया देवों ने बैठे स्व स्व आसन।।
वर माँगा राजा ने पुत्र के कारण से।
न होगा तुम्हारा पुत्र कहा त्रिलोचन।।
क्रोध वश नरपति ने न जाना अपनी मरण।
मारा तीर शिव को जो गिरा जाकर चरण में।।
क्रोध वश पशुपति ने दिया श्राप उसी क्षण।।
हुए अन्धे महाराज वही तक्षण।
श्राप के मोचन की बात पूछा चन्ताई।।
अधम ने किया है पाप छमहु गोंसाई।
यह सुन शिव ने कहा चन्ताई से।।
कलियुग में लोग रहेगें पाप मति से।
दर्शन नहीं दूँगा मैं पूजा के समय।।
पद चिन्ह पायेंगें जो पूजेंगें निश्चय।
न होगा उसका पुत्र राजा है पापमति।।
पाप कर्म से उसे क्या मिलेगा अब्याहति।
अच्छा ही होगा मनुष्य रक्त चीर लुंगा।
इसी रक्त से बाद में भूत बलि दूंगा।।

प्रल–45

नारीर सहिते राजा स्वतन्त्र रहिबो।	स्वतन्त्र रहेंगें राजा नारी के साथ।
कोतो दिन परे नृपचक्षु भालो होइबो।।	नृप चक्षुदीक होगी कुछ दिन पश्चात।।
ए बोलिया हरिहर गैलो निज स्थान।	यह कहा हरिहर गए निजस्थान।
रक्त अनिबारे दूत पाठाय स्थाने स्थान।।	रक्त हेतु दूत चले हर और हर स्थान पर।।
मैछिली(1) नाम लोक गेलो रक्तेर कारण।	मैछिली(1) नाम व्यक्ति गया रक्त के संधान।
त्रस्त होइलो देशवासी जतो प्रजागण।।	त्रस्त हुए देशवासी सभी प्रजागण।।
पिता माता कोरिछे पुत्रेते अप्रत्यय।	पिता माता भी पुत्र पर न करे आशा।
पति पत्नी भेद मने होइलो अतिशय।।	पति पत्नी मध्य भेद हुआ अतिशय।।
बनेते ना जाये केहो(2) नाहि चले पथे।	वन में न जाये(2) कोई न चले पथ पर।
भयातुर सब होइलो वाँचिबो कि मते।।	जीये कैसे सोचे सभी अति भयातुर।।
अमंगल होइलो भूपतिर निज देश।	भूपति के निज देश में हुआ अमंगल।
धरि निले लोके ताके ना पाये उद्देश।।	पकड़ ले जाने पर मिला नहीं उद्देश।।
भूत बलि(3) दिया नृपेर चक्षु होइलो भालो।	नृप की आँखे हुई ठीक, भूत बलि(3) देकर।
बृद्ध होइलो सेई राजा ग्रासिलेक काल।।	वृद्ध राजा हुए अन्त में काल ग्रस्त जाकर।।
मैछिली भूपति नाम लोके तार ख्याति।	मैछिली भूपति की थी ख्याति।
तान भ्रातृ तैचुंग फा होइलो नरपति।।	भ्रातृ पुत्र तैचुंग फा हुआ नरपति।।
तार पुत्र नरेन्द्र जे इन्द्रकीर्ति पौत्र।	उनका पुत्र नरेन्द्र और इन्द्र कीर्ति पौत्र।
इन्द्रकीर्ति घरेत विद्वान राजपुत्र।।	इन्द्र कीर्ति धर्म में विद्वान राज पुत्र।
बहु काल पालन कोरिलो प्रजागण।	बहु काल पालन किया प्रजा गण।
तान पुत्र यश राजा होइलो सुराजन।।	उनका पुत्र यश राजा हुआ सुराजन।।

(1) मैछिली –त्रिपुरा जाति के सम्प्रदाय के हैं। देवार्च्चना के बलिदान के लिए मनुष्य संग्रह करना ही इनका मुख्य कार्य था।

(2) त्रिपुर राज्य प्रजा साधारण वनज वस्तुओं के लिए हमेशा जंगल में जाते हैं और बाँस बेंत आदि लकड़ी संग्रह करना इनका मुख्य पेशा है। बहुत से लोगों का रोज का काम था।

(3) भूतबलि –शिव के अनुचर वर्ग की अर्चना। मत्स्य पुराणोक्त देवी अर्चना विधि में लिखा गया है।

वृक्षेषु पर्वताग्रेसु पातालेसु च ये स्थिताः।
भूमौ व्योम्नि स्थिता ये च ते मे गृन्हन्तिमं बलिम्।

शान्तिस्वत्यनकल्पद्रुम में भूत बलि की विधि के बारे में लिखा है–

उँ भूतेभ्यो नमः इति पाद्यादिभिः संपूज्य
एते गंध पुष्पे उँ माषभक्त बलये नमः। इति वलिन्च संपूज्य,
उँ ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः
मातारोऽप्युग्ररुपाश्च गणाधिपतयस्च ये।
उँ विघ्नभूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृन्हन्तिमं बलिम्– इत्यादि

प्रल–46

तान पुत्र होइलेक बंग महाराजा।
आपनार नामें राजा स्थापिलेक प्रजा।।
ताहार तनय छिलो राजा गंगा राय।
तान पुत्र छाक्रु राय राजछत्र पाय।।

प्रतीत खण्ड

प्रतिज्ञा निबन्ध

प्रतीत नामेते जन्में ताहार तनय।
हेड़म्बपतिर संगे कोरे परणय।।
हेड़म्ब राजाये दूत पाठाये तखन।
प्रतीत राजार स्थाने कोहे विवरण।।
तोमा ज्येष्ठ भाई घरे उत्पत्ति ताहार।
एक बंशे दुई राजा दैव हेतू जार।
दुई भाई कोतोकाल एकत्रे बन्चिबो।।
अन्य लोके सुनिले जे भेद न जानिबो।
शत्रु सबे सुनि भय पाइबेक मने।
सुखेते कोरिबो राज्य भोग दुई जने।।
ए कथा सुनिया राजा प्रतीत तखन।
ज्येष्ठ भाई कोहिछे जे सेई विलक्षण।।
प्रतीज्ञा निबन्ध कोरि दूत गेलो चलि।
तारपोरे राजा गेलो ज्येष्ठ भाई बोलि।।
दुई नृपे अनेक कोरिलो संभाषण।
एकासने बोसे दोंहे एकत्रे भोजन।।
सीमाना कोरलो राज्येर सत्य निर्बन्धिया।
राजत्व कोरिब भोग सुखेते बोसिया।।
दुई भाई कोहिलेक एकत्र होइया।
कोखनो सीमाना कार ना लंघिबो गिया।

उनके पुत्र हुए बंग महाराजा।
अपने नाम से राजा ने बनाया प्रजा।।
उनका तनय था राजा गंगा राय।
उनका पुत्र छाक्रु राय राजछत्र शोभाय।।

प्रतीत खण्ड

प्रतिज्ञा निबन्ध

प्रतीत नाम के जन्में तनय।
हेड़म्ब पति के साथ किया परिचय।।
हेड़म्ब राजा ने दूत भेजा उसी क्षण।
प्रतीत राजा से जा कहा विवरण।।
अग्रज के घर हुआ उसका जन्म।
एक वंश दो राजा दैव निबन्धन।
दो भाई एक साथ रहे कब तक वंचित।।
दूसरे भी सुनकर न जानेगें भेद किंचिंत।
शत्रु सभी सुनकर पायेगें भय मन में।
सुख से राज्य भोग करेगें दोनो अपने।।
ये बातें सुनकर राजा प्रतीत उसी क्षण।
ज्येष्ठ भ्राता कह रहे है बात विलक्षण।।
चला गया दूत प्रतीज्ञा करके निबन्धन।
इसके बाद राजा गये अग्रज के पास।।
दोनों नृपतियों ने परस्पर किया संभाषण।
एकासन बैठे दोनो, किया एकत्र भोजन।।
सीमा का दोनों ने किया निर्धारण।
राजत्व करेगें सुख से बैठे सिंहासन।।
दोनों ने मिलकर दिया यह वचन।
कभी न होगा सीमा का लंघन।।

प्रल–47

दैवे यदिह काक धवल वर्ण होय।	दैव वश यदि काक हो धवल वरण।
तथापि प्रतिज्ञा दुइर ना लंधि निश्चय।।	तथापि प्रति आदेश का न करें लंघन।।
तोमा आमा दुई जनेर यदि सत्य टले।	तुम्हारा मेरा सत्य यदि कभी नहीं टला।
बंश नाश होईबेक ग्रासिबे जे काले।।	होगा वंश नाश करेगा करल ग्रास।।
हेड़म्ब एवं त्रिपुरेश्वरेर विरोध	हेड़म्बे एवं त्रिपुरेश्वर का विरोध
एई तत्व सुनिलेक अन्य राजगण।	यह तत्व सुने जब अन्य राजगण।
चिन्तायुक्त होइलेक तहादिगेर मन।।	चिन्ता युक्त हो गया तब उनका मन।।
कामाख्या जयन्ता आदि आछे राजा यतो।	कामाख्या जयन्ता आदि थे राजा जितने।
हेड़म्बेर पूर्वोत्तर बोइसे आर कोतो।।	हेड़म्ब के पूर्वोत्तर में थे और भी कितने।।
ताहारा सुनिया वार्ता मन्त्रणा कोरिया।	सुनकर उन्होनें बैठ किया एक मन्त्रणा।
परमा सुन्दरी नारी दिलो पाठाइया।।	परम सुन्दरी नारी भेज दिया।।
बोसियाछे दुई नरपति एक स्थान।	बैठे थे नरपति दोनों एक स्थान।
आनिया देखाये नारी दुई विद्यमान।।	लाकर दिखाया नारी दोनों विद्यमान।।
शिखाईछे राजा सबे सेई सुन्दरीरे।	सिखाया थे सुन्दरी को, सभी राजागण।
त्रिपुर राजार पाने चाहो आँखि ठारे।।	त्रिपुर राजा पर डाले तिरछे नयन।।
हेड़म्ब राजार पाने ना कोरियो मन।	हेड़म्ब राजा की ओर न देना मन।
त्रिपुरेते पुनः पुनः कोरो निरीक्षण।।	त्रिपुर राजा को करो पुनः पुनः निरीक्षण।।
प्रतीत त्रिपुर राजा बड़ही सुन्दर।	हैं बड़े सुन्दर प्रतीत त्रिपुर भूप।
देखिले सुन्दरी तुमि बुझिबा अपर।।	देखते ही सुन्दरी तुम्हें लगेंगे अपरुप।।
बयोधिक किछु होये हेड़म्बेर पति।	वयोधिक कुछ है हेड़म्ब के पति।
धैर्य होइया ना चाहिबो से जे नारी प्रति।।	धैर्य धर नहीं चाहेंगें वह नारी प्रति।।
राजागणे शिखाइया कोहिछिलो जाहा।	राजाओं ने सिखाकर कहा जो कुछ।
राजा आज्ञा अनुसारे नारी कोरे ताहा।।	राजाज्ञा अनुसार नारी करती वही सब कुछ।।
नारी हेरि हेड़म्बेर भूपति भूलिलो।	नारी देख हेड़म्ब पति भूले सब कुछ।
हर्ष मने सेई क्षणे दुतेते पूछिलो।।(1)	हर्षित मन उसी समय दूत से लिया पूछ।।(1)
आमार कारणे किबा पाठाइछे सुन्दरी।	मेरे कारण ही शायद भेजा है सुन्दरी।
नारी बोले भजिबो त्रिपुर अधिकारी।।	नारी बोले उसे भेजा त्रिपुर अधिकारी हेतु।।
लज्जा पाइया हेड़म्बेत क्रोध होइलो मने।	लज्जा पाकर हेड़म्ब का क्रोध हुआ मन में।
कर्ण नासा काटिते जे बोलिलो तखने।।	कान नाक काटने को कहा तब उन्होने।।

(1) पूछिलो –जिज्ञासा किया

प्रल–48

हेड़म्ब आज्ञाते लोक आसे काटिबार।	हेड़म्ब की आज्ञा से लोग आये काटने।
भये कन्या त्रिपुर राजा डाके बारे बार।।	भय से त्रिपुर को, बार बार बुलाया कन्या ने।।
क्रोध होइया त्रिपुर राजा उठे सभा होइते।	क्रोधित होकर त्रिपुर राजा उठ गया सभा से।
सुन्दरी धरिया निलो आपनार हाते।।	सुन्दरी को पकड़ा अपने हाथों से।।
ससैन्ये चलिलो राजा आपनार देशे।	ससैन्य चले राजा अपने देश।
ताहाते हेड़म्ब राजा क्रोध होये शेषे।।	इससे हेड़म्ब राजा को अन्त में बड़ा क्रोध।।
अश्व गज साजिलेक सैन्य पराक्रम।	अश्व–गज से सजी सेना महा पराक्रम।
आपने हेड़म्ब चले जैनो काल यम।।	हेड़म्ब राजा चले जैसे काल यम।।
सत्य कोइलो नरपति एई क्षणे जाबो।	सत्य ही कहा नरपति ने, जाउँगा इसी क्षण।
सुन्दरी के वध कोरि त्रिपुरे देखाबो।।	सुन्दरी को वध त्रिपुर में दिखाउगा।।
ससैन्य हेड़म्बो आइसे त्रिपुर नगरी।	ससैन्य हेड़म्ब आये त्रिपुर नगरी।
हेड़म्बेर एइ तत्व सुनिलो सुन्दरी।।	हेड़म्ब का यह प्रण सुनी तब सुन्दरी।।
जीवन वधेर भये सुन्दरी आपन।	जीवन वध के भय से कहा सुन्दरी ने स्वयं।
काँदिया कोहिलो सुनो त्रिपुर राजन।।	रोकर कहा, सुनो हे त्रिपुर राजन।।
एई देश छाडो राजा आमा प्राण राखो।	यह देश छोड़ो मेरा प्राण रखो।
नहे आमि चले जाबो तुमि एथा थाको।।	नहीं तो मैं चली जाँउ तुम यहीं रहो।।
सुन्दरी देखिया राजा भुलियाछे मन।	सुन्दरी को देख राजा का भ्रमित हुआ मन।
खलंमार कुले आइसे त्रिपुर राजन।।	खलंमा तीरे आए त्रिपुर राजन।।
हेड़म्ब त्रिपुर राजा ना देखे से स्थान।	हेड़म्ब त्रिपुर राज्य का न देखे थे वह स्थान।
आपने लज्जित राजा बुझिलो सन्धान।।	स्वयं लज्जित राजा समझे निज मान।।
पापिष्ठ सुन्दरी आमा कोरिलेक भेद।	पापिष्ठ सुन्दरी ने हम से कर दिया विच्छेद।
प्रणय भांगिलो दोहे कोरिलो विच्छेद।।	हुआ भंग प्रणय दोनों में हो गया विच्छेद।।
भाइयेर कारणे चिंते हेड़म्ब राजाये।	भाई हित चिन्तित हुए हेड़म्ब नरपति।
किसेर कारणे भाई विदेशेते जाये।।	किस कारण अनुज की हुई विदेश जाने की मति।।
दस बृद्ध त्रिपुरार सेनापति स्थाने।	दस वृद्ध त्रिपुरा के सेनापति के साथ।
कन्यार प्रसंग कोहे हेड़म्ब राजने।।	हेड़म्ब राजपति ने कहा उस कन्या की बात।।
त्रिपुर राजार थाना से स्थाने राखिया।	त्रिपुर राजा का थाना रखकर वहीं पर।
हेड़म्ब फिरिया गेलो सेनापति लोइया।।	हेड़म्ब लौट गये सेनापतियों को लेकर।।
एई मत रंगेते प्रतीत राजा आसे।	इस तरह प्रतीत राजा आये।
शिब दुर्गा विष्णु भक्ति होइलो विशेषे।।	शिव दुर्गा विष्णु भक्ति हुआ विशेष।।

प्रल–49

तान सुत होइलो मालछी महाराजा।	मालछी उनका पुत्र हुआ महाराजा।
ताहान तनय होइलो गगन सुतेजा।।	तनय उनका गगन हुआ सुतेजा ।।
तान पुत्र नाउड़ाई होइलो प्रधान।	नाउड़ाई उनका हुआ पुत्र प्रधान।
हामतार फा तान पुत्र जन्मे दिव्य ज्ञान।।	हामतार फा, पुत्र उनका था, जन्म से दिव्य ज्ञान।।
हामतार फा नाम पोरे युझार तखन।	हामतार फा नाम प्रख्यात हुआ युझार ।
रांगामाटि जिनि ख्याति युझारे आपन।।(1)	जीता रांगामाटी फैली ख्याति चारों ओर।।(1)
राजवंश कीर्ति सब सुनि महाराजा।	राजवंश की सारी कीर्ति सुनकर महाराजा।
आर सुनिबारे आज्ञा कोरे महातेजा।।	और सुनाने की आज्ञा दिये महातेजा।।
प्रतीत खण्डं समाप्तं।	प्रतीत खण्ड समाप्त।

युझार खण्ड	युझार खण्ड
लिका अभियान	लिका अभियान
श्रीधर्ममाणिक्य राजा पुनः जिज्ञासिलो।	पूछा पुनः राजा श्रीधर्ममाणिक्य।
रांगामाटी देश राजा कि मते पाइलो।।	रांगामाटी देश राजा को मिला किस तरह।।
महंत त्रिपुर जाति चन्द्र वंशोद्भव।	है महान त्रिपुर जाति चन्द्रवंशोद्भव।
ताहार वृतान्त कहो विस्तारिया सब।।	उनका वृतान्त कहो विस्तार से सब।।
पुरुषानुक्रमे कथा जानेन विस्तर।	पुरुषानुक्रम से जानते हैं सविस्तार।
कहिते लागिलो पुनः दुर्लभेन्द्रबर।।	कहने लगे पुनः दुर्लभेन्द्र प्रवर।।
रांगामाटी देशेते जे लिका राजा छिलो।	रांगामाटी देश में था लिका नाम राजा।
सहस्र दशेक सैन्य ताहार आछिलो।।	दस सहस्र सैन्य उसके पास थे।।
धामाई जाति(2) पुरोहित आछिलो ताहार।	पुरोहित थे उनके धामाई(2) जाति के।
अभक्ष्य ना खाये तारा सुभक्ष्य व्यभार।।	अभक्ष्य न खाते थे अभ्यस्त सुभक्ष्य आदि के।।
आकाशेत धौत वस्त्र ताराह सुखाय।	आकाश में धौत्र वस्त्र वे सुखाते।
सुखाइले सेई वस्त्र आपने नामाय।।	सुखाने पर वस्त्र को वे स्वयं उतारते।।
वत्सरे वत्सरे तारा नदी पूजा कोरे।	वर्षो वर्ष तक वे नदी पूजा थे करते।
स्त्रोत जो स्तम्भिया राखे गोमती नदीरे।।(3)	गोमती नदी का स्रोत स्तम्भन कर रखते।(3)

---

(1) रांगामाटी जय करके समय युझारु अर्थात योद्धा उपाधि ग्रहण किया था।

(2) धामाई– मघ जाति के(अर्थात उनके मघ जाति) एक विशेष शाखा को धामाई कहते हैं।

(3) प्राचीन काल में नदी पूजा के समय मंत्र प्रभाव से नदी का स्रोत स्तंभित हो जाता था। इस तरह की कथा प्रचलित है।

प्रल–50

स्रोत बन्ध राखे तारा पूजा जतो क्षण।
पूजा सांगे पुनर्बार स्त्रोतेर बहन।।
धर्मेते निपुण तारा नामे लिका जाति(1)।
रांगामाटी पूर्व स्थान ताहार बसति।।
त्रिपुरार चर गण ताहाके देखिया।
युद्ध हेतु सैन्य सेना गेलेक साजिया।।
हस्ती घोड़ा चलिलेक अनेक पदाति।
भिन्न भिन्न क्रमे चले जार जेई रीति।।
अग्र होइया सैन्य चले पीठवर्ती परे।
लांगाई सैन्य चलिलेक नाउड़ाई तदन्तरे।।
जार जेई सेना लोइया भ्रातृगण राजार।
सैन्य मध्ये चलिते छे राजा त्रिपुरार।।
दाहिनें बाँये दुई भाग सेनापतिगण।
बहु सेनापति रहे पृष्ठेते रक्षण।।
ताहार पश्चाते रहे आर सेनापति।
राज भ्रातृ सकलेरे त्राण कोरे अति।।
ध्वत पताका कोतो सहस्रे सहस्रे।
नाना रंगे चलियाछे नाना वर्ण अस्त्रे(2)।।
शुभक्षण कोरिया चलिलो नृपबर।
कुकी सैन्य आगे आगे बानाये जे घर।।
अरण्येर पूर्व भागे लिका नामे छडा।
जत आछे छडाकुले लिका दफा पाडा।।
त्रिपुरार सैन्य युद्ध कोरे परिपाटी।
भंग दिया सब लिका गेला रांगामाटी।।

स्रोत बन्द रखते थे पूजा तक।
पुनर्बार स्रोत चलता पूजा के साथ।।
धर्म में निपुण थे नाम लिका जाति।(1)
रांगामाटी पूर्व स्थान था उनकी बसति।।
त्रिपुरा के चरों ने उन्हें देखकर।
युद्ध हेतु सेना हो गई प्रस्तुत।।
हस्ती, घोड़ा चले अनेक पदाति।
भिन्न भिन्न क्रम से चली जिसकी जैसी परिणति।।
आगे आगे सेना चली पीछे वाले पश्चात।
लांगाई सेना चली नाउड़ाई पश्चात।।
अपनी अपनी सेना साथ चले अनुज राजा के।
सेना मध्य चलते रहे थे राजा त्रिपुरा के।।
दाँये बाँये दो भाग हुए सेनापतिगण।
बहुत सेनापति रहे पीछे सुरक्षा के कारण।।
इसके पश्चात रहे और सेनापति।
राज भ्रातृ सभी को त्राण देने अति।।
ध्वज पताका थे साथ में हजारों हजार।
नाना वर्णों में चले और नाना रंग के अस्त्र(2)।।
शुभ क्षण देख चल पड़े नृपवर।
कुकी सैन्य आगे आगे बनाते चले घर।।
अरण्य के पूर्व भाग में सोता लिका नाम का।
जितने थे किनारे रहने वाले लिखा नाम ग्राम का।।
त्रिपुरा की सेना करे युद्ध परिपाटी।
भाग गये सभी लिका गये रांगामाटी।।

---

(1) लिका– मघ(मग) जाति की एक श्रेणी।

(2) पृथक पृथक अस्त्रधारी सैन्य दलों के (तीरन्दाज, ढाली और गोलन्दाज आदि) स्वतन्त्र स्वतन्त्र वर्णों के पताके की प्रचलन उस समय थी।

प्रल–51

रांगामाटी राज्यपाट	रांगामाटी विजय राज्यपाट
ये सब वृतान्त सुने लिका नरपति।	यह सब वृतान्त सुना लिका पति ने।
सर्ब सैन्य साजिलेक युद्धे शीघ्रगति।।	सभी सैन्यों को कहा शीघ्र युद्ध करने।।
लिका नरपति बोले तूषे बान्ध गड।	लिका पति ने कहा मूसी से बनाओ गढ़।
तूषे पद नाहि दिबो त्रिपुर ईश्वर।।	मूसी पर पैर नहीं रखेंगें त्रिपुर ईश्वर।।
लक्ष्मीचरित्र पुस्तके लिखिलो बहु दोष।	लक्ष्मी चरित्र ग्रन्थ में लिखा है बहुदोष।
शास्त्रज्ञों त्रिपुरेश्वर ना पारिबो(1) तुष(2)।।	शास्त्रज्ञ त्रिपुरेश्वर नहीं करेगें(1) वहाँ प्रवेश(2)।।
धर्मबन्त लिका राजा कोहे शास्त्र दिया।	धर्मवन्त लिका राजा ने कहा शास्त्र पढ़कर।
बिना युद्धे त्रिपुर राजा जाईबो फिरिया।।	बिना युद्ध किये लौट जायेगा त्रिपुरा राजा।।
धर्म शास्त्र अनुसारे स्थिर करे मन।।	धर्म शास्त्र अनुसार स्थिर किया मन।।
बान्धिलो तूषेर गड जोतो सैन्यगण।	बनाया भूसी दुर्ग मिलकर सभी सैन्य।
धर्म भावि लिका पति तुष गडे रोइलो।।	धर्म चिन्ताकर लिकापति रहे मूसी गढ़।।
तुषेर गडेर पोरे त्रिपुर आसिलो।	भूसी गढ़ त्रिपुर आया बाद में।
दुई सैन्ये महा युद्ध होइलो विस्तर।।	दोनों सेना आये हुए महा समर।।
अन्धकार केहो कार ना होये गोचर।	अँधेरे में कोई किसको न हुआ गोचर।

---

(2) ना पारिबो –प्रवेश नहीं करेगें, पैर नहीं रखेगें

(2) तुष –धान का छिलका। समुद्र मन्थन से कृष्ण वर्णा, रक्त लोचना, रुक्ष पिंगल केश युक्ता, जरा युक्ता अलक्ष्मी उत्पन्न होकर देवताओं से पूछा 'मेरा कर्तव्य क्या है? देवगण बोले–

येषां नृनां गृहे देवी कलहः सम्प्रवर्तते।
तत्र स्थानं प्रयच्छामो वस ज्येष्ठे शुभान्विता।।
निष्ठुरं वचनं ये च बदंति येऽनृ तं नराः।
सन्ध्यायां ये हि चास्नन्ति दुःखदा तिष्ठ तद्गृहे।।
कपालकेशभस्मास्थितुषागांराणि यत्र तु।
स्थानं ज्येष्ठे तत्र तव भविष्यति न संशयः।। इत्यादि

पद्म पुराण, स्वर्ग खण्डम् 41 अध्याय 35–37 श्लोक।

इसके द्वारा जाना जाता है कि तुष(धान का छिलका) अलक्ष्मी की प्रिय वस्तु है। इस पर पैर रखने से श्रीभ्रष्ट होती है। बंग देश की रमणी समाज में यह विश्वास देखा जाता है।

प्रल–52

भूमि कम्पमान होइलो रांगामाटी देशे।
त्रिपुराये लोइलो गड लिका भंग शेषे।।
लिका नरपति ताहे डाकिया कोहिलो।
त्रिपुरेर नरेश्वर शास्त्र ना मानिलो।
नाहि जानो धर्म शास्त्र तुषे दिला पद।।
कोतो काल जीबे तुमि ना रबे सम्पद।

बंग विजय

एईमते रांगामाटी त्रिपुरे लोइलो।।
नृपति युझार पाट(1) तथाते कोरिलो।।
लिका जाति कोरिलेक आपनार दल।(2)
तार सैन्य सैना दिया कोरे निज बल।।
रोहिलो अनेक काल से स्थाने नृपति।
बंगदेश आमल(3) कोरिते होइलो मति।।
विशालगढ आदि कोरि पर्बतिया ग्राम।
कालक्रमे सेई स्थाने होइलो त्रिपुर धाम।।
बृद्ध होइलो नरपति दन्त बिगलित।
कालवश होइलो राजा से रांगामाटीत।।
नृपतिर दाह क्रिया कोइलो जेई स्थले।
बैकुण्ठपुरी(4) तार नाम सर्ब लोके बोले।।
श्मशान उपर मठ दिलेक निर्मल।।
घर निर्माइया रहे प्रहरी सकल।

———

रांगामाटी की भूमि कम्पायमान हुई।
त्रिपुरा ने लिया गढ़, लिका धरासाई।।
लिका नरपति ने उन्हें कहा पुकार।
शास्त्र नहीं माना त्रिपुर नरेश्वर।
नहीं जानते धर्म शास्त्र भूसी पर दिया पद।।
कितने दिवा जीओगे तुम रहे नहीं सम्पद।

बंग विजय

इसी तरह रांगामाटी को ले लिया त्रिपुर।।
राजधानी वहाँ बसाया(1) नृपति युझार ।।
लिका जाति को मिलाया तुरन्त अपने दल में।(2)
उनकी सैन्य सेना से बढ़ाया अपना बल।।
रहे बहुत काल तक वहाँ नृपति।
बंग देश दखल(3) करने की हुई उनकी मति।।
विशालगढ़ आदि करके और पहाड़ी ग्राम।
काल क्रम पर वह स्थान हुआ त्रिपुर धाम।।
वृद्ध हुए नरपति दन्त विगलित।
कालवश हुए राजा रांगामाटी स्थल।।
नृपति की दाह क्रिया हुई जिस स्थल।
बैकुण्ठपुरी(4) नाम जाने जग – थल।।
श्मशान ऊपर मठ दिया निर्मल।।
घर बनाकर रहे वहाँ प्रहरी के दल।

———

(1) युझार पाट– युझार फा की राजधानी।

(2) लिकाओं को अपने दल में शामिल किया। प्राचीन काल में विजित सेनाओं का राज सैन्य दल में शामिल करने का नियम था।

(3) आमल(अमल) दखल या आयत्त।

(4) राज परिवार के समाधि क्षेत्र को ''बैकुण्ठपुरी'' या ''मुक्ति शिला'' कहा जाता था।

प्रल–53

राजवंश–माला

जांगे फा नामेते तार पुत्र होइलो राजा।
नाना स्थाने गिया कोरे चौद्ददेव पूजा।।
फेनी नदी तीरे आर मोहरीर तीरे।
देशेर पश्चिमे पूजे लक्ष्मीपति धारे।।
पूर्वदिके पूजे आद्ये अमरपुरेते।
चतुर्दश देव पूजे दृढ़ भक्ति मते।।
तार पुत्र देवराय राजा होइलो परे।
गो ब्राह्मण दृढ़ भक्ति ताहार अन्तरे।।
देवरायेर पुत्र शिबराय फा जे नाम।
बहु काल पाले राज्य रुप गुण धाम।।
तार पुत्र डुंगुर फा होइलो नरवर।
पालिलो अनेक काल लोकेरे विस्तर।।
खाडंग फा राजा होइलो ताहार तनय।
तार पुत्र छेंग फालाई परे राजा होय।।
ताहार ना छिलो पुत्र कर्मदोष पाशे।
तान भाई ललित राय राजा होइलो शेषे।।
मुकुन्द फा होइलो राजा ताहार तनय।
कमल राय नामे राजा तान पुत्र हय।।
कृष्णदास नामे राजा तनय ताहार।।
दुई रानी घरे होईलो पंच पुत्र तार।
छोटी स्त्री तनय यश फा नामे राजा।।
तार पुत्र मुचंग फा पाले सब प्रजा।
परस्त्रीते अविरत अधर्म कोरिलो।।
सेई पापे तार घरे पुत्र ना जन्मिलो।
साधु राय नामे तार छोटो भाई छिलो।।
सर्ब लोके राजी होइया ताके राजा कोइलो।

राजवंश माला

जांगे फा नाम उसका पुत्र हुआ राजा।
नाना जगह जाकर करे चौदह देव पूजा।।
फेनी और मोहरी नदी के तीर।
देश के पश्चिम वह पूजे लक्ष्मीपति किनारे।।
पूर्व की ओर पूजे आद्या अमरपुर में।
चतुर्दश देव पूजे दृढ़ भक्ति अन्तर में।।
उनका पुत्र देवराय राजा हुआ पश्चात।
गौ ब्राह्मण में दृढ़ भक्ति ह्रदय में करे विराज।।
देवराय का पुत्र शिवराय फा था नाम।
बहु काल पाला राज्य रुप गुण धाम।।
उनका पुत्र डुंगुर फा हुआ नरवर।
पाला था बहुकाल लोगों को विस्तार से।।
खाडंग फा राजा हुआ उसका तनय।
उसका पुत्र छेंग फालाई हुआ राजा उसके बाद।।
उसका कोई पुत्र का दोष नहीं था।
उसका अनुज ललित राय राजा हुआ शेष में।।
मुकुन्द फा राजा हुआ उसका तनय।
राजा उसका पुत्र हुआ नाम कमल राय।।
कृष्णदास नाम के थे उसके तनय।।
दो रानी के पंच पुत्र उसके हुए घर पर।
छोटी स्त्री के तनय यश फा नाम राजा।।
उसके पुत्र मुचंग फा पाले सभी प्रजा।
पर स्त्री में अविरत रहकर जो अर्धम किया।।
उसी पाप से उनके घर पुत्र जन्म नहीं लिया।
साधुराय नाम उसके थे छोटे भ्राता।।
सभी लोगों ने मिलकर किया उसे ही राजा।

प्रल–54

आछिलो अनेक वर्ष सेई महाराजा।
तार काले आनन्दे बन्चिलो सब प्रजा।।
होइलो प्रताप राय ताहार तनय।
परनारी रुपवती लोभ अतिशय।।
सेई पापे तार ज्येष्ठ पुत्र क्षय होइलो।
मध्यम पुत्र औरसे पौत्र जे जन्मिलो।।
तार नाम विष्णु प्रसाद होइलो प्रचार।
बहु काल राज्य कोइलो सुधर्म आचार।।
तार पुत्र बाणेश्वर होइलेक राजा।
तार पुत्र बीरबाहु होइलो महातेजा।।
सम्राट होइलो परे ताहार नन्दन।
तार पुत्र चाम्पा नामें अति सुशोभन।।
मेघ नामे तार पुत्र परे राजा होइलो।
छेंकाचाग नामे राजा तार पुत्र छिलो।।
छेंथोम्फा नाम होइलो ताहार तनय।
गौड़ेर राजार संगे तार युद्ध होय।।

युझार खण्डं समाप्तं

———

थे बहुत वर्ष वही महाराजा।
उनके समय आनन्द वंचित रही सब प्रजा।।
हुए प्रताप राय उनके समय।
परनारी रुपवर्ती लोभ अतिशय।।
उसी पाप से उनके ज्येष्ठ तनय का हुआ क्षय।
पौत्र जन्मा घर मध्य तनय।।
नाम उसका विष्णु प्रसाद हुआ प्रचार।
बहु काल राज्य किया सुधर्म आचार।।
उनके पुत्र बाणेश्वर हुए राजा।
उनके पुत्र वीरबाहु हुए महातेजा।।
सम्राट हुए पश्चात् उनके नन्दन।
उनके पुत्र चम्पा नाम अति सुशोभन।।
मेघ नाम उनका पुत्र हुआ राजा पश्चात्।
उसका पुत्र राजा हुआ नाम छेंकाचाग।।
छेंथोम्फा नाम हुआ उसका तनय।
गौड़ के राजा के साथ युद्ध हुआ।।

युझार खण्ड समाप्त

———

प्रल–55

छेंथुम फा खण्ड	छेंथुम फा खण्ड
महादेवीर वीरत्व	महादेवी की वीरता
हीराबंत खाँ नामे बंगेर चौधुरी।(1)	हीराबंत खाँ नाम का बंग का चौधुरी।(1)
लुठिला ताहार राज्य वीरधर्म स्मरि।।	लुठिला उसका राज्य वीरधर्म स्मरण।।
हीरा आदि नबरत्न(2) भरिया नौकाय।	हीरा आदि नवरत्न(2) भरा नौका में।
वत्सरान्ते एक नौका गौड़ेते योगाय।।	वत्सरान्त एक नौका गौड़ को भेजा।।

---

(1) हीरावंत के बारे में नाना व्यक्तियों ने नाना तरह की बातें कहा है। परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह का मत यह है–

"त्रिपुरेश्वर के अधिकार में हीरावंत नामक कोई एक धनवान सामंत रहते थे। वे बंगेश्वर के प्रधान कर्मचारी और विशेष पराक्रमी थे। हीरावंत ने त्रिपुर राज्य के प्रति अवज्ञा प्रदर्शन किया था। उसे पकड़ने के लिए महाराज छेंथुम फा ने विशाल एक सेना के साथ तीन सेनापतियों को भेजा था।"

– कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग 2 अध्याय 24 पृष्ठ।

श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता ने भी इसका समर्थन किया है। वे कहते है।– हीरावंत नामक उनका(छेंथुम फा) कोई सांमत ने उनके प्रति अवज्ञा प्रदर्शन किया था। उसे पकड़ने के लिए सेना प्रेरण किया था। हीरावंत ने भयभीत होकर गौडेश्वर का आश्रय ग्रहण किया था।

श्रीहट्ट इतिवृत्त द्वितीय भाग प्रथम खण्ड छटवां अध्याय।

संस्कृत राजमाला के अनुसार यह मत लिपिबद्ध किया गया है। राजमाला में कहा है–

अस्य राज्ये हीरावंतः स्थितो बहुकरप्रदः।
बंगाध्यक्षोऽतिदुर्वृत्तो महाबलपराक्रमः।।
तं राजानमवज्ञाय दिल्लीश्वरमुपागतः।
इति श्रुत्वा ततो राजा क्रोधात् प्रचलितेन्द्रियः।।
बंगे संप्रेषयामास महा सेनापतित्रयं।

बांग्ला राजमाला में यह नहीं कहा है। इस ग्रन्थ के अनुसार हीरावंत बंग के अधीन एक चौधुरी थे, एवं त्रिपुरेश्वर ने उसे और गौडेश्वर को जय किया और मेहेर कुल प्रदेश अधिकार में ले लिया।

(2) नवरत्न – मुक्ता–माणिक्य–वैदुर्य–गोमेदान् वज्रविद्रुमौ।
पद्मरागं मरकतं नीलन्चेति यथाक्रमात्।।

तन्त्र सार।

(1) मुक्ता (2) माणिक्य(चुनी) (3) वैदुर्य(नीलकान्त मणि) (4) गोमेद (पीले रंग का मणि) (5) हीरक (6) विद्रुम(प्रवाल) (7) पद्म राग(ताम्रवर्ण विशिष्ट मणि) (8) मरकत(पन्ना) (9) नीला – इन्हें ही नव रत्न कहा जाता है।

प्रल–56

एक नौका भेटि से जे पाय मेहार कुल।(1)	एक नौका भेंट पाये मेहार कुल।(1)
लूठिलो ताहार राज्य से होइछे व्याकुल।।	लुटा उसका राज्य वह हुआ व्याकुल।।
ए सब वृतान्त से जे गौड़ेते कोहिलो।	यह सब वृतान्त वह कहा गौड़ से।
रंगामाटि जुझिबारे गौड सैन्य आइलो।।	रांगामाटी में जंग हित सेना आई गौड से।।
दुई तीन लक्ष सेना आइसो कटक।	दो तीन लाख सेना आई कटक में।
मिलिते चाहेन राजा(2) देखि भयानक।।	मिलने चाहे राजा(2) देख भयानक।।
सैन्य सेनापति सबे अनुमति दिलो।(3)	सैन्य सेनापति सबने दी अनुमति।(3)
नृपति के महादेवी अनेक भर्तसिलो।।	नृपति की भर्त्सना की महादेवी।।
अख्याति कोरिते चाहो आमा वंशे तुमि।	अख्याति करना चाहते मेरे वंश में तुम।
बोले, आसि देखो रंग युद्ध कोरि आमि।।	कहा आओ देखो युद्ध करते है हम।।
ए बोलिया ढोले बाडि दिते आज्ञा कोइलो।(4)	यह कहकर नगाड़े पर करने को कहा आघात।(4)
जतो सैन्य सेनापति सब सजि आइलो।।	सभी सैन्य सेनापति आए कर साज।।
महादेबी जिज्ञासिलो विनय कोरिया।	पूछा महादेवी ने विनय वचन।
कि कोरिबा पुत्र सब कहो विवेचिया।।	क्या करोगे पुत्र, कहो सोच अपने मन से।।
गौड़ सैन्य आसिया छे जेनो यमकाल।	गौड़ सेना आई है जैसे यमकाल।
तोमार नृपति होइलो बनेर शृगाल।।(5)	तुम्हारे नृपति हो गये वन में श्रृगाल।।(5)
युद्ध कोरिबार आमि जाइबो आपने।	युद्ध करने मैं जाउँगी स्वयं।
जेई जन वीर होव चलो आमा सने।।(6)	जो हो वीर चले मेरे संग।।(6)
रानी वाक्य सुनि सभे वीर दर्पे बोले।	रानी वाणी सुन वीर, दर्प से कहा तभी।
प्रतिज्ञा कोरिलो युद्धे जाइबो सकले।।	प्रतिज्ञा किया युद्ध में हम जायेंगे सभी।।
ताहा सुनि राजरानी हर्षित होइलो।	यह सुन राज रानी हर्षित हुई।
सेनापति नारीगण सब आनाइलो।।	सेनापति नारीगण सभी को बुलाई।।

(1) सदर राजस्व के बदले सालाना एक नाव द्रव्य पेश किया जाता था।

(2) बंग्ला में– मिलिते चाहे का यहाँ अर्थ है संधि करना चाहते है। मिलने चाहे राजा का अर्थ है राजा मिलकर संधि प्रस्ताव देना चाहते थे।

(3) अनुमति देने का अर्थ है– संधि के लिए अनुमति हुई थी।

(4) पहले राजमहल में एक नगाड़ा(दमामा) रहता था। उसे बजाने से सेना और करीब रहने वाले प्रजा वहाँ आने के लिए मजबूर थी। इस समय जो बिगुल बजाया जाता था। वही कार्य नगाड़ा बजा कर किया जाता था।

(5) युद्ध भय से राजा ने श्रृगाल वृत्ति अवलम्बन किया है।

(6) इस युद्ध का विवरण आगे की टीका में दिया जायेगा।

प्रल–57

महादेवी मंत्री सेना रमणी लोइया।
रंधन कोराए बहु साक्षाते बोसिया।।
महिष गबय छाग अनेक करिलो।
पूंजे पूंजे अन्न सभे रंधन कोरिलो।।
मेष छागादि हंस शुकर अगण्य।
हरिणादि कोरि जतो पक्षी बन्य अन्य।।
सहस्रे सहस्रे कोरे मद्येर कलस।
दधि दुग्ध अनिलेक अनेक सुरस।।(1)
चारिदण्ड थाकिते दिवा भक्ष आरंभिलो।
आनन्दे सकल सैन्ये भोजन कोरिलो।।
प्रातः काले सत्य कोरि चलिलेक सैन्य।
पथ बन्ध कोरि रोइलो सैन्य अग्रगण्य।(2)
राजार असंख्य सैन्य जे काले चलिलो।
सिंहनाद कोरि रणवाद्य आरंभिलो।।

महादेवी रमणी सेना मंत्री को लेकर।
रंधन कराती हुई बहु स्वयं बैठकर।।
महिष गबय छाग काटा अनेक।
रंधन किया अन्न, हर पूंज अलग अलग।।
अगब्य मेष छगादी हंस शुकर अगणन।
हिरनादि वन पक्षी आदि अन्य।।
हजारों हजार आये मद्य के कलस।
दधि दुग्ध ले आये अनेक सुरस ।।(1)
चार दण्ड रहते दिवस हुआ आरम्भ भोजन।
सेना ने किया भोजन आनन्दित होकर।।
प्रतिज्ञा कर सेना चली प्रातः काल।
पथ रोक अग्र गण्य(2) हुई सेना।।
राजा असंख्य सेना चली जिस समय।
सिंह नाद कर बजाया वाद्य उस समय।।

गौड़ेर संगे युद्ध

दुई सैन्य आगु होइया युद्ध आरम्भन।
अगण्य गौडेर सैन्य भय पाय तखन।।
भंग दिलो गौड सैन्ये होइया कातर।
खेदाये त्रिपुर सैनये काटिलो विस्तर।।
तीन पथे भंग दिया जाये गौडगण।
त्रिपुराये तीन पथे काटे अनुक्षण।।
स्वर्ण खड्ग चर्म तार शिरे स्वर्ण पाग।
अंगेते सोनार जिरा(3) होइयाछे राग।।

गौड के साथ युद्ध

दोनों सेना आगे बढ़कर युद्ध किया आरम्भ।
अगणन गौड सेना भयभीत हुई तत्क्षण।।
भाग निकली गौड सेना होकर भय कातर।
त्रिपुर सेना ने काट ड़ाला उन्हे खदेड़ कर।।
तीन पथ भाग रही गौड सेनागण।
तीन पथ को रोका त्रिपुरा ने अनुक्षण।।
स्वर्ण खड्ग चर्म उनके सिर पर स्वर्ण पाग।
अंग में स्वर्ण जिरा(3) हो गया है राग।।

---

(1) इस भोज में आर्य और अनार्य दोनों श्रेणी के लोगों का आहार बन रहा था। इससे विभिन्न श्रेणी के लोगों की उपस्थिति की सूचना मिलती है।

(2) अग्रगामी सैन्य दल ने मुसलमानों पथ अवरोध कर दिया था।

(3) जीरा– यह पारसी भाषा का शब्द है। विशुद्ध शब्द ''जेरा'' है। युद्ध के पोशाक को जेरा कहते हैं।

प्रल–58

चतुर्दश देबताये आगे चलि जाय।	चतुर्दश देवता के यहाँ आगे आ गये।
सेनापति जानिया त्रिपुरा पीछे धाय।।(1)	सेनापति जानकर पीछे त्रिपुरा लोग धाए।।(1)
चतुर्दश देवता अग्रे जाइया काटे।	चतुर्दश देवता के यहाँ जाकर आगे दिया काट।
पड़िलो अशेष सैन्येर देबेर कपटे।।	खेत रही अशेष सेना, दैव का प्रयोग।।
सहस्रेक अश्व पड़े हस्ती शते शत।	सहस्राधिक अश्व मरे हाथी शत शत।
अगन्य पोडिलो सैन्य पदाति बहुत।।	अगण्य गिरि सेना पदातिक बहुत।।
दुई दण्ड बेला उदय होइलो महारण।	दो दण्ड बेला पर शुरु हुआ महारण।
एक दण्ड बेला थाके सन्ध्या तत्क्षण।।	एक दण्ड बेला अंत संध्या आई तत्क्षण।।
एमत समय राजार उर्द्धे दृष्टि होइलो।	इसी समय राजा की आँखे गई उधर।
देखिलो गगने एक कबन्धे नाचिलो।।	देखा गगन में कबन्ध एक नाचता थर थर।।
ताहा देखिया सैन्येर लोमान्चित होय।	यह देख सैन्य रोमांच हुआ बड़ा।
एक दण्ड नाचि मुण्ड भूमिते पडय।।	एक दण्ड नाचा मुण्ड फिर भूमि पर पड़ा।।
राम कृष्ण नारायण नृपति स्मरिलो।	राम कृष्ण नारायण को नृपति ने किया स्मरण।
रामायण प्रमाण जे राजाये बलिलो।।(2)	राजा ने कह दिया प्रमाण है रामायण।।(2)
एक लक्ष नर यदि युद्ध कोरि मरे।	एक लक्ष नर यदि मर जाये रण में।
तबे से कबन्ध नाचे गगन ऊपरे।।	तो कबन्ध एक नाचता है गगन ऊपर में।।
लक्ष जीव मारिलेक जानिलो निश्चय।	लक्ष जीव मर गये यह हो गया निश्चय।
ए कथा आमार वंशे कहिबो जे होय।।	कहूँगा अपने वंश में यह है महा विजय।।
ए बोलिया भूपतिर होइलो हर्ष मन।	यह कह भूपति का हुआ हर्षित मन।
चतुर्दिके देखे नाहि बोसिते आसन।।	देखो चारों ओर बैठने का न मिला आसन।।
बोसिते आसन नृपे केहोतो ना दिलो।	बैठने नृप को न दिया कोई आसन।
राजार जामाता सेई काले विवेचिलो।।	राजन के जामाता ने किया तब विवेचन।।

---

(1) सेनापति के देवत्व की भावना के आरोप से, त्रिपुर सेनाओं की असाधारण देव भक्ति का परिचय मिलता है।

(2) अग्रचण्डा मूर्ति धारिणी रण रंगिनी सीता सहस्र स्कन्ध रावण को वध करके उसका मुण्ड(सिर) लेकर मातृ का गणों के साथ रणांगण में कन्दुक क्रीड़ा प्रवृत्त हुई थी।

उस समय – न कोऽपि राक्षसस्तत्र करपादशिरोषृतः।
कबन्धा ये च नृत्यन्ति तेषां पादा प्रतिष्ठिताः।।
कबन्धं रावणस्यापि नृत्यतं च व्यलोकयत्।
तद्दृष्टवा सुमहाघोरं प्रेतराजपुरोपमम्।।

अद्भुत रामायण 24 सर्ग 35–36 श्लोक।

तुलसीदास रामायण में इस विषय में लिखा गया है विवरण हम अगली टीका में देंगें।

प्रल—59

युद्ध स्थाने पोडियाछे मत्त हस्तीगण।	युद्ध स्थल पर मृत पड़े हैं मत्त हस्तीगण।
त्वरिते काटिया आने बृहत् दशन।।	त्वरित गति काट लाय वह वृहत दशन।।
नृपतिके बोसिते दिलोक दन्तासन।	नृपति को दिया बैठने दन्तासन।
जामाता सेनापति मेहेरकुल विजय	जामाता सेनापति मेहेरकुल विजय
जामातार पराक्रम देखिलो राजन।।	जामाता का पराक्रम देख लिया राजन।
नृपति बोसिलो दन्ते हरषित मन।	नृपति बैठे दन्तासन हर्षित मन।
जामाताके तुष्ट राजा होइलो आपन।।	जामाता से स्वयं तुष्ट हुए राजन।।
पुत्रेर समान मान्य जामाता के कोरे।	जामाता को मान्य किया पुत्र के समान।
तद्वधि पुत्र जामाई बोसे एकत्तरे।।	तब से पुत्र जामाता बैठते एक संग।।
त्रिपुर राजार पुरे यतेक जामाता।	त्रिपुर राज के पुर में जितने थे जामाता।
एक सेर चाउल अन्न गातिधरे(1) बाटा।।	एक सेर चावल नित्य देने की हुई राजाज्ञा।।(1)
एक जामाता विक्रम कोरे दैवगति।	एक जामाता विक्रम करता दैवगति।
तद्वधि राजार जामाता सेनापति।।(2)	तब से ही <u>जामाता</u> हुए सेनापति।।(2)
<u>मेहार कुल</u> त्रिपुरार एईमते होइलो।	इसी तरह <u>मेहार कुल</u> त्रिपुरा का हुआ।
चिर काल प्रजा के राजा पालन कोरिलो।।	चिर काल प्रजा पालन राजा ने किया।।
तार पुत्र आचोंग होइलो महाराजा।	उनके पुत्र आचोंग हुआ महाराजा।
बहु दिन राज्य पाले सुखे छिलो प्रजा।।	राज्य किया बहु काल सुखी रही थी प्रजा।।
आचोंग राजार नाम आचोंग मा रानी।	आचोंग राजा का नाम, आचोंग मा रानी।
तदवधि राजा रानी एक नाम जानी।।	तब से एक नाम है राजा रानी।।
आचोंग नृपति स्वर्गी होइलो जखन।	स्वर्गवासी हुए जब आचोंग नृपति।
तार पुत्र खिचोंग राजा होइलो आपन।।	उनके पुत्र खिचोंग तब हुए नृपति।।
खिचोंग मा नामे छिलो ताहार रमणी।	खीचोंग मा नाम की थी उनकी रमणी।
विचित्र बसन शिक्षा निर्माए आपनि।।	विचित्र बसन, शिक्षा आदि नई दिशा महारानी।।
बृद्ध होइलो नरपति भोगि नाना सुखे।	वृद्ध हुए नरपति भोग नाना सुख।
नाहि छिलो कोनो मते प्रजा पीड़ालोके।।	नहीं था किसी तरह का प्रजा को दुख।।

———

(1) गातिधर— पाक शाला। राज सरकार की ओर से प्रत्येक जमाई के रसोई के लिए एक सेर चावल की व्यवस्था थी।

(2) इसी समय से राजजामाता को सेनापति के पद पर बैठाने का नियम बहु काल तक चला था।

पल—60

डांगर फा खण्ड कुमारगणेर परीक्षा	डांगर फा खण्ड कुमारों की बुद्धि परीक्षा
तार पुत्र डांगर फा नामे नरपति।	उसके पुत्र डांगर फा नाम हुए नरपति।
नाना स्थाने पुरी कोरि छिल महामति।।	नाना जगहों में पुरी बनाए नरपति।।
डांगर मा छिलेन तान पत्नीर जे नाम।	डांगर मा था उनकी पत्नी का जो नाम।
करिल अनेक नारी(1) बहु बिध काम।	अनेक नारियों ने किया बहुविध काम।
अष्टादश पुत्र होइलो डांगर फार ताते।।	अष्टादश पुत्र हुए डांगर फा के घर।।
मनेते चिंतिल राजा राज्य दिबो काते।	मन में चिंतित राजा भार सौंपें किस पर।
एकादशी ब्रत राजा आपने रहिलो।	एकादशी व्रत राजा ने किया स्वयं।
अष्टादश पुत्रके जे ब्रत राखाइलो।।	अष्टादश पुत्र को रखाया व्रत राजन।।
कुक्कुर रक्षक लोक डाकिया नृपति।	कुकुर के रक्षक को बुलाए नरपति।
गोपनें कोहिलो राजा एई तार प्रति।।	गोपनीय बातें उससे किए नृपति।।
कालि दिन कुक्कुर राखिबा उपवास।	कल के दिन कुकुर को रखना उपवास।
पारना दिवस कुक्कुर आनो आमा पास।।	पारण के दिन उन्हें लाना मेरे पास।।
आज्ञा कोरिले आमि कुक्कुर छाडि दिबा।	आज्ञा से मेरी कुत्तों को छोड़ देना।
यदि बा ना राखो आज्ञा प्राणे से मारिबा।।	आज्ञा का उल्लंघन मौत को पैगाम देना।।
ए बोलिया नरपति संयम रहिलो।	यह कह नृपति ने संयम धारण किया।
अष्टादश पुत्रके ये संयम राखिलो।।	अष्टादश पुत्रों को भी संयम से रहने दिया।।
पारणा दिबसे राजा बोसिलो भोजने।	पारण के दिवस राजा बैठे करने भोजन।
पंक्ति कोरि बैसाइलो सकल नन्दने।।	पंक्ति से बैठाया अपने सभी नन्दन।।
पारणा कोरिते सभे अन्न आनि दिलो।	पारण करने सभी को अन्न दिया।
ज्येष्ठानुक्रमेते तारा खाइते आरम्भिल।।	ज्येष्ठानुक्रम से सभी ने भोजन शुरु किया।।
कुक्कुर लोइया रक्षक चले समुदित्।	कुकुर लेकर रक्ष गया समुदित।
भोजन काले नृपतिर होइलो उपस्थित।।	भोजन काल नृपति के सन्मुख हुआ उपस्थित।।

---

(1) डांगरर्फख्य सुतस्तस्य महाबलपराक्रमः।
अष्टोत्तरशतं कन्यां क्रमात् परिणिनाय सः।।
संस्कृत राजमाला

प्रल—61

पंचग्रास(1) पुत्र सबे अन्न जे खाइछे।	पंचग्रास कर(1) पुत्र सभी ने जब भोजन शुरु किया।
कुक्कुर रक्षके राजा इंगित कोरिछे।।	कुकुर के रक्षक को राजा ने ईशारा कर दिया।।
त्रिश कुक्कुर छाडि दिलो राजपुत्र थालि(2)।	तीस कुत्तों को छोड़ा राज पुत्रों की ओर।
बड़ो क्षुदातुर छिलो कुक्कुर सकलि।।	सभी कुकुर थे बड़ा ही क्षुधातुर।।
अन्न देखिया कुक्कुर महाबल होइलो।	अन्न देखकर कुकुरों का महाबल हुआ।
देखिते त्वरिते कुक्कुर पात्रे मुख दिलो।।	देखते ही त्वरित गति से थाली में मुख दिया।।
अन्न छाडि उठिलो राज सतर तनय।	अन्न छोड़ उठ गये राजा के सत्रह तनय।
कनिष्ठ रत्न फा कोरे चतुरतामय।।	कनिष्ठ रत्न फा ने किया चतुराई उस समय।।
कुक्कुरे आसिया अन्ने मुख दिते चाय।।	कुकुर आकर अन्न में मुँह देना चाहा।
सेई काले कतो अन्न दुरेते फेलाय।	उसी क्षण कुछ अन्न दूर फेंक दिया।।
सेई अन्ने कुक्कुरे यावत ताते खाय।	उसी अन्न को कुत्तों ने खाया।
सेई काले राजपुत्र उदर पूराय।।	इसी बीच राजपुत्र ने उदर भर लिया।
एई रुपे क्षुधा निबारिलो राजसुत।	इसी तरह क्षुधा का निवारण किया राजपुत्र।
नृप देखे चतुरता तार अद्‌भुत।।	नृप देखी चतुरता उसकी अद्‌भुत।।
बालक होइया बुद्धि प्रकाशिलो एतो।	बालक होकर बुद्धि का प्रकाश किया इतना।
राज्याधिप होइबो से जे जानिल सतत।(3)	राज्याधिप वह, यह सभी ने जाना।।(3)
———	———

(1) पंचग्रास— भोजन के प्रारम्भ में गंडुष करना।

(2) भोजने च समारब्धे दैवात् कुक्कुरपालकं।
समुल्लंघ्य च ते स्पृष्टाः प्रायशः स्वस्वकुक्कुरैः।।

संस्कृत राजमाला।

इस घटना के वर्णन के प्रसंग में कैलाश बाबू ने कहा है। "वे(डागर फा) पुत्रों के भविष्य राज्याधिकार को स्थिर करने के मनसा से युद्ध के सभी कुकुरों को निराहार में आबद्ध रखने के लिए नौकर को अनुमति प्रदान किया था। बाद में जब स्वयं पुत्रों के साथ एकत्र भोजन करने बैठे उसी समय एक अपने अनुचर को भोजन स्थल पर कुकुरों को छोड़ देने के लिए गुप्त भाव से आदेश दिया था—

कैलाश बाबू के राजमाला दूसरा भाग द्वितीय अध्याय।

कैलाश बाबू ने भ्रम वश कुकुर की जगह कुक्कुट कहा है।

(3) अन्य पुत्रो का भोजन कुत्तों के द्वारा विनिष्ट हुआ। रत्न फा ने कुछ अन्न दूरी पर फेंक दिया जिससे दूसरे कुत्तों ने उसे खाना शुरु किया। इसी बीच उन्होनें उदर पूर्ति कर लिया। पुत्र की बुद्धि ऐश्वर्य को देख राजा ने समझा यही पुत्र राज्याधिकारी होगा।

प्रल–62

राज्य विभाग

निज राज्य भ्रमि राजा सकल देखिलो।
सप्तदश पुत्रे राज्य भाग कोरि दिलो।।
राजा फा नामेते पुत्र राजार प्रधान।
राज करिलो ताके राजनगर स्थान।।
काईचरंग राज्ये राजा कोरे आर पुत्र।
आर पुत्र राजा होइलो आचरंग यत्र।।
आर पुत्र धर्मनगरेत राजा छिलो।
आर सुत तारक स्थानेते राजा होइलो।।
विशालगढ़ेते राजा होइलो एक जन।
खूँटिमूड़ा दिलो एक नृपति नन्दन।।
नासिका देखिया खर्ब आर जे कोंगर।
नाकिबाड़ि ताके दिलो त्रिपुर ईश्वर।।
आगर फा पुत्रे राजा अगरतल्ला दिलो।
मधुग्रामे आर सुत भूपति होइलो।।
थानांची स्थानेते राजा होइलो एकजन।
ना मानिलो लोके ताके अन्याय कारण।।
लोमाई नामेते पुत्र बड़ा शिष्ट छिलो।
मोहरी नदीर तीरे नृपति कोरिलो।।
लाउगंगा मोहरीगंगा तथा नदी बोसें।
आर भ्रातृसंगे राजा बोसे सेई देशे।।
आचोंग फा नामेते जे आर पुत्र छिलो।
बराक नदी सीमा कोरि ताके राजा कोइलो।।
तैलाईरुंग स्थले राजा होइलो आर जन।
धोपा पाथरेत राजा आर एक जन।।
आर एक पुत्र दिलो मणिपुर स्थाने।
सतर पुत्रेरे राज्य दिलेक प्रमाणे।।

———

राज्य विभाग

भ्रमण कर निज राज्य राजा ने सब देखा।
सप्तदश पुत्रों में सारे राज्य को बाँटा।।
राजा फा नाम का पुत्र राजा का प्रधान।
राजा किया उन्हें राजनगर स्थान।।
एक मात्र राजा किया राज्य काईचरंग।
और एक पुत्र राजा हुआ राज्य आचरंग।।
एक पुत्र राजा हुआ धर्मनगर का।
और एक पुत्र को राजा किया तारक नगर का।।
राजा हुआ विशालगढ़ का और एक जन।
खूँटि मुड़ा का राज्य पाया और एक नन्दन।।
नाक खर्ब वाला था और एक कुवँर।
नाकिबाड़ी का राज्य उसे दिया त्रिपुर ईश्वर।।
आगर फा पुत्र को दिया राज्य अगरतल्ला।
मधुग्राम का राज्य और एक को मिला।।
थानांची में राजा हुआ और एक नन्दन।
अन्याय कर्म हित उसे नकारे प्रजा जन।।
लोमाई नाम का पुत्र था बड़ा ही शिष्ट।
मोहरी नदी के तीर का राजा किया।।
लाउगंगा मोहरीगंगा यहाँ जहाँ वह स्थान।
दूसरे भ्राताओं के साथ बैठे वहाँ राजन।।
आचोंग फा था पुत्र एक और।
बोराक नदी को सीमा मान दिया उसे और।।
तैलाईरुंग का राज्य पाया एक तनय।
धोपा पाथर के राजा हुए और एक उस समय।।
और एक पुत्र को दिया राज्य मणिपुर।
सभी पुत्रों में राज्य बाँटा इसी प्रकार।।

———

प्रल—63

रत्न फा गौड़े	रत्न फा गौड़ में
बंग संगेते राजा बड़ो सुख पाइलो।	बंग के संग पाया राजा ने बड़ा ही सुख।
भक्ष्यभोज्य सुख भोग अनेक कोरिलो।।	भक्ष्य भोज्य वहाँ पाया बड़ा सुख।।
प्रणय कोरिलो राजा गौडेश्वर संगे।	गौडेश्वर के साथ किया राजा ने प्रणय।
कनिष्ठ पुत्र पाठाइलो लोक संगे रंगे।।	लोग संग भेजा वहाँ कनिष्ठ तनय को।।
नाना तीर्थ देखिबेक राजार तनय।	नाना तीर्थ देखेंगे वहाँ राजा तनय।
गंगाजल स्नान पाने होबे पुण्यचय।।	गंगाजल स्नान पान से होगा पुण्य संचय।।
दुइसौ चल्लिस सेना दिलो नाना जाति।	दो सौ चालीस सेना चली नाना जाति।
रत्न फा नामेते पुत्र पाठाये नृपति।।	रत्न फा तनय को वहाँ भेजा नृपति।।
तान माता मन दुःखे काँदिलो विस्तर।	मन दुख से बड़ा ही किया विलाप माता ने।
से कथा लोकेते गीत गाये ततः पर(1)।।	बहुत कालों तक गाया गीत इसका ही लोगों ने(1)।।
त्रिपुरार कतो यंत्र छाग अन्त्रे बाजे।	कितने ही यंत्र त्रिपुरा में छागआन्त से बजे।
सेई यन्त्रे गाये गीत त्रिपुरा समाजे।।	उसी यन्त्र से गाते गीत लोग त्रिपुरा समाज के।।
कोतो दिने गौडे गैलो नृपति नन्दन।	कितने ही दिन हुए गये गौड नृपति नन्दन।
पुत्र स्नेह कोरे गौडेश्वर महाजन। ।	पुत्र स्नेह करते गौडेश्वर महाराज।।
सभाते सम्मान बहु पाये दिने दिने।	सभा में सम्मान बहु पाये दिनों दिन।
गौडेश्वरे सब कथा जिज्ञासे आपने।।	गौडेश्वर सारी बातें पूछते प्रतिदिन।।
शत्रु मित्र सभाते जे कौतुक होइलो।	शत्रु मित्र सभा में जो कौतुक हो गया।
केहो भालो केहो मन्द ताहाके बलिलो।।	कोई भला कोई बुरा उसे कहा।।
कार्तिक मासेते धुधुरा कीट ये पडिलो।	कार्तिक महीने में धुधुरा कीट पड़ने लगा।
गर्त खनि कुकी लोके ताहाके खाइलो।।	गर्त खोद उसे कुकियों ने खाया।।
लोक मुखेते ताहा सुनेन गौडेश्वर।	लोक मुख सुने यह बात गौडेश्वर।
हासिया जिज्ञासा कोरे कुमारेर तर(2)।।	हँसकर पूछा सामने कुमार।।(2)
तोमार राज्येर कुकि कीट धरि खाय।	तुम्हारे राज्य में कुकि खाते हैं कीट पकड़ कर।
प्रणमिया राजपुत्र बोलिलो ताहाय।।	राजपुत्र ने कहा उनसे प्रणाम कर।।

---

(1) यह सब गीत विलुप्त हो गया है। हमें बहुत कोशिश करने के बाद भी उद्धार नहीं कर पाए।

(2) कुमारेर तर—कुमार के प्रति, कुमार के

प्रल–64

तोमार राज्येते जतो जाति प्रजा बोइसे।	तुम्हारे राज्य में जितनी जाति प्रजा है।
ताहार भक्षण द्रव्य तोमाते कि आसे(1)।।	उनके भक्ष्य द्रव्य का फल क्या तुम्हें मिलते है(1)।।
नाना जाति लोक सब आमा संगे आछे।	नाना जाति के लोग हैं मेरे साथ।
कुकि किरात जाति पिताये संगे दिछे।।	पिता ने दिया है मुझे कुकि और किरात।।
से सकल लोके नाना द्रव्य आनि खाय।	ये सभी नाना द्रव्य खाते हैं लाकर।
कखनेह अनाचार नाहि त्रिपुराय।।	त्रिपुरा में कभी होता नहीं था अनाचार।।
गौडेश्वरे जानिलेक एई बड़ो राजा।	समझ गये गौडेश्वर यह है बड़ा राजा।
नानाविध जाति आछे एहान जे प्रजा।।	नाना जातियाँ हैं इसकी प्रजा।।
अधिक होइलो मान्य नृपति तनय।	अधिक मान्य हुए नृपति तनय।
दिने दिने गौडाधिप प्रीति अतिशय।।	गौडाधिप की प्रीती बढ़ी दिनों दिन अतिशय।।
एईमते कोतो वत्सर तथाते आछिलो।	इसी तरह कितने साल रहे वहाँ पर।
परमानन्देते गंगा स्नानादि कोरिलो।।	परमानन्द से गंगा स्नानादि में तत्पर।।
एक दिन गौडेश्वर द्वारेते कुमार।	एक दिन गौडेश्वर के द्वार गये कुमार।
समय ना पाये ताते बोसिछिलो द्वार।(2)	समय न पाये इससे बैठे रहे द्वार।(2)
शुभ क्षण शुभ दिन छिलो सोमवार।।	शुभ क्षण शुभ दिन था सोमवार।।
वैश्यागण आसे गौडपति मिलिबार।	वैश्यागण आये मिलने गौडेश्वर।
हिरण्य रचित भूषा स्वर्ण वस्त्र पोइरी।।	हिरण्य रचित भूषा स्वर्ण वस्त्र पहनकर।
जोगान घेरिछे ताते परम सुन्दरी।	सज धज कर लग रही थी परम सुन्दरी वहाँ पर।
शकटे चलिछे केहो घोटक ऊपर।।	रथ पर कोई, तो कोई अश्वचर।।
निशान धोरिछे केहो नफर चाकर।	निशान फहरा रहे थे आये साथ नौकर।
प्रधानिका चलियाछे चतुर्दोले चडि।।	चली प्रधानिका चतुर्दोल पर चढ़कर।।
आगे पाछे चले कोतो हाते लोइया छडि।	आगे पीछे चल रहे छड़ीधारी हो तत्पर।
छड़िदारे मारिया अन्तर कोरे दूरे।।	आपसी दूरी बढ़ने पर, छड़ीदार छड़ी से मारते।।
ए सब व्यभार(3) देखि राजार नन्दन।	यह सब व्यवहार(3) देखा राजा नन्दन।
गौडेश्वर पत्नी ज्ञान कोरिलो तखन।।**	गौडेश्वर की पत्नी, ज्ञान हुआ तक्षण।**

---

(1) तुम्हारे राज्य में नाना जाति की प्रजागण जो कुछ भक्षण करते है। उस भोजन दोष का फल क्या तुम्हारे प्रति आरोपित होते है?

(2) दरबार में जाने के वक्त न होने से द्वार पर उपस्थित हुए थे।

(3) व्यभार(व्यवहार)

अर्थ– **गौडेश्वर की पत्नी होने का आभास हुआ तक्षण।

प्रल–65

संभ्रमे उठिया गिया आगे दॉडाइलो।	आगे हुआ खड़ा संभ्रम से उठकर।
भूमिगत होइया शिर प्रणाम कारिलो।।	भूमिगत हो प्रणाम किया नत सिर होकर।।
कोथाकार पुरुष से वैश्या जिज्ञासिलो।	कहाँ का है पुरुष, यह वैश्याओं ने पूछा।
सुन्दर अबोध देखि कटाक्षे हासिलो।।	सुन्दर अबोध देख विहँस कटाक्ष किया।।
ताहार नमस्कार हेरि जतो गौडवासी।	देख उसके नमस्कार, वहाँ थे जितने गौड़ वासी।
बहु उपहास्य करे कौतुकेते बोसि।।	कौतुक वश हुआ वह उनका उपहासी।।
नगरिया हासे जतो नागरी सकल।	हंसते नगरवासी और नगरी सभी।
गौडेर नागरी लोक कुतर्क कुशल।।	गौड की नगरी सभी है कुतर्क–कुशली।।
ताहा सुनि हासिलेक गौड अधिपति।	यह सब सुनकर हंसे गौड अधिपति।
कुमारेके डाकाइया निल शीघ्रगति।।	कुमार को बुलाया पास शीघ्र गति।।
पूछिलेक गौडाधिपे ए सब वृतान्त।	पूछा गौडाधिप ने यह सारा वृतान्त।
तुमी भक्ति करो केनो वेश्याके एकांत।।	तुम क्यों भक्ति करते वैश्या को एकांत।।
प्रनाम कोरिया कहे राजार कुमार।	प्रणाम करके नृप से कहा राज कुमार।
गौडेश्वर पत्नी ज्ञाने कोरि नमस्कार।।	गौडेश्वर की पत्नी समझ किया नमस्कार।।
आड़ष्ट भाव कथा तार शुनिया तखने।	आड़ष्ट भाव की बातें उसकी सुनकर उस क्षण।
बहु दया उपजिल गौडेश्वर मने।।	बृहत दया उपजी गौडेश्वर के मन में।।
जिज्ञासिलो प्रीतिवाक्य गौडेर ईश्वर।	प्रेम भरे स्वर में पूछा गौडेश्वर ने।
अति क्षीण होइछे केनो तोमा कलेवर।।	अति क्षीण है तुम्हारा कलेवर।।
तोमार पिताये नाहि पाठाये जे धन।	तुम्हारे पिता ने क्यों नहीं भेजा धन।
सेई हेतू दुःख पाव आमार भवन।।	यही दुख क्या है हमारे भवन।।
ताहा सुनि कोहिलेक नृपति नन्दन।	यह सुन वहाँ नृपति नन्दन ने।
गौड राज्ये दुःख नाहि अन्नेर कारण।।	गौड देश में कोई दुख नहीं अन्न के कारण।।
पिताये भ्रातृ के दिलो भाग कोरि राज(1)।	पिता ने भाइयों को दिया राज्य बांटकर।(1)
आमाके पठाइया दिलो तोमार समाज(2)।।	मुझे भेज दिया तुम्हारे दरबार।।(2)
तब कृपा होइले सर्ब कार्य सिद्धि होबे।	तुम्हारी कृपा से सभी कार्य सिद्ध होगें।
गौडेश्वरे जिज्ञासिलो कि कर्म कोरिबे।।	गौडेश्वर ने पूछा फिर अब क्या कर्म करोगे।।

(1) राज– राज्य, राजत्व

(2) समाज– सभा

प्रल—66

अनेक कटक दिबो निबा तोमा संगें।	बहुत सी सेना दूँगा तुम्हारे साथ।
आपना राज्येते जाइया राजा होउ रंगे।।	अपने राज्य जाकर करो राज अकंटक।।
डांगर फा खण्डं समाप्तं	डागर फा खण्ड समाप्त
———	———
रत्नमाणिक्य खण्ड	रत्नमाणिक्य खण्ड
माणिक्य ख्याति	माणिक्य ख्याति
अनुमति पाइलेक नृपति तनय।	अनुमति पाये नृपति तनय।
गौडाधिपे सैन्य ताके दिलो अतिशय।।	गौडाधिप ने सैन्य दिया अतिशय।।
रत्न फा चलिलो निज राज्य लोईबारे।	चला रत्न फा निज राज्य लेने।
कोतो दिने आसिलेक जमिर खॉर गड़े।।	कुछ दिन बाद पँहुचा जामिर खाँ के घर में।।
गड़ जिनि रांगामाटी छाड़ाइया लोइलो।	गढ़ जीत लिया रांगामाटी छुड़ाय।
डांगर फार सैन्य सब पर्वतेत गेलो।।	डांगर फा की सेना पर्वत गई पलाय।।
आरराज पुत्र सभे भंग दिलो ताय।	और राज पुत्रों ने रण भंग दिया वहाँ।
गौड सैन्य तार पाछे खेदाइया जाय।।	गौड सैन्य उन्हें खदेड़ती रही वहाँ।।
थानांचि पर्वते राजा डांगर फा मरिलो।	थानांचि पर्वत में जा डांगर फा मरे।
आर जतो राज पुत्र लडाइया धरिलो।।	और राज पुत्र लड़ते हुए गये पकड़े।।
भंग दिते जे जे स्थाने जे कर्म करिलो।	जंग भंग देते समय जिसने जिस स्थान जो कर्म किया।
सेई स्थानेर नाम तार से मते राखिलो।।	उस स्थान उसी तरह नामकरण हुआ।।
गबय काटिलो यथा त्रिमुनिया धार।	त्रिमुनिया के तीर आकर काटा गबय।
तैतानब पाडा नाम त्रिमुनि जागार।।	तैतानव पाडा नाम त्रिमुनिया जगह।।
भंग दिते जेई स्थाने कोरिलो मन्त्रणा।	रण छोड़ भागने की जहाँ बैठ की मंत्रणा।
छायेर नदी नाम तार बोले सर्ब जना।।	छायेर नदी नाम है उसका, जाने सभी जना।।
दुई नदी कूले प्रजा मिली विदाय होइलो।	दो नदी के तीर प्रजा से मिल कर हुई विदाई।
तैलाइंग नाम तार लोके ख्याति रोहिलो।।	तैलाइंग नाम उसकी प्रसिद्ध हुई।।
धरिते क्रन्दन जथा नृपति नन्दन।	वहाँ नृपति नन्दन ने किया क्रन्दन।
काबतोई बोलिया तारे बोले सर्ब जन।।	काबतोई कहते हैं उसे सभी सर्वजन।।
मुडा(1) काटि राज भ्रातृ आने जेई स्थाने।	पर्वत श्रृंग काट राजभ्रातृ को लाया जिस स्थान।
समार कोरिया नाम बोले सर्ब जने।।	समार कहकर उसे कहते हैं सभी वहाँ।।

---

(1) मुडा— मस्तक, पर्वत का श्रृंग यहाँ पर पर्वत श्रृंग को ही मुडा कहा गया है।

प्रल–67

कदलीर खोल यथा कोरिलो भक्षण।	केले का जहाँ पर किया भक्षण।
तैलाइफाँग नाम तार राखे प्रजागण।।	तैलाइफाँग नाम उसका रखे प्रजा गण।।
सर्ब भ्रातृ जिनिया पाइलो राज्य स्थान।	सभी भ्राताओं को जीत पाया राज्य स्थान।
पुनर्बार गैलो गौडेश्वर विद्यमान।।	पुनर्बार गया जहाँ गौडेश्वर विद्यमान।।
बहु कोरि हस्ती निलो अति वृहत्तर।	बहुत से हस्ती लिया अति विशाल काय।
देखिया सन्तुष्ट होइलो गौड़ेर ईश्वर।।	देख सन्तुष्ट हुए गौडेश्वर अतिशय।।
राजपुत्र ज्ञानवान हेनो होइलो ज्ञान।	राज पुत्र ज्ञानवान ऐसा हुआ मान।
गौडेश्वर आपनेह कोरिलो व्याख्यान।।	गौडेश्वर ने स्वयं किया उसका व्याख्यान।।
रत्न फा नाम तार पिताये राखि छिलो।	रत्न फा नाम दिया पिता त्रिपुरेश्वर ने।
रत्नमाणिक्य ख्याति गौडेश्वरे दिलो(1)।।	रत्नमाणिक्य ख्याति दी गौडेश्वर ने।।(1)
तद्वधि माणिक्य उपाधि त्रिपुरेशे।	तद्वधिमाणिक्य उपाधि मिली त्रिपुरेश को।
विदाय होइया राजा चलिलेक देशे।।	विदा लेकर राजा चले अपने देश को।।
———	———
बंग उपनिवेश	बंग उपनिवेश
गौडेश्वर स्थाने पुनः कहिलेक आर।	गौडेश्वर ने पुनः कहा कुछ और।
बंग लोक(2) कोतो पाइले राज्येते निबार।।	बंग लोक(2) का मिला कितना राज्य में अधिकार।।
पुनः दस हस्ती दिलो गौडेश्वर तरे।	पुनः दस हस्ती दिया गौडेश्वर के दरबार।
तुष्ट होइया आज्ञा दिलो बंग अधिकारे(3)।।	तुष्ट होकर आज्ञा दिया करने बंग अधिकार(3)।।

(1) इस समय बंग के सिंहासन पर सुल्तान साम्सउद्दीन और दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट फिरोज तुगलक अधिष्ठित थे। संस्कृत राजमाला के अनुसार यह उपहार दिल्लीश्वर को दिया गया था। असल में यह दिल्ली के बादशाह को या गौडेश्वर को प्रदान किया गया था, यह निश्चित रुप से निर्णय करने का उपाय नहीं है। इस विषय पर पाद की टीका सन्निविष्ट ''राज चिन्ह'' शीर्षक अध्याय में विशेष भाव से आलोचना की गई है।

कहा जाता है कि त्रिपुरा राज्य के कैलाशहर विभाग के अधीन(अब धोलाई/धलाई जिला के अधीन) जंगल में शिकार के लिए निकले महाराजा रत्नमाणिक्य ने उक्त मणि को पाया था। जहाँ पर यह मणि उन्होनें प्राप्त किया था। तब से उस स्थान का नाम ''माणिक भण्डार'' हो गया है।

(2) बंग लोक– बंगाली।

(3) बंग के प्रजा गण को अपने अधिकार में अर्थात अपने राज्य में शामिल करने की अनुमति दी।

प्रल–68

परयाना(1) कोरि दिलो बार बांग्लाते(2)।	परवाना(1) कर दिया बारह बंगालो(2)।
नवसेना(3) जतेक मिलानि कोरि दिते।।	नवसेना(3) का कहा इसमें मिलाने।।
दस हाजार घर बंग दिते आज्ञा होइलो।	आज्ञा हुई बंग को घर देने दस हजार।
बंगे आसि सेना चारि हाजार पाइलो।।	सेना मिली बंग में आकर चार हजार।।
भद्रलोक प्रभृति जतेक नबसेना।	भद्र लोग बहुत नवसेना।
स्वर्णग्रामें पाइलो श्रीकर्ण(4) कोतो जना।।	स्वर्णग्राम आ मिले श्रीकर्ण आदि लोग।।(4)

---

(1) परयाना– आदेश पत्र।

(2) बार बंग्ला या बारह बंग्ला– बारह भूँइया के शासनाधीन बंग देश। द्वादस भौमिक या राजा उपाधिधारी जमींदारों के द्वारा बंग देश का शासन चलता था। आइन–इ–अकबरी, अकबरनामा आदि मुसलमानों के इतिहास में इन सामन्तों के किसी किसी का नामोल्लेख है। ये लोग सभी नाम अकबर के वे समकालीन थे। मुसलमान सम्राट इनसे कर लेते थे। आवश्यकता पड़ने पर सेना संग्रह आदि करके दिल्लीश्वर की सहायता करने को बाध्य रहते थे। इसके अलावा दूसरे विशेष उद्धेश्यों को पालन करने पर बाध्य रहते थे।

द्वादस भौमिकों का नाम–

1. राजा कन्दर्प नारायण राय– ये बंग के कायस्थ थे। चन्द्रद्वीप उनके शासन में था।
2. प्रतापादिक्य– ये जशोहर के शासन कर्ता थे। बंग के कायस्थ थे।
3. लक्ष्मण माणिक्य– ये भी बंग कायस्थ थे। भुलुया इनके अधिकार में था।
4. मुकुन्दराम राय– ये देव वंशज थे एवं भूष्णा के अधिपति थे।
5. चाँद राय और केदार राय– ये भी देववंशज कायस्थ थे। विक्रमपुर का शासन दण्ड इनकी परिचालना में था।
6. चाँद गाजी– ये चाँदप्रताप के शासन कर्ता थे और जाति के मुसलमान थे।
7. गणेश राय– उत्तर राढ़ीय कायस्थ थे। ये दिनाजपुर के शासन कर्ता थे।
8. हाम्बीरमल्ल– मल्ल वंश थे। और विष्णुपुर के अधिपति थे।
9. कंसनारायण– ये बारेन्द्र ब्राह्मण थे। ताहिरपुर के शासन कर्ता थे।
10. रामचन्द्र ठाकुर– ये भी बारेन्द्र ब्राह्मण थे। पुटिया इनके शासनाधीन था।
11. फजल गाजी– ये मुसलमान थे। ये भावयाल के शासक थे।
12. ईसा खाँ मसनद अली– ये मुसलमान थे। खिजिरपुर इनके अधीन था।

(3) नवसेना– नव शाक जाति। इन नव जातियों के शूद्र कहा जाता था।(लेकिन ये लोग वैश्यों की नव शाखा माने जातें हैं।) परिसर संहिता में है।

"गोपो माली तथा तैईली तंत्री मोदक बारुजी।
कुलालः कर्मकारश्च नापितो नवशायकः।।

गोप, मालाकार, तेली, ताँती, मोदक, बारूई, कुम्भकार, कर्मकार और नापित नव शायक(नवशाक) या नवसेना भी कहा जाता है।

(4) कायस्थ जाति के शाखा विशेष को श्रीकरण कहते है। लिपि व्यवसायी कहकर यह आख्या दी गयी है। श्रीकर्ण और श्रीकरण अभिन्न शब्द हैं।

प्रल–69

से सब सहिते राजा राज्येते आसिलो।	यह सब सहने राजा आये राज्य में।
रांगामाटी दुई हजार घर बोसाइलो।।	हजार घर बसाया रांगामाटी में आकर।।
रत्नपुरे बोसाइलो सहस्रेक घर।	रत्नपुर में बसाया घर एक हजार।
यशपुरे बोसाइलो पंचशत पर।।	पाँच सौ यशपुर फिर और।।
हीरापुरे पंचशत घर बोसाइलो।	पाँच सौ बसाया घर हीरापुर में।
एईमते रांगामाटी नवसेना गेलो(1)।।	(1) इस तरह आकर बसे नवसेना रांगामाटी में।।
धर्म प्रति प्रीतिमति रत्न नृपवर।	धर्म प्रति प्रीति मति रत्न नृपवर।
राम कृष्ण नारायण शब्द निरन्तर।।	राम कृष्ण नारायण शब्द निरन्तर।।
सर्वजन मिलिलेक आर मिले कुकी।	सभी आकर मिले और मिले कुकी।
प्रजा लोक सुखे बसे नाहि केह दुःखी।।	प्रजा सभी थी सुखी व कोई नहीं दुखी।।
चौगाम(2) खेलोये राजा रत्न नृपवर।	चौगाम(2) खेलते राजा रत्न नृपवर।
चतुर्दिके गज अश्वे योगान विस्तर।।	गज अश्वादि थे सजे चारों ओर।।
रांगामाटी स्थाने हस्ती अल्प आयु होय।	रांगामाटी में होते अल्पायु हस्ती।
एक सन्यासीर स्थाने नृपे जिज्ञासय।।	पूछा नृप ने वहाँ जो थे एक सन्यासी।।
से साधुये रांगामाटी औषधि गाडिलो(3)।	सन्यासी ने रांगामाटी में गाड़ी(3) एक औषधि।
तद्वधि हस्ती आयु विशाल(4) होइलो।।	फिर दीर्घायु(4) हुए हस्ती तद्विधि।।
रत्नमाणिक्येर स्वर्गलाभ	**रत्नमाणिक्य का स्वर्गलाभ**
बृद्ध होइलो नरपति कालक्रम पाइया।	कालक्रम से नरपति हुए वृद्ध।
तान दुई पुत्र छिलो बलबन्त होइया।।	बलवंत हो उठे थे उनके दोनों पुत्र।।
प्रताप ज्येष्ठेर नाम मुकुट कनिष्ठ।	प्रताप ज्येष्ठ और मुकुट था कनिष्ठ।
महासत्व दुई भाई परम बलिष्ठ।।	महा सत्व थे दोनों भाई परम बलिष्ठ।।
रत्नमाणिक्य राजा स्वर्गे होइलो गति।	रत्नमाणिक्य राजा की हुई स्वर्ग गति।
प्रतापमाणिक्य	**प्रतापमाणिक्य**
अधार्मिक प्रतापमाणिक्य होइलो ख्याति।।	अधार्मिक प्रतापमाणिक्य की हुई ख्याति।।

---

(1) त्रिपुर राज्य में इसके पहले बंगालियों का आगमन होने पर भी इसके द्वारा राज्य में नाना जाति के बंगालियों के रहने का सूत्रपात हो गया था।

(2) चौगाम खेला– यह पारसी भाषा का शब्द है। "चौगान खेला" विशुद्ध शब्द है। किसी किसी देश में "चौघान बाजी" भी कहते हैं। कश्मीर के उत्तर में लछदाख / लदाक / लद्दाख और तिब्बत में इस क्रीडा का विशेष प्रचलन है। इस खेल में आगे अश्व पर चढ़ कर एक पत्थर को दण्ड द्वारा आघात करके आगे ले जाते है, खेला जाता था। यह अग्रेजों के **Hockey** खेल की तरह है। तिब्बतीय भाषा में इसे "पोला" **(Polo)** कहते हैं।

(3) गाडिलो बंगला में गाड़ देने को कहते हैं।

(4) आयु विशाल अर्थात दीर्घायु।

प्रल—70

मुकुटमाणिक्य, महामाणिक्य, श्री धर्ममाणिक्य

ताहाने मारिलो रात्रे दस सेनापति।
पोरे मुकुटमाणिक्य होइलो राज ख्याति।।
बलवंत मुकुटमाणिक्य महाबीर।
बहु दिन राज्य कोइलो होइया सुस्थिर।।
ताहान तनय महामाणिक्य नृपवर।
धर्मेते पालिलो राज्य अनेक वत्सर।।
तान पुत्र होइला तुमि श्री धर्ममाणिक्य।
जाहा जानि बोलियछि तोमाते जे मुख्य।।

———

पुराण प्रसंग

नृपतिर मने अति विवेक जन्मिलो।
सेई विप्र सम्बोधिया पुनः जिज्ञासिलो।।
त्रिलोचन सम राजा त्रिपुरेर कुले।
होबे कि एमतो राजा देखो शास्त्र बोले।।
बाणेश्वर शुक्रेश्वर दुई द्विजवर।
नृपतिर वाक्य सुनि दिलेक उत्तर।।
जाहाँ जिज्ञासिला नृप बोलि तत्व सार।
जन्मिबो विशिष्ट राजा वंशे त्रिपुरार।।
हरगौरी सवांदेते कोहिछे शंकर।
राज—मालिका तंत्रे शुनह नृपवर।।
एई बोलिया दुई द्विजे तन्त्र देखाइलो।
हरगौरी संबादेते प्रमाण पाइलो।।

अथ श्लोकः अथ श्लोकः
"वर्म्मान्ते तु गते भूपे क्रोधस्याक्षो भविष्यति।
ससाध्य ग्रहयुग्माब्दं ततोऽसौ न भविष्यति।।"

पुनरपि कोहिलेक सेई द्विजगण।
अधर्मी होइले राजा त्वरिते पतन।।

मुकुटमाणिक्य, महामाणिक्य, श्री धर्ममाणिक्य

मार गिराये उस रात दस सेनापति।
पश्चात् मुकुटमाणिक्य हुए राज ख्याति।।
बलवंत मुकुटमाणिक्य महाबीर।
बहुत दिनों तक राज्य किया सुस्थिर।।
उनके तनय हुए महामाणिक्य नृपवर।
धर्म से पाला राज्य अनेक वत्सर।।
उनके पुत्र हुए तुम श्री धर्ममाणिक्य।
वही कहा तुमसे जो जनता हूँ मुख्य।।

———

पुराण प्रसंग

नृपति के मन में जागा तीव्र विवेक।
पुनः पूछा करें सम्बोधन हे विप्र।।
त्रिलोचन सम राजा त्रिपुर के कुल।
होगा क्या फिर कभी कहो शास्त्र खोल कर।।
बाणेश्वर शुक्रेश्वर दोनों द्विजवर।
नृपति के वाक्य कर सुन दिया उत्तर।।
कहा तुरन्त जो पूछा वहाँ नृप।
त्रिपुरा के वंश में जन्मेगा राजा विशिष्ट।।
हरगौरी संवाद में कहते हैं शंकर।
राजमालिका तन्त्र में है सुनो नृपवर।।
यह कह दोनो द्विज ने दिखाया उन्हें तन्त्र।
हर गौरी संवाद में पाया प्रमाण।।

अथ श्लोकः अथ श्लोकः
"वर्म्मान्ते तु गते भूपे क्रोधस्याक्षो भविष्यति।
ससाध्य ग्रहयुग्माब्दं ततोऽसौ न भविष्यति।।"

पुनः बोले वही द्विजगण।
अधर्मी होए राजा, त्वरित गति पतन।।

प्रल–71

पृथिवी काहार नहे पुण्य नित्य सार।
भोजबाजी प्राय जानो असार संसार।।
जीवन यौवन धन जल–बिम्ब(1) प्राय।
सुसमय काले आसे कुसमये जाय।।
शाश्वत्(2) ना होये किछु विचित्र संसार।
ना जानिया मूढ नृपे बोले काट मार।।

इति राजमालायां श्री धर्ममाणिक्य जिज्ञासा
दुर्लभेन्द्र चन्ताई बाणेश्वर शुक्रेश्वर
द्विज कथनं समाप्तं

पृथ्वी किसी की नहीं पुण्य नित्य सार।
भोज बाजी सम जानो असार संसार।।
जीवन यौवन धन जल बिम्ब(1) की तरह ।
सुसमय में आते है, असमय में जाते स्वतः।।
शाश्वत(2) नहीं है। कुछ यह विचित्र संसार।
अज्ञान वश कहे नृप काट मार।।

इति राजमाला, श्री धर्ममाणिक्य जिज्ञासा
दुर्लभेन्द्र चन्ताई बाणेश्वर शुक्रेश्वर
द्विज कथन समाप्त

---

(1) जलबिम्ब– बुद बुद या बूंद।
(2) शाश्वत– नित्य।

श्री राजमाला

प्रथम लहर का मध्यमणि

(टीका)

प्रल–75

प्रथम लहर की मध्य–मणि

(टीका) (टीका)

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावंते च मध्ये च हरिः सर्वत्रे गीयते।। आदावंते च मध्ये च हरिः सर्वत्रे गीयते।।

ग्रन्थ भाग में उल्लिखित जिन विषयों की विवृति पादटीका में सन्निविष्ट करने की सुविधा नहीं मिली, उन्हीं सभी विषयों का संक्षिप्त विवरण इस टीका में प्रदान किया जा रहा है। राजमाला की उक्तिओं के साथ मिलाकर पाठ करने से सभी विषय स्पष्ट रूप से हृदयंगम होंगे।

राजमाला प्रथम लहर व उनके रचयिता

(मूल ग्रन्थ के तीन चार पन्ने देखिये)

बंग भाषा में ग्रन्थ रचना प्रारम्भकाल निर्णय समय सापेक्ष है

बंग भाषा में ग्रन्थ रचना की पद्धति कितने वर्ष पहले पहली बार प्रारम्भ हुई, उसका निर्णय नहीं हो पाया है। नित्य नवीन प्राचीन ग्रन्थ आविष्कृत हो रहे हैं। इनके आविष्कार के फलस्वरूप क्रमशः प्राचीन साहित्य की खबरें मिल रही हैं। अभी भी कितने ही ग्रन्थ आँखों से परे रह गये हैं, उनकी खबर कौन करेगा? इस अवस्था में बंग साहित्य प्राचीनत्व निर्धारण करने में लम्बा समय लगेगा।

राजाबली

त्रिपुरा के इतिवृत्त ''राजाबली'' एक प्राचीन ग्रन्थ है, यह आठ सौ साल पहले बंगला भाषा में लिखा गया था। यह ग्रन्थ इस समय दुष्प्राप्य है। स्व0 पंडित रामगति न्यायरत्न महाशय के बंग भाषा और साहित्य विषयक प्रस्तावना में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। आज इस ग्रन्थ को बंग भाषा का आदि ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु इस समय नौ सौ साल पहले का एक दो ग्रन्थ मिले हैं, ऐसी बातें सुनने में आई है। इसके अलावा रामाई पंडित का शून्य पुराण एवं मानिक चन्द एवं गोविन्द चन्द्र के गीतों को भी आठ सौ साल पुराना माना गया है। इस अवस्था में राजाबली के बंग भाषा का आदि ग्रन्थ, अगर नहीं भी कहा जाय तो भी भाषा के आदिम अवस्था का ग्रन्थ, अवश्य ही स्वीकृति पाने योग्य है।

इसके समकालीन या पहले के पहले लिखे गये तीन–चार ग्रन्थों के अलावा और कोई ग्रन्थ आज तक नहीं मिला है।

प्रल–76

कुछ लोगों का मत है कि राजाबली नाम का स्वतन्त्र कोई ग्रन्थ नहीं था। यह राजमाला का नामान्तर मात्र है। इस ग्रन्थ की कोई खबर नहीं मिल रही है। जिस ग्रन्थ के बारे में कोई खोज नही मिल रहा है, उनके अस्तित्व के बारे में स्थिर मीमान्सा में पहुंचना असंभव है। इस विषय पर इन मतवादों का प्रतिवाद भी नहीं किया जा सकता। इसके अलावा पूर्वोक्त मत के प्रति अपनी आस्था स्थापन कोई योग्य प्रमाण भी नहीं मिलता। सभी अंधेरे में ही पत्थर फेंक रहे हैं और फेंके हैं।

राजामाला

महाराज त्रिलोचन के अधस्तन 102 स्थानीय भूपति धर्ममाणिक्य के शासन काल में उनके आदेश पर त्रिपुरा का अन्यतम इतिहास "राजमाला" (प्रथम लहर) रचित हुआ। इसी सिलसिले में राजमाला रचना का सूत्रपात हुआ। इसकी भाषा जगह जगह पर अतिरंजित या अंधविश्वासयुक्त होने पर भी ऐतिहासिक उपादान की हैसियत से इसका मूल्य बहुत अधिक है। यह ग्रन्थ महीशुर के प्राचीन इतिवृत्त "राजाबलीकथे", कश्मीर का इतिहास "राज–तरंगिनी" तथा जैन इतिहास मेरूतुंग की "प्रबन्ध चिंतामणि" इत्यादि ऐतिहासिक ग्रन्थ की तरह मूल्यवान और प्रमाणिक है। सतर्कता के साथ चुन लेने पर, राजमाला से अनेक मूल्यवान रत्न उद्धार किये जा सकते हैं।(1) इस ग्रन्थ के प्रस्तावना में लिखा गया हैः–

त्रिलोचनवंशे महामाणिक्य भूपति।	त्रिलोचन वंश में महामाणिक्य भूपति
तानपुत्र श्री धर्ममाणिक्य नाम ख्याति।	उनका पुत्र श्रीधर्ममाणिक्य नाम ख्याति।।
बहु धर्म शील राजा धर्मपरायण।।	धर्म शील राजा धर्म परायण।
धर्मशास्त्रक्रमे प्रजा करिछे पालन	घर्मशास्त्रानुसार करते प्रजा पालन।।
एक काले महाराज बोसि धर्मासने।	एक समय महाराज बैठे धर्मासन पर
राजवंशावलीकीर्ति श्रबनेच्छा मने।।	राजवंशावली सुनने हेतु मन हुआ आतुर।।
दुर्लभेन्द्र नाम छिलो चन्ताई प्रधान।(2)	दुर्लभेन्द्र नाम था चन्ताई(2) प्रधान।
चतुर्दश देबता पुजाते दिव्य ज्ञान।।	चतुर्दश देवता पूजा में दिव्य ज्ञान।।
त्रिपुरेर वंशावली आछये अशेष।	त्रिपुर की वंशावली है अशेष।
राजकुल कीर्ति सब जानेन विशेष।।	राजकुल की कीर्ति सभी जानते विशेष।।
बाणेश्वर शुक्रेश्वर दुई द्विजवर।	बाणेश्वर शुक्रेश्वर दो द्विजवर।
आगमादि तंत्र तत्व जानेन विस्तर।।	आगमादि तंत्र तत्व जानते विस्तर।।
राजमाला प्रल 3पृ	राजमाला प्रल 3पृ
+ + + + + + +	+ + + + + + +
तिनेते जिज्ञासा राजा करे ए विषय।	तीनों से पूछा राजा ने यह विषय।

(1) इस ग्रन्थ के बारे में **Rev. James Long** साहब ने कहा–**As though interspersed with a variety of Legends and myths, it gives us a picture of the State of Hindu Society and customs in a country little known to Europeans. J. A. S. B. vol. XIX.**

(2) चन्ताई– त्रिपुरा के पहाड़ी पुजारी।

प्रल–77

तारा तिने कहे राजा कोरो अबधान।	वे तीनो कहने लगे राजा करो अवधान।
तोमार बंशेर कोथा निश्चय प्रमाण।।	तुम्हारे वंश की कथा का होगा निश्चय प्रमाण।।
राजमाला प्रल 4पृ	राजमाला प्रल 4पृ

राजमाला के रचयितागण ऊपर उद्धृत अंश की आलोचना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज धर्ममाणिक्य के आदेश पर चन्ताई दुर्लभेन्द्र एवं बाणेश्वर तथा शुक्रेश्वर नाम के दोनों सभा पंडितों ने राजमाला की रचना के कार्य में व्रती हुये थे। दुर्लभेन्द्र चतुर्दश देवता के प्रधान पूजक थे। उन दिनों चन्ताई लोगों को देव–सेवा कार्य के अलावा राजवंशावली एवं राजतत्व के इतिहास को कंठस्थ रखना उनके कर्तव्य कर्मों में एक था। आवश्यकता पड़ने पर वे लोग उसे त्रिपुर भाषा में व्यक्त करते थे। इसलिए कहा गया है कि "पहले राजमाला त्रिपुर भाषा में थी।" त्रिपुर भाषा में वर्णमाला प्रचलित नहीं था, इसलिए ऐतिहासिक विवरण कंठस्थ रखा जाता था —यही समझा जाता है। इसी कारण से राजमाला रचना कार्य में दुर्लभेन्द्र चन्ताई ने वेद–व्यास का आसन ग्रहण किया था। गणेश रूपी बाणेश्वर और शुक्रेश्वर ने दुर्लभेन्द्र की उक्ति को कविता में लिपिबद्ध किया है।

बाणेश्वर और शुक्रेश्वर का परिचय मतद्वैध बाणेश्वर और शुक्रेश्वर का प्रकृत परिचय संग्रह नहीं कर पाने पर विभिन्न व्यक्तियों ने तरह तरह के मत व्यक्त किये है। किसी–किसी ने कहा है कि ये लोग त्रिपुर जिला के लोग हैं और किसी–किसी के मत से ये दोनों पंडित श्रीहट्ट के रहने वाले थे। श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता ने भी इसी मत का समर्थन किया है। किसी पक्ष ने भी वास्तव प्रमाण द्वारा अपनी वाक्य का प्रेषण नहीं कर पाए। ग्रन्थ की भाषा आलोचना करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आ जाता है और लगता है दोनों कविद्वय त्रिपुरा नोयाखाली अथवा श्रीहट्ट अंचल के आदमी थे। ग्रन्थ में उन्हीं जिलों के व्यवहृत अनेक शब्द पाये जाते हैं। हम लोग भी इस विषय में कोई स्थिर सिद्धान्त पर न पहुँच कर नीचे दिए गए कुछ कारणों से कविद्वय को श्रीहट्ट निवासी ही समझ रखे थे।

1. त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी आसाम प्रदेश में रहने से प्राचीन काल में राज दरबार में उस अंचल के ब्राह्मणों का विशेष प्राधान्य था, अतएव सभा पंडित शुक्रेश्वर को उसी अंचल का निवासी होना चाहिए। इसी की संभावना अधिक है।
2. महाराज आदिधर्म फा ने, धर्ममाणिक्य के राजमाला रचना के बहुत पहले मिथिला से पंचगोत्रिय ब्राह्मण लोग मंगाकर एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया गया था। यह यज्ञ वर्तमान श्रीहट्ट जिला के किसी जगह हुआ था। आश्चर्य होता है कि इस तरह के एक विशेष घटना का राजमाला में उल्लेख नहीं किया गया। श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रणेता सुहृवर माननीय श्रीयुत् अच्युतचरण चौधुरी तत्वनिधि महाशय ने इस विषय में लिखा है–

"शुक्रेश्वर और बाणेश्वर ने 1407 ईस्वी में राजमाला की रचना की, ये लोग यज्ञ काल के

बहुत परिवर्ती आधुनिक व्यक्ति है, एवं ऐसा लगता है ये लोग साम्प्रदायिक श्रेणी के नहीं थे, इसलिए इस विषय को(यज्ञ को) लिखते भूल गये, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।''(1)

अच्युत बाबू की इस इंगित से हमारे मन में और एक बात की याद आ रही है। यज्ञ के लिये मिथिला से समागत ब्राह्मणों को श्रीहट्ट अंचल में ''साम्प्रदायिक ब्राह्मण'' के नाम से जाना जाता है। इन साम्प्रदायिकों के आगमन से, श्रीहट्ट के प्राचीन वंशीय ब्राह्मणों का गौरव कुछ मायने में कम हो गया था। शुक्रेश्वर और बाणेश्वर संभवतः साम्प्रदायिक श्रेणीयुक्त नहीं थे। इस कारण से अपने कुल का ग्लानिकर यज्ञ और मैथिली ब्राह्मणों के आगमन वृतान्त को प्रच्छन्न रखना भी विचित्र नहीं है। श्रीहट्ट के अलावा त्रिपुरा व नोयाखाली जिला के ब्राह्मणों का उस घटना से कोई क्षति वृद्धि नहीं हुई। अतएव ये दोनों पंडितों का इन जिलों के निवासी होने पर यज्ञ की बात उल्लेख न करने का कोई कारण नहीं था। इस तरह की एक प्रसिद्ध घटना की बात जानकारी में न होने से अर्थात प्रमादवश उल्लेख नहीं हो सका। ऐसी बात हो सकती है, यह नहीं हो सकता। लगता है इच्छाकृत ही इसका उल्लेख नहीं किया गया। इसी कारण से इन दोनों पंडितों को श्रीहट्ट वासी प्राचीन वंशीय ब्राह्मण कहा जा सकता है।

3. ग्रन्थ में व्यवहार किए गए अनेक शब्द एक मात्र श्रीहट्ट अंचल में ही व्यवहार किया जाता है। इनमें 'उभा' शब्द विशेष उल्लेख योग्य है। प्राचीन राजमाला में आद्यंत आलोचना करने पर इस शब्द का बहुत प्रयोग मिलेगा। श्रीहट्ट में 'उभा' शब्द का अर्थ होता है दण्डायमान(खड़े होना)। राजमाला में ठीक इसी अर्थ में उक्त शब्द का व्यवहार मिलता है। जैसेः—

क. गजभीम नारायण उभा होईया कोईलो	—गज भीम नारायण ने खड़े होकर कहा।
ख. बोसिबार योग्य जेई सेई जन बोईसे	—बैठनें के योग्य जो हैं वे वहीं वहां बैठें।
बाजूधरि आर सब उभा चारि पासे	—बाजूधरि और सभी चारों ओर खड़े।।
ग. एक एक त्रिपुर जे एक एक बंग	—एक—एक त्रिपुर जो एक—एक बंग।
पंक्ति करि उभा कर बन्धु होउक संग	—पंक्ति धर खड़ा करो बन्धु का हो संग।।
इत्यादि	इत्यादि

''उभा'' शब्द दूसरे देशों में प्रचलित होने पर भी इसका अर्थ खड़े होना अर्थ में व्यवहृत होने के प्रमाण नहीं मिलते। जैसे ''उभा करि बांधे चुल'' इत्यादि। केवल श्रीहट्ट में ''खड़े होने'' के अर्थ में उभा शब्द का प्रयोग होता है। इससे भी यही प्रमाण होता है कि दोनों कवि श्रीहट्ट निवासी ही थे।

फिर किसी—किसी का कहना है कि श्रीहट्ट जिला से एक समय ''भाट'' नाम के एक श्रेणी के ब्राह्मण सभी बंग देशों में ऐतिहासिक घटना और राजन्य वर्ग की कीर्ति कहानी की गाथा को छंदोबद्ध गाते घूम रहे हैं। यह बानियाचंग भाटों का प्रधान केन्द्रस्थल था

---

(1) श्रीहट्ट के इतिवृत्त— चतुर्थ और पंचम अध्याय की टीका देखें।

प्रल–79

किसी जमाने में ''सूत'', ''मागधी'', ''बन्दी'', मगध राजधानी में इस तरह की ऐतिहासिक गाथा की रचना का भार लिए थे, इसका उल्लेख बंग साहित्य के अनेक स्थानों में पाया जाता है। मगध ध्वंस के पश्चात, इन भाट ब्राह्मणों का एक उपनिवेश श्रीहट्ट में अधिष्ठित हुआ था। इस सूत्र के आधार पर वे लोग शुक्रेश्वर और बाणेश्वर को इतिहास विश्रुत भाट वंशीय के रूप में अनुमान करते है। किन्तु राजमाला की उक्ति इस मत की परिपंथी है। उस ग्रन्थ में उल्लेख है कि महाराज धर्ममाणिक्य के कुमिल्ला स्थित धर्मसागर के उत्सर्ग के समय ये इनके राजपुरोहित थे एवं इस उपलक्ष्य में वाराणसी धाम से समागत कौतुकादि विप्रों के साथ, एक ही सनन्द द्वारा, एकत्र ही इन्हे भी भूमिदान मिला था। इस परिपेक्ष्य में कविद्वय को भट्ट ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

पंडितद्वय का प्रकृत परिचय हम बाणेश्वर और शुक्रेश्वर के तथ्य संग्रह के मानसिकता के वश अतीत के तमसाच्छन्न पथ पर आग्रहपूर्ण चित्त पथ भ्रष्ट पथिक की तरह घूम रहे थे। इसी समय सौभाग्यवश श्री श्री महाप्रभु के पितामह के वंश में जन्में परमभागवत, ढाका दक्षिण निवासी श्रद्धास्पद श्रीयुक्त इन्द्रकुमार मिश्र महाशय का अगरतला में आगमन हुआ। उनके साथ बहुत से विषयों पर बातें हुई, उन्होनें कविद्वय का विवरण संग्रह कर देने का वचन दिया था एवं कुछ दिन पहले दया करके जो विवरण प्रदान किया है और इससे जो जानकारी मिली है, उससे पता चला है कि बाणेश्वर और शुक्रेश्वर श्रीहट्ट जिला के ढाका दक्षिण परगना के ठाकुरबाड़ी गाँव के निवासी थे। ये दोनों सगे भाई थे। बाणेश्वर बड़े और शुक्रेश्वर छोटे थे। ये श्रीहट्ट के प्राचीन ब्राह्मण वंश में जन्में थे। इनकी कौलिक उपाधि थी चक्रवर्ती। दोनों भाई महान पंडित थे। छोटे भाई की विशेषता थी कि वे किसी मनुष्य के चेहरे को देखकर उसके भूत, भविष्य और वर्तमान के पूर्ण विवरण को बता सकते थे। ये ही दोनों भाई त्रिपुरेश्वर के पुरोहित एवं सभापंडित थे।

ब्रह्मोत्र भूमि विवरण बाणेश्वर और शुक्रेश्वर ने जो ब्रह्मोत्र भूमि प्राप्त किया था, उनके अपने घर ग्राम ठाकुरबाड़ी और कुछ दूसरे मौजे में थे, ''बाणेश्वर चक्रवर्ती छेगा'' नाम से परिचय था। बाणेश्वर ज्येष्ठय थे। इसलिए शायद सनन्द पत्र उनके ही नाम सम्पादित हुआ था। शुक्रेश्वर भी अपने अग्रज के सम्पत्ति के अधिकारी थे ही। इनके वंश के विलुप्त होते ही उनकी सम्पत्ति को दौहित्र वंशो ने हथिया लिया। इस ब्रह्मोत्र सनन्द विनष्ट हो जाने के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ही वह जमीन जब्त हो गयी और वह भूमि करद सम्पति में बदल गयी। इसके पश्चात भी यह सम्पत्ति पंडितद्वय–दौहित्र वंश के लोगों के हाथ में ही रही–कालान्तर वह हस्तान्तरित हो गयी। इस विवरण के संग्रहकारी

प्रल–80

मिश्र महाशय के पूर्व पुरुषगण बाणेश्वर के दौहित्र वंश के गुरू थे। इसी सिलसिले में उस सम्पति का कुछ अंश इनके हाथों में भी आया है। इसलिए दोनों पंडितों के विलुप्तप्राय विवरण संग्रह करना मिश्र के लिए संभव हो सका है। इसी घनिष्ठता के कारण उनके द्वारा संग्रह किया गया विवरण प्रमाणिक रूप में ग्रहण किया जा सकता है। उन्हीं के सौजन्य से इस सम्पत्ति संसृष्ट एक खण्ड नोटिस हमारे हस्तगत हुआ है।

बाणेश्वर के दैाहित्र वंशीय रामकांत शर्मा के मृत्यु के पश्चात उनके वारिस कृष्णनाथ शर्मा पूर्वोत्त भूमि बन्दोबस्त के लिए प्रार्थना करने पर यह नोटिस प्रचार किया गया था। इस आलोचना से जाना जाता है कि उन्नीसवीं ई0 के मध्य भाग में(ब्रह्मोत्र रहित होने के बहुत दिनों के बाद) उक्त भूभाग के ''ब्रह्मोत्र बाणेश्वर चक्रवर्ती छेगा'' नाम स्थिर कर दिया था। उक्त नोटिस की प्रतिकृति इस जगह दी जा रही है। पढ़ने की सुविधा के लिए उसकी हूबहू प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है।:–(

श्री कृष्णकिशोर कानूनगो

पारसी साक्षर

बं हुकुम खान बहादुर साहेब।
(पारसी साक्षर)
श्री अलाउददीन आहाम्मद।
1310 नम्बर

मोहर
(छाप अस्पष्ट)

नम्बर 3190 मं
एस्तेहार नामा काचारी डिपुटी कालेक्टारी
जिला श्री हट्ट जानिबा।

जेहेतुक पं ढ़ाका दक्षिण बर्म्मउर्तर बाणेश्वर चक्रवर्ती छेगार बन्दोबस्त कारक रामकांत सर्म्मा मृत्यु होया प्रचारे सां पं कुबकाबाद मौं दत्त बालीर कृष्णनाथ शर्मा मृत व्यक्ति सत्वे उत्तराधिकारी सूत्रे सतबान ओ दखलकार थाका बिबने(1) मृत व्यक्तिर दखलीजमी बन्दोबस्त कोरार बासनाये एक खाना दरखास्त उपस्थित कोरियाछे। अतएव अद्य दिवसेर हुकुमानुयाय 15 रोज मादये एस्तेहार देवा जायतेछे ये मृत व्यक्तिर आन्यो उत्तराधिकारी आर केहो थाकिले उक्त म्याद मध्ये आपन उत्तराधिकारीत्वेर प्रमाणादि सहकारे हाजिर आसिया विहित प्रतिकार कोरिबेक नतु म्यादगते केहोर कोनो आपत्ति युना जावेक ना एहा अत्यावश्यक जानिबाय। इति सन 1848 ई 10 अगस्त

साक्षर
श्री भैरवचन्द्र देव
(मोहरेर)

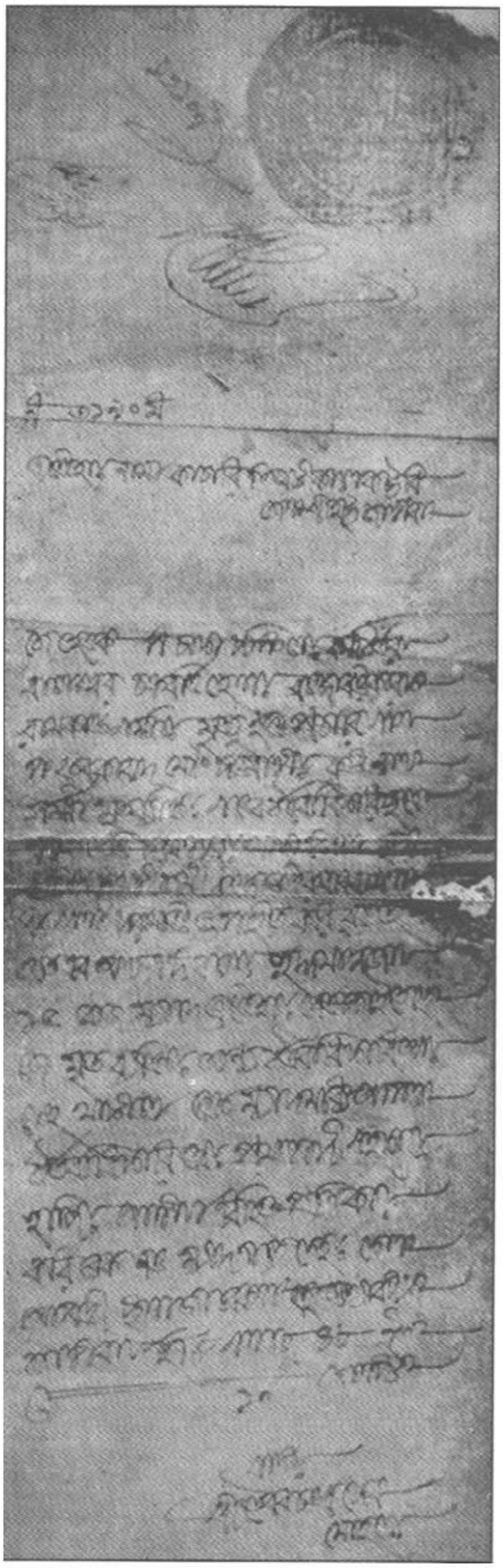
---

(1) बिबरणे की जगह बिबने लिखित हुआ है।

प्रल–80

(Pratham leher-80) चित्र

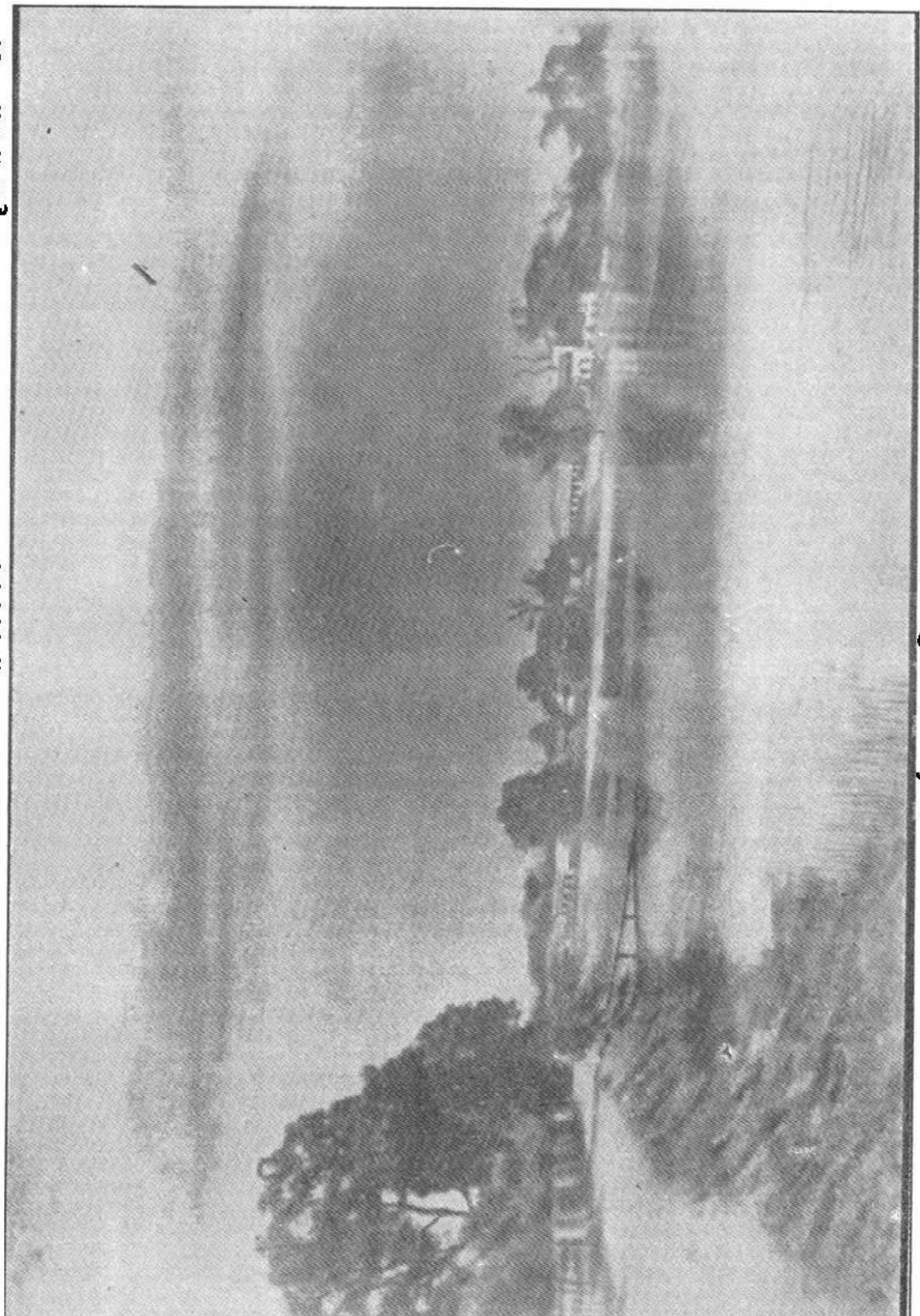
राजमाला प्रथम लहर   पृष्ठ संख्या – 80



बाणेश्वर चक्रवर्ती छेगारभूमि सम्पर्कित आदेशलिपि

प्रल–81

(Pratham leher-81) चित्र



धर्मसागर – कुमिल्ला

इस सागर की लम्बाई 1250 फुट, चौड़ाई 830 फुट, गहराई 3.5 फुट, 2 कड़ा में तालाब

प्रल–81

काल के कुटिल आवर्त्तन में बाणेश्वर और शुक्रेश्वर के दौहित्र वंश भी विलुप्त हो गया है। बाणेश्वर के दौहित्र वंश के शेष पुरुष वृन्दावन चन्द्र शर्म्मा पांच साल पहले ही परलोक वासी हो चुके हैं। वे चिरकुमार थे। उनकी मृत्यु से ही इस वंश का विलुप्ति हो गई।

उन दोनों पंडितों का पैत्रिक मकान बहुत से हाथों से होता हुआ अन्त में शिशु राम दे नामक एक शूद्र जातीय मध्यअवस्था सम्पन्न गृहस्थ के आवास स्थल में परिणत हुआ। थोड़े दिनों पश्चात् शिशुराम के परलोक सिधारने के पश्चात् उनके लड़के वहां रह रहे हैं।

बाणेश्वर और शुक्रेश्वर का इसके अलावा और विवरण संग्रह करने का और कोई उपाय नहीं है। भविष्य में और भी नये तथ्य सामने आ सकते हैं। हम उस सुदिन को देखेंगे, ऐसी आशा भी नहीं कर सकते हैं। हमारे संगृहीत विवरण की आलोचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा पूर्व अनुमान इसके द्वारा अक्षुण्ण रूप से प्रतिष्ठित हो रहा है।

राजमाला का प्राचीनत्व महाराज धर्ममाणिक्य के शासन काल में राजमाला रचित हुई थी। उनके सिंहासन आरोहण का शकांक उस ग्रन्थ में लिखा नहीं गया। स्वर्गीय कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने धर्ममाणिक्य का समय निर्धारण करते समय महाभ्रम में पड़ गए थे। वे कहते हैं:–

"1329 शकाब्द में महाराज धर्ममाणिक्य सिंहासन पर बेठे।"

चाकला रोसनाबाद के सैटेलमेन्ट ऑफिसर Mr. J. G. Cumming I.C.S. साहब ने इसे ही सही मान लिया और उनके मत से 1407 ई0 में महाराज धर्ममाणिक्य सिंहासनरूढ़ हुए। इनका यह निर्धारण अभ्रांत नहीं है। धर्ममाणिक्य 1380 शकाब्द में धर्मसागर उत्सर्ग के उपलक्ष्य में एक ताम्र, शासन द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान किया था(1) एवं 32 साल तक राज्य शासन किया था,(2) राजमाला में ये दों बातें मिलती हैं। कैलाश बाबू प्रभृति का काल निर्धारण काल 1329 शक ही सिंहासन के आरोहण का समय मान लिया जाय तो उस शक से 1380 शकाब्द तक 51 साल होता है। अतएव जिसका शासन काल में मात्र 32 वत्सर है एवं 1380 शक में भी

---

(1)

चन्द वंशोद्भवः स्वाप महामाणिक्यज सुधिः।
श्रीश्रीमद्धर्म माणिक्य भूपश्चन्द्रकुलोद्भवः।।

शाके शून्याष्ट विशाब्दे वर्षे सोम दिने तिथौ।
त्रयोदस्यां सिते पक्षे मेषे सूर्यास्य संक्रमे।।

इस ताम्रपत्र के बारे में धर्ममाणिक्य खध्ड में विशेष रूप से आलोचित होगा।

(2)

बत्रिस बत्सर राजा राज्य भोग छिलो।	बत्तीस सालों तक राज्य भोग किया राजा।
सुमधुर बाक्ये राजा प्रजा के पालिलो।।	सुमधुर वाक्यों से राजा ने पाला अपनी प्रजा।।
राजमाला द्विल धर्ममाणिक्य खण्ड 6पृ	राजमाला द्विल धर्ममाणिक्य खण्ड 6पृ

प्रल–82
विद्यमान थे, उनके राज्याभिषेक का शकांक 1329 नहीं हो सकता।

द्विज बंगचन्द्र की रचित "त्रिपुर वंशावली" नाम की कविता पुस्तक में लिखा है। महाराज धर्ममाणिक्य ने 841 से 872 त्रिपुराब्द तक राज्य शासन किया था, इस हिसाब से 1353 से 1384 शक(1431–1462 ई0) तक उनका शासन काल निर्धारण किया जा रहा है। हम लोग हम भी इस सिद्धान्त को विशुद्ध मानते हैं, क्योंकि इसके द्वारा राजमाला का सम्पूर्ण रूप से समर्थन हो चुका है। महाराजा ने 32 सालों तक राज्य शासन किया है एवं 1380 शक तक वे विद्यमान थे। उस समय के निर्धारण द्वारा दो बातों का सामंजस्य की रक्षा हो रही है। अतएव धर्ममाणिक्य 1431 ई0 से 1462 ई0 तक 32 साल तक राज्य भोग किया था। इस तरह के सिद्धान्त को हम समीचीन ठहराते है। राजमाला प्रथम लहर इन 32 सालों में किसी एक समय रचित हुई थी अतएव यह ग्रन्थ पांच सौ साल पुराना है। उस समय विद्यापति और चण्डीदास के प्रेम रसामृत पदावली का सुमधुर रचनाओं से बंगभूमि मुखरित हो उठी थी। उसी समय त्रिपुरा के निभृत गिरिकुंज में, चन्ताई दुर्लभेन्द्र एवं दो विप्र बाणेश्वर और शुक्रेश्वर राजमाला की रचना में लगे हुए थे। कृत्तिबास का रामायण भी इसका समकालीन है।

राजमाला ही बंग भाषा में पहला इतिहास राजाबली के अभाव में राजमाला ही बंग भाषा में पहला इतिहास ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ के द्वारा बंगला भाषा में इतिहास रचना का सूत्रपात हुआ था। इसके बाद वैष्णव महाजनों में बहुत से व्यक्तियों को इतिहास रचना कार्य में व्रती होते देखा गया है। चैतन्य मंगल, चैतन्य भागवत्, चैतन्य चरितामृत्, भक्ति–रत्नाकर, प्रेम विलास, अद्वैत प्रकाश आदि बहुत से लोगों द्वारा लिखित काव्य ग्रन्थ इत्यादि और चरिताख्यान तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ इत्यादि वैष्णव युग की समृद्ध कीर्ति है। किन्तु राजत्व का इतिहास किंवा राजनैतिक आलोचना राजमाला को छोड़ दूसरे किसी प्राचीन बंगला ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलता।

राजमाला राजाओं का इतिहास राजमाला राजाओं का इतिहास है, राज्य का इतिवृत्त नहीं। इसमें राजाओं का सिंहासनरोहण, राज्यच्युति, समरकहानी, शासन विवरण और परिवार संसृष्ठ प्रधान, प्रधान घटनावली संक्षिप्त में लिपिबद्ध है। इस ग्रन्थ के आलोचना से त्रिपुरा के प्राचीन काल की शौर्य–वीर्य और राजनीति विषयक बहुत से तथ्य मिलते है। अन्य विषयों के विवरण इसमें ज्यादा नहीं है। दूसरे किसी भी ग्रन्थ में इस तरह का उल्लेख नहीं है। इसके बहुत सी घटनाओं में काल निर्णय में यथा योग्य विवरण दिया नहीं गया है। बहुत सी उल्लेखयोग्य घटनायें छूट गई है, किसी–किसी जगह पर दो एक भ्रमसंकुल स्वतन्त्र विवरण भी लिपिबद्ध हुआ है। समृति निर्भर कुछ सुदीर्घकाल के विवरण

प्रल–83
संग्रह करते जाना एवं त्रिपुर भाषा में अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए उस भाषा में कथित वाक्यों से विवरण संग्रह करना बड़ा ही कठिन काम होता है। इसी वजह से किचिंत भ्रम, प्रमाद और असंपूर्णता होना अनिवार्य ही प्रतीत होता है। इसके अलावा सामान्य त्रुटिओं के होते हुए भी ऐतिहासिक उपादानों के लिए राजमाला को अमूल्य रत्न कहा जा सकता है।

प्राचीन साहित्य की हैसियत से भी इसका मूल्य असाधारण है। प्रथम लहर में जो सब उल्लेख योग्य विषय है, नीचे उनका सार–संकलन किया जा रहा है।

———————

किरातदेश और उसका अवस्थान

(मूल ग्रन्थ का 5–6 पृष्ठ)

राजमाला का मत और पुराण प्रसंग

राजमाला के प्रथम लहर में लिखा है–

बृषपर्वा की कन्या जे शर्मिष्ठा तनय।	बृषपर्वा की कन्या के जो शर्मिष्ठा तनय।
द्रुहयु नामे राजा होइलो किरात आलय।।	द्रुहयुवास राजा हुए किरात आलय।।
राजमाला प्रल 5पृ	राजमाला प्रल 5पृ

दूसरे स्थानों पर मिलता है–

द्रुहयु बंशे दैत्य राजा(3) किरात नगर।	द्रुहयु वंश में दैत्य राजा(3) किरात नगर।
अनेक सहस्र वर्ष होइलो अमर।।	अनेक सहस्र वर्ष हुआ अमर।।
राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 6पृ	राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 6पृ

इससे यह ज्ञात होता है कि द्रुहयु वंश(त्रिपुरा राज वंश) किरात प्रदेश के अधिपति हुए थे। किरात देश की स्थिति के बारे में राजमाला में लिखा है –

किरात आलय सब अग्नि कोण देश।	किरात आलय सब अग्नि कोण देश।
एई राज्य पिता आमा दियाछे विशेष।।(1)	यही राज्य पिता मुझे दिया विशेष।।(1)
राजमाला प्रल 7पृ	राजमाला प्रल 7पृ

किरातदेश और उसका अवस्थान निर्णय व किरातदेश की विस्त्ति

प्राचीन समय में त्रिपुरा, श्रीहट्ट और काछाड़ प्रभृति जनपद के पूर्व–प्रान्तस्थ पार्वत्य प्रदेश को मिलाकर किरात देश कहा जाता है। ययाति की राजधानी से ये सभी अंचल अग्नि कोण में स्थित है, इसी कारण से बोला गया है, '' किरात आलय सब अग्नि कोण देश। ''

पुराणों में भी प्रमाण द्वारा इन्हें किरात देश ही कहा गया है। यथा–

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निशामय।
इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गंधर्वोस्तथा वारूणः।।
अयन्त नवमस्तेषां द्वीप सागरसंवृत्।
योजनानां सहस्रस्त द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्।।

प्रल–84

पूर्वे किराता यस्य स्युः पश्चिमे यवना स्थिताः
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शुद्राश्च भागशः

विष्णु पुराण द्वितीय अंश तृतीय अध्याय 6–8 श्लोक

अर्थः– "इस भारतवर्ष के 9 भाग है, श्रवण करो– इन्द्रद्वीप, कशेरूमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरूण एवं यह सागर संवृत द्वीप। उनमें नवम् यह द्वीप उत्तर दक्षिण में सहस्र योजन लम्बा है। इसके पूरब की ओर किरात लोग रहते है। पश्चिम की ओर यवनों का वास है। मध्यस्थल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों का वास है।"

मार्कण्डेय पुराण में हैः–

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोध मे।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्।।
इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गांधर्वो वारूणस्तथा।।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्।।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्थता।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शुद्राश्चान्तः स्थिता द्विजः।।

(मार्कण्डेय पुराण 57 अध्याय 4 से 8 श्लोक)

मर्मार्थः– "इस भारतवर्ष में कुल मिलाकर 9 विभाग है। कह रहा हूँ– सुनो– ये सभी विभाग परस्पर के लिए अगम्य हैं। क्योंकि ये समुद्र द्वारा विच्छिन्न है। इनके नाम है।– इन्द्रद्वीप, कशेरूमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व, वरूण, इनमें नवम द्वीप है सागर संवृत। यह दक्षिणोत्तर में सहस्रयोजन लम्बा है। इसके पूर्व की ओर किरात, पश्चिम में यवन एवं मध्यभाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का वास है।"

उद्धृत वचन से किरात देश भारत के पूर्व सीमान्तवर्ती जगह है। मत्स्य, ब्रह्माण्ड एवं वामन आदि पौराणिक मत से भी किरात देश भारत के पूर्वी सीमा पर स्थित है। महाभारत में आता हैः– "प्रागज्योतिषाधिपति भगदत्त" चीन और किरात सेनाओं को लेकर अर्जुन के साथ लड़ाई किया था।

स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्रागज्योतिषोऽभवत्।
अनैश्च बहुभिर्योधः सागरानुपवासिभिः।।

महाभारत सभापर्व 26 अध्याय 9 श्लोक

इससे यह निर्णय होता है चीन और किरात देश राज्य प्रागज्योतिष राज्य के करीब था। प्रागज्योतिष का ही वर्तमान नाम आसाम है। अतएव भारतवर्ष के पूर्व

प्रान्त में किरात देश का होना महाभारत द्वारा भी प्रमाणित होता है। सभापर्व में और भी है–

ये परार्द्धे हिमवतः सूर्योदयगिरौ नृपाः।
कारूषे च समुद्रान्ते लौहित्यमभितश्च ये।।
फलमुलासना ये च किराताश्चर्म्मवाससः।
क्रुरशस्त्रा क्रुरकृतस्तांश्च पश्यामहं प्रभो।।

महाभारत सभापर्व 52 अध्याय 8–9श्लोक

इस श्लोक की आलोचना से हमें यह जानकारी मिलती है कि हिमालय के पूरब में लौहित्य नदी के दूसरे किनारे किरात नाम का प्रदेश था। पाश्चात्य भौगोलिक टोलेमी ने किरात जाति को **"Chirrhadae"** नाम से अभिहित किया है। उन्हाने भी इस जाति को भारतवर्ष के पूर्व प्रांतवासी कहा है।

ब्रह्मदेश और कम्बोज से पांचवी एवं छठी सदी में जो शिला लेख आविष्कृत हुए है, उसमें सभी प्रदेशों के आदिम आधिवासी पार्वत्य जाति समूहों को किरात नाम से जाना जाता था। इन सभी प्रमाणों के द्वारा स्थिरीकृत हुआ है कि एक समय हिमालय के पूरब की ओर बसे हुए वर्तमान भूटान, आसाम का पूर्वांश, मणिपुर, त्रिपुरा और ब्रह्मदेश एवं चीन समुद्र के किनारे बसे हुए कम्बोज तक के भूभाग किरात जातिओं का निवास स्थल माना जाता था। और उन सभी जगहों को ''किरात भूमि'' कहा जाता था। इस समय भी नेपाल के पूर्वांश से आसाम, त्रिपुरा और चटगांव के पार्वत्य प्रदेशों में किरात लोग ही निवास करते है। इन्हे नेपाल में ''करान्ति'', आसाम, त्रिपुरा, चटगांव प्रभृति देशों में नागा, कूकी, गारो, और मघ आदि नामों से जाना जाता है।

शक्तिसंगम तन्त्र में किरात भूमि का अवस्थान निम्नोक्त रूप से निर्धारित किया गया है–

तप्तकुण्डं समारभ्य रामक्षेत्रान्तकं शिवे।
किरातदेशो देवेशि विन्ध्याशैलेऽवतिष्ठते।।

उक्त तप्तकुण्ड और जयंतिया के पांच भाग परगना में हरिपुर नामक स्थान में अवस्थित है। मधुकृष्ण त्रयोदशी में इस जगह पर बहुत से यात्रिओं का समागम होता है और स्नान एवं तर्पणादि ये लोग करते है। इस कुण्ड की विशेषता यह है कि इसका जल शीतल है पर गर्भस्थ भूमि अति बहुत गर्म है। लोगों का अनुमान है कि कुन्ड के निचले भाग के भूगर्भ में किसी तरह का कोई दाह्यय पदार्थ है(1)। यह कुण्ड और उद्धृत श्लोक के तप्त कुण्ड अभिन्न है।

....

(1) **"Another Sacred pool is known as Taptakunda and is situated in Pargana panchbhag in Jaintia. This pool is said to become quite warm on the occasion of the Baruni and it is possible that the water has in reality some mineral properties."**

Assam District Gazetteer. Vol-II (Sylhet) chap. III - P- 89

समझा जाता है। बंगाल की खाड़ी के अंकशायी आदिनाथ तीर्थ के दूसरे किनारे पर नाम रामक्षेत्र तीर्थ है। यह स्थान आदिनाथ से आराकान(रंगुन) जाते समय उसके करीब ही काक्स बाजार महकुमा अन्तर्गत रामु थाना इलाका में है। साधारणत इस तीर्थ को ''रामकोट'' तथा ''रामटेक'' भी कहा जाता है।(1) श्लोकोक्त विंध्य शैल मध्यभारत में संस्थित(आर्यवर्त्त और दक्षिण पथ के मध्य भाग) विन्ध्य गिरि नहीं है। यह पर्वत मणिपुर राज्य के उत्तर प्रान्त एवं काछाड़ और श्रीहटट् जिला के वक्ष स्थल से जुडा हुआ है। इस पर्वत श्रृखंला से प्रवाहित बरबक्र(बोराक) नदी, काछाड़ और श्रीहट्ट जिला की प्रधान नदी के रूप में गिनी जाती है। वह पर्वत ''विंध्यशैल'' नाम से विख्यात नाम से जाना जाता था। वायु पुराण की आलोचना जाना जाता है कि –

विंध्यपाद समूद्भूतो बरबक्रः सुपुण्यदः

राज राजेश्वरी तन्त्र में भी किरात देश का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ की उक्ति शक्ति संगम तन्त्र का ही परिपोषक है।(2) इसके द्वारा भी भारत के पूर्व प्रान्त में स्थित काछाड़, श्रीहट्ट, त्रिपुरा और चट्टग्राम इत्यादि पार्वत्य भूमि ही किरात देश के नाम से जानी जाती है।

एरियान, डिउडोरास् एवं टोलेमी प्रभृति के लिखित ग्रन्थों में ''किरादिया'' प्रदेश का नाम मिलता है। ढ़ाका के इतिहास प्रणेता स्नेह भाजन श्रीमान् यतीन्द्रमोहन राय महाशय एवं श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता सुहृवर श्रीयुक्त अच्युतचरण चौधरी तत्वनिधि महाशय के मतानुसार यह ''किरादिया'' और ''त्रिपुर'' राज्य अभिन्न हैं। किरात प्रदेश को ही किरादिया कहा गया है। (3) यह मत समर्थन योग्य है। पेरिप्लूस ग्रन्थ में किरादिया प्रदेश की पूर्व सीमा गंगा नदी के मुहाने तक गया है, लिखा है।(4) यह लिपि अभ्रांत नहीं प्रतीत होती। किरादिया, किरात भूमि त्रिपुर नाम का ही नामांतर है। पूर्वोत्त मतों की आलोचना से ऐसे सिद्धान्त पर पहुँचना संगत ही प्रतीत होता है। महाभारत में इस प्रदेश को ''सुक्ष्मदेश'' कहा गया है।

बराहमिहिर के बृहत् संहिता में भारत के दक्षिण पश्चिमांश में किरात नामक

---

(1) नागपुर के करीब पर्वत पर एक रामक्षेत्र का अस्तित्व मिलता है। यह तीर्थ और ''रामगिरि'' ''रामकोट'' और ''रामटेक'' इत्यादि नामों से जाना जाता है। ये दोनों तीर्थ श्री रामचन्द्र के पवित्र पद स्पर्श से रामक्षेत्र एवं तीर्थ की संज्ञा प्राप्त कर चुके हैं।

(2) तंडूलानां समारभ्य रामक्षेत्रोन्तरं शिवे।
किरात देशो देबेशि विंध्य शैलान्त गोमहान्।।

(3) ढ़ाका का इतिहास दूसरा खण्ड, प्रथम अध्याय और श्रीहट्ट का इतिवृत्त, दूसरा भाग प्रथम खण्ड–तृतीय अध्याय देखें।

(4) **Mc Crindle's Ancient India as described by Ptolemy, page 291**
Periplus of the Erythrean Sea.

एक जनपद का उल्लेख है।(1) उस किरात भूमि के साथ राजमाला का संसृष्ट किरात देश का किसी तरह का सम्बन्ध नहीं है।

मूल रूप से किरात देश जो भरत के पूर्व प्रान्त में स्थित हैं एवं त्रिपुर राज्य प्राचीन किरात देश के अधीन या पूर्वोक्त प्रमाण आदि द्वारा यह सिद्ध हो चुका है। इस विषय में इससे अधिक किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

किरात देश आर्यावर्त्त के अन्तर्भुक्त है या नहीं? अब प्रश्न हो सकता है कि किरात देश आर्यावर्त्त के अधीन था या नहीं? शास्त्रकारों के मत वैषम्य की वजह से इस प्रश्न का समाधान कुछ जटिल अवश्य प्रतीत होता है। भगवान मनु ने आर्यावर्त्त के पूर्व और पश्चिम में समुद्र का उल्लेख किया है—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योराआर्यावर्त्तं विदुर्ब्बुधा।।
मनु संहिता द्वितीय अध्याय 22वां श्लोक।

पुराणों के मतानुसार आर्यावर्त्त के पूर्व सीमा में किरात और पश्चिम सीमा में यवनो का देश है।(2) यहाँ पर आर्यवर्त्त के एक मात्र पूर्व सीमा की ओर निर्देश करने की ही आवश्यकता है। पुराणवेत्ताओं के मतानुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि उन लोगो ने बंगला देश तक ही आर्यवर्त्त की पूर्व सीमा निर्धारण कर दिया था। बंग के पूर्व प्रान्त स्थिर विभाग(किरात भूखण्ड) आर्यवर्त्त के बाहर स्थित है। मनु ने समुद्र द्वारा आर्यवर्त्त की पूर्व सीमा निर्धारण किया है। सही किन्तु उस समुद्र का नामोल्लेख नहीं किया है। अतीत की ओर देखने पर पता चलता है कि एक समय कमलांक(कुमिल्ला) इत्यादि विस्तीर्ण जनपद समुद्र के ही अंकशायी थे। उसके बहुत काल पश्चात भी मेघनाद के सागर संगम प्राप्त करने के लिए झापटार मोहना अतिक्रमण करना पड़ा था। दूसरी ओर लौहित्य सागर की विस्तृति भी कम नहीं थी। अतएव उन दिनों विशाल जल राशि द्वारा बंग देश और किरात भूमि विच्छिन्न अवस्था में थे— इसे सहज ही अनुमान दिया जा सकता है। मनु ने यदि इस समुद्र का ही उल्लेख किया है, तो पुराण के मतानुसार उनके अभिमत का सामंजस्य

---

(1) नैर्ऋे त्यां दिशि देशाः पहलब् काम्बोज—सिन्धु—सौवीराः।
वड़बामुखार बाम्बष्ठ—कपिल—नारी मुकानर्त्ताः।।
फेन—गिरि—यवनमाकरकर्णप्रावेया पारशर शूद्राः।
वर्व्वर—किरातखण्ड—क्रव्याश्याभीर—चन्चु का।। इत्यादि
बृहत् संहिता 14 अध्याय 17—18 श्लोक

(2) पूर्वे किराता ह्यास्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।।
ब्रह्माण्ड पुराण 49 अध्याय

ब्रह्म पुराण, मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा वामन पुराण इत्यादि ग्रन्थों का भी यही मत है।

प्रल—88

की रक्षा की जा सकती है। प्रकृत रूप से जब बंग भूमि और किरात देश के मध्य भाग में सागर अस्तित्व की बात मिलती है। वहां मनु ने ही समुद्र को ही अपना लक्ष्य किया है— उनका यह सिद्धान्त ही सरल और संग प्रतीत होता है।

राजमाला मतानुसार भी किरात भूमि आर्यवर्त्त के बहिर्भूत ही मानी गई है। अगर ऐसा न होता तो महाराज दैत्य, किरात भूमि में रहकर पुण्यक्षेत्र आर्यवर्त्त के परित्यागजनित ग्लानि को अनुभव नहीं करते। इस विषय में राजमाला में एक वर्णन आया है—

किरात आलय सब अग्नि कोण देश।	किरात आलय सब अग्नि कोण देश।
एई राज्य पिता आमा दियाछे विशेष।।(1)	यही राज्य पिता मुझे दिया विशेष।।(1)
आर्यावर्त्त(2) हैते भूमि नाहि पृथिवीते।	आर्यावर्त्त(2) जैसी नहीं है भूमि पृथ्वी पर।
त्रैलोक्य दुर्ल्लभ्भ स्थल जगत विदिते।।	त्रैलोक्य दुर्ल्लभ्भ स्थल जगत विदिते।।
ये स्थाने जन्मिते इच्छा करे देवगण।	इसी स्थान जन्म हो इच्छा करे देवगण।
साधु संग लभे धर्म त्यजिया गगन।।(3)	साधु संग लाभ धर्म त्यागा गगन।।(3)
राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 7 पृष्ठ	राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 7 पृष्ठ
X X X X	X X X X
एई मात्र देखितेछि किरात आलय।	एक मात्र देखता हूं किरात आलय।
भयंकर पशु यत सिंहेर उदय।।	भयंकर पशु जैसे सिंह का उदय।।
राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृष्ठ	राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृष्ठ

अर्थ— किरातों की भूमि अग्नि कोण में है। इतना अच्छा राज्य था बाप ने मुझे अच्छा राज्य ही विशेष रूप से दिया है। कई जन्मों का शाप का फल संचय है मेरे भीतर। उसी कारणों से शायद बाप ने मुझे किरातों के देश को दिया। आर्यावर्त्त से अच्छी कोई जगह इस पृथ्वी पर नहीं है। तीनों लोकों में दुर्लभ स्थान है आर्यावर्त्त। देवता लोग भी आर्यावर्त्त में जन्म लेने की इच्छा करते है। साधु संग के समान धर्म प्राप्त करने के लिए स्वर्ग से उतर आते है।''

महाराज दैत्य की इस उक्ति से यह प्रमाणित होता है कि किरात देश आर्यवर्त्त से बाहर था। प्रमाण स्वरूप इस उक्ति को ग्रहण किया जा सकता है। कालक्रम से समुद्र में जगह विलीन हो जाने पर थोड़ी सी जगह जो नदी को लेकर रह गई थी उसी की सहायता से किरात भूमि से बंगदेश का यातायात सुगम हो गया है और समुद्र दक्षिण तथा पूर्व की ओर हट जाने से दोनो देश करीब हो जाने पर घनिष्टता की वृद्धि हुई है। इसी कारण से द्रुहयु वंशगणों द्वारा, किरात प्रदेश, आर्यावर्त्त के अधीन होने पर, बाद में उस प्रदेश को बंग के अन्तर्गत एवं आर्यावर्त्त के अंग के रूप में गण्य हो गया।

पारिवारिक कथा

राजा समाज के अधीन नहीं है राजा सभी समाज के शासक और पोषक है किन्तु किसी भी समाज के अधीन नहीं है। राजमाला एक मात्र राजन्य वर्ग का इतिहास है। अतएव इसमें उस समय का सामाजिक विवरण खूब कम ही मिलता है। पारिवारिक जिन सभी बातों का उल्लेख मिलता है। उसका स्थूल मर्म नीचे दिया जा रहा है—

प्रल–89

त्रिपुर ख्याति क्षत्रिय वंश को क्यों ''त्रिपुर'' कहा जाता है। यह प्रश्न राजमाला के रचनाकाल में ही उत्थापित हुआ था।

श्री धर्ममाणिक्य राजा परे जिज्ञासिल।	श्री धर्ममाणिक्य राजा ने किया जिज्ञासा।
क्षत्रिय वंशेते केन त्रिपुर नाम हइल।।	क्षत्रिय वंश में कैसे त्रिपुर नाम हुआ।।
राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृ	राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृ

राजमालाओं के रचियताओं ने शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा इस प्रश्न को जो उत्तर दिया हैं, यह एक इंगित मात्र है। उन इंगित वाक्यों की आलोचना से ज्ञात होता है कि त्रिपुर भूमि में जन्म होने की वजह से राजवंश त्रिपुर आख्या को प्राप्त हुआ है।(1) इस विषय में परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने कहा है –

''दैत्य के औरस से त्रिपुर का जन्म हुआ। उन्होनें किरात नाम का उच्छेद करके अपने नामानुसार राज्य का नाम रखा। त्रिपुरा एवं स्वजातीय व्यक्तिओं को त्रिपुरा जाति कहकर प्रचार किया।''

कैलाश बाबुर(बाबू का) राजमाला द्वितीय भाग द्वितीय अध्याय

विश्व कोष के सम्पादक महाशय ने कैलाश बाबू के मतों को ग्रहण किया है। श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रणेता ने कहा है –संभवत युझारु फा के समय राज्य का नाम त्रिपुरा हुआ है।(2) राज्य का नाम किस समय और किस कारण त्रिपुरा हुआ था इस विषय में पहले आलोचना हो चुकी है। यहाँ पर राज परिवार और ठाकुर परिवार के ''त्रिपुर की आख्या'' प्राप्ति का कारण निर्धारण करना ही एक मात्र उद्देश्य है।

कैलाश बाबू प्रभृति के मत से राजमाला का अभिमत को हम लोग सुसंगत समझते है। क्योंकि किसी जाति का सम्प्रदाय की आख्या, व्यक्ति विशेष के नाम से प्राप्त होने वाले दृष्टान्त की अपेक्षा वास स्थान के नाम से मिलने का दृष्टान्त अधिक परिमाण में दिखायी देता है। यहाँ पर भी स्थान के नामानुसार आख्या ग्रहण करने की सम्भावना ही अधिक है। उदाहरण स्वरूप बंग देश वासी सभी जातिओं को बंगाली, उडियावासिओं को उडिया, आसाम प्रदेश वासी सभी जातियों को आसामी या असमिया कहा जाता है। इसी तरह त्रिपुरावासी सभी त्रिपुर या त्रिपुरा आख्या से आख्यायिक है। त्रिपुर राज्य के अतीत के अम्लान गौरव और समुज्जवल कीर्ति कहानी स्मरण करके त्रिपुरा वासी वर्तमान समय में भी गौरव बोध करते हैं। इस अवस्था में अतीत काल के त्रिपुर आख्या को गौरवान्वित सोचना स्वाभाविक ही है। इसके दृष्टान्त राजमाला में बहुत से मिलेगें। महाराज त्रिलोचन के द्वादस पुत्र बारघर(बारहघर) ने त्रिपुरा आख्या प्राप्त किया था। यथा –

---

(1) प्रथम लहर 9 पृ दृष्टव्य

(2) श्रीहट्ट के इतिवृत्त –भाग, प्रथम भाग प्रथम खण्ड चतुर्थ अध्याय

प्रल–90

त्रिलोचन घरे(1) वार पुत्र उपजिल।	त्रिलोचन के घर(1) पुत्र जन्में बारह।
बारघर त्रिपुर(2) नाम तार ख्याति होइलो।।	बारह घर(2) त्रिपुर ख्याति हुई यह।।
राजवंश त्रिपुरा से राजा होइते पारे।	राजवंश त्रिपुरा वही राजा हो सके।
त्रिपुरा राज्येते छत्र अन्ये नाहि धरे।।	त्रिपुरा राज्य में छत्र अन्य धर न सके।।
दैबगति राजार ना हये यदि पुत्र।	दैव गति से यदि राजा का न होता पुत्र।
तबे राजा होइते पारे त्रिपुरेर सूत्र।।(3)	तभी राजा हो सके त्रिपुर का सूत्र।(3)
द्वादस घरेते जेनो पुत्र जन्म होय।	द्वादस घर में जैसे पुत्र जन्म होय।
राजवंश त्रिपुरा ताहाके लोके कोय।।	राजवंश त्रिपुरा उसे कहे सब कोय।।
राजमाला प्रलत्रिलोचन खण्ड 25 पृ	राजमाला प्रलत्रिलोचन खण्ड 25 पृ

महाराज धर्ममाणिक्य ने सन्यासी वेश में, वाराणसी धाम में रहते समय कौतुक नामक ब्राह्मण के यहाँ आत्म परिचय देते हुए कहा था–

सन्यासिये बोले आमि जातिये त्रिपुर(3)।।	कहा सन्यासी ने मैं हूँ जाति से त्रिपुर(3)।
अग्नि कोने राज्य आमा होय बहु दूर।	अग्नि कोण में घर हमारा है बहुत दूर।।
राजमाला द्विल 3पृ	राजमाला द्विल 3पृ

युवराज चम्पक राय, नरेन्द्रमाणिक्य द्वारा आक्रान्त और भागने को तैयार होकर, चट्ट ग्राम में फकीर शेखसादि के यहाँ आत्म परिचय देते हुए कहा था–

त्रिपुर वंशेते जन्म बोसि उदयपुर।	त्रिपुर वंश में जन्म बसे उदयपुर।
ज्ञाति संगे बात कोरि होईछि बाहिर।।	पड़ोसी संग बात कह हुए बाहर।।
(चम्पक विजय)	(चम्पक विजय)

ठाकुर वंशीय किसी व्यक्ति द्वारा अदालत में अपने को त्रिपुर कहकर परिचय प्रदान करने का दृष्टान्त भी मिल रहा है। यह अधिक प्राचीन काल की बात नहीं है। उन दिनों राजा प्रजा सभी अपने को त्रिपुर नाम से अभिहित करते थे एवं राज परिवार और ठाकुर परिवार आदि ''त्रिपुर क्षत्रिय'' नाम से स्थापित होते थे। इस समय भी यह आख्या परित्याग नहीं की गई है। सम्भवतः अनन्त भविष्य तक यह अक्षुण्ण है।

फा उपाधि महाराज त्रिलोचन के पूर्ववर्ती नृपतिवृन्द, उनके परवर्ती 25 जन राजाओं का कोई विशेष उपाधि रहने का प्रमाण नहीं मिलता है। त्रिलोचन के अधस्तन 26वें संख्यक भूपति महाराज ईश्वर(नीलध्वज) फा उपाधि ग्रहण किया था। इसके बाद से ही महाराज रत्नमाणिक्य के पूर्ववर्ती,

---

(1) त्रिपुरा के इतिहास के साथ बिहार के इतिहासोक्त नियम प्रणाली के साथ बहुत से विषयों के साथ सादृश्य परिलक्षित हो सकता है। श्रद्धाष्पद डाक्टर श्रीयुक्त दिनेशचन्द्र सेन राय बहादुर के सौजन्य से हमें बिहार के इतिवृत्त 'राजाबली' हस्तलिखित ग्रन्थ के देखने का सुयोग मिला था। जो जयनारायण घोष मुन्शी द्वारा रचित है। उक्त ग्रन्थ में, राज्य शिशु सिंह के बाल सखा द्वादस बालकों को 'बारघरिया' उपाधि दी गई थी।

प्रल–91

राजा फा(नामान्तर हरिराय) तक 71 भूपतिओं की फा उपाधि थी। महाराज रत्नमाणिक्य समय से 'फा' उपाधि के बदले माणिक्य उपाधि आरम्भ हुई है। शेषोक्त उपाधि मुसलमान की दी हुई है। – इसे हम बाद में सविस्तार कहेगें।

किसी किसी का कहना है कि श्यान और ब्रह्मदेशीय भूपति लोग फ्रा उपाधि ग्रहण करते थे। इस 'फ्रा' से ही 'फा' की उत्पत्ति हुई है। इस बात की कोई भित्ति है या नहीं मुझे ज्ञात नही। फा शब्द त्रिपुरा भाषा से आया है। इसका अर्थ 'पिता' होता है। फ्रा शब्द प्रभु वाचक है। इन दोनों शब्दों का अर्थगत विशेष पार्थक्य न होने पर भी त्रिपुर भूपति गणों ने त्रिपुरा भाषा संभूत फा उपाधि को ही ग्रहण किया था अथवा राजभक्त पार्वत्य प्रजागण ने राजा को पिता ज्ञान से यह आख्या प्रदान किया था, ऐसा अनुमान प्रदान करना ही स्वाभविक एवं संगत प्रतीत होता है। यह उपाधि जो प्रभु वाचक नहीं है– पिता वाचक है। महारानियों की उपाधि के साथ मिलाकर देखने पर यह प्रतिपन्न होगा। जैसे– आचोंग फा –राजा, आचोंग मा –रानी, खिचोंग फा राजा खिचोंग मा रानी इत्यादि। राजा को पिता और रानी को माता कहा गया है। अतएव फा उपाधि त्रिपुरा भाषा से आया है एवं पिता अर्थ वाचक है। इस विषय में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। दूसरे देशों में भी सम्मानीय व्यक्ति के प्रति पिता शब्द से सम्बोधन करने का उदाहरण है। ईसाई समाज में याजक इत्यादि को **Father** कहकर, उनके ईश्वर को फादर बोला जाता है। रोम देश के व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को **Father** कहा जाता है। हमारे देश में भी इस तरह के दृष्टान्त अभाव नही हैं। इस तरह की अवस्था में राजभक्त लोग देवोपम राजा को पिता बोलना इसमे आश्चर्य की बात नहीं है। आसाम के आहोम राजा भी 'फा' उपाधि धारण करते थे। किन्तु त्रिपुरेश्वरगण इससे बहुत पहले से ही इस आख्या को प्राप्त कर चुके थे। आहोम राजाओं ने त्रिपुर राज्य का अनुसरण कर उक्त उपाधि धारण किया होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

वैवाहिक विवरण

त्रिपुर राज्य की स्थापना के समय से ही सभी स्थान दुगर्म थे। राज्य का पश्चिम अंचल जलमग्न रहने की वजह से, दूरवर्ती स्थानों में जाना बहुत ही कष्टकर था। ये सभी अचंल विपद संकुल थे, ऐसी मान्यता रही है। इसलिए पहले पहल साधारणतः पार्श्ववर्ती राजपरिवार अथवा सम्भ्रांत वंश के साथ विवाहादि सम्बन्ध होते रहते थे। राजमाला प्रथम लहर से संबंधित सभी राजाओ के विवाह विवरण इस समय नहीं मिल रहे हैं। संग्रह करने का भी उपाय नहीं है। जो कुछ संग्रह करना संभव हुआ है, उसे जाना जाता है। महाराज त्रिलोचन ने हेड़म्ब राजकन्या का पाणिग्रहण किया था।(1) तैदाक्षिण ने मणिपुर की राजकन्या से विवाह

---

(1)

कन्याके विवाह दिते चाहि जे सत्वर।।	कन्या का विवाह बहुत जल्द होना चाहिए
शीघ्रगति बोइला आइसो त्रिलोचन बर।।	शीघ्रतापूर्वक बात कर लें –वर है त्रिलोचन।
+ + + +	+ + + +
हैडेम्ब कहिलो दूत एईक्षण चलो।	हेड़म्ब ने राज दूत से कहा इसी क्षण चलो।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 21 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 21 पृ

प्रल–92
किया था।(1) आचंग फा(नामान्तर कुंज होम फा) ने जयंतिया राजकुमारी का पाणिग्रहण किया था।(2) राजमाला प्रथम लहर के अंतर्भुक्त दूसरे किसी राजा विवाह का विवरण हम संग्रह न कर सके।

बहु विवाह प्रथा — राज परिवार में बहु विवाह की प्रथा पहले से ही प्रचलित थी। एक कथा के अनुसार महाराज त्रिलोचन ने शिल्प–निपुणा 240 महिलाओं का पाणिग्रहण किया था। महाराज उदयमाणिक्य के 240 विवाह करने का उल्लेख राजमाला में मिलता है। त्रिपुरा के इतिहास में भी इसे सर्वोच्च विवाह संख्या जाना जाता है। इसके अलावा त्रिपुरा के प्रायः सभी राजाओं ने एकाधिक विवाह किया था। एकाधिक महिषी ग्रहण नहीं किया है, ऐसे किसी महाराजा के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है।

प्राचीन प्रथा को अक्षुण्ण रखने के प्रति आग्रह — त्रिपुर भूपतिगण प्राचीन कौलिक प्रथा को अक्षुण्ण रखने के प्रति विशेष सचेष्ट और यत्नवान थे। महाराज त्रिलोचन ने विवाह काल में एक समय राजमहल के अन्तःपुर के बाहर मनोहर वेदि का निर्माण कर उसके ऊपर एक के बाद एक इक्कीस चन्द्रातप टंगवाकर उसके चारों कोणों पर मंगल सूचक रभांतरू, काष्ट निर्मित रंभा फल एवं वेदिका के चारों ओर फल पुष्प–पल्लव सुशोभित मंगलघट स्थापन किया था। इस विषय में राजरत्नाकर ने लिखा है–

बहिःपुरेच कृतवान् वेदिकां सुमनोहरां
उपर्युपरि तश्याश्च एकविशंतिसंख्यकान्
चन्द्रातपान् स्थापयित्वा चतुष्कोणे सुमंगलान्
रम्भातरूं स्तत् फलानि दारूभिः निर्मितानि च।
वेदिकायाष्चतुश्पार्श्वे प्रसूनफलपल्लवैः
शोभितान् कलसांश्चैव स्थापयामास यत्नतः।।

मामार्थ– बहिः पुरे – एक मनोहर वेदिका के उपर एक के बाद एक इक्कीस

---

(1)

बहुकाल सेई स्थाने पालिलेक प्रजा।	बहुकाल उसी स्थान पाला अपनी प्रजा।
मेखली राजार कन्या विभा कोइलो राजा।।(2)	मेखलीराजकन्या से विवाह किया राजा ने।।(2)
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38 पृष्ठ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38 पृष्ठ

अर्थात– बहु कालों तक राजा ने वहीं से प्रजा का पालन किया, मैखली राजा की कन्या से राजा ने विवाह किया।

(2) आचंग फा ओरफेते कुंजहोमफा नाम।
बलबीर्य पराक्रमे पितृ–गुणधाम।।
बिबाह कोरियाछिलो जयंता राजकुमारी। त्रिपुर वंशावली

अर्थात आचंग फा नामान्तर में कुंज होम फा का नाम आता है। जो बलवीर्य पराक्रमी पितृगुण वाले थे। उन्होनें जनता(अर्थात आज का जंयतिया(मेघालय)) की राजकुमारी विवाह किया था।

प्रल—92
(Pratham leher-92) चित्र



विवाह वेदी

प्रल–93
चन्द्रातप स्थापित करके उनके चारो ओर मंगल–सूचक रम्भातरू, काष्ठनिर्मित रम्भाफल एवं वेदिका के चारों तरफ फल–पुष्प–पल्लव से सुशोभित कलश स्थापित किया।''

त्रिपुर राजपरिवार के विवाहकाल में वह सकल नियम अभी भी उसी तरह प्रतिपालित हो रहा है। त्रिलोचन के जन्मकाल में उनका त्रिनेत्र देखा गया, उस समय से राजपरिवार के पुरूषगणों के विवाहकाल मे कपाल(ललाट देश) मे चंदन द्वारा एक चक्षु (आँख) अंकित होता है। यह कौलिक नियम अभी भी अक्षुण्ण रूप से प्रतिपालित हो रहा है।

ठाकुर परिवार के अंदर भी राजपरिवार जैसा नियमानुसार, विवाह की वेदी प्रस्तुत होती है, किन्तु चन्द्रातप की संख्या सभी की समान नहीं है, पारिवारिक मर्यादा के अनुसार इनका संख्या निर्धारित है।

राजा और रानी के एक नाम त्रिपुर राज्य में कुछ काल राजाओं के नामानुसार, रानिओं के नाम रखने का दृष्टान्त मिलता है यथाः–

1)

आचोंग राजार नाम आचोंग मा रानी।	आचोंग राजा का नाम, आचोंग मा रानी।
तदवधि राजा रानी एक नाम जानी।।	तब से एक नाम है राजा रानी।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 59पृ	राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 59पृ

2)

आचोंग नृपति स्वर्गी होइलो जखन।	स्वर्गवासी हुए जब आचोंग नृपति।
तार पुत्र खिचोंग राजा होइलो आपन।।	उनके पुत्र खिचोंग तब हुए नृपति।।
खिचोंग मा नामे छिलो ताहार रमणी।	खीचोंग मा नाम की थी उनकी रमणी।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 59पृ	राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 59पृ

3)

तार पुत्र डांगर फा नामे नरपति।	उसके पुत्र डांगर फा नाम हुए नरपति।
नाना स्थाने पुरी कोरि छिल महामति।।	नाना जगहों में पुरी बनाए नरपति।।
डांगर मा छिलेन तान पत्नीर जे नाम।	डांगर मा था उनकी पत्नी का जो नाम।
राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 60पृ	राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 60पृ

ये सभी नाम सुनकर कुछ–कुछ लोग कह सकते है, ये अंग्रेज समाज मे स्वामी स्त्री के एक नामयुक्त ''लार्ड–लेडी'' या ''मिस्टर–मिसेस'' का अनुकरण है। प्रकृत पक्ष मे इस देश मे मुसलमान शासन विस्तार के बहुत पहले उन सब का नामकरन हुआ था, अतएंव यह अंग्रेजी नकल नहीं है, इस विषय मे कोई संदेह नही कर सकता।

राजा और राजपरिवार में शिक्षानुराग राजमाला के प्रथम लहर मे, अधिकांश नरपतियो का नाममात्र उल्लेख किया गया है, उन लोगो की जीवन कहानी और शासन विवरणि लिखित नहीं हुआ है। इस कारण से राजगण और राजपरिवार के शिक्षा विषयक विवरण संग्रह करना वर्तमान काल मे असंभव है। राजमाला आलोचना मे जो आभास मिलता है, उनके द्वारा मालूम होता है कि प्राचीन काल मे शिक्षा के प्रति राजपरिवार का विशेष अनुराग था। महाराज दैत्य अपने पुत्र त्रिपुर के शिक्षा–विधान के निमित्त विशेष व्यकुल हुए था, किन्तु– ''पठाइते यत्न कैल पुत्रे ना पठिल''। त्रिपुर नितान्त मूर्ख(गोंयाड़ गोविन्द) एंव

प्रल–94

अत्याचारी हो उठे थे। ऐसा अधार्मिक और अशिक्षित राज्य त्रिपुरा के राजवंश में कभी जन्म ग्रहण नहीं किया। किन्तु त्रिपुर के पुत्र महाराज त्रिलोचन सभी विषयों में सुशिक्षित थे। उनकी शिक्षा और अलौकिक गुण के विषय में राजमाला में लिखा गया है–

महाराजा सुचरित्र प्रकृति सुन्दर।	महाराज सुचरित्र प्रकृति सुन्दर।
साधुभाब देवरूप विनय विस्तर।।	साधु भाव, देवरूप विनय अपार।।
उन्मत मात्सर्य हिंसा नाहिक ताहार।	उन्मत मात्सर्य हिंसा उनमें नहीं आसार।
जेई जन जेई मत सेई व्यवहार।।	जैसा जन जैसा मत वैसा व्यवहार।।
अहंकार क्रोधबश कोरिलो उत्तम।	अहंकार क्रोध को वश किया उत्तम।
नरदेहे त्रिलोचन के बा तान सम।।	नर देह में त्रिलोचन कौन है उन सम।।
युद्धेते अग्निर तुल्य क्षमाये पृथ्बी।	युद्ध में अग्नि तुल्य क्षमा से पृथ्वी।
नवीन कन्दर्प रूपे तेजे महारबि।।	नवीन कन्दर्प रूप तेजों में महारवि।।
वाक्ये बृहस्पतिसम शुक्रतुल्य ज्ञान।	वाक्य में बृहस्पति सम शुक्र तुल्य ज्ञान।
नानाविध यंत्र शिक्षा ताले छिलो ज्ञान।।	नाना विधि यंत्र विद्या या भीतर ताल ज्ञान।।
सुख्याति सुनिया आसे नाना देशी द्विज।	सुख्याति सुन सुन आते नाना देशी द्विज।
ताहाते शिखिलो विद्या जतो पाई बीज।।	उनसे सीखी विद्या चाहे जितना मिले बीज।।
वैष्णव चरित्र सब साधुर आचार।	वैष्णव चरित्र सब साधु आचार।
निपुन होइलो राजा काल व्यवहार।।	निपुण हुए राजा मिला कालोचित व्यवहार।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 19–20पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 19–20पृ

मल्ल विषय चर्चा उन दिनों सुशिक्षित लोगों के अभाव के कारण किरात देश में पुत्रों की शिक्षा की सुव्यवस्था करना दुःसाध्य होने पर भी राजा इस विषय में उदासीन नहीं थे। राजमाला की आलोचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उस समय त्रिपुर राज्य में वर्तमान बंगाली समाज की तरह केवल किताबी चर्चा होती थी ऐसी बात नहीं है। राजनीति, समाजनीति, व्यवहार नीति, युद्ध विद्या, संगीत शास्त्र, आध्यात्मिक तत्व इत्यादि सभी विषयों की चर्चा रहती थी। शारिरिक उन्नति के लिए मल्ल विद्या का अभ्यास करना पड़ता था। राज परिवार के व्यक्तिओं के लक्षण का वर्णन राजमाला में देखिए–

महाबल पराक्रम बेगवन्त बड़ो।	महाबल, पराक्रम वेगवन्त हैं बड़े।
कदलीर तुल्य जानु जंघा मनोहर।।	कदली तुल्य जंघा जिनकी हैं सुगढ़।।
मल्ल विद्या अभ्यासेत बाहु स्थूल होय।	मल्ल विद्या अभ्यास से स्थूल बाहु युगल।
जेनो शाल बृक्ष दृढ़ जानिओ निश्चय।।	जैसे होते हैं वनो में दृढ़ वृक्ष शाल।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 26पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 26पृ

सैनिक विभाग में केवल कूच कावाज (गोली आदि की आवाज) होता था, ऐसी बात नहीं थी। इस विभाग में भी मल्ल विद्या की चर्चा थी। ऐसे प्रमाण राजमाला में उपलब्ध हैं।

प्रल–95

मल्लविद्या–विशारद होइलो सेनाजन। | मल्ल विद्या विशारद हुई सेना गण।
खड़ग चर्म लोइया पांचा खेले(2) ढालीगण।। | खड्ग चर्म ले नकली युद्ध(2) करे ढाली गण।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37पृ | राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37पृ

राज परिवार की शिक्षा की प्रवृत्ति और उनके लिए सुयोग सुविधाओं के बहुत से दृष्टांत राजमाला में मिलते हैं। मुकुटमाणिक्य के पुत्र महामाणिक्य एवं उनके पुत्र धर्ममाणिक्य बहुशास्त्रविद पंडित थे।

....

धर्ममत और धर्माचरण

धर्ममत सम्बन्धीय आभास त्रिपुर भूपतिवृन्द धर्ममत में विशेष उदार थे। वे किसी एक साम्प्रदायिक मत में निषिद्ध नहीं रहते थे। इसके बाद कुल देवता के(चतुर्दश देवता के) विवरण प्रदान करेगें। इसकी आलोचना से जाना जा सकेगा कि उनमें शैव, शाक्त, वैष्णव प्रभृति सभी सम्प्रदाय के उपास्य देवता हैं। त्रिपुर राजवंशीय लोगों के लक्षणों का वर्णन राजमाला में है–

हरि हर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति जार। | हरि हर दुर्गा प्रति दृढ़ भक्ति जिनकी।
त्रिपुर वंशेते जन्म निश्चय ताहार।। | त्रिपुर वंश में है निश्चय जन्म उनकी।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 26पृ | राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 26पृ

अर्थात हरि हर, दुर्गा के प्रति जिसके मन में दृढ़ भक्ति है, निश्चय ही उसका जन्म त्रिपुर वंश में है।''

धर्ममत सम्बन्धीय उदारता इस वंश का धर्म विश्वास प्रधान लक्षण है। इस वंश का किसी भी सम्प्रदाय विशेष के मत में आबद्ध होकर रहना नहीं है। बाद में यह बात आसानी से हृदयंगण होगी। कोई कोई राजा अपने विश्वास के अनुसार शैव, शाक्त या वैष्णव मतावलम्बी नहीं हुए हैं, ऐसी बात नहीं है है। पूर्वाभाष की आलोचना से जाना जाता है कि यह राजवंश प्रथमतः शैव थे। क्रमशः मत परिवर्तन होते होते वैष्णव मत में अवलम्बन किया। किन्तु वे वैष्णव होते हुए भी शिव और शक्ति के प्रति चिर दिन समान आस्थावान रहे। उस विषय में एक मूल्यवान प्रंसग याद आ गया जिसे नीचे दिया जा रहा है। नीचे उसका उल्लेख किया जा रहा है।

एक बार कलकत्ता के सम्मेलन में द्वारबंगा(दरभंगा) महाराज ने त्रिपुरेश्वर स्वर्गीय राधा किशोरमाणिक्य बहादुर से पूछा था –''धर्म के विषय में आप किस कौन से मत के मानने वाले हैं?'' इस प्रश्न के उत्तर में माणिक्य बहादुर ने कहा था, त्रिपुरा के राजा की हैसियत से आपके प्रश्न का उत्तर प्रदान करने में बातें कुछ विस्तृत होंगी। हम लोग वंशानुक्रम से पीठ देवी त्रिपुरासुन्दरी की सेवा करते आए हैं। विधि अनुसार बकरी इत्यादि बलि देकर उनकी अर्चना होती है। हमारे कुल देवता में

प्रल–96
(चतुर्दश देवता में) शाक्त, शैव और वैष्णव सभी सम्प्रदाय के उपास्य देवता ही हैं, उन देवताओं की अर्चना भी छगादि बलि से की जाती है। यहाँ तक की हमारे सिंहासन की पूजा भी बकरे की बलि से करने की व्यवस्था है। पूर्व पुरुषों के प्रतिष्ठित शिव और शक्ति मूर्ति एवं विष्णु विग्रह है। शिव, शक्ति और विष्णु का अर्चना त्रिपुरा के राजधर्म में शामिल है। अतएव राजा के हैसियत से मैं भी इन सभी देवताओं का सेवक हूँ। किन्तु व्यक्तिरुप से मैं वैष्णव हूं।'' यह सब सुनने के बाद द्वारभंगाधिपति(दरभंगाधिपति) ने विस्मित भाव से कहा था ''यह सार्वभौम सम्राट के योग्य बात है। आपका उत्तर सुनकर मैंने परम प्रीतिलाभ की प्राप्ति की है।''

त्रिलोचन जिन सभी धर्म कार्य के अनुष्ठान करते थे, राजमाला में उनके संक्षिप्त विवरण दिये जा रहे हैं–

दुर्गोत्सव दोलोत्सव जलोत्सव चैत्रे।	दुर्गोत्सव, दोलोत्सव, जलोत्सव महा चैत्र।
माघमासे सूर्यपूजा कोरिलो पवित्रे।।	माघ महीने सूर्य पूजा किया पवित्र।
श्रावण मासेते पूजा कोरे पद्मावती।	श्रावण माह पूजा करें पद्मावती।
ग्राममूद्रा कोरिछिलो जेनो राजनीति।।	ग्राम मुद्रा किया जैसे राजनीति।।
बिषु संक्रमने पितृलोक श्राद्ध कोरे।	पितृ लोक का श्राद्ध करें जब बिषु संक्रमण।
ब्राह्मणे अन्नादि दान प्राते निरन्तरे।।	प्रातः निरंतर ब्राह्मणों को अन्नादि दान।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33 पृ

ये सभी प्राचीन परम्पराएं वर्तमान में भी अक्षुण्ण रूप से प्रतिपालित होती आ रही है।

महाराज बिमार के पुत्र कुमार विशेष धार्मिक एवं शिवानुरक्त थे। वे मनु नदी के तीरवर्ती छाम्बुल नगर में शिव दर्शनार्थ गए एवं आजीवन वहीं रहकर शिवोपासना में नियुक्त रहे। इस सन्दर्भ में राजमाला में लिखा है–

तार पुत्र कुमार परेते राजा होय।।	उसके बाद राजा हुए उनके पुत्र कुमार।।
X X	X X
किरात अलये आछे छाम्बुल नगर।	किरात देश में है छाम्बुल एक नगर।
सेई राज्ये गियाछिल शिव भक्ति तर।।	उस राज्य में गया था शिव भक्ति तर।।
X X	X X
गुप्त भाबे आछे तथा अखिलेर पति।	गुप्त भाव से है वहाँ सदा अखिल पति।
मनुराज सत्य युगे पूजिछिलो अति।।	मनुराज ने सत्ययुग में तप किया वहाँ अति।।

---

(1) पद्मावती –विषहरि। इस देवी की अर्चना हमारे देश में नितान्त ही आधुनिक नहीं है। बनिक राज चन्द्रधर प्रथम प्रवर्तक थे माना जाता है।

प्रल–96

(Pratham leher-96) चित्र



द्वारबंगाधीश्वर स्व. महाराज रामेश्वर सिंह त्रिपुराधिपति स्व. महाराज राधाकिशोर माणिक्य

प्रल–97

मनुनदी तीरे मनु बहु तप कोइलो। मनु नदी पर मनु ने किया घोर तप।
तद्विधि मनु नदी पुण्य नाम होइलो।। तब से मनु नदी का हुआ महा पुण्य नाम।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड–42–43 पृ राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड–42–43 पृ

संस्कृत राजमाला में है।

"बिमारस्य सुतो जातः कुमारः पृथिवीपतिः।
स राजा भुबन ख्यातः शिवभक्ति परायणः।।
किरात राज्ये स नृपश्छाम्बूल नगरान्तरे।
शिव लिंग समद्राक्षीत् सुबड़ाइ कृते मठे।।(1)
ततः शिवं समभ्यर्च्च नित्यं तुष्टाब भूमिपः।
राजा श्रूत्वेदमाश्चर्यं पप्रच्छ बिनयान्बितः।।
कथमत्र महादेवः किरात नगरे स्थितः।
इति राज बचः श्रूत्वा मुकुन्दो ब्राह्मणोऽब्रबीत्।।
पुराकृत युगे राजन् मनुना पूजीतः शिवः।
अत्रैव विरले स्थाने मनु नाम नदीतटे।।
गुप्तभाबेन देबेशः किरात नगरे बसत्।।" इत्यादि।

छाम्बुलनगर का अवस्थान निर्णय ये छाम्बुलनगर कहाँ है, वह आलोच्य विषय है। विश्वकोष सम्पादक कहते है –"महाराज बिमार के पुत्र कुमार राजा होकर श्यामल नगर में शिव–दर्शन के लिए गए। श्यामल नगर भगवान शिवजी के प्रियक्षेत्र कहा जाता था। इस श्यामल नगर कहाँ हैं, वह नहीं जानते। पर चट्टग्राम के उत्तरदिक पर्वत के सुप्रसिद्ध शम्भुनाथ शिवमंदिर अतिप्राचीन काल मे त्रिपुराधिपति द्वारा निर्मित हुआ था जाना जाता है एंव अभी भी उस मंदिर संस्कार के व्यय त्रिपुरा राजकोष से दिया जाता है। मालूम होता है वही जगह उस समय मे श्यामल नगर नाम से जाना जाता था।"

अनभिज्ञता के अभाव से इस रूप प्रमाद मे पतित होना अनिवार्य था। छाम्बुल और श्यामलनगर मनु नदी के तीर मे अवस्थित है, राजमाला मे स्पष्ट रूप मे उल्लेख हुआ है। मनुनदी त्रिपुर राज्य के उत्तर प्रान्त मे प्रवाहित है, इस नदी के तीर मे उक्त राज्यों मे कैलाशहर विभागीय अफिस संस्थापित है। और शम्भूनाथ(सीताकुण्ड तीर्थ) राज्य के दक्षिण सीमा में स्थित है। नगेन्द्र बाबु के स्थानीय अवस्था को न जानने से, दोनो मे एकता प्रतिपादन का प्रयास किया है। विशेषतः "छाम्बुलनगर" की जगह मे "श्यामल नगर" कह कर एक गलती की है।

छाम्बुलनगर की अवस्था का वर्तमान काल मे निःसंदिग्ध रूप से निर्धारण करना असम्भव

---

(1) "सुबड़ाइ कृते मठे" इस वाक्य से जाना जाता है, कि महाराज त्रिलोचन(सुबड़ाइ) ने छाम्बुल नगर में शिवमन्दिर का निर्माण किया था। यही मन्दिर उनकोटि तीर्थ में निर्मित हुआ था, माना जाता है। उस जगह में बहुत सी पुरानी ईन्टे हैं व मन्दिर चिन्ह विद्यमान हैं।

होने पर भी असाध्य नहीं है। राजमाला में कहा गया है– स्थान मनु नदी के तीरवर्ती जगह। महर्षि मनु ने यहाँ तपस्या की थी। वहां किरात नगर था और वहा शिवलिंग प्रतिष्ठित था। इन सभी विषयों की आलोचना करने पर कैलाशहर और उसके सन्निकट उनकोटि तीर्थ का प्राचीन नाम छाम्बुल नगर था। इस तरह का अनुमान संगत लगता है। लंगला प्रभृति स्थान किरातों की आवास भूमि थी। महाराज धर्मधर के ताम्रशासन में इस बात की पुष्टि की गई है। अतएव "किरात नगर" शब्द द्वारा भी उक्त तीर्थ स्थान की ओर लक्ष्य किया गया है। इसके करीब के पर्वतों में अभी किरात लोक(कुकी) निवास करते हैं।

यज्ञ विवरण दान और यज्ञ त्रिपुराधिपतियों की अम्लान कीर्ति है। राजमाला के किसी किसी स्थल पर इस कीर्ति कहानी का इंगित मिलता है। किसी किसी प्रसिद्ध घटना का एकदम ही उल्लेख नहीं किया गया है। यह त्रुटि राजमाला के रचियता की इच्छाकृत है या प्रमाद मूलक, यह निर्णय करना कठिन है। हमने राजमाला के रचियताओं के बारे में परिचय प्रदान के विषय में पहले जो कुछ भी कहा है उसकी आलोचना यहाँ स्पष्ट की जायेगी कि यह यज्ञ विषयक बातें इच्छा पूर्वक परिहार करना भी विचित्र बात नहीं होगी। जो भी हो हम राजमाला की प्रथम लहर संश्लिष्ट यज्ञ विवरण जहाँ तक जान चुका हूं उसे नीचे दिया गया है।

महाराज त्रिपुर के पूर्ववर्तीकाल का इतिहास कम से कम अंधकारमय गहवर में विलीन हो चुका है। उसे उद्धार करने का कोई उपाय नहीं है। त्रिपुर के बाद के अनेक राजाओं का विवरण भी वर्तमान मानव समाज के अगोचर है, राजमाला में उनका केवल नाम मात्र मिल रहा है। त्रिपुर के पुत्र महाराज त्रिलोचन ने एक यज्ञ सम्पादन किया था।(1) यह यज्ञ त्रिवेग नगर स्थित राजधानी में हुआ था। वर्तमान काल में इस विषय का कोई निर्भर योग्य प्रमाण नहीं मिल रहा है। त्रिलोचन के पश्चात अधस्तन चतुर्थ स्थानीय महाराज तरदाक्षिण सर्वदा यज्ञादि कार्य में व्यवहृत रहते थे।(2) ये बरबक्र(बोराक) नदी के किनारे खलंमा राजधानी में राजत्व करते थे। अतएव उनका यज्ञ वहीं पर हुआ था, इस तरह हम कह सकते हैं। उनके बाद अनेक पुरुषों का कोई विवरण नहीं मिल रहा है।

---

(1) त्रिलोचन ने एक योग्यानुष्ठान करके वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाने के लिए गंगा सागर क्षेत्र में लोगों को भेजा था। * * * ब्राह्मणों ने त्रिपुर जीवित है समझकर पहले आने के लिए तैयार नहीं थे। किन्तु अन्त में त्रिपुर के मृत्यु संवाद पर विश्वास करके, उन लोगों ने यहाँ आकर उन लोगों ने त्रिलोचन का यज्ञ सम्पन्न किया। विश्वकोष अष्टम भाग।

(2)

तरदाक्षिण नाम राजा ताहार तनय।	तरदाक्षिण नाम राजा थे उनके तनय।
बहुकाल पाले प्रजा निति यज्ञमय।।	बहुकाल पाले प्रजा को रहे नित्य यज्ञ मय।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड–39 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड–39 पृ

अर्थात, उनके तनय का महाराज तरदाक्षिण था, जिन्होनें बहुत काल तक प्रजा का पालन किया उनकी निति यज्ञमय थी।

प्रल–99

आदिधर्म पा का यज्ञ और साग्निक ब्राह्मण लाना

त्रिलोचन के अधस्तन 75 स्थानीय महाराजा किरीट थे, नामान्तर में उन्हें डुगुंर फा, दान–कुरू–फा या हरिराय कहा जाता था। भयंकर सूखा के निवारण के उद्देश्य से एक विशाल वैदिक यज्ञानुष्ठान किया था। किन्तु उन्हें दक्ष वेदज्ञ ब्राह्मणों के अभाव से यह कार्य सम्पादन करना कठिन हो गया। इस समय कामरूप प्रदेश में सद्ब्राह्मणों का अभाव नहीं रहने पर भी वे दक्ष वेदज्ञ ब्राह्मण दुष्प्राप्य थे। "वैदिक संवादिनी" नामक कुलपंजिका में लिखित है, महाराज अनन्योपाय होकर यह कार्य सम्पादन–क्षम ब्राह्मण पाने के निमित्त मिथिलाधिपति को यह एक पत्र प्रेषण किया। उस समय बलभद्र सिंह नाम के राजा मिथिला के राजा थे।(1) उन्होनें त्रिपुरेश्वर के अनुरोध की रक्षा हेतु पाँच वेदज्ञ ब्राह्मणों को त्रिपुरा जाने के लिए कहा। किन्तु कामरूप प्रदेश सदाचार वर्जित राज्य है सुनकर, पहले राजाज्ञा सुनकर ही मन में दुखित हो उठे थे। इसके बाद यहाँ की परिस्थिति इत्यादि जानने के लिए एक सुविवेचक व्यक्ति को भेजा था। उस व्यक्ति ने मिथिला जाकर सूचित किया कि त्रिपुर राज्य सदाचार वर्जित देश नहीं है। वहाँ के राजा चन्द्रवंशज सम्भूत है एवं बरबक्र(2) आदि पुण्य सलिला नदी प्रवाह से वह स्थान पुण्यप्रद हो गया है।(3) इसके बाद वत्स गौत्रीय श्रीनन्द, वात्स्य गौत्रीय आनन्द, भरद्वाज गौत्रीय सम्भूत गोविन्द, कृष्णात्रेय गोत्रज श्रीपति एवं पराशर गोत्रीय पुरुषोत्तम यही पाँच तपस्वियों को भेजा था। 641 ई0 में त्रिपुरा में आकर यज्ञ सम्पादन किया एवं महाराज किरीट प्रथम धर्म कार्यवृत्त होने की वजह से उन्हें "आदि धर्म पा"(4) नाम से अभिहित किया।(5) श्रीहट्ट जिला के अन्तर्गत वर्तमान भानुगाछ परगना के मंगलपुर गाँव में यह यज्ञ हुआ था। वहाँ पर उस यज्ञ कुण्ड का चिन्ह अब भी साक्षी स्वरूप रहकर हमें उस अतीत की याद दिलाता है। यज्ञ के सम्पन्न के पश्चात तपस्वियों ने स्वदेश लौटने की अभिलाषा व्यक्त की, किन्तु महाराज दान कुरू फा(आदिधर्म पा) उन्हें छोड़ने नितान्त ही अनिच्छुक थे एवं वहीं निवास करने के लिए उनसे बहुत ही अनुरोध किया(6)। ब्राह्मणों ने अन्त में महाराज के विनय से परितुष्ट होकर, उनके अनुरोध को पालन करने के लिए सम्मति ज्ञापन की।

---

(1) बंग के जातीय इतिहास, दूसरा भाग तीसरा अंश, 185 पृष्ठ।

(2) प्रद. भूभाग के उत्तर व पश्चिम सीमा में वक्रगामिनी नदी, कुशियारा बरबक्र का विशेष नाम।

(3) वैदिक संवादिनी देखिये।

(4) बंग के जातीय इतिहास दूसरा भाग तीसरा अंश 185 पृष्ठ एवं श्रीहट्ट का इतिहास दूसरा भाग, प्रथम खण्ड, चतुर्थ अध्याय।

(5) वैदिक संवादिनी ग्रन्थ बंगलासन 1307 कार्तिक महीना के नब्य भारत पत्रिका देखिये।

(6) पूर्व व दक्षिण में हंकाला सम्प्रदाय के कुकिगणों की वासभूमि थी।

प्रल–100

आदि धर्म पा ताम्र शासन इस बारे में महाराज ने एक ताम्र शासन के जरिये उन्हें कुछ भूमि दान किया था। वैदिक संवादिनी में ताम्र फलक पर उत्कीर्ण श्लोक हम नीचे दे रहे हैं।

त्रिपुरा पर्वताधीशः श्रीश्रीयुक्तादि धर्मपाः।
समाज्ञं दत्त पत्रन्च मैथिलेषु तपस्विषु।।
वत्स–वात्स्य–भरद्वाज कृष्णात्रेय पराशराः।
श्रीनंदानंद गोबिन्द श्रीपति पुरुषोत्तमाः।।
प्रातीच्यामुत्तरस्यान्च बक्रगा क्रोशिरानदी।(1)
दक्षिणस्यान्च पूर्वस्यां हांकाला कौकिका पुरी।।(2)
एतन्मध्यां सशश्यान्च टेंगरी कुकीकर्षितां।(3)
प्रलभ्य दत्तां तद्भूमिं तेषु पंचतपस्बिषु।।
मकरंथे रबौ शुक्लपक्षे पंचदशी दिने।
त्रिपुरा चन्द्र बानाब्दे प्रदत्ता दत्त पत्रिका।।

....

(1) प्रदत्त भूभाग के उत्तर और पश्चिम सीमा में बक्रगामिनी कुशियारा नदी बहती है। कुशियारा नदी बरबक्र के अंश विशेष का नाम है।

(2) पूर्व और दक्षिण में हांकला सम्प्रदाय के कुकियों की निवास भूमि थी। इस हांकला नामानुसार सुविस्तीर्ण ''हाकालुकि'' झील का नामकरण हो गया। श्रीहट्ट में स्थानीय भाषा में इस तरह के विशाल जलाधरों को 'हावर' कहते है। यह एक बड़ा ताल है। बडे ताल को ही साधारणतः हावर कहा जाता है। हावर शब्द सागर शब्द का ही अपभ्रंश है। उस अंचल में 'स' को लोग ''ह'' कहते हैं। इस तरह के उच्चारण के उदाहरण बहुत से है। प्राचीन काल में ग के स्थल पर य उच्चारण के दृष्टान्त भी विरल नहीं है। वैष्णव पदावली में नागर को नायर का भी उच्चारण कम नहीं है। सागर के सा की जगह हा और ग की उ से सागर सायर हो गया है। हावर, सागर शब्द का ही अपभ्रंश है। ''हाकालूकी हावर'' के विषय में श्रीहट्ट के इतिवृत्त में एक प्रवाद मूलक विवरण संयोजित हुआ है। वह यह है– प्राचीन काल में यह जगह समतल थी वहाँ के आदिवासी व कुछ ब्राह्मण सदाचारहीन थे। वे स्वेच्छाचार से शिव पूजा करते थे। एक निम्न जाति की स्त्री अशुचि भाव से पुष्प चयन करती थी। केवल एक ब्राह्मण इस व्यवहार से भीतर ही भीतर व्यथा महसूस करता था व शुद्ध भाव से पूजन करता था। अन्त में जब उनके पापों का घड़ा पूर्ण हुआ तब एक समय उस ब्राह्मण को स्थानान्तर में जाने का लिए दैवादेश हुआ। इधर हठात् देवी उत्पात शुरु हुआ। एक साथ तूफान और भूकम्प प्रबल वेग से प्रलय की तरह उपस्थित हुआ। देखते ही देखते वह स्थान अदृश्य हो गया। प्रवाद के अनुसार वह स्थान ही हाकालुकी हावर हुआ।''

श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग 26 अध्याय 16पृष्ठ

इस किंवदंति से ज्ञात होता है कि वहाँ पर पहले जनपद था। भूकम्प की वजह से वह धँस गया और विशाल हावर में परिणित हो गया।

(3) टेंगरी नामक कुकी सम्प्रदाय के लोग यहाँ पर जूम/झूम की खेती करते थे।(पहाड़ी पर एक तरह के धान उगाये जाते हैं उसे स्थानीय भाषा में जूम चाष कहा जाता है।) वह स्थान ब्राह्मणों को दान में दे देने कारण कुकी लोग दूर के पहाड़ी पर चले गये और वहीं रहने लगे।

———————

प्रल–101

अनुवाद

त्रिपुरा पर्वताधीश्वर श्री श्रीयुत धर्म फा(पाल) ने मिथिला देशवासी तपस्वियों को यह दान पत्र प्रदान करने की अनुमति प्रदान की। इन तपस्वियों का नाम– वत्स गोत्रीय श्रीनन्द, वात्स्य गोत्रीय आनंद, भरद्वाज गोत्रज गोविन्द, कृष्णात्रेय गोत्रज श्रीपति एवं पराशर गोत्रज पुरुषोत्तम थे। पश्चिम और उत्तर की ओर बक्रगामिनी क्रोशिरा(कुशियारा) नदी, दक्षिण और पूर्व की ओर हंकाला–कुकी पल्ली है। इस चतुः सीमावस्थित टेंगरी सम्प्रदाय के कुकी द्वारा कर्षित सशस्या भूमि लेकर 51 त्रिपुराब्द में माघी पूर्णिमा के दिन यह दत्त पत्रिका दान किया।

इस ताम्र फलक की संस्कृत में कई स्थानों पर भूलें दिखाई देती हैं। ये कम से कम 1300 साल पुरानी हैं। इस सनन्द के द्वारा पंच विप्रों को भिन्न–भिन्न जगहों पर पाँच खण्ड भूमि प्रदान करने से उस स्थान का नाम पंचखण्ड भूमि नाम हो गया। श्रीहट्ट जिले के वर्तमान पंचखण्ड परगना उस भूभाग को लेकर बनाया गया है। भूमिदान के समय यह स्थान त्रिपुर राजदण्ड के अधीन था।

"आसाम की विशेष विवरण" पुस्तिका में इस भूमिदान की बात उल्लेख की गई है। यथा– "प्रायः 1300 साल अतीत हुआ, त्रैपुर भूपति आदिधर्म पा ने कुशियारा नदी के दक्षिण और पूर्व एवं हाकालुकी हावर के पश्चिम में कुछ भूमि श्रीनन्द, आनन्द, गोविन्द, श्रीपति और पुरुषोत्तम नाम के पाँच ब्राह्मणों को दान किया था। इन लोगों को उन्होनें किसी यज्ञ सम्पादन के लिए मिथिला से बुलाया था।"

मैथिलि ब्राह्मणों का उपनिवेश स्थापन ब्राह्मण लोग यहाँ रहने के लिए नहीं आये थे। त्रिपुरेश्वर के अनुरोध पर जब इस देश में रहने के लिए तैयार हुए तब उन्होनें अपने परिवार वालों को यहाँ लाकर शास्त्रीय क्रिया काण्ड एवं वैवाहिक सम्बन्ध सम्पादन के सुविधा के लिए वे लोग प्रत्यावर्तन के समय कात्यायन, काश्यप, मोद्गल्य, स्वर्णकौशिक और गौतम गौत्रज पाँच ब्राह्मणों को एवं भृत्य और नापित इत्यादि को भी अपने साथ लाये थे। सभी विप्रगण श्रीहट्ट अंचल में साम्प्रदायिक ब्राह्मण के नाम से जाने जाते थे एवं विशेष सम्मानित थे। इस बारे में वैदिक संवादिनी ग्रन्थ में लिखा है–

"ततः स्वदेशीय–स्वगण–विरहेन ते क्लिष्टाः सन्तः पुनः स्वदेशं गत्वा अवशिष्ट पंचगोत्रीयैस्तपस्विभिः समवेताः स्व स्व कुटुम्ब पुरोहित–यजमानैः शिष्य–भृत्य–नापितादिभिः सह

एतस्मिन्नेव पंचखण्डाख्यदेशे X X X बसतिं परिकल्प मैथिल कुलाचारतः धर्मशास्त्रानुसारतश्च नित्य नैमित्तिककर्म्मकलापं एतद्वेशीयाचरणा प्रयुक्तं कर्मच विधाय स्थिताः स्वगणैः साम्प्रदायिक श्रेणीबद्धाः स्वाच्छन्दं प्रतिवासिता"।

बंग के जातीय इतिहास द्वितीय भाग में इस विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः उसका पुनः उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ताम्रफलक सम्बन्धी आलोचना

इस ताम्र फलक के अलावा और एक ताम्र फलक का विवरण इसके बाद प्रदान किया जायेगा। इनके शासन के बारे में सरकार द्वारा 1897 ई0 में प्रकाशित– **"Report on the progress of Historical Researches in Assam"** नामक ग्रंथ के 12वें संख्या में लिखा है–

"Two Copper plates of Tippera Kings have been reported by Babu Giris Chandra Das, who sent me copies of the inscriptions. The plates, themselves, however are not forthcoming at present, and it is feared that thay have been lost. The first plate, it is said, records a Great Dharmapha, King of the mountain of Tippera, who invited five Vedic Brahmans from Mithila in the year 51 of Tippera era" Etc.

अर्थ– त्रिपुर राजन्य वर्ग के विषय में दो ताम्रलिपियाँ थी, कहकर बाबू गिरीशचन्द्र दास ने रिपोर्ट किया है। इसके साथ उन्होनें इस लिखित उन दो विषय की अविकल नकल भेजा है। ताम्र लिपि दोनों खण्ड इस समय उपलब्ध नहीं हैं सम्भवतः वह नष्ट हो गया है। एक ताम्रलिपि में उल्लेख था, पार्वत्य त्रिपुरा के विख्यात राजा धर्म फा ने 51 त्रिपुराब्द में पाँच मैथिली वैदिक ब्राह्मणों को आह्वान कर ले आये थें।"

गेट साहब प्रणीत आसाम के इतिहास के 268 पृष्ठ में लिखा है– **"The inscriptions of two old copper plates recorded the grant of land of Brahmanas" etc.**

श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता महाशय इस ताम्र फलक के विषय में कुछ कारणों से संदिग्ध हुए हैं। वे कहते हैं–

"हमारी विवेचना में यज्ञ और भूमिदान यर्थात होने पर भी दान पत्र बहुत पहले ही विलुप्त हो गया। विवरण प्रसिद्ध था और बहुत से लोग इसे जानते हैं, एवं उसी के आधार पर साम्प्रदायिक ब्राह्मण वंशज एक व्यक्ति(स्वः श्याम सुन्दर भट्टाचार्य) ने फिलहाल वैदिक संवादिनी की रचना कर जितना किंवदंतिनी की सहायता की है, उतना ही इतिहास के रुप में भी निबद्ध किया है। ताम्र फलक एक है या दो है, जिसे त्रैपुर नृपति ने प्रदान किया था यह सच हो सकता है। यज्ञ कुण्ड के अस्तित्व से यज्ञ के होने की बात भी झुठलाई नहीं जा सकती, फिर भी ताम्र शासन की प्रतिलिपि न पाकर वैदिक संवादिनीकार ने निज भाषा में उसके विवरण को जितना सुना था उतना ही अपने सामर्थ्य अनुसार पद्य में रचना की है।"(1)

....

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड, टीका, 29 पृष्ठ

प्रल–103
जिन कारणों से ताम्र शासन के प्रति अनास्था का प्रदर्शन किया गया है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु ताम्र फलक की वर्तमान प्रतिलिपि सत्य हो या मिथ्या, इस मूल घटना की कोई क्षति वृद्धि है यह हम नहीं सोचते। कोई कोई श्रीहट्ट के इतिवृत्त के पहले उल्लेख उक्ति की आलोचना कर ब्राह्मणों को लाना और यज्ञ सम्पादन इत्यादि विषयों की सत्यता के विषय में संदिग्ध हो उठे हैं। पर हम किसी तरह के सन्देह करने का कोई भी कारण खोजकर नहीं पा रहे हैं। जिस ग्रन्थ की उक्ति पर निर्भर कर वे संशय दग्ध हो उठे हैं उसी ग्रन्थ से ही अनुकूल प्रमाण संग्रह कर नीचे दिये जा रहे हैं। यह हमारे द्विरुक्ति होने पर भी इसे यहाँ देना अपरिहार्य समझता हूँ।

1. दूत के मुँह यह बात सुनकर कि वह देश जघन्य नहीं है, वे वहाँ जाने के लिए तैयार हो गये एवं बरबक्र तीर्थ यात्रा का संकल्प करते हुए वत्स, वात्स्य, भरद्वाज, कृष्णात्रेय और पाराशर यही पंच गोत्रीय पाँच तपस्वियों का यहाँ आगमन हुआ। इनके नाम यथा क्रम से– श्रीनन्द, आनन्द, गोविन्द, श्रीपति और पुरुषोत्तम था।(1)

2. इन लोग के राजधानी में उपस्थित होने पर ही यथा विधि यज्ञीय, द्रव्यादियाँ संगृहीत हुई एवं यथा समय यज्ञ समाप्त हुआ।(641 ई0)

श्रीहट्ट के अन्तर्गत वर्तमान भानुगाछ परगनाधीन मंगलपुर गाँव ही यज्ञ सम्पादन के लिए उपयुक्त स्थान माना गया और वहीं पर संकल्पीकृत यज्ञ निर्विघ्न सुसम्पन्न हुआ। उस प्राचीनतम यज्ञकुण्ड के चिन्ह अब भी वहाँ मौजूद हैं।(2)

3. यज्ञ सम्पादन पश्चात ब्राह्मणगण स्वदेश लौटने के लिए तैयार हुए तो महाराज आदिधर्म फा (डुंगुर या दान कुरु फा) ने पंच तपस्वियों को वहीं पर रहने के लिए दोनों हाथ जोड़कर अनुरोध किया। ब्राह्मणगण राजा के विनय से तुष्ट होकर उनके राज्य में निवास करने के लिए तैयार हो गये। तब महाराज ने अति आनन्दित होकर, उन्हें अपने राज्य ब्रह्मोत्र भूमि दान किया।(3)

4. वह स्थान ब्राह्मणों को दान करने पर कुकी लोग दूर पहाड़ी पर चले गये और उनके परित्यक्त वह स्थान पंच ब्राह्मणों में विभक्त होने पर उसका नाम पंचखण्ड के रुप में विख्यात हुआ।(4)

5. 641 ई के बाद ही ब्राह्मणगणों ने श्रीहट्ट के पंचखण्ड में प्रवेश किया। वे लोग यहाँ रहने के अभिप्राय से नहीं आये थे। किन्तु देववश इस देश में ही जब

....

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 4 अध्याय 55पृष्ठ
(2) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 4 अध्याय 55पृष्ठ
(3) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 4 अध्याय 55–56पृष्ठ
(4) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 4 अध्याय 56–57पृष्ठ

प्रल—104

उन्हें रहना पड़ा एवं इस देश को अपने रहने लायक और निर्जन में धर्म साधना के लिए उपयुक्त स्थान के रुप में प्रतीत हुआ । इसके बाद इस देश में सदा रहने की व्यवस्था करने के लिए एक बार पुनः जन्म भूमि में जाने के लिए तैयार हुए। X X X X देश में आकर अपने शास्त्रीय विषय सम्बन्धित और विचारों में किसी तरह की कोई असुविधा न झेलने पड़े इस अभिप्राय से अपने लौटने के समय स्वसमाज के और भी कुछ ब्राह्मणों को यहां ले आने की आवश्यकता को महसूस किया। उनके विशेष अनुरोध पर अलग से पंच गोत्रीय अर्थात कात्यायन, काश्यप, मोद्गुल्य, स्वर्णकौशिक और गौतम गोत्रीय सपरिवार पाँच विप्र एवं भृत्यादि और नापितादि के साथ पाँचखण्ड में प्रवेश किया।(1)

6. सारे बंग भूमि में रघुनन्दन भट्टाचार्य की स्मृति सम्मानित एवं समस्त बंग देश रघुनन्दन के मत से परिचालित था। किन्तु श्रीहट्ट के शास्त्रीय"क्रिया" मैथिल वाचस्पति मिश्रा के मतानुसार ही सम्पादित हो रहा है। इससे यह उपलब्धि होगी कि श्रीहट्ट में मैथिल द्विजों का प्रभाव कितना फैला हुआ था कितना बद्धमूल है।(2)

इसके अलावा बंग जातीय इतिहास के द्वितीय खण्ड में संबंधीय विवरण विस्तृत भाव से विबृत हो रहा है। इस बारे में इससे अधिक प्रमाण संग्रह करना निष्प्रयोजन है। संगृहीत प्रमाणों से जाना जा सकेगा—

1. ब्राह्मणों को मिथिला से ले आने की बात सत्य है और उनके वंशधर अब भी विद्यमान हैं।

2. ब्राह्मणों को पाँच खण्डों में विभक्त करके भूमि दान करने से उस जगह का नाम पंचखण्ड हुआ है और वह नाम अब तक पंचखण्ड ही कहा जाता है।

3. मंगलपुर ग्राम में जो यज्ञ हुआ था। उसे अब तक सभी लोग जानते हैं और उस यज्ञ कुण्ड के चिन्ह अब तक विद्यमान हैं। अतएव यज्ञ सम्पादन की बात सत्य है।

4. समागत मैथिल ब्राह्मणों के प्रधान्य हेतु श्रीहट्ट में अब भी मैथिल वाचस्पति मिश्र के मतानुसार शास्त्रीय क्रिया काण्ड सम्पन्न होते हैं।

इतने प्रमाण विद्यमान रहने पर भी मैथिल ब्राह्मणों के आगमन और यज्ञ सम्पादन विषयक प्रमाण निमित्त ताम्र शासन पर निर्भर करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती एवं ताम्र फलक की वर्तमान प्रतिलिपि कृत्रिम है या अकृत्रिम, इस विषय पर कोई विचार विमर्श करने की किसी तरह की आवश्यकता मैं महसूस नहीं करता। ताम्रफलक के अस्तित्व के विलुप्त होने की बात सरकारी रिपोर्ट और आलोचना से भी ज्ञात

---

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 4 अध्याय 57पृष्ठ

(2) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 5 अध्याय 58पृष्ठ

होता है। जिस वस्तु के मिलने की कोई सम्भावना नहीं है, उसकी समालोचना नहीं हो सकती। अतएव हम उस ताम्र फलक के विषय में किसी तरह का मतामत प्रकाश करने में असमर्थ हैं।

महाराज धर्मधर महाराज दान कुरु फा के(आदि धर्म पा) अधस्तन 17 स्थानीय महाराज धर्मधर(छेंका चाग) त्रैपुरी छठी सदी के अंत और सातवीं सदी के प्रथम भाग में कैलाशहर के राजपाट में विराजमान थे। आदि धर्म पा की तरह इन्हें भी ब्राह्मणों ने ''स्वधर्मपा'' की आख्या प्रदान किया था। वर्तमान कैलाशहर विभागीय कार्यालय से दो कोस उत्तर की ओर राज महल था। राजधानी का विस्तार काताल के तालाब तक फैले रहने के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। राजमहल का स्थान इस समय जंगलाकीर्ण है। यह महल मनु नदी के किनारे था। इस समय मनु नदी का गति पथ हटकर आधा कोस से भी ज्यादा पश्चिम की ओर चला गया है। यह महल दक्षिण और पूर्व की ओर गहरे सरोवर द्वारा सुरक्षित था। इस समय पर्वत से वर्षा के पानी से धँसकर मिट्टी से भरा हुआ एक ताल की तरह हो गया है यह सरोवर। राजमहल के दक्षिण प्रांत पश्चिममुखी एक प्रशस्थ राजपथ सुप्रसिद्ध हाकालूकी हावर तक प्रसारित होकर अतीत की समृद्धि का परिचय दे रहा है। उस सड़क के दोनों किनारों दो मिट्टी के स्तूप अब भी है। लोग इसे ''कमान दागार स्थान'' अर्थात कामान दागने की जगह कहते है। इस नाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले उसी उँची भूमि से कामान दागा जाता था।

निधिपति का प्रभाव महाराज धर्मधर के शासन काल में निधिपति नामक ब्राह्मणों ने उनके दरबार में विशेष प्रतिपत्ति प्राप्त किया था। निधिपति के आदि निवास के बारे में मतद्वैध है। किसी किसी के मत से हमारे पूर्व कथित मिथिला से आये हुए वात्स्य गोत्रीय आनन्द के वंशज एवं उनके अधस्तन 16 पीढ़ी वाले थे। यही मत ज्यादा प्रचलित है। मतान्तर में उन्हें कान्यकुब्ज से आये हुए कनौजी या कान्यकुब्जीय ब्राह्मण भी कहा जाता है। इस मत के पोषक मजःफर नामक कोई एक मुसलमान ग्राम्य कवि की रचित एक प्राचीन कविता प्रचलित है–

वात्स्य गोत्र यजुर्वेद कान्बशाखा निज।
कनौज होइते असिलेक निधिपति द्विज।।(1)

अर्थात वात्स्य गौत्र यजुर्वेद की अपनी शाखा के निधिपति नामक द्विज कन्नौज से आए हैं

इस कविता के अनुसार कोई–कोई निधिपति को कान्यकुब्ज से आए हुए बताते हैं। इसके अलावा किसी किसी के अनुसार निधिपति मैथिल आनन्द की संतान है। वे इसे ही सत्य समझते हैं। उनका कहना है आनन्द के वंशधरों में कोई एक महापुरुष कनौज चले गये थे और कुछ दिनों के पश्चात उसी महा पुरुष के वंशज

---

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग प्रथम खण्ड 5 अध्याय 61पृष्ठ

प्रल–106

निधिपति वहाँ से लौटे। इसलिए ''कन्नोज होइते आसिलेक निधिपति द्विज'' अर्थात ''कन्नौज से आया निधिपति द्विज'' कहा गया है। इस अवस्थान में निधिपति जो आनन्द के ही वंशधर हैं यह सर्ववादी सम्मत मत है।

धर्मधर का यज्ञ निधिपति शास्त्रज्ञ, सुपण्डित एवं असाधारण शक्ति सम्पन्न थे। उनके उपदेशानुसार महाराज धर्मधर ने पूर्व पुरुषों के आदर्शानुसार एक विपुल यज्ञ का अनुष्ठान किया। निधिपति को ही इस यज्ञ के होता स्वरुप वरण किया था। पूर्वोक्त मुसलमान कवि की कविता में निधिपति की यज्ञ सम्पादन के बारे में अलौकिक क्षमता का परिचय मिलता है–

अग्निहोत्री महाशय नाम निधिपति।
मुख अग्नि आनि दिलेन आहुति।।

अर्थात् ''निधिपति अग्निहोत्री महाशय थे व मुखाग्नि आहुति उन्हीं ने दी थी।

इस यज्ञ स्थान व यज्ञ कुण्ड का निदर्शन कैलाशहर के जंगलाकीर्ण राजबाड़ी में अब भी विद्यमान है। हमनें इसे अपनी आंखों से देखा है। यज्ञ कुण्ड का स्थान जनता की भाषा में ''होमेर गात'' अर्थात होम का गाता(गर्त्त) नाम से परिचित है। इस बारे में श्रद्धाष्पद श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय ने लिखा है–

''दूसरे एक जगह को लोग अब भी ''होमेर गात''(होम का गाता या गर्त्त) कहते हैं। एक स्थानीय मुसलमान ने जंगल में प्रवेश कर कहा, इस स्थान को लोग ''होमेर गाता'' कहते हैं वे क्यों इस तरह कहते हैं हमें नहीं मालूम।''

''यह स्थान दीर्घ में एवं प्रस्थ में 16 हाथ होगा। गर्त्त प्रायः भर गया है तथापि किसी समय जो वहाँ बड़ा गर्त्त था, प्रान्त भाग की उँचाई देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।(1)

धर्मधर का ताम्रशासन होम कुण्ड का अस्तित्व एवं ''होमेर गात'' द्वारा स्पष्ट रुप से यह प्रमाणित होता है कि यही स्थान द्विजवर निधिपति के द्वारा महाराज धर्मधर का यज्ञ सम्पन्न हुआ था। महाराज, निधिपति के असाधारण कृतित्व के दर्शन से विमुग्ध होकर उन्हें एक बृहत भूभाग ब्रह्मत्र स्वरूप प्रदान किया था। इस भूमिदान के बारे में ताम्रशासन की प्रतिलिपि नीचे प्रदान की जा रही है।

''त्रिपुरा पर्वताधीशः श्रीश्रीयुक्त स्वधर्म पाः।
समाझं दत्त पत्रन्च मैथिलाय तपस्विने।।(2)

---

(1) श्रीश्रीयुक्त की कैलाशहर परिभ्रमण पुस्तिका। –30–31 पृष्ठ

(2) मैथिला के शब्द द्वारा निधिपति, मिथिलागत आनन्द के वंशधर थे यह बात प्रमाणित होती है।

प्रल–107

श्रीनिधिपति विप्राय वात्स्य गोत्राय धर्मिणे।
प्राच्यां लंलाई(1) कुकीस्थानं प्रतीच्यां गोपला नदी।।(2)
चन्द्रसिंह त्रिपुरस्य दक्षिणश्यामरण्यकम्।(3)
क्रोशिरानद्युतरश्यां प्रागदत्त स्थानमेव हि।।(4)
एतन्मध्या ससश्या या मनुकूल प्रदेशिनी।(5)
स पि प्रदत्ता तस्मैतत् वैदिकाय तपस्विने।।
शुक्ल पक्षे तृतीयायां दिने मेषगते रवौ।
चतुःषष्ठी शताब्देतु त्रैपुरे दत्त पत्रिका।।(6)

अनुवाद

त्रिपुरा पर्वताधीश्वर श्रीश्रीयुक्त स्वधर्म पा (पाल) ने वात्स्य गोत्रज, धार्मिक तपस्वी मैथिल ब्राह्मण श्री निधिपति को निम्न चतुः सीमा स्थित स्थान दान किया है। पूर्व की ओर लंलाई कुकी स्थान, पश्चिम में गोपला नदी, दक्षिण में चन्द्रसिंह त्रिपुरा का अरण्य एवं उत्तर की ओर क्रोशिरा नदी तथा पूर्व प्रदत्त स्थान। इसके मध्य मनु कूल स्थित सशस्य भूमि उस वैदिक तपस्वी को 604 त्रिपुराब्द के वैशाख महीने की शुक्ला तृतीया में दत्त पत्रिका द्वारा दान किया।

पहले दिये गये सरकारी आलोचना के अनुसार प्रथमोक्त ताम्र शासन की तरह इस ताम्र फलक का भी अस्तित्व वर्तमान नहीं है। उसके अभाव में भी यज्ञ सम्पादन एवं भूमिदान के विषय में अकाट्य प्रमाण भी विद्यमान है, उसकी आलोचना से

....

(1) लंलाई–कुकियों की निवास भूमि थी इसलिए वहाँ का नाम लंला हुआ है। श्रीहट्ट के अन्तर्गत लांला परगना एवं वह स्थान अभिन्न है।

(2) गोपला नदी सात गाँव और समसेरगंज में जाकर बराक नदी में मिल गई है।

(3) यह अरण्य इस समय कमलपुर के नाम से जाना जाता है।

(4) क्रोशिरा नदी– कुशियारा नदी। यह बराक नदी का ही अंश विशेष है।

(5) वर्तमान इन्द्रनगर, इन्द्रेश्वर, छयचिरि, भानुगाछ, बरमचाल, चौआल्लीस, सात गाँव और बालिशिरा ये सभी परगनाएँ पहले मनुकुल प्रदेश के अधीन थे। यह एक विशाल जनपद था।

(6) ''चतुःषष्ठी शताब्द'' साधारणतः 6400 अब्द समझा जाता है। यहाँ पर तद्रुप अर्थ ग्रहणीय नहीं है। चतुः –4, षष्ठी –60 और चतुराधिक षष्ठी का अर्थ ग्रहण कर ''अंकस्य वामागतिः'' के अनुसार 604 अब्द हुए। श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय ने चतुः षष्ठया पाठ ग्रहण कर 164 त्रिपुराब्द स्थिर किया है। यह पाठ वैदिक सम्वादिनी में उद्धृत पाठों के साथ इसका एकत्व प्रतिपादित नहीं होता है। कुछ और कारणों से भी विशुद्ध ज्ञात नहीं पड़ता। इसका कारण हम बाद में बतायेंगें।

प्रल–108

सनन्द की अभाव हेतु किसी तरह की असुविधा अनुभूत नहीं होगी। दो एक प्रमाण हम नीचे दे रहे हैं।

(1) होम कुण्ड का अस्तित्व यहाँ अब भी विद्यमान है एवं ''होमेर गात'' नाम आज भी विद्यमान है– विलुप्त नहीं हुआ है। श्रीहट्ट के अंचल में साधारणतः गर्त्त को ''गात'' कहते हैं।

(2) यज्ञ के होता निधिपति के वंशधर लोग अब भी विद्यमान हैं ओर वे निधिपति के वास स्थान इटा में ही निवास करते हैं।(1)

(3) निधिपति के प्रयत्न से पाँच खण्ड से बहुत से ब्राह्मण आकर उन्हें विद्यमान प्राप्य भूभाग में वास स्थान का निर्माण किया। उनके वंशज अब भी वहाँ विद्यमान हैं।

(4) **Assam Districts Gazetteers Chap. II** में इस ताम्र शासन के विषय में आलोचित है, इसे हम नीचे दे रहे हैं–

In 1195 A.D. a Brahman named Nidhipati, who was descended from one of the five original immigrants from Kanoj, received a grant of land in what is now known as the Ita pargona, from the Tippera King.

Assam Districts Gazetteers, Chap. II (Sylhet), Page 22

ममार्थ– ''1195 ई0 में निधिपति नाम के एक ब्राह्मण ने त्रिपुरा के महाराजा से एक वर्तमान इटा परगना को दान स्वरूप प्राप्त किया था। ये निधिपति कनौज से प्रथम आये हुए पंच ब्राह्मणों में से एक के वंशज थे।''

604 त्रिपुराब्द में 1194 ई0 सन होता है एवं 1195 ई0 सन लिखे जाने में एक साल पीछे हट गया है। निधिपति मिथिला से आये आनन्द के वंशज थे। आनन्द कनौज से आये हुए नहीं थे। किन्तु निधिपति कनौज से आये हुए थे इस तरह की एक धारणा साधारण में प्रचलित है। इस बारे में पहले हम आलोचना कर चुके हैं।

साम्प्रदायिक ब्राह्मणश्रेणियों की प्रतिपत्ति

श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता की भाषा में– ''निधिपति के प्रयत्न से पंचखण्ड से बहुत से दस गोत्रीय प्रधान द्विज उस समय इटा में जाकर बास करना शुरु किया। इससे अचिरकाल में इटा सौष्ठवशाली जनपद में परिणित हुआ। उस समय से साम्प्रदायिक ब्राह्मणों की विशेष प्रतिपत्ति वहां प्रतिष्ठित हुई। देश में वे ही लोग गुण ज्ञान, धर्म, धन और जन बल आदि हर तरह से क्षमताशाली हो उठे थे। निधिपति को जो भूभाग प्रदान किया गया था। वह एक सुविशाल जमींदारी,

....

(1) इटा नाम निधिपति के द्वारा हुआ है। इस नाम के कारणों के बारे में दो मत प्रचलित है। किसी किसी के मत से निधिपति का वास स्थान ''इटोवार'' के नामानुसार हुआ। फिर किसी किसी के मत से यह स्थान जंगलाकीर्ण होने की वजह से ब्राह्मणों के वास स्थान निर्माण के लिए दूर से इटा(ढेला) फेंक कर स्थान का निर्वाचन किया था। इसलिए इसका नाम इटा हो गया था।

की तरह थी। अन्त में निधिपति से इटा में एक छोटे राज्य की सूचना हुई। अगर कहा जाय तो यह बात सामने उभरकर आती है कि द्वादस सदी से इटा राज्य की प्रतिष्ठा आरम्भ हुई। एक विदेश से आया हुआ ब्राह्मण केवल अपने गुण गौरव से, ज्ञान और धर्म के प्रभाव से इस तरह से एक हिन्दु राज्य की प्रतिष्ठा करके गये है।''(1)

यज्ञ सम्पादन और ब्राह्मणों के बारे में इससे अधिक प्रमाणों की कोई आवश्यकता मैं नहीं देखता।

भ्रमात्मक मत खण्डन यहाँ पर एक बात का उल्लेख करने की आवश्यकता है। श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय ने आनन्द प्रभृति विप्र मण्डली और निधिपति को प्राप्त सनन्द के विषय में कहा है–

1. त्रिपुर अथवा त्रिलोचन त्रिपुराब्द के प्रर्वतक है।

2. त्रिपुर के अधस्तन सातवें स्थानीय महाराज धर्मपाल एवं आँठवे स्थानीय महाराज सुधर्म ने पहले की यज्ञकर्ता एवं उनके ही पूर्व कथित दो खण्ड ताम्र शासन द्वारा ब्राह्मणों को भूमि दान किया था।

3. आदि धर्म पा और स्वधर्म पा दोनों ने एक यज्ञ कुण्ड में ही यज्ञ किया था।

4. प्रथमोक्त सनन्द के अब्दांक ''त्रिपुरा चन्द्र बाणब्दे'' की जगह की जगह ''त्रिपुरा चन्द्र बाणाब्जे'' होने पर दोनों सनन्दों में परस्पर सामंजस्य रहता है। विद्याविनोद महाशय ने इस तरह का अभिमत प्रकाश किया है। एवं दूसरी सनन्द के सम्पादन काल ''चतुः षष्ठ्या शताब्देतु'' मानकर 164 त्रिपुराब्द निर्धारण किया है।(2)

हम संसन्भ्रम के साथ इन बातों का प्रतिवाद करने पर मजबूर हुए हैं। विद्याविनोद महाशय कहते हैं, त्रिपुर अथवा त्रिलोचन त्रिपुराब्द के प्रर्वतक हैं। हम देख रहे हैं महाराज त्रिपुर हस्तिनापुर में राजसूय यज्ञ में गये थे। वे युधिष्ठिर के समकालीन के थे। अतएव उनके प्राचीनता साढे चार हजार सालों से अधिक ही मानी जाती है। इस अवस्था में जिस अब्द की मात्र चतुर्दश सदी चल रही है। वह अब्द महाराज त्रिपुर अथवा उनके पुत्र त्रिलोचन द्वारा प्रवर्तित नहीं हो सकती इस बारे में और बहुत सी बातें कहने की है। स्थानान्तर में त्रिपुराब्द के प्रर्वतक के बारे में प्रचेष्टा करने की वजह से यहाँ पर ज्यादा कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

विद्याविनोद महाशय के अनुसार, त्रिपुर के अधस्तन सातवें स्थानीय महाराज धर्मपाल आँठवे स्थानीय महाराज सुधर्म पहले यज्ञ कर्ता है एवं उन्होनें ही पूर्व कथित दो ताम्र शासन द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान किया था। यह निर्धारण भी ठीक नहीं है। हम देख रहे हैं

---

(1) श्रीहट्ट का इतिहास द्वितीय भाग प्रथम अध्याय 67पृष्ठ।

(2) श्री श्रीयुक्त की कैलाशहर भ्रमण पुस्तिका।

प्रल—110

प्रथम सनन्द (आदि धर्मपा का प्रदत्त सनन्द) 51 त्रिपुराब्द में सम्पादित हुई थी। दूसरी सनन्द(स्वधर्मपा द्वारा प्रदत्त) 604 त्रिपुराब्द में प्रदान की गई थी। अतएव दोनों सनन्द 553 साल आगे पीछे की है। ऐसा निदर्शन मिलता है। महाराज धर्मपाल, महाराज सुधर्मा के पिता थे। अतएव पिता पुत्र के बीच इतने अधिक सालों का व्यवधान नहीं हो सकता। विद्याविनोद महाशय ने जिस हिसाब को पकड़ा ह, उसके हिसाब से भी प्रथम सनन्द की उम्र(1334 त्रिपुराब्द में) 1283 साल और द्वितीय सनन्द की प्राचीनता 1170 निर्णित हुई है। इस हिसाब से भी दोनों सनन्दों के बीच 113 साल का व्यवधान है। पिता पुत्र में इतने सालों का व्यवधान स्वाभाविक नहीं है।

और एक विषय भी आलोचना करने पर भी विद्याविनोद महाशय का निर्धारण युक्तिहीन प्रतीत होता है। उनके अनुसार महाराज सुधर्म फा(त्रिपुरा के अधस्तन स्थानीय अष्टम पुरुष है) से निधिपति ने भूमि दान प्राप्त किया था। इस हिसाब से देखा जाये तो दान कर्ता(सुधर्म फा) वर्तमान महाराजमाणिक्य बहादुर के 130 पुरुष ऊपर के है और दान प्रतिग्राही निधिपति के अधस्तन 23/24 पुरुष चल रहा है।(1) अतएव पण्डित महोदय का समय निर्धारण सही नहीं माना जा सकता। हम वर्तमान महाराज के पूर्ववर्ती 45 स्थानीय महाराज धर्मधर(छेंकाछाग्) को निधिपति के लाने वाले रूप में मान लेना ही उचित समझते है। निधिपति के वंशज प्रत्येक पुरुष के पूर्ण उम्र के हिसाब से 23/24 पुरुष चला है। त्रिपुरेश्वरों के राजत्व काल को मानकर ही पुरुष गणना की जाती है। कुछ जगहों पर पुरुषानुक्रम रक्षित न होने पर भाइयों के द्वारा भी राज्य शासन चला है। इस अवस्था में दाता और ग्रहीता दोनों वंशों के पुरुष संख्या का उपरिउक्तरूप में तारतम्य दिखाई देना अस्वाभाविक नहीं लगता।

दोनों यज्ञ एक ही यज्ञ कुंड में सुसम्पन्न हुआ था। यह अनुमान भी समीचीन नहीं लगता, पहले ही दिखाया गया है। प्रथम यज्ञ सम्पादन के 553 सालों क बाद दूसरा यज्ञ हुआ था। पण्डित महाशय के अनुसार भी दोनों यज्ञों में 113 सालों का व्यवधान प्रमाणित हो उठता है। इतने दीर्घ समय के अन्तराल में पुरातन यज्ञ कुण्ड में पुनः यज्ञ होना सम्भव नहीं है। विशेषतः दोनो यज्ञों का अस्तित्व (मंगलपुर और कैला शहर) अब भी विद्यमान हैं। अतः यहाँ पर एक होम कुण्ड में दोनों यज्ञ सम्पादन की कल्पना प्रमाद मूलक ही कही जायेगी। सनन्द का जो शकांक

---

(1) निधिपति से उनके वंश से 23/24 पुरुष चल रहा है। श्रीहट्ट का इतिहास द्वितीय भाग प्रथम खण्ड 65पृष्ठ।

प्रल–111
निर्धारण किया गया है। उसे भी निर्भूल कहकर अनुमान नहीं किया जा सकता। अन्य प्रमाणों के अभाव में वैदिक संवादिनीधृत सनन्द की प्रतिलिपि का ही अवलम्बन करना श्रेय है।

आदिशुर के यज्ञ के संबन्ध में मतभेद यहाँ और एक बात कहना जरूरी है। महाराज आदिशुर के यज्ञ का इतिहास एक प्रसिद्ध घटना है। वह यज्ञ महाराज आदि धर्म फा के यज्ञ से किंचित मात्र कम था जो एक सदी बाद में सुसम्पन्न/सम्पादित हुआ था। इस तरह की एक विख्यात घटना के बारे में नाना व्यक्तियों के नाना मत देखने को मिलता है। क्षितिशवंशावली में लिखा है "महाराज के गृह के उपर पर एक गिद्ध बैठा था, उसी दोष के प्रशमन के लिए यज्ञ का अनुष्ठान किया गया था। दुर्गा–मंगल के अनुसार आदिशुर बाजपेय यज्ञ सम्पादन के लिए ब्राह्मणों को ले आये थे। यथा–

गौर नगरेते राजा नाम आदिशुर।
बाजपेय यज्ञ हबे तार निज पुर।।

अर्थात गौर नगर में आदिशुर नाम के राजा के अपने पुरी में बाजपेय यज्ञ होगा।

उसी ग्रन्थ में पुनः दूसरी बात भी मिलती है–

प्रजार सतत पीड़ा लोक बले क्षीण।
दुर्भिक्ष होइलो देशे भूमि शस्यहीन।।
बन्याय बुडिया जाय कतोशतो देश।
द्रब्येर महार्घ्य देखि प्रजादेर क्लेश।।

अर्थात– प्रजाओं की सतत पीड़ा से वे क्षीण होने लगे। भूमि शष्यहीन हो गई। खाने पीने का भयंकर अभाव हो गया। बाद में सैकड़ों गाँव डूब गये। शष्य का दाम बहुत बढ़ जाने से प्रजाओं को अशेष क्लेश का सामना करना पड़ा था।

इन सभी अधिदैविक उपद्रव के निवारण के लिए यज्ञानुष्ठान किया गया था। कुलजि ग्रन्थ के अनुसार, आदिशुर ने पुत्र के यज्ञानुष्ठान के लिए ब्राह्मणों को बुलाया था।

गौड में ब्राह्मणों का आगमनकाल गौड देश में ब्राह्मणों के काल निर्णय को लेकर कितने लोगों ने कितनी बातें कही हैं, इसका कोई अन्त नहीं है। क्षितिश वंशावली के अनुसार ब्राह्मण गण 999 शक में यहाँ पदार्पण किया था।(1) वाचस्पति मिश्रा के अनुसार 954 शक में(2), कुलार्णव के अनुसार 654 शक में(3), वारेन्द्र कुलपंजी के अनुसार 604 या 654 शक में(4), भट्ट ग्रन्थानुसार 994 शक में(5), गौड में ब्राह्मणों आगमन किया था। बंग के जातीय इतिहास कायस्थ कौस्तुभ,

---

(1) नव नवत्यधिक नवशती शकाब्दे
प्रागुपकल्पित वासे निवेशयामास।।
(2) वेद वाणांक शाके तु गौडे विप्राः समागताः।
(3) वेद वाणाहिमेशाके।
(4) वेद कलंषटक विमिते या वेदकालम्ब षटक विमिते।।"
(5) शक व्यवधान कर अवधान ब्राह्मण पश्चात यदा।
(6) अंके अंके वामागति वेदमुक्ता तदा।
कन्यागत तुलांक अंके गुरू पुर्ण दिशे।।
शहर पहर त्यजिये गौडे प्रवेशिलो एसे।।

प्रल–112

दत्तवंश माला, गौड में ब्राह्मण इत्यादि एक ग्रन्थों के साथ अन्य ग्रन्थों में ऐक्य मत दिखाई नहीं देता। गौडेश्वर की न्याय प्रख्यातनामा राजा जनता पूर्ण बंगभूमि में जो यज्ञ किया था। उसके बारे में ऐसे मत विरोध दिखाई देते हैं। इस अवस्था में उनके भी प्रायः एक सौ साल पहले आसाम की तरह निभृत जन पद में जो यज्ञ किया था उसके बारे में मतभेद दिखाई देना कोई विचित्र बात नहीं है। अतएव इस बारे में और अधिक आलोचना की और कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

उक्त दोनों यज्ञ स्थल एवं ब्रह्मत्र भूमि काल के कुटिल आवर्त्त में पड़कर आज त्रिपुरा के हाथों से बाहर है। ये दोनों श्रीहट्ट जिला के अधीन है। त्रिपुरा में ब्राह्मण संस्थापन जनित कीर्ति शीघ्र विलोप की आशंका न रहने पर भी यज्ञ कुंड के चिन्हों के साथ यज्ञ की स्मृति भी कुछ दिनों में विलुप्त हो जायेगी। ऐसा सोचा जाता है।

त्रिपुर राज्य परिवार के धर्माचरण के बारे में और बहुत सी बातें कहने की है। राजमाला के नाना अंशो में इस विषय का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके बाद के लहरों में उन्हें क्रमशः देखा जायेगा। यहाँ पर प्रथम लहर से जुडी और एक घटना का उल्लेख कर हम इस विषय में कुछ नहीं कहेंगें।

राजगणों के वानप्रस्थ का अवलम्बन त्रिपुरेश्वरों में अनेक नरपति राज्य शासन और राज धर्म का पालन करते हुए अन्त में वानप्रस्थ का अवलम्बन करते थे।

घटना बैचित्र निबन्धन हेतु कितने राजा महाराजाओं ने भी राज ऐश्वर्य के प्रति वीतराग होकर वार्धक्य आगमन के पहले ही प्रव्रज्या ग्रहण के दृष्टान्त भी कम नहीं है।(1) राजमाला के प्रारम्भ में ही हम देख रहें हैं कि महाराज दैत्य ने अपने वार्धक्य में अपने पुत्र के ऊपर राज्य भार सौंपकर योग साधन के निमित्त अरण्य वासी हुए थे–

अनेक सहस्त्र वर्ष राज्य करि भोग।	अनेक सहस्त्र वर्ष किया राज्य भोग।
पुत्रे समर्पिल राज्य मने वान्छा योग।।(4)	राज्य समर्पित पुत्र को, अब इच्छा योग।।(4)
वने गिया योग साधि राजा मृत्यु होइलो।	वन गया योग साधा, राजा गया स्वर्गलोक।
तान पुत्र त्रिपुर किरातपति छिलो।।	उसका पुत्र त्रिपुर किरातपति हुआ।।
राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृ	राजमाला प्रल दैत्य खण्ड 8 पृ

अर्थात सहस्र वर्षो तक राज्य भोग करने के बाद योग साधना के लिए अपने पुत्र को राज्य का भार सौंपा और वन में जाकर योग साधना करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके पुत्र त्रिपुर किरात पति थे।– दैत्य खण्ड 8 पृष्ठ

त्रिपुरेश्वरों में वाणप्रस्थ अवलम्बन का दृष्टान्त केवल यही पहला नहीं है। दैत्य के पहले के राज्यों का विवरण राजमाला में दर्ज नहीं किया गया है। राजरत्नाकर के अनुसार महाराज दैत्य के पूर्व अनेक राजाओं ने वार्धक्य के सूचना मात्र योग साधन के लिए वाणप्रस्थ का आश्रय लिया था। इस प्रसंग में श्रीराज, वीरराज, सुधर्मा एवं धर्मतरू आदि प्राचीन राजाओं का नाम उल्लेखनीय है।

नरपति शिक्षराज ने रसोइये की दुर्बुद्धिता के कारण नर मांस भक्षण किया था। अन्त में सारी बातें जानने के पश्चात–

(1) प्रव्रज्या संबंधीय नियम और उसका फल अग्निपुराण 160 अध्याय और गरूड पुराण के 102 अध्याय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

प्रल–113

कम्प होइल नरपति वृतान्त सुनिया।	कम्पित हुआ नरपति सुनकर वृतान्त।
पाप कर्म कैला केने आमा भय पाइया।।	पाप कर्म क्यो कर किया भय से नितांत।।
आर ना कोरिबो आमि राज्येर पालन।	अब नही करूंगा मैं प्रजा का पालन।
योग साधनाते आमि चले जाब बन।।	योग साधना हित मैं जाउंगा वन।।
भूपति करिल पुत्र देबराज नाम।	भूपति से जन्मा पुत्र देवराज नाम।
चलिल नृपति बने निज मनस्काम।।	नरपति चले वन पथ पर लेकर मनस्काम।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 41–42 पृ।	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 41–42 पृ।

ये सभी उदाहरण त्रिपुरेश्वरों की धर्म भीरूता के जाज्वल्यमान उदाहरण है। धर्म रक्षण हेतु उन्होनें और भी बहुत से कार्य किये हैं इस बारे में यहाँ सम्यक आलोचना करना भी असंभव है।

शिल्प चर्चा

शिल्प चर्चा के सूत्रपात त्रिपुर राज्य में इस समय जो शिल्प कर्म की उन्नति परिलक्षित होती है। वे आधुनिक नहीं है। सबसे अधिक वस्त्र शिल्प के निमित्त ही त्रिपुरा विशेष रूप से प्रसिद्ध और गौरवान्वित है। हम देख रहे हैं, पहले राजप्रासाद में इस शिल्प की शुरूआत हुई थी। बाद में राज्य भर यह चर्चा फैल गई।

सुबडाई राजा के द्वारा शिल्पोन्नती सुबडाई राजा की बहुत सी प्राचीन कहानियाँ त्रिपुरा राज्य में प्रचलित है। सुबडाई, महाराज महाराजा त्रिलोचन के नामान्तर हैं। राजमाला में महादेव ने कहा है–

तीन चक्षु होइबेक पुरुष प्रधान।	तीन चक्षु विशिष्ट होगा पुरुष प्रधान।
आमार तनय आमा हेनो कर ज्ञान।।	मेरे पुत्र हमारी तरह ही सदा करो ज्ञान।।
सुबडाई राजा बोलि स्वदेशे बोलिबो।	सुबडाई राजा कहकर स्वदेश में बोलेगें।
बेदमार्गी साधुजन त्रिलोचन कोहिबो।।	वेदमार्गी साधुजन त्रिलोचन कहेगें।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड पृष्ठ 14–15।	राजमाला प्रलत्रिपुर खण्ड पृष्ठ 14–15।

अर्थात तीन आँखों वाला यह पुरुषों में प्रधान होगा। इसे समझना। सुबडाई राजा के नाम से स्वदेश इसे पुकारोगें। वेदमार्गी साधु जन इसे त्रिलोचन कहेगें।''

सुबडाई राजा के विषय में शिल्पोन्नति के बारे में एक उपाख्यान श्रृद्धास्पद कर्नल महिमचन्द्र ठाकुर महाशय की लिखित ''रिया'' नामक पुस्तिका में दिया है। उसका सार मर्म यहाँ पर प्रदान कर रहा हूं।

सुबडाई नाम के एक राजा थे। उन्होनें शिल्प के बारे में त्रिपुरा में बहुत सी उन्नति कराई थी एवं कपास के पेड़ लगाने की प्रथा को उन्होनें ही त्रिपुरा में सबसे पहले आरम्भ किया था जो अब भी साधारण जन मानस में बद्धमूल हो चुकी है। त्रिपुरा वासी

प्रल—114

अब भी गर्व के साथ कहते है— ''नई शिल्प शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जिस शिल्प की सुबडाई राजा ने शिक्षा नहीं दी वह शिल्प के दायरे में गिनी नहीं जा सकती।'' इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबडाई राजा ने सभी तरह के शिल्पों का ही राज्य में प्रवर्तन किया था। उनके शासन काल में उल्लेख योग्य कोई ऐसा शिल्प कार्य नहीं था जो शिक्षणीय नहीं था।

राजा सुबडाई ने राज्य में घोषणा की थी, ''जो त्रिपुर रमणी शिल्प कला में उत्कृष्ठ या आदर्श दर्शाने में समर्था होगी उससे ही वे विवाह करेगें।'' इस उत्साह से भरे घोषणा के फलस्वरूप नित्य नये शिल्प प्रणाली का उद्‌भव होने लगा और शिल्प में निपुण महिलायें राज महिषी का सुदुर्लभ आसन अलंकृत करने लगी। एक समय एक युवती सुचारु कारु कार्य खचित (सूक्ष्म कार्य रचित) एक चोली(इसे यहाँ की भाषा में रिया कहा जाता है) लेकर राजा के सामने आई। मक्खी के डैने पर सूर्य रश्मि पड़ने पर जिस तरह का रंग उद्‌भाषित हो उठता है। चोली भी इसी तरह की बनाई गई थी। महाराज ने शिल्प सौन्दर्य देखकर विस्मय प्रकाश किया और स्तंभित हो गया। युवती से उन्होनें पूछा, ''मक्खी तो एक जगह बहुत देर तक नहीं रहती फिर तुमने कैसे उसका अनुकरण किया ?'' युवती ने कहा हमारे घर के यहाँ एक जगह मक्खियां सदा बैठी रहती हैं। उन्हें देखकर अनुकरण करने का सुयोग मुझे मिला। महाराज के प्रात्यर्थ, उसी को मद्‌दे नजर रखते हुए इस वस्त्र का वयन मैंने किया है'' इस बात को सुनकर कौतूहल वश उस जगह को देखने के लिए राजा युवती के घर गया। वहाँ उन्होनें देखा एक जगह असंख्य मक्खियां बैठी है। खदेड़ने पर भी नहीं जाती। लौटकर फिर उसी जगह बैठती है। महाराज इसका कारण स्थिर नहीं कर सके, तब उन्होनें वहाँ की मिट्‌टी को खुदवाया और देखा कि एक मृत सर्प वहाँ गाड़ा गया था। महाराज का बड़े आदर का एक सर्प था। वह सदा उनके साथ रहता था। बाद में पता चला कि युवती के पिता ने उस सर्प को मारकर वहीं पर उसे दफना दिया। इस घटना से महाराज बडे दुखी हुए और कहा— ''यह सर्प स्वर्ग का गन्धर्व था। किसी कारणवश शापग्रस्त होकर सर्प रूप में मेरा आश्रय किया था। सर्प के साथ हमारी शर्त थी कि वह रोज एक नये शिल्प कार्य सिखायेगा और मैं राज्य में उसका प्रकाश फैलाउंगा। इस तरह एक साल में 360 शिल्पादर्श हमारे प्रजा गण सीखेगी और मैं 360 शादियां करूंगा। इनमें से 240 शिल्पादर्श का मैंने उद्धार किया है। अपने कथनानुसार 240 विवाह मैंने किया है। जब सर्प ही नहीं रहा तो नया शिल्प के पाने की अब कोई आशा नहीं रही। अब हमारा राजत्व करना व्यर्थ है। मैं चला़ तुम लोग अपने अदृष्ट को लेकर रहो।'' यह कहकर महाराज अन्तर्धान हो गये।

प्रल–115

जहाँ पर सर्प को दफन किया गया था वहाँ खुमपुई (**Lily of the Valley**) नाम का एक फूल उगा और उसके खिले हुए फूल का सौरभ चारों ओर फैल गया।

यह माइथोलोजिकल / **Mythological** युग की कहानी होने पर भी इस उपाख्यान से हमें यह ज्ञान मिलता है कि महाराज त्रिलोचन(सुबडाई) राज्य में शिल्प कला के विकास के लिए प्राण–पण से कोशिशें की थी। इस धर्म के निमित्त उन्होनें राज्य को भी ज्ञान दिया। इसके अलावा जो रमणी शिल्प कला में निपुण होती थी उसे राज महिषी का सुदुर्लभ आसन प्रदान करने में बिन्दु मात्र कुंठित नहीं होते थे।

राज अन्तःपुर में शिल्पचर्चा

इसके बाद भी हम देखते हैं कि राज अन्तःपुर के भीतर शिल्प कला का समादर और उन्नति सबसे पहले हुई थी। यहाँ पर त्रिपुर सिंहासन के 141 संख्यक भूपति राजसूर्य के(नामान्तर आचंग फा या कुंज होम फा) महिषी का नाम उल्लेख योग्य है।

आचंग फा ओरफेते कुंजहोमफा नाम।
बलबीर्य पराक्रमे पितृ–गुणधाम।।
बिबाह कोरियाछिलो जयंता राजकुमारी।
बिद्या बुद्धिबती छिलो येमत शाशुडी।
स्त्री–आचार शिल्पकार्य जाबतीय छिलो।
त्रिपुर राज परिबारे सब शिक्षा दिलो।।

त्रिपुर वंशावली।

अर्थात– आचंग फा(नामान्तर कुंज होम फा) नाम के राजा के बलवीर्य पराक्रम में पिता के समान थे। उन्होनें जंयतिया राजकुमारी से विवाह किया था। विद्यावती बुद्धिमती थी अपनी सास की तरह स्त्री आचारों से भूषित शिल्प कार्य में दक्षता का सब कुछ उसमें था। त्रिपुर राज परिवार में उसने शिल्प कला की शिक्षा प्रदान की थी।''

परलोक गत कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने ठीक कहा था–

''महाराज छें थुम फा के परलोक गमन करने पर उनके पुत्र आचंग फा सिंहासन पर बैठे। इन्होनें मातृगुण प्राप्त न करके पितृगुण प्राप्त किया था।(1) किन्तु उनके पत्नी अपनी सास की तरह भगवान प्रदत्त न्याय, तेजिस्वनी, विद्यावती एवं बहुगुण सम्पन्ना थी। उनके उत्साह से त्रिपुरा में शिल्प कार्य की यथेष्ट उन्नति हुई थी।

कैलाश बाबू की राजमाला, दूसरा भाग, दूसरा अध्याय, 27 पृष्ठ।

इस आचंग फा के पुत्र त्रिपुरा के 142 संख्यक भूपति महाराज मोहन के(नामांतर महाराज खिचोंग फा) की महिषी के द्वारा शिल्पकला में अधिकतर पुष्टि लाभ किया था। इस बारे में राजमाला में लिखा है।

तार पुत्र खिचोंग राजा होइलो आपन।।	उनके पुत्र खिचोंग तब हुए नृपति।।
खिचोंग मा नामे छिलो ताहार रमणी।	खीचोंग मा नाम की थी उनकी रमणी।
विचित्र बसन शिक्षा निर्माए आपनि।।	विचित्र बसन, शिक्षा आदि नई दिशा महारानी।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड पृ 59	राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड पृ 59

जब उनका पुत्र खिचोंग फा राजा हुए खिचोंग मा नाम की उनकी पत्नी थी जिसने विचित्र वसन और शिक्षा का प्रसार किया।

(1) इनकी माता ने स्वयं रण क्षेत्र में अवतीर्ण होकर बंगेश्वर को युद्ध में परास्त किया था। छें थुम फा खण्ड में इसका विवरण मिलता है। इनके बाद सैन्य विभाग सम्बन्धित विवरण उल्लेखित होगा।

प्रल—116

इसी तरह राजा और राज परिवार के प्रयत्न से प्राचीन काल से ही त्रिपुर राज्य में वयन शिल्प का प्रचलन और उत्तरोत्तर उन्नति हुई थी। इस यत्न और चेष्टा का फल आज भी त्रिपुरावासी भोग करते आ रहे है।

अरण्यवासी गणों में शिल्पचर्चा सभ्य समाज की बात तो स्वतन्त्र है। गहरे अरण्य में रहने वाले कुकी और त्रिपुरा प्रभृति पार्वत्य समाज में प्रत्येक घर में दो चार ताँत चल रहे हैं।

वृद्धा से बालिका तक वयन कार्य में सिद्ध हस्त है। उनके समाज में दूसरे गृह कार्य की तरह वयन करना अवश्य शिक्षणीय कार्यो में से एक है। वयन कार्य में असमर्थ नारी पार्वत्य गाँव में कहीं कोई है, यह हम नहीं जानते। त्रिपुरा का उपनिवेश मणिपुरी समाज में भी इस शिल्प का प्रचलन बहुत ज्यादा है। त्रिपुरा के वयन शिल्प के प्रचलन की व्यापकता केवल एक वाक्य से समझाया जा सकता है। 1920 ई के लोक गणना के समय पार्वत्य गाँव में गृहस्थ की संख्या 34,856 पाई गई थी। इन सभी घरों में ताँत की संख्या 31,485 है। सारे भारत के सभ्य समाज में चरखा और ताँत के प्रचलन के लिए प्राण–पण श्रम करके भी आशानुरूप फल की प्राप्ति नहीं हुई। त्रिपुरा के निभृत गिरिकुंज के नग्न समाज में स्मरणातीत काल से इसका प्रचलन चला आ रहा है। यह त्रिपुरा के साधारण गौरव की बात नहीं है। राजपरिवार और ठाकुरपरिवार के बीच यह शिल्प अपने चरम सीमा पर चला गया है।

कांचली का शिल्प नैपुण्य सबसे अधिक कांचली(1) वयन कार्य में शिल्प नैपुण्य का अधिक परिचय मिलता है। स्थानीय भाषा में इसे ''रिया'' कहते है। एक समय सारे भारत में खासतौर से बंग देश के रमणीयों में वक्षावरण के निमित्त इस कांचली(चोली) का व्यवहार अधिकतर देखा गया है। इसमें उत्कृष्ठ नानाविध कारुकार्य खचित सूत कार्य का नैपुण्य वरणातीत है। सोमिज(2) जैकेट आकर यहाँ पर अपनी वैजयंती का पताका गाढने की बहुत पहले ही बांगाली समाज से कांचली ने हम से विदा ले ली है। अब केवल प्राचीन साहित्य में उसके केवल स्मृति चिन्ह मात्र ही रह गया है। कुछ दिनों के पश्चात शायद वह स्मृति चिन्ह भी न मिले। त्रिपुरा में अब भी कांचली का प्रचलन है, किन्तु खेद की बात तो यह है कि सभ्य समाज में इसका आदर क्रमशः कम होता जा रहा है।

त्रिपुरा राज्य में कांचली का आदर इसके बावजूद भी आज तक त्रिपुरा में रिया का एक तरह का सम्मान है एवं सही अर्थ में आदर और सम्मान की वस्तु है। कर्नल महाशय के लेख से हम यहाँ उस विषय कुछ प्रमाणों का यहाँ प्रदर्शन करेंगें।

---

(1) संस्कृत ग्रंथादि में कांचली का उल्लेख मिलता है। श्रीमत् शंकराचार्य कृत ''आनन्द लहरी'' 66 और 75 श्लोक में कांचाली का नाम है। प्राचीन बंग साहित्य में कांचली की वर्णना का अभाव नहीं है।

(2) सोमिज – समीज

प्रल–116
(Pratham leher-116) चित्र



वस्त्रवयनरत दो कुकि बालिका

प्रल—117

1. त्रिपुरा के प्रत्येक परिवार में रिया (कांचली) के एक एक आदर्श वंश परम्परा प्रचलित है। विवाहकाल में सास अपनी पुत्रवधु को उसी आदर्श से रिया उपहार प्रदान करने की प्रथा अब भी चली आ रही है।

2. किसी नारी के मृत्यु होने पर, उसकी व्यवहार की गई रिया आसन में रखकर श्रद्धान्न उत्सर्ग करने की प्रथा अब भी विद्यमान है।

3. नए साल में त्रिपुरा जातीय ओझा के द्वारा ''गराइ'' अर्थात गौरी की अर्चना होती है। यह अर्चना **State** सिंहासन के सम्मुख होती है। इस उपलक्ष में महाराज के व्यवहार किया गया दर्पण व महारानी के व्यवहार की गई रिया की स्वतन्त्र स्वतन्त्र रुप से पूजा की जाती है। यह राजभक्ति की एक अतुल दृष्टान्त है। दर्पण जो राजा की प्रतिकृति को वक्ष में धारण करता है व जो रिया माई देवता(मातृ देवी अर्थात महारानी) के वक्ष आवरक, संतान की तरह प्रजा के पक्ष में वह पूजनीय वस्तु है। किसी भी देश में राजभक्ति ज्ञापन का एसा सुन्दर आदर्श है या नहीं हम नही जानते।

4. राजबाड़ी में शुभकार्य के उपलक्ष में महाराज के यात्राकाल में त्रिपुरागण के द्वारा ''लामप्रा'' पूजा होती है। यह पूजा ''बिनाइगर'' देवता की होती है। बिनाइगर विनायक (गणेश) शब्द का अपभ्रंश है। इस पूजा में ईश्वरीय (महारानी) की रिया दी जाती है।

5. महारानियों अथवा विशिष्ट परिवार की नारियों जिन्हें सम्मान या स्नेह करते है, कुछ समय जिन्हे सम्मान या स्नेह के निदर्शन स्वरुप रिया शिरोपा या उपहार प्रदान करते है। इस विषय के बारे में एक दो कथा यहां उल्लेख करना आवश्यक है।

त्रिपुरा राज्य के भूतपूर्व सहकारी मंत्री प्रख्यातनामा स्वर्गीय डा0 शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय महाशय एक रिया पगड़ी के रुप में व्यवहार करते थे एवं बड़लाट के दरबार में भी वह पगड़ी ले जाते थे, एक दिन शाम के सम्मेलन में लेडी डफरिन ने वह पगड़ी देखकर बहुत प्रशंसा की एवं पूछा कि यह कहां मिलता है? उस समय शम्भुबाबू ने त्रिपुरा के नाम का उल्लेख किया था।

इसके कुछ समय बाद त्रिपुरेश्वर की जमींदारी विभाग की भूतपूर्व मैनेजर Mr C.W. Mcminn, I.C.S. विलायत से एक पुराना कागज खोजकर लाए थे, वह त्रिपुरा की ब्रिटिश रेजिडेन्ट Mr. Ralph Leake साहब के 1783 ई के 11 मार्च की लिखित रिपोर्ट थी। उनके साथ The Then reigning Queen त्रिपुरेश्वरी महारानी जान्हवी देवी का विवरण एवं उनके साथ Ceremonial विदाई के विषय में रिपोर्ट थी। उन्होंने महारानी से प्राप्त शिरोपा के विषय में रिया नाम का उल्लेख किया था। Leake साहब ने

रिया के कारु कार्य का यथार्थ मूल्य समझा था, इसलिए उन्होंने अपने पास न रखकर ब्रिटिश म्यूजियम शिल्प संग्रह विभाग में प्रदान किया था।

स्वर्गीय महाराज राधा किशोरमाणिक्य के शासन काल में उनके **A.D.C.** कर्नल महिम चन्द्र ठाकुर महाशय, स्वर्गीय महारानी तुलसीवती महादेवी ने पोषाक के साथ व्यवहार के लिए रिया के आदर्शानुसार वयन किया गया एक **sash** प्राप्त किया था। लार्ड कर्जन **(Lord Curzon)** भारत के राज प्रतिनिधि पद पर नियुक्त होकर रहने के समय वही **sash** लेकर कर्नल महाशय स्वर्गीय महाराज बहादुर के अनुचर के रुप में बडे लाट के दरबार में गये तब बडे लाट बहादुर ने उस **sash** का विशेष रूप से निरीक्षण कर पूछा था "यह किस देश में तैयार किया जाता है?" उसे त्रिपुरा में बनाया जाता है, सुनकर उन्होनें त्रिपुरा के लोगों की शिल्प निपुणता की बहुत प्रंशसा की।

मूल रूप से वाराणसी धाम के उत्कृष्ठ किंखाप में भी त्रिपुरा राज्य के बहुत से रिया उच्च स्थान पाने योग्य है। आनन्द का विषय यह है कि वे सभी उत्कृष्ठ रिया, राज परिवार और ठाकुर परिवार की महिलायें ही वयन किया करती है। यह उच्च आदर्श के शिल्प कैसे जीवित रहे, जन साधारण को इस बारे में विशेष यत्नवान रहना चाहिए।

वयन शिल्प के अलावा चित्रशिल्प तक्षशिल्प और लकड़ी, बाँस और बेंत आदि के द्वारा बनाया गया शिल्प के लिए भी त्रिपुर राज्य प्रसिद्ध है। इन सभी शिल्प कलाओं के उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि और उन्नति के लिए यत्नवान होना एकांत कर्तव्य है। राज्य सरकार के सहायता के बिना इन सभी शिल्पों की रक्षा और उन्नति संभव नहीं है।

———————

प्रल–119

उत्तराधिकारी निर्वाचन पद्धति

दायभाग के विधान विषयक बात — बंग देश में उत्तराधिकारी निर्वाचन और उनमें सम्पत्ति के बंटवारे के विषय में दाय भाग ही एक मात्र अवलम्बनीय है। भिन्न शास्त्र ग्रंथों में विभिन्न व्यवस्था रहने पर भी इन सभी के आलोचना से दायित्व भाग प्रणेता जिस मीमांसा पर पँहुचे है, इस देश पर वही सर्वथा भाव से ग्रहणीय है। दृष्टांत स्वरूप यहाँ पर एक बात का उल्लेख किया जा सकता है। मनु ने कहा है–

''ज्येष्ठ एवतु गृह्णीयात् पित्रं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयूर्यथैव पितरं तथा।।''

अर्थात ''पिता के मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र ही सर्वधनाधिकारी होगा। अवशिष्ट भ्रातृगण पितृतुल्य उस ज्येष्ठ के ही अनुजीवी होगें।

इस तरह बंटवारे की स्पष्ट व्यवस्था रहते हुए भी ''ज्येष्ठ'' शब्द की दाय जिम्मेदारी के व्याख्यानुसार सभी भाईयों को पैत्रिक सम्पत्ति में समान अधिकार दिया गया है। पुत्र पौत्रादिक अभाव में दौहित्र और भानजे आदि को भी सम्पत्ति के अधिकारी हो सकते हैं। इसके अलावा भी अनेक तरह के दाय–दायित्वों का निर्देश दिया गया है। यहाँ पर उसकी चर्चा करना असम्भव है।

त्रिपुरा राज्य और दायभाग — त्रिपुरा राज्य में प्रकृतिपुन्ज के बीच एक मात्र दाय भाग के व्यवस्थानुसार उत्तराधिकारी निर्णित होता है। किन्तु राज्य के अधिकारी निर्वाचन के विषय में दाय भाग के विधान की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि राजत्व अधिभार एवं उसके उत्तराधिकारी निर्वाचन कौलिक प्राचीन प्रथा के ऊपर ही निर्भर करता है। खास तौर से उस प्रथा के अनुसार भिन्न वंशीय व्यक्ति का(दौहित्र आदि का) सिंहासन का हकदार होने का अधिकार न पहले था और न अब है।

प्राचीन काल में(राजमाला के प्रथम लहर के अन्तर्भूक्ति के समय) राजा के ज्येष्ठ पुत्र राज्याधिकारी हुए। ज्येष्ठ के अभाव में उनके परिवर्ती पुत्र को सिंहासन पर बैठाया गया। राजा का अगर पुत्र न हो तो भ्राता का दावा अग्रगण्य होता था। कई दृष्टान्त में इसका व्यतिक्रम हुआ भी है तो वह कौलिक प्रथा नहीं है। किन्तु राजा निर्वाचन के विषय में प्रजा(प्रकृतिपुन्ज) की असाधारण क्षमता थी और उस अमोघ क्षमता के समक्ष अनेक जगहों पर

कौलिक प्रथा क्षुण्ण हुई है। यह विषय पूर्वाभाष में आलोचित होने पर यहाँ पर पुनः उसका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होगा।

पैतृिक धन विभाग प्रणाली — उस समय ज्येष्ठ पुत्र राज्याधिकारी होने पर भी राजाओं के पैतृिक अर्थ के ऊपर सभी पुत्रों का अधिकार था। नवीन नरपति उस धन के दो भाग और दूसरे भ्राताओं के एक एक भाग के हकदार होते थे। महाराज त्रिलोचन की संचित धन राशि का उनके पुत्रों में इसी नियम से विभक्त किया गया था।(1)

राज्यभिषेक पद्धति

पूर्वकृत्य कार्य — चन्द्रवंशीयों के चिर प्रथानुसारे त्रिपुरेश्वर गण राज्यभिषेक के पहले दिवस अधिवास, संयम और भूमि शयन करते है। राजा के दो नाम को लक्ष्य कर दीपाधार में दो दीप जलाये जाते थे। जिस नाम का दीप ज्यादा उज्जवल होता है, उसी नाम को नरपति ग्रहण कर नरपति अभिषेक के दिन प्रातः कृत्यादि सम्पादन करते हैं। स्थापित नव घट में गणेश, विष्णु, शिव, पार्वती एवं इन्द्र की अर्चना के बाद होम सम्पादन के पश्चात् सिंहांसन की अर्चना की जाती है। इसके अलावा अभिषेक के विषय में प्रत्येक शुभ कार्य में वंश के आदि पुरुष चन्द्र की अर्चना होती है।(2)

---

(1) दाक्षिण खण्ड 34पृष्ठ दृष्टव्य

(2) ये सभी कार्य सही रूप से शास्त्र सम्मत तरीके से संपन्न होते है। महर्षि नारद के प्रश्नोत्तर में पितामह ब्रह्मा ने राज्याभिषेक पद्धति के विषय में जो कुछ कहा है। उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वया यत् पृच्छतेऽधुना।
अत्र यद् यद् विधानं तदुच्यते साम्प्रतं त्वयि।।
कृत्वा पूर्वदिने भूमिशय्याधिवास संयमान्।
आधारे ज्वालयित्वातु दीपौ नाम द्विधा लिखेत्।।
तत्र प्रज्वलितं यत्स्यान्नाम्ना तेन परे दिने।
प्रातर्वृध्यादिकं कृत्वा विधिवद्धातु निर्मितान्।।
स्थापयित्वा नव घटान् गणेशादीन् प्रपूजयेत्।
शक्तियुक्तं महेशानं बिष्णुं शक्रुं तथार्चयेत्।। इत्यादि

प्रल–121

अभिषेक प्रणली इसके पश्चात भूपति पर्वत शिखर की मृत्तिका द्वारा मस्तक, वल्मिकाग्रस्थ मृत्तिका द्वारा कर्णद्वय, मनुष्य लोक मृत्तिका द्वारा बदन, इन्द्रालय के मृत्तिका द्वारा ग्रीवा, नृपालय के मृत्तिका द्वारा हृदय, हस्ती दन्त धृत उखाड़ी गई मृत्तिका द्वारा दक्षिण बाहु, बृष श्रृंग द्वारा उत्पादित मृत्तिका द्वारा वाम भुज, सरोवर की मृत्तिका द्वारा पृष्ठ देश, वेश्यालय की मृत्तिका द्वारा कमर, यज्ञ स्थान की मृत्तिका द्वारा दोनों उरुद्वय, गोशाला की मृत्तिका द्वारा दोनो जानुद्वय(घुटना) , अश्वशाला के मृत्तिका द्वारा दोनों जंघाद्वय एवं रथ चक्र की मृत्तिका द्वारा चरण द्वय का मार्जन और शौचादि क्रिया के पश्चात पंच गव्य द्वारा मस्तक को सिक्त करते हैं। इसके पश्चात धृत पूर्ण स्वर्ण कुम्भ लेकर ब्राह्मण पूर्व की ओर से, दुग्ध पूर्ण रौप्य घट लेकर क्षत्रिय दक्षिण की ओर से, दधि पूर्ण ताम्र कुंभ लेकर वैश्य उत्तर की ओर से, एक जल पूर्ण मृत्तिका घड़ा लेकर शुद्र पश्चिम दिशा से, घी,दूध, दही और पानी द्वारा राजाओं को अभिषिक्त करते हैं।(1) इसके पश्चात राजा गंगा, यमुना आदि सप्त तीर्थों के जल द्वारा स्नान होकर नया यज्ञोपवीत और राज परिच्छद धारण पूर्वक सात बार सिंहासन की प्रदक्षिण करके तब जाकर उस सिंहासन पर बैठते हैं। इसके बाद ब्राह्मणगण, ऋत्विक व वैदिक मन्त्रोचारण पूर्वक स्वर्ण घट के शान्ति जल से सिंचन द्वारा अभिषेक क्रिया का सम्पादन किया जाता था।

राजचिन्ह धारण और मुद्रा प्रस्तुत अभिषेक काल में राजा के मस्तक पर श्वेत छत्र धारण किया जाता था। हनुमान ध्वज, दण्ड, चन्द्र बाण, त्रिशूल बाण, छत्र, आरंगी, मीन–मानव, ताम्बुल–पत्र(पान), हस्त चिन्ह(पंजा) श्वेत–चामर और मयूरपुच्छ इत्यादि धारण कर निर्धारित वंश सम्भूत व्यक्ति गण सिंहासन के पास खड़े रहते थे एवं सिंहासन के सामने षटत्रिंशत शालग्राम–चक्र स्थापन किया जाता था। इस समय राजा और रानी के नामांकित स्वर्ण और चाँदी की मुद्रा बनाया जाता था।

---

(1) इस विषय में शास्त्रोक्त विधान है।
पर्वताग्र मृदातावन्मूर्द्धानं शोधयेनृप।
वल्मीकाग्र मृदाकर्णो बदनं केशवालयात्।।
इन्द्रालय मृदाग्रीवां हृदयन्तु नृपाजिरात्।
करिदन्तोधृत मृदादक्षिणन्तु तथा भूजम्।।
वृष शृगोंद्भव मृदा वामं चैव तथा भूजम्।
सरो मृदा तथा पृष्ठ मुदरं संगमान्मृदा।।
नदीतटद्वय मृदा पार्श्वे संशोधयेत् तथा।।
वेश्याद्वार मृदाराज्ञः कटिशौचं तथा भवेत्।
यज्ञस्थानात्तथैबोरू गोष्ठानाज्जानुनी तथा।।

प्रल–122

पीठ देवी

पीठ प्रतिष्ठा का मूलसूत्र शास्त्रोक्त महापाठ का विवरण हिन्दू समाज के लिए अविदित नहीं है। इस समय विभिन्न धर्मावलम्बियों के भीतर भी बहुत से लोग इसके विवरण से अवगत हैं। दक्ष प्रजापति के शिवहीन यज्ञानुष्ठान पीठ–प्रतिष्ठा का मूल कारण है। इस कारण के विषय में मतद्वैत है। श्री श्रीमद्भागवत्, बृहद्धर्म पुराण, नारद पंचरास्त्र, महाभागवत पुराण, कालिका पुराण और शिव पुराण आदि विविध पुराण और तन्त्र में अल्पाधिक मात्रा में उस दक्षयज्ञ का उल्लेख मिलता है। किसी किसी ग्रन्थ के मत से भृगु के यज्ञ में समवेत देव सभा में महेश्वर ने दक्ष प्रजापति का अभिवादन न करने पर दक्ष कुपित होकर जामाता को यज्ञ भाग से वंचित करने के अभिप्राय से शिवहीन यज्ञ का अनुष्ठान किया था।(1) किसी किसी ग्रन्थ के अनुसार कपाली और भिखारी शंकर को अभिमानी दक्ष चिरकाल से ही घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसी घृणावश विद्वेष से प्रेरित होकर उन्होंनें शिवहीन यज्ञ प्रारम्भ किया था।(2) पुनः किसी किसी ग्रंथ के अनुसार शिव द्वारा अत्याचारित होने की आशंका को दूर करने के लिए प्रजापति इस यज्ञ में व्रती हुए थे।(3) जो भी कारण हो दक्ष ने विराट यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में शिव को छोड़ कर त्रिभुवन के सभी को आमंत्रित किया गया था। दाक्ष्यायनी (सती) ने यज्ञ–वार्ता सुनकर पितृ भवन में जाने के लिए व्याकुल भाव से शंकर जी की अनुमति प्रार्थना करने लगी। भगवान शंकर इस ग्लानिमय प्रस्ताव पर पहले असहमति जताकर भी गौरी की ऐकांतिक

अश्वस्थानात्तथा जंघे रथचक्र मृदांध्रिके।
मूर्द्धानं पंचगव्येन भद्रासन गतं नृपं।।
अभिषिन्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः।
पूर्वतो हेमकुम्भेन धृतपूर्णेन ब्राह्मणः।।
रोप्य कुम्भेन याम्येच क्षीर पूर्णेन भूमिपः।
दध्नान्च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च।।
मृन्मयेन जलेनोदक् शुद्रश्चाप्यभिषेचयेत्।
ततोऽभिषेकं नृपतेर्बहब च प्रबरो द्विजः।। इत्यादि

अग्नि पुराण 218 अध्याय 12–20 श्लोक।

राज्यभिषेक के बारे में विस्तृत विवरण यहाँ देना सम्भव नहीं है। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, विष्णु धर्मोत्तर, अग्नि पुराण और देवी पुराण आदि ग्रन्थों में इस बारे में बहुत से विवरण मिलेगें।

(1) श्रीमद्भागवत् चतुर्थ स्कन्ध द्वितीय और तृतीय अध्याय।
(2) कालिका पुराण– सोलहवां अध्याय।
(3) बृहद्धर्म पुराण– मध्य खण्ड , 6 अध्याय।

व्याकुलता देखकर अन्त में शिवजी को अनुमति देनी पड़ी(1)। सती पितृ गृह चली गई। उन्हें पाकर दक्ष भवन आनन्द कोलाहल से गूँज उठा। यह कोलाहल यज्ञ सभा तक व्यापत हो गया और दक्ष के कर्ण गोचर हुआ। उन्होनें कन्या की आगमन वार्ता को सुनकर क्षोभ और क्रोध से अधीर होकर सती को यज्ञ सभा में बुलाया। क्रोधांध पिता हिताहित ज्ञान विवर्जित दक्ष ने सती के सामने सभा मध्य कठोर भाषा में शंकर जी की निन्दा करने लगे। पतिप्राणा सती से शिव निन्दा सही नहीं गई और शिव नाम स्मरण पूर्वक सभा स्थल में ही जीवन विर्सजन किया उनकी परित्यक्त देह यज्ञ कुण्ड के एक किनारे पड़ी रही।

सती के देह त्याग की वार्ता सुनकर महारूद्र ने क्रोध से प्रलय की भीषण ध्वनि की। उनकी अग्निमय पिंगल जटा से उत्पन्न वीर भद्र द्वारा दक्ष के साथ दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त कर दिया इसके बाद देवताओं की प्रार्थना पर भगवान शंकर ने दक्ष को पुनजीवन तो दिया किन्तु शिव निन्दक दक्ष को निज मुण्ड के बदले छाग मुण्ड प्राप्त हुआ।

क्रोध और शोकाभिभूत शंकर जी ने सती की देह को अपने कन्धे पर लेकर तांडव नृत्य शुरू किया उनके पद भार से पृथ्वी जब रसातल की ओर जाने लगी तब देवराज सृष्टि लोप हो जाने की आशंका से आतंकित हो उठे। भगवान विष्णु ने यह अनुभव किया कि सती की देह अगर स्कन्ध–च्युत नहीं हुई तो इस प्रलय नृत्य का विराम नहीं होगा। उन्होनें सुदर्शन चक्र द्वारा अलक्षित रूप से सती देह को खण्ड विखण्ड कर दिया उस पवित्र देह के अंग जहाँ जहाँ पड़े, वे सभी स्थान मुक्ति पद महापीठ में परिणित हुए। बृहद्धर्म पुराण में कहा है–

यत्र यत्र सतीदेहभागाः पेतुः सुदर्शनात्।
ते ते देशा धराभागा महाभागाः किलाभवन्।।
तेतु पुण्यतमा देशा नित्यं देव्याहय्धिष्ठिताः।
सिद्धपीठाः समाख्यतो देवानामपि दुर्लभाः।।
महातीर्थानी तान्यासन् मुक्तिक्षेत्रानि भूतले।।

बृहद्धर्म पुराण– मध्य खण्ड दशम् अध्याय।

ममार्थ– "पृथ्वी के जिन जिन स्थानों पर सती के अंग प्रत्यंग गिरे थे वे सभी स्थान विश्वश्रेष्ठतम् पुण्य भूमि है। देवी उन सभी स्थानों में नित्य

(1) महाभागवत् पुराण के अनुसार सती ने शिव को भय प्रदर्शन द्वारा अनुमति प्राप्ति के निमित्त दशमहाविद्या रूप धारण किया था। दूसरे ग्रन्थों में देवी के दस रूप परिग्रह के स्वतन्त्र कारण बताये गये हैं। उन विषयों की आलोचना की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

अधिष्ठिता है— इसलिए उन्हें सिद्धपीठ कहा जाता है। ये सभी स्थान देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। ये सभी स्थान महा तीर्थ हैं और भूतल में ये मुक्तिक्षेत्र हैं।''

त्रिपुरा में पीठ स्थान इस तरह देवी के अंग प्रत्यंग द्वारा भारत के नाना स्थानों में 51 पीठ की प्रतिष्ठा हुई है।(1) उनमें एक पीठ त्रिपुरा में भी है। पीठमालातन्त्र में शिव पार्वती संवाद में एक पंचाशत विद्योतपत्ति में कहा गया है—

त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरा सुन्दरी।
भैरवस्त्रिपुरेशश्च(2) सर्वाभीष्ट फलप्रदः।।

मामार्थ— त्रिपुरा देश में सती का दक्षिण पद गिरने से वहाँ पर पीठ देवी त्रिपुरासुन्दरी एवं त्रिपुरेश भैरव अवतीर्ण हुए है।

पीठ देवी, त्रिपुरा राज्य के प्राचीन राजधानी उदयपुर में प्रतिष्ठित है। वहाँ के विभागीय आफिस से पूर्व दक्षिण कोण एक कोश अर्थात दो मील की दूरी पर एक छोटी सी पहाड़ी पर यह देवालय प्रतिष्ठित है।

त्रिपुरासुन्दरी के मन्दिर देवी का मन्दिर कुछ कालीघाट के जय काली मन्दिर के नमूने पर बना हुआ है। इसका द्वार पश्चिम की ओर है। उत्तर की ओर छोटा सा एक दरवाजा है। यह बाद में खोला गया है, ऐसा अनुमानत प्रतीत होता है। मन्दिर के बाहर का परिमाप 24x24 फुट है और प्रकोष्ठ के भीतर का परिमाप 16x16 फुट है। चारो ओर की दीवार की चौड़ाई आठ फुट की है उँचाई है 75 फुट है। प्राचीन काल की प्रणाली के अनुसार नाति स्थूल(ना मोटा ना पतला) ईंट और उत्तम मसाले से यह मन्दिर बना हुआ है। दीवारें इतनी मजबूत हैं कि दूर से आये कमान के गोले भी आसानी से इसकी कोई क्षति नहीं कर सकते। यह महाराज धन्यमाणिक्य के शासनकाल में निर्मित हुआ था। अतएव धन्यमाणिक्य खण्ड में इस मन्दिर के विषय में विस्तृत विवरण प्रदान किया जायेगा।

त्रिपुरासुन्दरी के मूर्ति का विवरण मन्दिर के भीतर पाषाणमयी कालिका मूर्ति प्रतिष्ठित है। बृहदाकार के एक खण्ड में

---

(1) साधारणतः पीठ स्थान की संख्या 51 मानी जाती है। किसी किसी ग्रन्थ के अनुसार 50 पीठ ही निर्दिष्ट है। देवी भागवत में 108, तन्त्र चूड़ामणी में 51 पीठ स्थान का उल्लेख है। शिवचरित में 51 महापीठ और 26 उप पीठ का उल्लेख है। कुब्जिका तंत्र में सिद्ध पीठों की संख्या 127 बतायी गई है। इस तरह विभिन्न ग्रंथों में बहुत से मत दिखाई देते हैं।

(2) किसी किसी तंत्र के अनुसार भैरव का नाम नल या अनल है। इस तरह के नाम का पार्थक्य होने के कारणों का निर्धारण दुःसाध्य है। कोई कोई पुनः ''भैरवस्त्रिपुरेश'' वाक्य पर निर्भर कर कहते हैं। त्रिपुरा के महाराज ही भैरव स्थानीय है। यहाँ स्वतन्त्र भैरव कोई नहीं है। यह उक्ति नितान्त ही भित्तिहीन है। उदयपुर नगर के करीब भैरव लिंग प्रतिष्ठित है।

प्रल–125

अति उत्कृष्ट कष्टि पत्थर को काटकर मूर्ति निर्मित हुई है। प्रतिमा का सुडौल गठन, कमनीय कांति एवं आनिन्दय सुन्दर मुखावयव के प्रति देखने से प्राचीन काल भास्कर्य नैपुण्य का प्रकृष्ट परिचय मिलता है। हमें इस देवालय एवं गाम्भीर्यमयी देवी मूर्ति दर्शन करके जो विमलानन्द प्राप्त हुआ है वैसे आनन्द हमें कभी कहीं प्राप्त नहीं हुआ।

पहले जिस मन्दिर की बातें उल्लेख की गई हैं वह महाराज धन्यमाणिक्य के द्वारा 1423 शकाब्द में प्रतिष्ठित हुआ। यह चार सौ साल से अधिक प्राचीन कीर्ति है। किन्तु मन्दिराधिष्ठात्री देवी मूर्ति कितनी पुरानी है। यह निर्णय करना मुश्किल है। राजमाला में कहा गया है। इस मन्दिर के निर्माण के समकालीन महाराज धन्यमाणिक्य स्वपनादिष्ट होकर चट्टगाँव से यह मूर्ति ले आये थे। इस विषय में राजमाला में वर्णित है।

आर एक मठ निते आरम्भ कोरिलो।	और एक मठ आरम्भ किया।
वास्तु पूजा संकल्प विषणु प्रीते कोइलो।।	वास्तु पूजा का संकल्प विष्णु को किया।।
भगवती राजाते स्वप्न देखाय रात्रिते।	भगवती ने राजा को रात में दिया सपन।
एई मठे आमा स्थापो राजा महा सत्वे।।	इस मठ में राजा तुम करो मेरा स्थापन।।
चाटिग्रामें चट्टेश्वरी ताहार निकट।	चट्ट गांव में चट्टेश्वरी के निकट।
प्रस्तरेते आमि आछि आमार प्रकट।।	पत्थरों में मैं हूँ करो मुझे प्रगट।।
तथा होइते आनि आमा एई मठे पूजो।	वहां से लाकर तुम इस मठ में पूजो।
पाइबा बहुल बर जेई मते भजो।।	पाओगे बहुत वर जब जिस मत से भेजो।।
* * * * *	* * * *
रसांग मर्दन नारायण पाठाय चट्टले। (1)	रसांगमर्दन(1) नारायण को भेजा चट्टगांव।
स्वप्ने जेई स्थाने देखे मिलिलेक भाले।।	देखा उन्होनें मिल गया वह स्थान।।
उत्सव मंगल बाद्ये राज्येते आनिलो।	उत्सव मंगल वाद्यों से राज्य में ले आये।
सत्वर गमने राजा नमस्कार कोइलो।।	तुरंत जाकर राजा नमस्कार कर आये।।
कोतो दिन पोरे मठ प्रस्तुत होइलो।	कुछ दिनों पश्चात मठ निर्माण हो गया।
पून्याह दिनेते राजा उत्सर्गिया दिलो।।	पूजा के दिन ही राजा ने उत्सर्ग कर दिया।।
(द्वितीय लहर धन्यमाणिक्य खण्ड 30 पृ)	(द्वितीय लहर धन्यमाणिक्य खण्ड 30 पृ)

यह मूर्ति चट्ट गाँव से लाई गयी थी।– राजमाला में इसी का वर्णन है।

(1) रसांग(आराकान) जय करने के पश्चात "रसांग मर्दन" उपाधि प्राप्त की थी। त्रिपुरा के सैनिक विभाग में इस उपाधि को प्राप्त करने के बहुत से उदाहण हैं।

उल्लेख मिलता है। ''त्रिपुर वंशावली'' पुस्तिका में इस विषय में और भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है–

राधाकृष्ण स्थापिबारे मठ आरंभिलो।
चट्टेश्वरी देवि आसि स्वपन देखाइलो।।
ए मठे आमाके राजा करह स्थापन।
नतु अब्याहति तोमार नाहि कदाचन।।
एइ मठे यदि आमा स्थापन ना करो।
तबे जानो राजा तोमार नाहिक निस्तार।।
चट्टग्रामे सदरघाटे एक बृक्षमूले।
पूजये आमाके सदा मगध सकले।।
सेई स्थान होइते शीघ्र आनह आमाय।

त्रिपुर वंशावली।

अर्थात, ''राधा कृष्ण की मूर्ति स्थापना के लिए मठ का काम आरम्भ किया। चट्टेश्वरी देवी ने आकर स्वप्न में आदेश दिया। उन्होनें कहा कि ''हे राजा, इसी मठ में तुम मेरी स्थापना करो, नहीं तो कभी भी तुम्हारी अव्याहति(बांच नहीं पाओगे) नहीं है– यदि इस मठ में हमारी स्थापना नहीं करोगे तो। हे राजा, यह अच्छी तरह से जान लो कि बिना मेरी स्थापना से तुम्हारा निस्तार नहीं है। चट्टगाँव के सदरघाट पर एक वृक्ष के नीचे हूं, मुझे सभी मगध के लोग पूजें व मुझे उस स्थान से शीघ्र ले कर आओ।''

यह पहले कही हुई मन्दिर निर्माण समकालीन है क्या? अतएव इसके द्वारा मूर्ति के चार सदी की प्राचीनत्व का प्रमाण मिलता है। त्रिपुरा में ले आने के कुछ काल पहले इस मूर्ति का निर्माण हुआ था। मघगणों के द्वारा अर्चिता होने के पहले कहाँ किस वंश के द्वारा कितने दिनों तक ये अर्चिता हुई है एवं चट्ट गाँव में ही कितने दिनों तक थी, ये सभी कुहरे में ढँके तथा जानना असम्भव सा है। इसी कारण से विग्रह का प्राचीनत्व निर्धारण करना असम्भव हो गया है। वर्तमान मन्दिर का निर्माण और मूर्ति स्थापना के पूर्व इस महापीठ में दूसरा कोई मन्दिर या कोई मूर्ति प्रतिष्ठित थी या नहीं एवं पीठ देवी की सेवा या पूजा की कैसी व्यवस्था थी, इस समय इस बारे में कोई भी नहीं जानता। उस समय मन्दिर या मूर्ति प्रतिष्ठित न रहने पर पीठ स्थान अर्चना के बिना नहीं था। यह अति सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस समय भी किसी किसी पीठ स्थान में मूर्ति नहीं है। किन्तु सेवा पूजा की व्यवस्था है। यहाँ पर भी इस तरह की व्यवस्था थी। इस तरह की धारणा सभी के मन में है।

सुख सागर देवालय के सामने खड़े होकर पश्चिम की ओर देखने पर एक सुविस्तीर्ण प्रांतर(मैदान) नयन गोचर होता है। इस प्रांतर का नाम ''सुखसागर'' है। पहले यह गहरा जलमय बृहत सरोवर था। गिरि–श्रृंग से लाई गई मिट्टी से क्रमशः यह भरता गया और अब नयन तृप्तिकर श्यामल शस्य क्षेत्र में बदल गया है। पहले यह सुख सागर जलपूर्ण रहने पर नगर की और राज प्रसाद के दीप मालाओं के प्रतिबिम्ब से भूषित होकर एवं सैनिक विभाग के रणतरिओं से और भूपतिवृन्द के विलास तरणि समूहों का अपने वक्ष स्थल पर धारण कर अपूर्व श्रीसम्पन्न था। उसकी इस समय हम उस अतीत के ऐश्वर्य की कल्पना भी नहीं कर सकते।

प्रल—126

(Pratham leher-126) चित्र



पीठदेवी श्रीश्रीत्रिपुरासुन्दरी

प्रल–127

कल्याण सागर मन्दिर के पूर्व की ओर एक सरोवर है। यह सरोवर अति प्राचीन होने पर भी इसमें आर्बजन्य नहीं है। एवं जल बहुत ही स्वच्छ है। इस सरोवर को महाराज कल्याणमाणिक्य के शासन काल में खनन किया गया है और इसका नाम कल्याण सागर है। यह सरोवर 224 गज लम्बा और इसकी चौड़ाई 160 गज है। कुछ कम या अधिक एक द्रोण भूमि में इसका खनन कार्य हुआ है। इस सागर को विश्व कोष अभिधान में ''डिम्बाकृति''(अण्डाकार) लिखा गया है। यह उक्ति नितांत ही भ्रमात्मक है। इस बारे में राजमाला में लिखा गया है–

सेई काले महाराजार स्वप्ने आदेश।	उसी समय महाराज को हुआ स्वप्नादेश।
कालिका देबीए स्वप्न देखाय विशेष।।	कालिका देवी ने स्वप्न दिखाया विशेष।।
आमा सेबा कष्ट होय जलेर कारणे।	मेरी सेवा में होता है कष्ट जल के कारण।
जलाशय देबराजा आमा सन्निधाने।।	जलाशय बना दो राजा मेरे सन्निधान।।
रात्रिकाले महाराजा देखये स्वप्न।	रात्रि में देखा राजा यह विचित्र स्वप्न।
प्रभाते कहिछे राजा स्वप्नेर कथन।।	प्रभात समय कहा सबसे स्वप्न का कथन।।
ब्राह्मण पंडित स्वप्न व्याखान कोरिलो।	ब्राह्मण पंडित ने किया स्वप्न का व्याखान।
सिद्धान्त बागीश आदि जतो द्विज छिलो।।	सिद्धान्त वागीश आदि जितने थे द्विज गण।।
हरिष होइया नृप कहे सेई क्षण।	सहर्ष कहा नृप ने सबसे उसी क्षण।
पुष्पकर्णी खनिते आज्ञा कालीर सदन।।	पुष्पकर्णी खनन की आज्ञा काली के सदन।।
बास्तु पूजा पोरे पुष्पकर्णीर आरमभंन।	वास्तु पूजा पश्चात् शुरू तालाब का खनन।
उदयपुर कालिकार समीपे तखन।	उदयपुर काली के समीप उसी क्षण।
जलाशय उत्सर्गिल विधान तत्पर।।	जलाशय उत्सर्ग किया शास्त्र के विधान।।
पुष्कर्णीर नाम राखे कल्याण सागर।	जलाशय का नाम रखा कल्याण सागर ।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड67पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड67पृ

अर्थात, ''उस समय महाराज को स्वप्न में आदेश हुआ। कालिका देवी ने ही यह विशेष स्वप्न दिखाया और कहा '' जल के अभाव में हमारी सेवा में कष्ट होता है। हे राजा– मेरे करीब एक जलाशय बनवा दो। रात में महाराजा ने यह स्वप्न देखा और दूसरे दिन सवेरे ही उन्होनें इस स्वप्न का बयान किया। ब्राह्मण पण्डितों ने स्वप्न पर विचार किया। उस समय सिद्धान्त बागीश आदि जितने भी द्विज वहाँ उपस्थित थे, सभी ने शीघ्रातिशीघ्र वहाँ सरोवर खनन के लिए कहा। खुश होकर नृप ने वहाँ उसी क्षण पुष्करिणी खनन के लिए आदेश दिया। काली के मन्दिर के करीब जलाशय विधि विधान के साथ पुष्करिणी को उत्सर्ग कर उसका नाम रखा गया कल्याण सागर।''

हम लोागों ने चारों ओर घूम फिर कर देवालय और देवी की अर्चना और दर्शन किया। अर्चना के अन्त में महंत के द्वारा बुलाये जाने पर मछलियों का खेल देखने के लिए उस सरोवर के करीब उपस्थित हुए। देवालय के पुजारी महाशय ने कुछ चावल और कुछ मांस के टुकड़े लेकर आगे चलने लगे। उन चावलों को और मांस टुकडों को पानी में उछाल दिया। तालाब का पानी इतना स्वच्छ था कि हम घाट के करीब खड़े होकर पानी के नीचे की मिट्टी तक देखते थे। पुजारी ठाकुर ने ''आय आय'' कहकर जोरों से पुकारने के साथ साथ झुँड झुँड छोटी बडी नाना जाति की मछलियां घाट के आस पास आकर वे सभी घूमने लगी। उनमें बृहदाकार कई शाल मछलियों की बात उल्लेखनीय होकर रह गई। कुछ समय के पश्चात पानी को आलोडित करके एक विकट आकार का एक जीव आ रहा था, देखा गया। देवालय का एक भृत्य(टलुआ)

प्रल—128

उल्लास भरे स्वर में कहा, ''वह कच्छप आ रहा है।'' क्षण काल में ही विशालकाय कूर्म इधर उधर देखते श्री मन्थर गति से घाट के किनारे आकर मांस खण्डों के भक्षण के निमित्त प्रवृत्त हुआ। पहले का भृत्य घुटने तक पानी में उतरकर कच्छप के पिछले हिस्से को दोनो हाथों से उठाया और इसके विशाल वपु(शरीर) का प्रायः आधा हिस्सा पानी के ऊपर उठाकर हमें दिखाया। इससे कच्छप में बिन्दु मात्र भी भय की चंचलता दिखाई नहीं दी। इस नर कच्छप को इस प्रकार के मेल मिलाप को देखकर प्राचीन युग के अहिंस भावपन तपोवन का पवित्र चित्र आँखों के सामने हृदय उपर लिख उठा। इस तरह के बृहदाकार कूर्म का दर्शन पहले भी हमने नहीं किया था। कूर्म—वर की कांति पुष्टि और विशाल वपु को देखकर ऐसा लगा था जैसे धरा भार वही कूर्म राज के घनिष्ट जाति की ही है।

यह पीठ स्थान(उदयपुर) कुमिल्ला नगरी(वर्तमान बंगलादेश में) के पूर्व की ओर 13 कोश अर्थात 26 मील की दूरी पर अवस्थित है। त्रिपुर राज्य के सोनामुडा नगरी होकर जाने का राज मार्ग है। गोमती नदी के जलपथ से भी आना जाना हो सकता है। वह स्थान उस नदी के दक्षिण तीर पर स्थित है।

सेवा पूजा का बन्दोबस्त पीठ देवी के सेवा और पूजा का भी बन्दोबस्त अच्छा है। महंत के तत्वाधान में पुजारियों द्वारा पाला बदलकर पूजा अर्चना का कार्य सम्पादन किया जाता है। राजसरकारी चार सिपाही, अनेक सेनानी के अधीन देवालय में प्रहरी के कार्य में नियुक्त है। प्रतिदिन अन्न व्यंजन, पूड़ी, पायस मिष्ठान्न इत्यादि विविध उपचारों से देवी का भोग होता है। रोज एक बकरा और हर अमावस्या को पाँच बकरा और एक भैंस की बलि दी जाती है। पहले नरबलि की भी व्यवस्था थी, उन दिनों देवी के समक्ष असंख्य मनुष्य जीवन की आहुति प्रदान की गई थी। आज भी सरकारी निर्धारित प्रजा के अलावा सदा दूरागत यात्री गण छागादि पशुओं द्वारा देवी की अर्चना की जाती है। हर रोज यहाँ पर बहु संख्यक नर नारियों का समागम होता है। तीर्थ पर्यटक सन्यासियों का प्रतिदिन ही आगमन होता है। यहाँ आगन्तुकों के प्रसाद लेने और रहने का बन्दोबस्त है। देवी अर्चना के व्यय—भार निर्वाह हेतु एवं पुजारियों को वृत्ति स्वरूप राज सरकार की ओर से बहुत सी जगह प्रदान की गई है। स्थानीय कलेक्टर सदा परिदर्शन करते रहते है और सुव्यवस्था में सदा तत्पर रहते हैं।

भैरव लिंग नगर के उपकण्ठ में ही भैरव लिंग प्रतिष्ठित है। पहले ही कहा गया है कि भैरव का नाम किसी किसी तन्त्र मे ''त्रिपुरेश'' कहा गया है तो किसी किसी तन्त्र में उन्हें नल या अनल भी लिखा गया है। इस तरह के भिन्न भिन्न नामों का कारण निर्धारण करना दुःसाध्य है। इस शिवालय को

प्रल–129
साधारणतया ''महादेव बाड़ी'' कहा जाता है। ईंट से बनाये गये इस मन्दिर में विग्रह प्रतिष्ठित है।

शिव चतुर्दशी मेला

महाराज धन्यमाणिक्य इस मन्दिर के निर्माता और विग्रह के स्थापयिता है।(1) देवालय के चारों ओर प्राचीर है। यह प्राचीर इतना चौड़ा है कि उसके ऊपर से आदमी आसानी से चल फिर सकता है। भीतर से होकर प्राचीर पर चढ़ने के लिए सीढी भी है। सिंह द्वार के सामने(दक्षिण भाग में) बड़ा सा आहाता है। हर साल शिव चतुर्दशी के उपलक्ष्य में यहाँ 15 दिवसीय मेला लगता है।

विजय सागर

मन्दिर के सामने फैले इस मैदान के करीब दक्षिण दिशा में महाराज विजयमाणिक्य के समय खोदा गया ''विजय सागर'' स्थित है। यह जलाशय 382 गज लम्बा और 237 गज चौड़ा है। उसके गर्भ में किंचित ढाई द्रोण भूमि है। (70 बीघे के करीब)

मन्दिर मध्य में काले पत्थर की बनी हुई शिव लिंग की मूर्ति प्रतिष्ठित है। विश्व कोश संकलन करने वाले महाशय ने ''भैरव लिंग श्वेत प्रस्तरोद्‌भुत'' कहकर और एक गलती की है।

इस पवित्र तीर्थ क्षेत्र द्वारा त्रिपुर राज्य, खास तौर उदयपुर भारत विख्यात हो गया है एवं हिन्दुओं में विशेष गौरावान्वित हो गया है। विश्वासी हिन्दुओं का विश्वास है कि एकमात्र त्रिपुरासुन्दरी की कृपा से यह हिन्दू राज्य अनन्त घात प्रतिघातों को सहकर भी स्मरणातीत काल से अपने अस्तित्व की रक्षा करने में सक्षम रहा है।

कुल देवता

राजमाला के प्रस्तावना में लिखा है–

दुर्लभेन्द्र नाम छिल चन्ताई प्रधान।	दुर्लभेन्द्र नाम था चन्ताई प्रधान।
चतुर्दश देबता पुजाते दिव्य ज्ञान।	चतुर्दश देवता पूजा में दिव्य ज्ञान।
राजमाला प्रल 3पृ	राजमाला प्रल 3पृ

ये ही चतुर्दश देवता ही त्रिपुर राजवंश के कुल देवता हैं। इस देवता के विषय में आलोचना की आवश्यकता है। यहाँ संक्षेप में आलोचना की जा रही है।

---

(1) आर एक मठ तबे अपूर्व गठिलो।
सेइ मठे महादेव स्थापन कोरिलो।।
त्रिपुर वंशावली।

अर्थात–और एक अपूर्व मठ का गठन किया एवं उसी मठ में महादेव की स्थापना की।

प्रल–130

महाराज त्रिपुर के अत्याचार और निधन

महाराज दैत्य के पुत्र त्रिपुर नितान्त क्रूर कर्मा अनाचारी एवं उद्धृत स्वभाव के थे। दैत्य पुत्र के दुश्चरित्रता के लिए बहुत क्षुण्ण होकर भी किसी तरह के प्रतिकार करने में समर्थ नहीं हो सके। कालक्रम में अपने वार्धक्य में पुत्र के हाथों राज्य भार अर्पण कर वानप्रस्थ का अवलम्बन किया।

गुरूत्वपूर्ण दायित्व राज्य भार प्राप्ति के बाद भी त्रिपुर के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दुर्दमनीय रण–स्पृहा प्रजा पीड़न, लघु दोष पर प्राण दण्ड, अविचार, परराज्य और परस्त्री हरण आदि अनाचारों से प्रजागण एवं करीबी राजागण विषम विपन्न और संत्रस्त हो उठे। सर्वमंगलाकर महेश्वर, उत्पिड़ीत प्रजाओं की दुर्गति देखकर व्यथित हो उपद्रव शान्ति के लिए द्वापर के शेष भाग में सहांरक मूर्ति में आविर्भूत हुए एवं स्वहस्त से त्रिपुर का संहार किया।(1)

महाराज त्रिपुर के निधन के विषय में राजरत्नाकर का मत

राजरत्नाकर ग्रन्थ में महादेव द्वारा त्रिपुर निहत का जिस भाव से वर्णित किया गया है, उससे यह आभास होता है कि शिव द्वेषी और अत्याचारी त्रिपुर के प्रति राजमंत्री और प्रजागण अतिशय उत्वक्त हो उठे थे। यहाँ तक कि राजा को संहार करने के लिए उनके चिर शत्रु हेड़म्बपति के भी शरणापन्न होने का प्रसंग भी आता है। हेड़म्बेश्वर ने सोचा ''ये सभी महाराज त्रिपुर के विरूद्धाचरण नकली भाव दिखाकर मेरे मनोगत भाव को जानने के लिए आये हैं। मैं अगर अपना मनोगत भाव प्रकाश करता हूँ तो विपद की आशंका है।'' यह सोचकर हेड़म्बेश्वर ने कोपान्वित होकर उन्हें अपने राज्य से बहिष्कृत कर दिया।

इसके बाद प्रजा वर्ग त्रिपुर राजमंत्री नरसिंह के यहाँ गये। मंत्री ने कहा ''महादेव की कृपा के बिना परित्राण का और कोई उपाय नहीं है। राजा जब तक राजधानी में रहेगें तब तक हम इस कार्य में लिप्त नहीं होगें। कारण हम उनकी अकल्याण कामना कर रहे है। यह बात अगर उनके कानों तक गई तो हमारी विपदा और भी घनीभूत हो जायेगी। राजा मृगया प्रिय है। वे जब मृगया के लिए व्यपदेश जायेगें तब हम महादेव की अर्चना करेगें।''

इसके पश्चात वही उपाय ही किया गया। आशुतोष ने प्रजाओं के अर्चना से संतुष्ट होकर अनाचारी त्रिपुर का संहार कर उनकी प्रार्थना को पूर्ण किया।(2)

राजरत्नाकर के इस वर्णना से कुछ लोगों का अनुमान है कि विद्रोही प्रजा गण

....

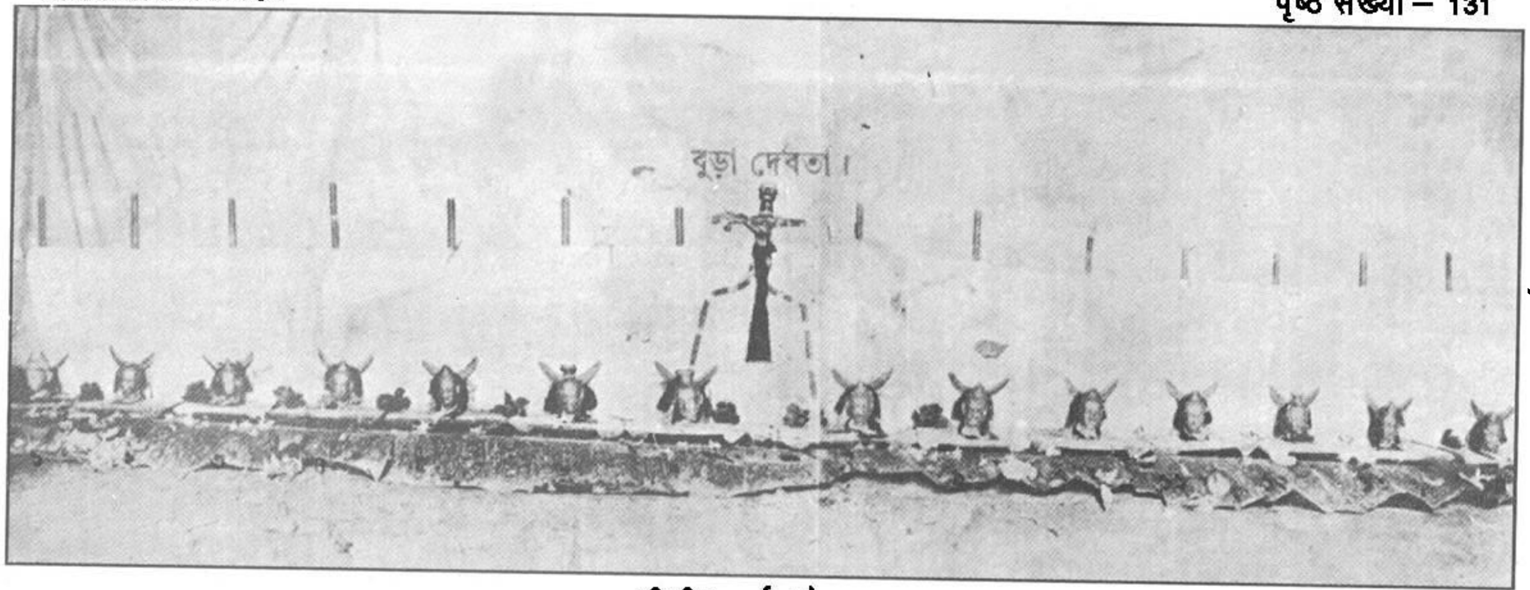
(1)

मारिलेक शूल अस्त्र ह्रदय ऊपर।	मारा शूल अस्त्र ह्रदय ऊपर।
शिव मुख हेरि राजा त्याजे कलेवर।।	शिव मुख देख राजा त्यागे कलेवर।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 11पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 11पृ

(2) राजरत्नाकर दक्षिण विभाग द्वितीय सर्ग

प्रल–131

(Pratham leher-131) चित्र



श्रीश्री चतुर्दश देवता

1. हर(शंकर) 2. उमा(शंकरी) 3. हरि(विष्णु) 4. मा(लक्ष्मी) 5. वाणी(वाग्देवी) 6. कुमार(कार्तिकेय) 7. गणपा(गणपाल या गणेश) 8. विधि(ब्रह्मा) 9. क्षा(पृथ्वी) 10. अब्धि(समुद्र) 11. गंगा(मागीरथी) 12. शिखी(अग्नि) 13. काम(प्रद्युम्न) 14. हिमाद्रि(हिमालय पर्वत)

प्रल—131

महाराज त्रिपुर का अरण्य मध्य वध करके वे महादेव के द्वारा निहत होने की बात प्रचार किया था। इस बारे में पूर्व भाषा में विशेष रूप से आलोचना की गई है।

इसके बाद राजवंश में राज्य भार ग्रहण के योग्य कोई व्यक्ति न होने पर सिंहासन शून्य हो गया।(1) महामारी दुर्भिक्ष और लून्ठन इत्यादि विभिन्न तरह के उपद्रव से थोड़े ही दिनों में राज्य अधःपतन की ओर चल पड़ा। प्रजागण सहाय सम्बलहीन होकर भिक्षावृत्ति अवलम्बन करने पर मजबूर हो गया। उन्होनें देखा अत्याचारी राजा से अराजक देश अधिक भयंकर होता है। कोई उपाय न देखकर कोई एक प्रजा रंजक राजा को प्राप्त की आशा से राज मंत्री आदि प्रजाओं को साथ लेकर शूलपाणि की अर्चना में प्रवृत्त हुए। भगवान आशुतोष विपन्न प्रजाओं की अर्चना से संतुष्ट होकर पूजा स्थान में अविर्भूत हुए उनके वर प्रभाव से महाराज त्रिपुरा के यहाँ त्रिलोचन नाम का एक पुत्र भूमिष्ठ हुआ और बाद में त्रिपुरा का शासन भार सम्भाला।

इस वर को प्रदान करने के समय महादेव ने आदेश दिया था—

चतुर्दश देव पूजा कोरिबो सकले।	चतुर्दश देव पूजा करें जैसे सभी।
आषाढ़ मासेर शुक्ला अष्टमी होइले।।	आषाढ़ माह की शुक्ला अष्टमी हो जभी।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15पृ

अर्थात, ''चतुर्दश देव पूजा सभी मिलकर करोगे। आषाढ़ महीने शुक्ल अष्टमी तिथि होने पर यह पूजा शुरू होगी।''

चतुर्दश देवता का विवरण इस दैववाणी के अनुसार महाराज त्रिलोचन के शासनकाल में चतुर्दश देवता की प्रतिष्ठा हुई। चतुर्दश देवताओं में आने वाले देव और देवियों के नाम हैं—

''हरोमाँ हरि माँ वाणी कुमारो गणपा विधिः।
क्ष्नाब्धिर्गंगा शिखी कामो हिमाद्रिश्च चतुर्दश।।''

''राजमालिका''

अर्थात, ''शिव, दुर्गा, हरि, लक्ष्मी, वाग्देवी, कार्तिकेय, गणेश, ब्रह्मा, पृथ्वी, समुद्र, गंगा, अग्नि, कामदेव और हिमाद्रि— यह चतुर्दश देवता हैं। संस्कृत राजमालिका

अन्यत्र लिखा गया है—

शंकरन्च शिवानीन्च मुरारीं कमलां तथा।
भारतीन्च कुमारन्च गणेशं मेधसं तथा।।

---

(1) परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह महाशय लिखते हैं— महादेव के द्वारा त्रिपुर के निधन पर विधवा रानी हीरावती सिंहासनरुढ़ होकर यथा नियम से राज शासन करने लगी।

कैलाश बाबू की राजमाला दूसरा भाग— दूसरा अध्याय 16 पृ।

यह अनुमानिक कथा है। राजमाला में इसका कोई उल्लेख नहीं है और कैलाश बाबू भी कोई प्रमाण नहीं दे सके।

प्रल–132

धरणीं जान्हवीं देवीं पयोधिं मदनं तथा।
हुताशन्च नगेशन्च देवतास्ताः शुभाबहाः।।
संस्कृत राजमाला।

हर उमा हरि मा वाणी कुमार गणेश।
ब्रह्मा पृथ्वी गंगा अब्धि अग्नि से कामेश।।
हिमालय अंत कोरि चतुर्दश देवा।
अग्रेते पूजिबो सूर्य पाछे चन्द्र सेवा।।
राजमाला।

अर्थात, "शिव, उमा, हरि, लक्ष्मी, वाग्देवी, कार्तिक, गणेश, ब्रह्मा, पृथ्वी, समुद्र, गंगा, अग्नि, कामदेव और हिमाद्रि यही चतुर्दश देवता हैं। पहले सूर्य पूजा बाद में चन्द्रादि सेवा होगी।"

ऊपर दिये गये श्लोकों की आलोचना से यह स्पष्ट हो उठता है कि शिव, दुर्गा, हरि, लक्ष्मी, वाग्देवी, कार्तिकेय, गणेश, ब्रह्मा, पृथ्वी, समुद्र, गंगा, अग्नि, कामदेव और हिमाद्रि इन्ही चौदह देवताओं के समष्टि को चतुर्दश देवता कहा जाता है। इन सभी देवताओं सिर ही अर्चित होता है। सभी सिर अष्ट धातु के बने हुए हैं। इनमें महादेव जी का सिर रजतमय है। अन्य सभी सिर सुवर्ण मण्डित है। इन देवताओं की प्रतिष्ठा के बारे में श्रेणीमाला ग्रन्थ में लिखा है–

त्रिलोचन महाराजार शिवेर आज्ञाते।	त्रिलोचन महाराजा ने शिवे आज्ञा से।
चतुर्दश देवता स्थापिल एकत्रेते।।(1)	चतुर्दश देवता स्थापित किए एकत्र करके।।(1)

अर्थात, महाराज त्रिलोचन ने शिव की आज्ञा से चतुर्दश देवता की एकत्र में अर्थगत एक साथ स्थापना की।

चतुर्दश देवताओं के संबन्ध में भ्रान्त मत इन विग्रहों के बारे में कैलाश बाबू ने एक नई बात कही है। वे कहते हैं–

प्रवाद के अनुसार महाराज दाक्षिण त्रिवेग से भागते समय चतुर्दश देवताओं के सिर को ले आये थे। उसी समय से दाक्षिण की सन्तानें उसी चतुर्दश देव मुण्ड की पूजा करती आ रही है। दृकपति के वंशधर दीर्घ काल से ही इस छिन्न सिर चतुर्दश देवता की पूजा करते आ रहे हैं।(2)

कैलाश बाबू की राजमाला दूसरा भाग द्वितीय अध्याय, 19 पृ।

प्रवाद के ऊपर निर्भर करके कैलाश बाबू ने इन बातों को कहा है। बहुत कोशिशों के बावजूद भी उनके इस कथन की सच्चाई हमें नहीं मिली।

---

(1) राजरत्नाकर के अनुसार महाराज त्रिपुर के समय चतुर्दश देवता प्रतिष्ठित थे। अनाचारी और देव–द्वेषी त्रिपुर के अत्याचार से इन देवताओं के पूजक देवड़ाईगण उत्पीड़ित होकर अपने पूर्व आवास स्थान सगरद्वीप में जाने पर मजबूर हो गये। इसके बाद चतुर्दश देवताओं की पूजा बन्द हो गई। महाराज त्रिलोचन ने पुनः उन पुजारियों को बुलाया और देव अर्चना की व्यवस्था की।

(2) कैलाश बाबू ने त्रिलोचन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम "दृकपति" कहा है। राजरत्नाकर के अनुसार उनका नाम था "बीरराज" ये काछाड़ के अधिपति(मातामह) के यहाँ प्रतिपालित होकर उनके राज्य के अधिपति हुए थे। त्रिपुरेश्वर त्रिलोचन के परलोक सिधारने पर "दृकपति"(बीरराज) युद्ध करके पैतृक राज्य को प्राप्त किया था। इस उपलक्ष्य में महाराज दाक्षिण को त्रिवेग की राजधानी का त्याग करना पड़ा। त्रिलोचन खण्ड में इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

प्रल—133

यह बात कल्पना परस्त जान पड़ती है। क्योंकि, जिस विग्रह की कुल देवता कहकर श्रृद्धासहित पूजा की जाती है— हजारों विपत्तियों के बावजूद भी, जिस विग्रह को अपने प्राणों की तरह सयत्न रक्षा की गई है। उस विग्रह का मस्तक छेदन करने का किसी भी हिन्दू का साहस या प्रवृत्ति होगी ? विशेषतः भग्न विग्रह की अर्चना करना हिन्दू शास्त्र में पूरी तरह निषिद्ध है। इस तरह के शास्त्र विगर्हित कार्य करना धर्म प्राण त्रिपुर राज परिवार के लिए किसी भी तरह संभव नहीं हो सकता।(1) परन्तु, दृकपति के वंशधरों के छिन्न सिर चतुर्दश देवताओं की अर्चना की बात ही यदि सत्य मान लिया जाये तो उन सभी भग्न विग्रहों का अस्तित्व अब भी विद्यमान रहता। वह तो नहीं है एवं इस तरह की घटना कभी घटी थी, इस तरह की बातें त्रिपुरा के या काछाड़ के किसी व्यक्ति ने नहीं कहा बल्कि, राजमाला की उक्तियों के आलोचना से कैलाश बाबू की बात आधारहीन ही प्रतिपन्न होती है।

राजमाला में है —

चतुर्दश देवतार चतुर्दश मुख।	चतुर्दश देवता का चतुर्दश मुख।
निर्माइया दिल शिबे आपना सन्मुख।।	निर्माण कराया शिव ने अपने सन्मुख।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 16पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 16पृ

अर्थात, चतुर्दश देवताओं के चतुर्दश मुख को शिव ने अपने सामने बनवा दिया।

महादेव ने स्वयं देवताओं के मुख का निर्माण कराया था। यह उक्ति वर्तमान काल में सभी को भले ही अच्छी न लगे किन्तु विग्रहों के निर्माण काल में केवल मस्तक का ही निर्माण हुआ था, अन्य अवयवो का निर्माण नहीं हुआ था। ऊपर दिये गये वाक्य से यही बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो रही है। अतएव, कैलाश बाबू की उक्ति सत्य कहकर ग्रहण नहीं की जा सकती है।

---

(1) शास्त्रानुसार भग्न विग्रहों की अर्चना निषिद्ध है। केवल एक प्रमाण नीचे दिया जा रहा है।

जीर्णोद्धार विधिं बक्षे भूषितां स्नपयेद् गुरूः।
अचलां विन्यसेग्देहे अतिजीर्णां परित्यजेत्।।
व्यगां भग्नान्च शैलाच्यां न्यसेदन्यान्च पूर्ववत्।
संहार विधिनातत्र तत्वान् संहत्य देशिकाः।।
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद गुरूः।
दारवीं दारयेद्वन्हौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले।।
धातुजां रत्नजां वापि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ।
यानमारोप्य जीर्णागां छाद्य वस्त्रादिनानयेत्।।

अग्नि पुराण 67 अध्याय 1—4 श्लोक।

मामार्थ—(भगवान ने कहा—जीर्णोद्धार विधि कह रहा हूँ। गुरू, व्यंग, भग्न और अति जीर्ण प्रतिमा परित्याग करके पूर्ववत् गृह में विविध अलंकार सम्पन्न प्रतिमा— न्यास करोगे। संहार विधि का अनुकरण करते हुए सभी तत्वों का संहार करके नरसिंह मंत्रों से सहस्र होम करने के पश्चात उसका उद्धार करोगे। दारूमयी प्रतिमा को अग्नि से विदारित, शैलमयी को पानी में प्रक्षिप्त करना एवं धातुमयी और रत्नमयी प्रतिमा को भी अगाध जल में या सागर में निक्षेप करोगे।)

प्रल–134

चतुर्दश देवता का प्राचीनत्व

चतुर्दश देवता का प्राचीनत्व निर्णय करना वर्तमान समय में कठिन होने पर नितांत असंभव भी नहीं है। हमने इस टीका के अगले अंश में सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के बारे में जिन बातों का उल्लेख किया है उसकी आलोचना करने पर यह ज्ञात होता है कि चतुर्दश देवता के स्थापयिता महाराज त्रिलोचन और उनके पिता युधिष्ठिर के समकालीन थे। अतएव, यदि हम युधिष्ठिर का काल निर्णय कर सकें तो चतुर्दश देवता का प्राचीनत्व निर्णय करना सहज साध्य होगा।

युधिष्ठिर के काल निर्णय को लेकर दीर्घकालीन आन्दोलन चल रहा है। आज भी इस विषय में कोई स्थिर मीमांसा न होने पर भी आन्दोलन के फलस्वरूप एक तरह से समय निर्धारण करने की सुविधा हो गई है। किसी किसी के अनुसार युधिष्ठिर 1517 ईशा पूर्व विद्यमान थे।(1) राज तरंगिनी के अनुसार वे कलि के 653 साल पहले अविर्भूत हुए थे।(2) बराहमिहिर के मतानुसार शालिवाहन साल में 2526 जोड़ने पर युधिष्ठिर का काल निर्णय होगा।(3) इन सभी मतों का परस्पर असामंजस्य होने पर भी सभी मतों में युधिष्ठिर का प्राचीनत्व कम से कम साढ़े चार हजार वर्ष निर्णीत होता है। असल में उनकी प्राचीनत्व और भी ज्यादा कहने का यथेष्ठ कारण भी विद्यमान है। खासतौर से महाराज त्रिपुर द्वापर के अंतिम दिनों के राजा हैं। इस समय कलियुग का पाँच हजार साल बीत चुका है। अतएव त्रिपुर और त्रिलोचन के समकालीन युधिष्ठिर पाँच हजार साल से भी अधिक प्राचीन हैं। महाराज त्रिलोचन के द्वारा भी प्रतिष्ठित चतुर्दश देवता भी पांच हजार साल से भी अधिक प्राचीन हैं। इस तरह के काल निर्धारण में किसी तरह की बाधा नहीं दिखाई देती है।

यह विग्रह त्रिपुरा की राजधानी त्रिवेग नगर में स्थापित हुआ था। बाद में राजधानी के परिवर्तन के साथ स्थानांतरित होकर रांगामाटी(उदयपुर) में लाया गया और उदयपुर से राजपाट हटाकर आने के समय वह वर्तमान राजधानी अगरतल्ला में लाया गया। उदयपुरस्थ चतुर्दश देवता का प्राचीन मन्दिर अब भी अपनी जीर्ण देह लेकर अतीत के साक्षी के रूप में विराजमान है।

---

(1) 1299–1300 साल में नब्यभारत और जन्मभूमिका सामायिक पत्र –

(2) शतेषु षट्सु सार्द्धसु त्रयोधिकेषु भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणाम भवन् कुरू पाण्डवाः।।
राजतरंगिणी, प्रथम तरंग।

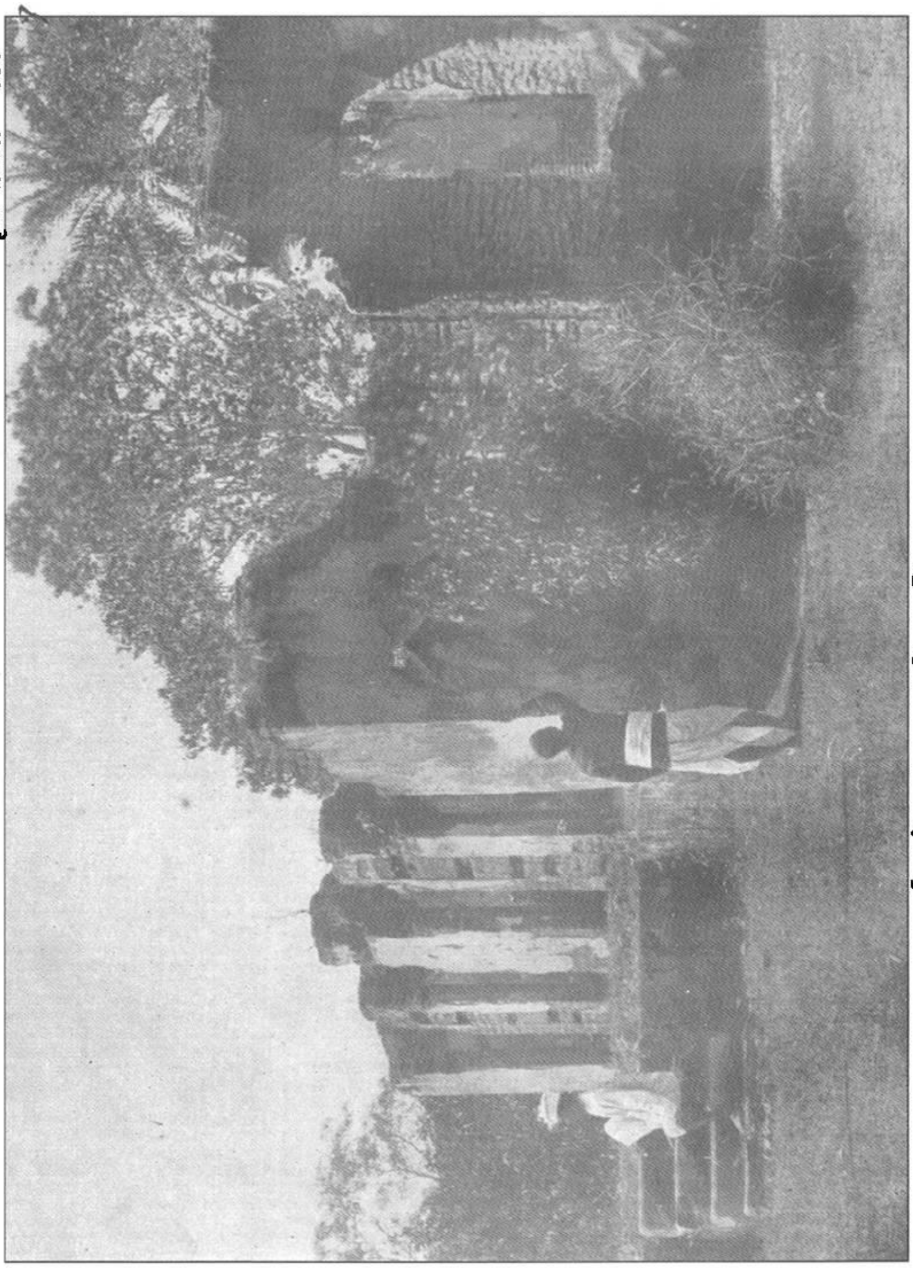
(3) आसनमघाषु मुनयः शासिन्ति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षडाद्विक पंचद्वियुतः शक कालस्तस्य राज्यश्च।।
बाराही संहिता 13 अध्याय।

प्रल–134

(Pratham leher-134) चित्र

राजमाला प्रथम लहर

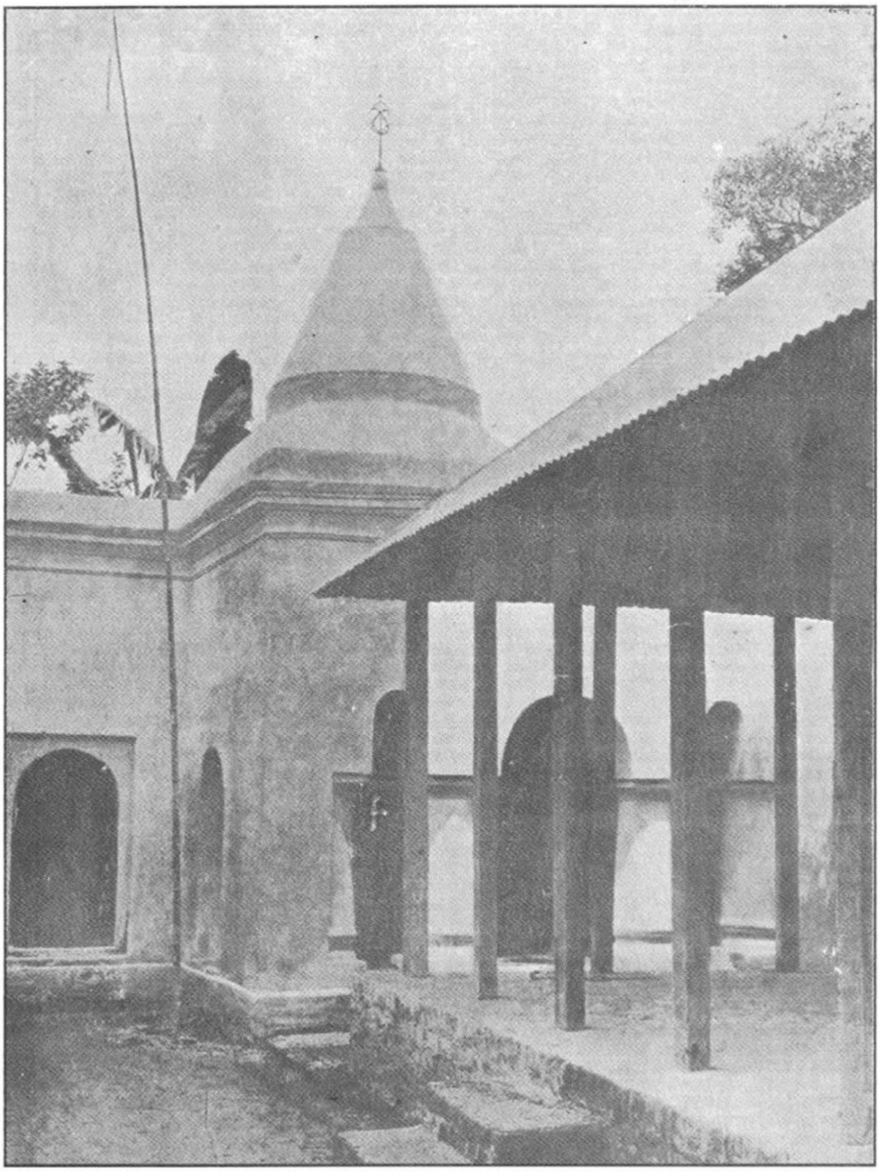
पृष्ठ संख्या – 134



चतुर्दश देवता का प्राचीन मन्दिर – उदयपुर
वेष्टनी प्राचीर के भीतर से लिया गया

प्रल–135

(Pratham leher-135) चित्र



प्रल–135

इस विग्रह के बारे में विश्वकोष में लिखा है, ''पुरातन राजबाड़ी के करीब एक छोटे से मन्दिर में पहाड़ियों के चतुर्दश देवताओं की प्रतिमा(पीतल से बना मस्तक) है। इस मन्दिर के नजदीक से होकर जाने के समय सभी यहाँ तक कि मुसलमान लोग भी प्रतिमा को प्रणाम करते हैं।'' पुनः दूसरी एक जगह पर लिखा गया है, ''महाराज त्रिलोचन शिव भक्त थे एवं शिवादेश से उन्होनें चतुर्दश देव प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। यही चतुर्दश देवता ही त्रिपुराधिपतियों के कुल देवता के रूप से आज भी पूजित हो रहे हैं।

चतुर्दश देवता पीतल निर्मित नहीं है। अष्ट धातु निर्मित है, यह पहले ही कहा गया है। ये सभी देवता पहाड़ियों के हैं – यह बात बिलकुल भ्रमात्मक है।

चतुर्दश देवता पहाड़ियों का देवता नहीं है

दूसरी ओर नजर न देकर एक मात्र देवताओं के नाम आलोचना करने से ही इस भ्रम का निराकरण किया जा सकता है। विशेषतः ये कि विग्रह महाराज त्रिलोचन के द्वारा प्रतिष्ठित एवं त्रिपुराधिपतियों के कुल देवता हैं – विश्वकोष के सम्पादक की बातो को स्वीकार करके भी इन्हें ''पहाड़ियों का देवता'' कहकर उल्लेख करने पर उनकी बात अप्रतिष्ठित प्रमाणित हो गई है।

त्रिपुरेश्वरों के प्रतिष्ठित किसी किसी विग्रह को उत्कल देशीय ब्राह्मणों द्वारा, किसी किसी विग्रह को मणिपुरी ब्राह्मणों द्वारा, और कुछ विग्रह को बंगाली ब्राह्मणों द्वारा अर्चित किया जाता है। पुनः किसी किसी विग्रह को हिन्दुस्तानी ब्राह्मणों के द्वारा भी अर्चित करने को दिया गया है। किन्तु चतुर्दश देवता के अर्चना के व्यवस्था के विषय में विशेषत्व यह है कि इस पूजा के पुजारी संसार विरागी यति–पुरुष होते हैं। इस श्रेणी के महापुरुषों का जाति निर्णय करना इस समय असाध्य है और उस समय भी दुःसाध्य ही था, यह कहा जा सकता था। फिर भी वे लोग ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण सदृश सम्मानीय थे। उनकी उपाधि एवं राजमाला की आलोचना से इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह सकता।(1) इस विषय में मामूली तौर से दो एक बातें नीचे दी जा रही हैं।

---

(1) चंताई लोगों का प्राचीन काल के सम्मान और प्रभाव की बातों की आलोचना करने पर स्तम्भित होना पड़ता है। परिवर्ती काल में कम सम्मानीय नहीं थे। राजमाला से यहाँ पर सामान्य आभास प्रदान किया जा रहा है – यह आलोचना स्पष्ट ही प्रतीयमान होगा। चंताई ब्राह्मण किंवा ब्राह्मणों के समक्ष थे। राजधरमाणिक्य खण्ड में राजा के दैनन्दिन धर्म कार्यानुष्ठान वर्णना के उपलक्ष्य में लिखित है–

पंच पात्र अन्नदान कोरे सदा काल।।	पंच पात्र अन्न दान करते प्रातः काल।।
राजमाला तृल राजधरमाणिक्य खण्ड 50पृ	राजमाला तृल राजधरमाणिक्य खण्ड 50पृ

\+ \+ \+ \+ \+

अर्थात पंच पात्र अन्न दान सदा किया जाता था।

एक पात्र चन्ताई जे पाये अन्नदान।	एक पात्र चन्ताई पाये उनसे अन्नदान।
दुई पुरोहिते पाये दुई अन्न स्थान।।	दोनो पुरोहित पावें दो अन्त स्थान।।
आर दुई पात्र अन्न अन्य द्विजे पाइछे।	और दो पात्र अन्न अन्य द्विज को मिलता।
कपिलार ग्रास राजा प्रतिदिन दिछे।।	कपिला धेनु को ग्रास प्रतिदिन राजा देता।
राजमाला तृल राजधरमाणिक्य खण्ड 50पृ	राजमाला तृल राजधरमाणिक्य खण्ड 50पृ

अर्थात, एक मात्र चंताई मूल पुरोहित को अन्न दान मिलता था। बाकी दो पुरोहित दो अन्न स्थान पाते थे। इसके आलावा दो पात्र अन्न दूसरे द्विजों को दिया जाता था। कपिला धेनु के ग्रासाच्छादन की व्यवस्था प्रतिदिन राजा करते थे।

प्रल–136

चंताई का विवरण चतुर्दश देवता के प्रधान पुरोहित की उपाधि है चंताई। हालाम जाति के(कुकी जाति की एक शाखा) भाषा में ब्राह्मण को ''चुयान्ताई'' कहा जाता है। चंताई शब्द जो इस ''चुयान्ताई'' शब्द का ही रूपान्तर है यह सहज ही हृदयगंम होता है।(1) इस उपाधि के द्वारा भी चंताई का गौरव और प्राधान्य ही प्रमाणित होता है। इनके व्यवहार से यह प्रमाण और दृढ़ हो जाता है। चंताई देवालय के महंत तुल्य स्थानीय व्यक्ति है एवं त्रिपुरा राज्य में इस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति का सम्मान और प्रतिपत्ति इस समय भी **Lord Bishop** से भी अधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। विशेषतः राजमाला की आलोचना से इनके सदाचार, धर्माचरण, त्याग स्वीकार एवं अलौकिक क्षमता के बारे में जो सब निदर्शन मिलते है। इससे यह स्पष्ट रूप से यही ज्ञात होता है कि ये लोग ऋषि कल्प योगी पुरुष थे। इस श्रेणी के संसार त्यागी तपस्वीयों का जाति विचार करते जाना सभी कालों में असम्भव रहा है और है। दीर्घकाल तक त्रिपुरा में अवस्थान हेतु वर्तमान समय में भी उनके उत्तर पुरुष गण स्थानीय समाज के साथ वैवाहदिक सम्बन्ध स्थापित करने पर भी इस समय उनके आचार विचार, व्यवहार और पवित्रता के जो विशेषत्व दिखाई देते हैं इससे उनके पूर्व पुरुषों के संस्कार का ही परिचय मिलता है।

देउड़ाईगणों का विवरण चतुर्दश देवता के पूजकों की अन्य उपाधि है देउड़ाई। ये लोग भी यति पुरुष थे। राजमाला की आलोचना करने पर यह जानकारी मिलती है। बेहार के इत्तिवृत्त में राजावली नामक हस्तलिखित ग्रन्थ की आलोचना से ज्ञात होता है कि कामाख्या देवी के पूजकों की उपाधि ''देवडी'' है।(2) देवडी और देउड़ाई एकार्थ वाचक शब्द है। खास तौर से दोनों ही देवता के पुजारी हैं। अतएव ये दोनो शब्द ''देवल'' शब्द के अपभ्रंश लगते हैं। किसी किसी के मतानुसार ''देबराय'' शब्द से भी देउड़ाई या देवडी शब्द का उद्‌भव हो सकता है। इस विषय के सूक्ष्म विचार का भार भाषातत्वविद् सुधि जनों के ऊपर ही न्यस्त है। देउड़ाई लोग संसार त्यागी दण्डी थे एवं चंताई के साथ ये लोग साथ साथ त्रिपुरा में आये हैं। अतएव चंताई के तरह इनकी भी जाति निर्णय करना दुःसाध्य है। ये भी चंताई की तरह सम्मान योग्य एवं सुद्धाचारी ही है। यहाँ पर इतना कहना ही यथेष्ट है।

---

(1) महाराज कृष्णमाणिक्य के अभिषेक मंडप में केवल दो व्यक्तियों के बैठने का आसन मिला था। यहाँ पर भी ब्राह्मणों के साथ चंताईयों को उपविष्ट देखा जाता है –

बनमाली सिद्धान्त आर जयन्त चंताये।
तारा दुई बस्त्रासने बसे से सभाये।।

अर्थात, बनमाली सिद्धान्त और जयन्त चंताई यही उस सभा में वस्त्रासन पर बैठे।

(2) त्रिपुरा में हालाम भाषा ग्रहण का विवरण पूर्व भाषा (प्रल पृष्ठ – प्रल–107) में दिया गया है।

राजावली, 9खण्ड 3अध्याय

प्रल–136 **(Pratham leher-136)** चित्र



श्रीयुक्त राजचन्द्र चन्ताई

प्रल–137

चंताई और देउडाई पार्वत्य जाति नहीं चंताई और देउडाई आदि की वर्तमान अवस्था देखकर कुछ लोग उन्हे पार्वत्य जातीय कहकर सोचते हैं – यह धारणा अभ्रांत नहीं है। पर ये लोग जो स्थानीय समाज के साथ वैवाहिक सम्बन्ध में आबद्ध हो गये हैं, यह हम पहले बता चुके हैं। इस कारणवश इन्हें पार्वत्य जाति कहना संगत नहीं होगा।

श्रीक्षेत्र के पूजक गण इन्हें ब्राह्मणेत्तर जाति कहकर स्वीकार करने में कोई क्षति होगी, ऐसा नहीं लगता। सभी जानतें है पुरुषोत्तम क्षेत्र के श्रीमूर्ति अर्चना का भार सबर जाति के लोगों को प्राप्त है और सारे भारत की सभी जातियों के लिए यह पुण्य क्षेत्र हिन्दू का प्रधान तीर्थ के रूप में मान्य है। श्रीक्षेत्र में महा प्रसाद ग्रहण के बारे में जिस तरह का उदार मत जाना जाता है वैसे हिन्दुओं के और किसी तीर्थ में दिखाई नहीं देता। इस तरह ब्राह्मणेत्तर साधु महाजनों के द्वारा पूजित होने पर ही चतुर्दश देवता को पहाड़ियों का देवता कहना कहाँ तक संगत होगा ?

चतुर्दश देवता की सेवा और पूजा का भार पहले कहे गये सम्प्रदाय हाथों में बिना कारण प्रदान नहीं किया गया। शिव का आदेश ही इस व्यवस्था का मुख्य कारण है। चतुर्दश देवता प्रतिष्ठा के सूचना काल में महादेव ने का है –

पूजाय जे पूर्व दिन प्रातःकाल लाभे।	पूजा के दिन प्रातः काल की बेला।
संयम कोरिबे चन्ताई देउड़ाई सबे।।	संयम करेगें चन्ताई देउड़ाई सभी, नहीं अकेला।।
पूजाविधि देउड़ाई सबे ताके जाने।	पूजा विधि देउड़ाई सभी, उसे जाने।
समुद्रेर द्वीपे तारा रहिछे निर्जने।।	समुद्र द्वीप वे रहते हैं निर्जने।।
ताहाके अनिवा जाइया राजार सहिते।	उन्हे ले आओगे राजा के साथ।
जेखाने पूजिबा आमि आसिब साक्षाते।।	जहाँ पूजोगे मैं आउँगा साक्षात्।।
राजमाला प्र ल, त्रिपुर खण्ड 16पृ	राजमाला प्र ल, त्रिपुर खण्ड 16पृ

अर्थात पूजा के पहले दिन प्रातःकाल होने पर सभी चंताई और देउड़ाई संयम रखेंगें। पूजा विधि देउड़ाई जानते हैं। सागर के द्वीप में वे रहते हैं। उसे राजा के साथ जाकर ले आना। मुझे जहाँ पूजोगे मैं आउँगा।

दूसरी जगह लिखा है –

शुभदिने देउड़ाई राजार सहिते।	शुभ दिन पर देउड़ाई आये राजा साथ।
राजधानी असिलेन मन–हर्षिते।।	आये राजधानी सभी हर्षित मन आज।।
चतुर्दश देवता के समर्पिल राजा।	चतुर्दश देवता को समर्पित किया राजा।
तद्वधि देउड़ाई नित्य करे पूजा।।	तद्विधि देउड़ाई नित्य करे पूजा।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 28पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 28पृ

अर्थात शुभ दिन पर देउड़ाई, राजा के साथ प्रफुल्लित मन आये राजा ने उन्हें चतुर्दश देवता को सौंप दिया और तब से देउड़ाई नित्य पूजा कर रहे हैं।

उन दिनों देउड़ाई लोग विशेष धार्मिक और निष्ठावान थे। यह बात बार बार कही गई है। उनके बारे में राजमाला का कहना है।

नारीर रंधन तारा नाहिँ कोरे भक्ष।।	पर नहीं करते भक्ष किसी नारी का रंधन।।
नित्य–स्नान धौत वस्त्र आकाशे सुखाये।	नित्य स्नान धौत वस्त्र जो आकाश में सुखाते।
आकाशे सुकाइया वस्त्र पवित्रे पौरये।।	आकाश में सूखा वस्त्र पवित्र वह पहनते।।

अर्थात, नारी का रंधन वे भक्षण नहीं करते हैं। नित्य स्नान कर अपने वस्त्रों को सुखाते हैं और पवित्र वस्त्र पहनते हैं।

प्रल–138

स्वहस्ते रंधन कोरि भोजन करय।	स्वहस्त रंधन कर भोजन हैं करते।
देवता पुजिते भक्ति तारा अतिशय।।	भक्ति है उनकी अपार देवता पूजते।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 28पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 28पृ

अर्थात, ''स्वहस्त रंधन करके वे भोजन करते थे। देवता पूजन में उनकी बडी प्रबल भक्ति थी।''

इस तरह शुद्धाचारी, संसार त्यागी यात्रियों को समुद्र के द्वीप से लाकर चतुर्दश देवता का पूजक बनाया गया था। वे किस द्वीप में थे, इस समय यह निर्णय करना असम्भव है। जन प्रवाद से यह ज्ञात होता है कि बंग उपसागर में स्थित आदिनाथ तीर्थ से इन्हें लाया गया था। यह बात कहाँ तक सत्य है। वर्तमान पूजक गण इसे कहना नहीं चाहते। लांग साहब के अनुसार ये सभी विषय–विरत दण्डियों को सागर द्वीप में लाया गया था।(1) सुन्दरवन के सन्निहित द्वीप के कपिलाश्रम में इनके रहने का प्रमाण मिलता है। लांग साहब ने शायद उस द्वीप की ओर ही इंगित दिया है और इसके ही सत्य होने की संभावना अधिक है। सगरद्वीप के साथ त्रिपुरा का घनिष्ट सम्पर्क रहने बात पूर्व भाषा में कही गई है।

देउड़ाई के अलावा गालिम या घालिम आदि कुछ सम्प्रदायों के लोग वंश परम्परा से देवालय के कार्य में नियुक्त हैं और ये लोग भी पहले कहे गये लोगों के ही वंशधर हैं। इनके प्रत्येक सम्प्रदाय का कर्तव्य निर्धारित है। ये सभी लोग राज सरकारी वृत्ति भोगी कर्मचारी या सेवक हैं। इनके अलावा अन्य किसी भी वंश के लोगों को यह कार्य करने का अधिकार नहीं है। उनके वंश से ही योग्यता अनुसार ही लोग निर्वाचित एवं साधुता एवं योग्यता अनुसार क्रमशः चंताई के पद पर भी आसीन होते थे।

चतुर्दश देवता जो आर्यो के पूजित विग्रह है और इस विग्रह के पूजकगण मूलतः पार्वत्य जाति के नहीं है पहले की आलोचना से यह स्पष्ट हो गया है। इस विग्रह की पूजा पद्धति भी यहाँ आलोच्य विषय है। किन्तु दुःख की बात यह है कि चंताई लोग पूजा की मूल प्रणाली एवं मंत्रादि किसी के यहाँ प्रकट नहीं करते। अतएव उसे संग्रह करना असम्भव है। अगरतल्ला महाफेजखाना में सुरक्षित एक हस्तलिखित एक पुस्तक मिली है। उसमें देवताओं के ध्यान का मंत्र बंगला में लिखा गया है। उसकी आलोचना से देवताओं का प्रकृत परिचय मिलेगा। उस पुस्तक का विवरण नीचे प्रदान किया जा रहा है।

धर्ममाणिक्य ने कहा जो कुलोचित खार्ची पूजा का विषय कथित हुआ है। उसका मंत्र, अंगन्यास, करन्यास एवं ध्यान कैसा है? वैदिक, तांत्रिक, पौराणिक

....

(1) **Trilochan sent a messenger Dandi's to the or priests of the famous College of Mahadeva in Sagar is land J.A.S.B. -Vol XIX**

प्रल–139

(Pratham leher-139) चित्र



पृष्ठ संख्या – 139

राजमाला प्रथम लहर

उमा(शांकरी)

हर(शंकर)

इनमें किस मत से वे सभी अनुष्ठान होते रहे हैं ? सब कुछ सविस्तार से वर्णन करो, इन्हें सुनने के लिए हमारे भीतर अत्यन्त कौतूहल जन्मा है।

चंताई ने कहा ''महाराज जो कुछ पूछा गया है, वे सभी अति गोपनीय है। कभी भी प्रकाश योग्य नहीं है, इन्हें प्रकाश में लाने से इष्ट सिद्धि में व्याघात होता है। विशेषतः इसमें पाप होता है। वे सभी प्रायः ही वेद तंत्रोक्त है। इनमें कुछ कुछ अंश पुराणोक्त भी है। गुप्तार्च्चन चन्द्रिका में विस्तार से इनका वर्णन है। चतुर्दश देवता की अर्चना गोपनीय होने पर भी आपके कुल देवता हेतु तंत्र मंत्र और ध्यान आदि आपके सामने कह रहा हूं, एकाग्र चित्त से सुनिए। गुप्तार्चन चन्द्रिका में दूसरे ज्ञातव्य विषय बहुत से हैं। महाराज वह ग्रन्थ देवालय में है। हमारे सामने पूजा आदि विषय दृष्ट हो जाते है।''

चतुर्दश देवता की पूजा विधि इसके बाद ध्यानों की बातें लिखी गई हैं। चतुर्दश देवता की अर्चना आरम्भ करने के पहले सूर्य और चन्द्र की अर्चना की जाती है। अतएव उन दोनों देवताओं का ध्यान सर्वाग्रे लिखा गया है। सूर्य और चन्द्र चतुर्दश देवता के अन्तर्भुक्त नहीं है। इसलिए उन दोनो का ध्यान यहाँ नहीं दिया गया। चतुर्दश देवता अर्थात शिव, उमा, हरि, लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिकेय, गणेश, ब्रह्मा, पृथ्वी, समुद्र, गंगा, अग्नि, मदन और हिमालय के ध्यान इस तरह हैं–

1. शिव का ध्यान

जिनका शरीर रजत गिरि सदृश शुभ्र एवं रत्न सदृश उज्ज्वल है, चन्द्र जिनके मनोहर शिरोभूषण है, जिनके चारों हाथों में कुठार, मृग शिशु, वर और अभय सुशोभित है। चारों ओर घेर कर देवगण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो व्याघ्र चर्म परिधान कर पद्मासन से उपविष्ट हैं। जो विश्व के आदि, विश्व के बीज, निखिल जगत के भयहर्ता हैं, पंचबदन और त्रिनयन हैं, उस प्रसन्न मूर्ति महेश का ध्यान करोगे।''(1)

2. उमा का ध्यान

जो सिंह के ऊपर उपविष्ट होकर चारों हाथों में शंख, चक्र, धनुःशर धारण किए हुए हैं, मरकत सदृश जिनकी दीप्ती है, चन्द्र जिसके शिरोभूषण है, जिनके अंग में मुक्ताहार है एवं मुक्तांगद शोभित है। काँची और नुपुर रण रण शब्दों से बज रहे हैं।

---

(1) सभी ध्यान शास्त्रोक्त ध्यान के साथ अभेददृष्ट होता है। तुलना की दृष्टि से संस्कृत में आये ध्यानों का उल्लेख किया जाता है। शिव का ध्यान है –

ध्येयेन्नित्यं महेशं रजत गिरिनिभं चारूचन्द्रावतंसं।
रत्ना कल्पोज्वलांगं परशुमृगःवराभीति हस्तं प्रसन्नं।।
पद्मासीनम् समस्तात्स्तुतममरगनैव्याघ्रकृत्तिं बसानं।
विश्याद्यं विश्ववीजं निखिलभय हरं पंचतवक्त्रं त्रिनेत्रं

प्रल–140
जिनके कर्ण में रत्न कुण्डल विराज रहे हैं उन्हीं त्रिनयन दुर्गा तुम लोगों के दुर्गति नाश करे।(2)

3. हरि का ध्यान

जो पद्मासन पर बैठकर सूर्यमण्डल में विराजमान है, जो केयुर कनक कुण्डल एवं किरीट भूषित हैं, जिनके हाथों में शंख, चक्र सुशोभित है, उस चित्त विनोदन नारायण का ध्यान करोगें।(3)

4. लक्ष्मी का ध्यान

जो पद्मासन पर बैठकर वाम हस्त में पद्म कलिका, दक्षिण हस्त में वर मुद्रा धारण की हुई है। जिनके वाम और दक्षिण की ओर पाश, अक्षमाला और पद्म श्रेणी शोभित है, जो सर्वालंकार से विभूषित है। गौरांगी, असमान्य रूपवती है एवं जो त्रिलोक की जननी है उस लक्ष्मी देवी का ध्यान करोगे।(4)

5. सरस्वती का ध्यान

जिनके मुक्ता सदृश कांति निभा से ज्योत्सनाजाल निकल रही है। जिनके मस्तक में शशिकला विराजित है। दक्षिण हस्त में व्याख्या और वर्णमालिका वाम हस्त में अमृत पूर्ण दिव्य घट है एवं पुस्तक सुशोभित है जो पीनपयोधरा है, क्षीण मध्य एवं जो मुक्ताहार आदि विविध आभर्णो से भूषित है। उस श्वेत वर्ण सरस्वती देवी को प्रणाम करोगे।(5)

---

(2) सिंहस्थां शशिशेखरा मरकतप्रेक्षा चतुर्भिर्भूजैः।
शंखं चक्रं धनुःसरांश्च दधती नेत्रैस्रिभिः शोभिता।।
आमुक्तांगदहार कंकण रणत्कांचीक्कनन्नूपुरा पुरा।
दुर्गा दुर्गति हारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत् कुन्डला।।

(3) ध्येयः सदा सवितृमंडल मध्यवर्ती, नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टि।
केयूरवान् कनक कुंडलवान् किरिटी, हारी हिरन्मयवपूर्ध्वत शंख चक्रः।।

(4) पाशाक्ष मालिकांभोज सृणिभिर्याम्य सौम्मयोः।
पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियंत्रैलोक्य मातरं।
गौरवर्णां सुरूपांच सर्वालंकार भूषितां।
रौक्ष्म पद्म व्यग्रकरां वरदां दक्षिणे नतु।।

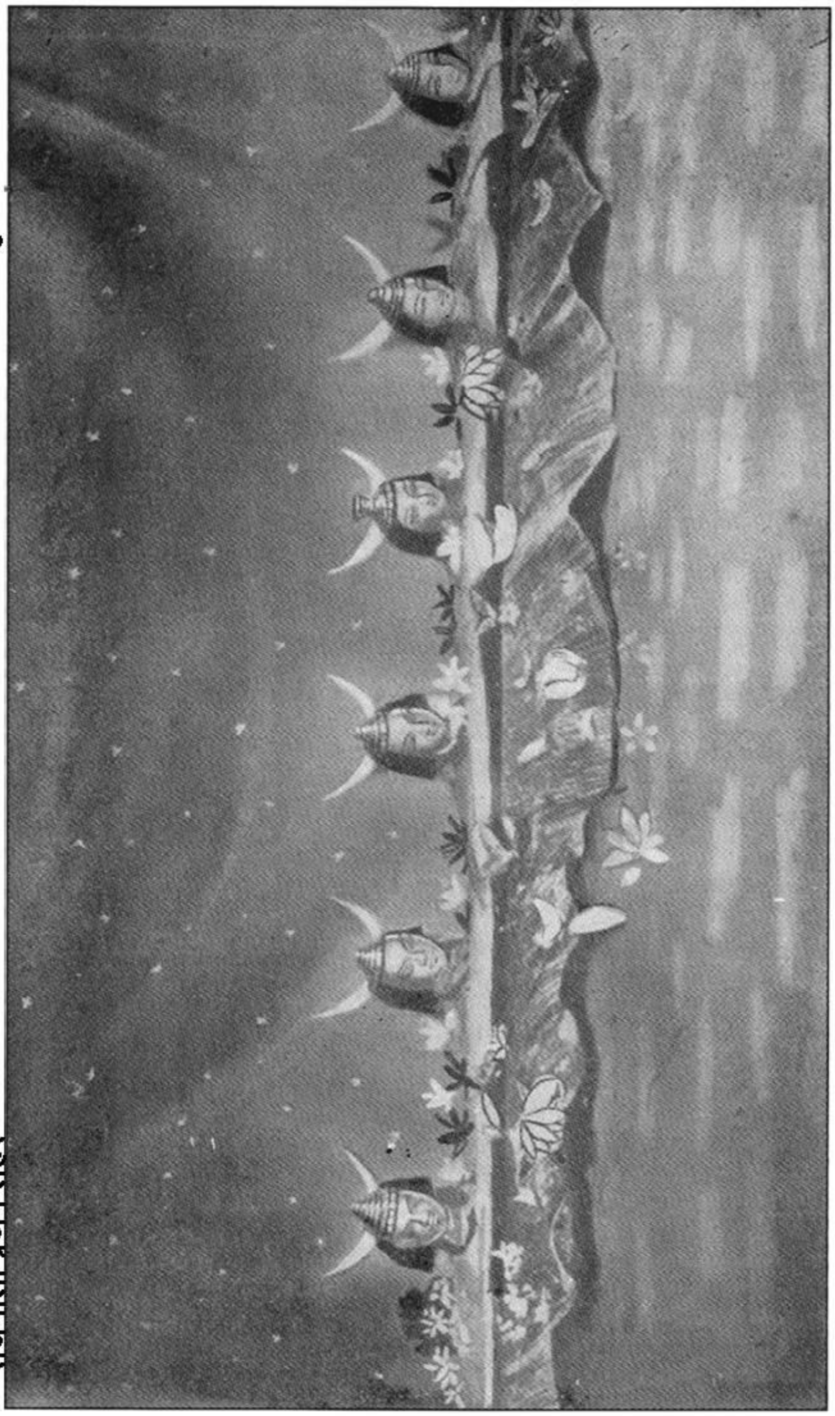
(5) मुक्ताकांतिनिभां देवीं ज्योतस्नाजाल विकाशिनीम्।
मुक्ताहार युतांशुभ्रां शशिखण्ड रिमंडिताम्।।
विभ्रतीं दक्ष हस्ताभ्यां व्याख्यां वर्णस्य मालिकाम्।
अमृतेन तथापूर्णं घटं व्याख्यां वर्णस्य मालिकाम्।।
अमृतेन तथापूर्णं घटं दिव्यन्च पुस्तकम्।
दधीतां वाम हस्ताभ्यां पीनस्तनभरान्विताम्।।
मध्ये क्षीणां तथा स्वच्छां नानारत्नादिभूषिताम्।

प्रल–141

(Pratham leher-141) चित्र

पृष्ठ संख्या – 141

राजमाला प्रथम लहर



क्ष्मा(पृथ्वी) अब्धि(समुद्र) गंगा(भागीरथी) शिखी(अग्नि) काम(प्रद्युम्न) हिमाद्रि(हिमालय)

प्रल–141

6. कार्तिकेय का ध्यान

"जो गौर वर्ण, द्विभुज, शक्तिधारी, मयूर वाहन, यज्ञोपवीत से सुशोभित है। उस वरदाता कुमार का ध्यान करता हूं।"(6)

7. गणेश का ध्यान

जिनके सूप की तरह कान हैं, बृहत शुण्ड है, सर्प के यज्ञोपवीत से जो सुशोभित है। जो रक्त वर्ण है, खर्वकृति युक्त है, स्थूलांग है जो त्रिलोचन है, मुसिक जिनका वाहन है। उस सुन्दर विनायक का चिन्तन करता हूं।(7)

8. ब्रह्मा का ध्यान

जो चतुर्भुज है, चतुर्मुख है, स्वर्ण वर्ण है, अग्नि शिखा की तरह महादुयृतिमान है, स्थूलांग है, नव युवा है, जिनकी पिंगल जटा जाल है एवं प्रिगल लोचन से शोभित है, जिनका परिधान मृग चर्म है, ग्रीवा देश में कृष्णाजिन रचित उत्तरीय है एवं उपवीत है, गले में श्वेत माला है, कटि देश में मौंजीय मेखला है, जटान्त में अक्ष और अक्षमालिकाएँ है दक्षिण बाहु में अक्ष सूत्र है और वाम बाहु में कंकण, दक्षिण हस्त में स्रुक और स्रव है, वाम हस्त में धृतस्थली और कुश शोभित है, जो हंस पर पद्मासन में उपविष्ट है। उस पितामह ब्रह्म का ध्यान करता हूं।(8)

---

(6) कार्तिकेयं महाभागं मयुरोपरि संस्थितम्।
तप्तकांचन वर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम्।।
द्विभुजं शत्रुहंतारं नानालंकार भूषितम्।
प्रसन्न वदनं देवं कुमारं पुत्रदायकम्।।

(7) खर्बं स्थुलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं।
प्रस्यन्दन्मदगन्ध लुब्ध – मधुप – व्यालोल गंडस्थलं।।
दंताघात–बिदारितारि रूधिरैः सिन्दूर शोभाकरं।
बन्दे शैल सुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदं।।

(8) उँ ब्रह्मा कमडंलु धरश्चतुर्बक्त्रश्चतुर्भुजः।
कदाचित् रक्तकमले हंसारुढः कदाचन।।
वर्णेन रक्त गौरागः प्रांशुस्तगांग उन्नतः।
कमंडलुर्वामकरे स्रवो हस्तेतु दक्षिणे।।
दक्षिणाधस्तथामला वामधश्च तथास्रुवः।
आज्यास्थली वामपार्श्वे वेदाः सर्वऽग्रस्थिताः।।
सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती।
सर्वेच ॠषयोहयग्रे कूर्यादेभिश्च चिंतनं।।

प्रल–142

9. पृथ्वी का ध्यान

"जिनकी शतचन्द्र तुल्य प्रभा है, चम्पक सदृश वर्ण है, सर्वांग चन्दन चर्चित है एवं रत्न भूषणों से शोभित है, जिनका रक्तवर्ण शुद्ध वस्त्र परिधान है, जो रत्नगर्भा है, रत्नाकर समन्विता है, अशेष रत्नों के आधार हैं एवं सदा हास्य वदना हैं, उस वन्दनीया पृथ्वी की हम भजना करते हैं।"(9)

10. समुद्र का ध्यान

"विविध मणिमाणिक्य समाकीर्ण, क्षौम वस्त्र धारी है, विपुल देह है, द्विभुज, मकर वाहन सिंधु का भजन करते हैं।"

11. गंगा का ध्यान

"जो सुरूपा, चतुर्भुजा, त्रिनेता, सर्वायव भूषिता हैं, जिनकी चन्द्रायुध सदृश प्रभा है, जिन्हें श्वेत चामर से व्यंजन किया जा रहा है, जिनके मस्तक पर श्वेत छत्र शोभित है, सर्वांग चन्दन से चर्चित है, जिनकी मूर्ति सुप्रसन्न है, बदन शोभामय है, हृदय करूणाप्रवण है, जो देव गण कर्तृक वन्दनीय है एवं जो भूपृष्ठ को सर्वदा सुधा – प्लवित करती है, उस त्रिलोक माता गंगा का ध्यान करता हूं।(10)

12. अग्नि का ध्यान

"जो दधिचि वंश जात है, घृत–कौशिक–प्रवर है, लम्बोदर, स्थूलकाय, त्रिनेत्र और चतुर्भुज है तथा जिनके दक्षिण हस्तयुगल में स्रुक और अजशुद्धि है, वाम उर्ध्वहस्त में शक्ति एवं अधोहस्त में यज्ञीय–पात्र विशेष है, जो योगाभ्यास में रत होकर रक्त वस्त्र द्वारा बदन आवृत कर रखे है एवं जो असंख्य शिखा और सप्तजिह्वा समन्वित होकर महादीप्ती के साथ प्रस्फुरित प्रज्ज्वलित हो रहे हैं, उस अग्नि देव का ध्यान करता हूं।(11)

---

(9) उँ सर्वलोक धरां प्रमदा रूपां।
दिव्याभरणभूषितां धरां पृथिवीम्।।

(10) स्वरूपां चारूनेत्रान्च चन्द्रायुत सम प्रभाम्।
चामरैर्वीज्यमानान्च श्वेतच्छत्रोपशोभितम्।।
सुप्रसन्नां सुबदनां करूणार्द्रनिजान्तराम्।
सुधाप्लावितभूपृष्ठां मार्द्रगंधानूलेपनाम्।।
त्रैलक्य नमितां गंगां वेदादिभिराभिष्टुताम्।

(11) पिंगभ्रु–श्मश्रु केशाक्षः पानांग जठरोऽरूणः।
छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्च्चिशक्तिधारकः।।

प्रल—143

13. कामदेव / कन्दर्प का ध्यान

"जो धनुर्बाणधरी है, रूपवान है, विश्वमोहन है, श्यामल पदम् की तरह जिनकी वर्ण दीप्त है, पंकज सदृश जिनके लोचन हैं उस कामदेव का ध्यान करना।(13)

14. हिमालय का ध्यान

"जो द्विनेत्र है, द्विभुज, गौर वर्ण, देव मण्डली द्वारा समावृत, रक्त वस्त्रधारी, पर्वत के अधिपति है, उस हिमाद्रि देव का ध्यान करना।"

खार्ची पूजा आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी के दिन चतुर्दश देवता को विशेष अर्चना का निर्धारित दिन है। इसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं।(14) इस देवता के प्रतिष्ठा के समय आज तक उस तिथि में विपुल समारोह के साथ देवता के वार्षिक अर्चना चली आ रही है। इस उत्सव को "खार्ची पूजा" कहते हैं। यह चतुर्दश देवता का एक प्रधान उत्सव के रूप में परिगणित है। इसी तिथि पर देवताओं को प्रथम स्थापित किया गया था। खार्ची पूजा के पूर्व दिवस अपरान्ह चतुर्दश देवताओं को नदी में ले जाकर स्नान कराया जाता है। इस समय का दृश्य एवं क्रिया कलाप सभी सम्प्रदायों के लिए भी दर्शनीय है।

केर पूजा खार्ची पूजा के चौदह दिवस के पश्चात पहले जो शनिवार या मंगलवार पड़ेगा उस समय और एक विशेष अर्चना की जाती है। जिसे "केर पूजा" कहते हैं। यह पूजा चतुर्दश देवता की पूजा में शामिल न होने पर भी उसके साथ इसका घनिष्ठ सम्पर्क है। चंताई इस पूजा के प्रधानकर्ता हैं, पूजा आरम्भ होने के पूर्व, एक इलाका निर्धारण किया जाता है। उस इलाके में किसी का जन्म या मृत्यु होने पर पूजा व्यर्थ हो जाती है और इसे अमंगल सूचक घटना का चिन्ह माना जाता है। इसलिए पूजा आरम्भ होने के पूर्व विशेष रूप से अनुसंधान करके आसन्न प्रसवा नारी और मृत्यु आशंकित नर नारी को उस इलाके के बाहर ले जाया जाता है। अर्चना काल में मनुष्य और गृह पालित पशुओं का भी घर के बाहर जाना सख्त मना है। इस समय के भीतर कोई भी कुर्ता, जूता, खड़ाउ, पगड़ी और छाते का व्यवहार नहीं किया जाता एवं गीत—वाद्य कोलाहल यहाँ तक कि उच्च स्वर में बातें भी नहीं की जा सकती स्वंय महाराज भी विशेष तत्परता के साथ इन सभी नियमों का पालन करते हैं।(15) इस समय एक दिन

....

(13) उँ चपेषुधृक् कामदेवो रूपवान् विश्वमोहनः।
ध्येयो बसन्त सहितो रत्यालिंगित विग्रहः।।

(14)

चतुर्दश देव पूजा कोरिबो सकले।	चतुर्दश देव पूजा करें जैसे सभी।
आषाढ़ मासेर शुक्ला अष्टमी होइले।।	आषाढ़ माह की शुक्ला अष्टमी हो जभी।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15 पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15 पृ

अर्थात चतुर्दश देव पूजा सभी मिलकर करेगें आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी होने पर।

(15) द्विज बंगचन्द्र की रचित 'त्रिपुर वंशावली' नामक हस्तलिखित कविता पुस्तक में इस अनुष्ठान को "महामुद्रा" आख्या दिया गया है।

यथाः—

प्रल—144

दो रात तक लोगों को पहले कहे गये नियमों के अनुसार अवरूद्ध रहना पड़ता है। विशेष आवश्यकता पर कुछ समय के लिए लोग घर के बाहर निकलने का आदेश पाते हैं। इसकी सूचना तोप ध्वनि से दी जाती है। पुनः तोप ध्वनि होने पर सभी को अपने अपने घरों में प्रवेश करना पड़ता है। पुनः तोप ध्वनि न होने पर घर के दरवाजों को खोलना निषिद्ध माना जाता है। इस अर्चना के द्वारा देश निरापद रहता है। इस पूजा के साफल्य पर ही एक साल तक राज्य का शुभाशुभ निर्भर करता है। यही आम जनता की धारणा है। प्रथम पूजा में किसी तरह का बाधा विघ्न उपस्थित होने पर पुनः एक हफ्ते के भीतर शनि किंवा मंगलवार को विशेष सतर्कता के साथ पूजा सम्पादन किया जाता है। राजधानी की पूजा निर्विघ्न समाप्त होने पर प्रत्येक पहाड़ी गाँव में पूर्वोक्त नियमों से ''केर पूजा'' होती है। उस समय किसी भी बाहरी व्यक्ति का उस गाँव में प्रवेश करना मना है।

प्रथम लहर 33 पृष्ठ के त्रिलोचन खण्ड में लिखा गया, — ''ग्राम मुद्रा कोरिछिल जेनो राजनिति'' अर्थात गाँव को निरापद रखने के अभिप्राय से देवता की अर्चना करने को ''ग्राम मुद्रा'' कहते हैं। ''केर पूजा'' राज्य तथा प्रजातियों के कल्याण कामना से सम्पादन किया जाता है। अतएव यह ग्राम मुद्रा से अधिक गुरुत्वपूर्ण है। नगर की अर्चना ही इस प्रजा का प्रधान अंग है। उस अंग को साधारणतः ''नागराई'' या ''नगर'' पूजा कहते है।

केर पूजा का मूल तत्वानुसन्धान केर पूजा की नीरवता में व्यक्ति मात्र के हृदय में एक अनिर्वचनीय भाव का उदय होता है। इस पूजा का आनुष्ठानिक कार्य कलाप जिन्होने नहीं देखा है, इसका गांभीर्य उनकी धारणा के अतीत है। इस समय समग्र नगर को जन प्राणी से सबंध विच्छिन्न सा लगता है। गृह पालित पशुओं को भी घर से बाहर निकालना निषिद्ध हो जाता है। चारों ओर नीरवता निस्तब्धता का माहौल बना रहता है। सभी दरवाजे भी बन्द रहते हैं। इसे देखने पर लगता है कि रूप कथा में वर्णित जन प्राणीहीन किसी मायापुरी में आ गया है। केर पूजा के समय निर्दिष्ट सीमा के भीतर किसी का जन्म या मृत्यु होने पर एवं गीत, वाद्य किसी प्रकार के शब्द या कोलाहल होने पर यहाँ तक कि उच्च्य स्वर से बातें करने पर पूजा में विघ्न उपस्थित होता है। इस समय किसी के घर में अग्नि रखने का या जलाने का नियम नहीं है।

इन सभी क्रिया कलापों की आलोचना करने पर केर पूजा का उद्देश्य कितना उर्द्ध में है। कितना महान है। इसका अनुभव होता है। यह सृष्टि के प्राक काल के परिकल्पना व्यतीत हैं और कुछ नहीं है।

....

केरनामे महामुद्रा थाके आडाई दिन।
गालिम मंत्रे सेई मुद्रा चंताई अधीन।।
सेई आडाई दिन यदि जन्म मृत्यु होय।
तबे जानो केर मुद्रा मूले नष्ट होय।। इत्यादि

अर्थात, केर नाम की महा मुद्रा अढ़ाई दिन की होती है। गालिम मंत्र से वह मुद्रा चंताई के अधीन होती है। इस अढ़ाई दिन में अगर किसी की जन्म या मृत्यु हो जाये तो वह केर मुद्रा मूलतः विनष्ट हो जाती है।

प्रल–145

जिस काल में आलोक नहीं था, नाद नहीं था, प्राणी नहीं थे, जन्म मृत्यु नहीं थी, अन्धकारमय नीरवता ही जिस काल की एक मात्र सम्बल थी, यह उसी काल का चित्र है। राजमाला में है –चतुर्दश देवताओं के प्रतिष्ठा के दिन अन्य सभी देवता पूजा मन्दिर में पधारे, किन्तु विष्णु और लक्ष्मी का अविर्भाव नहीं हुआ। उन्हें लाने के लिए राजा के साथ चंताई क्षीर समुद्र के यहाँ गये थे।(1) इसके द्वारा भी सृष्टि के प्रारम्भ का आभास मिलता है और भी देखा जाता है सृष्टि की सूचना में गहन नीरवता को भंग कर नाद के उद्भव की तरह केर पूजा को नीरवता के बीच भँवरा का भों भों शब्द बीच बीच में शान्त विश्व में नाद की सृष्टि कर रहा है।(2) प्रदोष की बेला में "नागराई" पूजा के समय बांसो में परस्पर घर्षण द्वारा नई आग पैदा करके उसके द्वारा ही पूजा का कार्य किया जाता है। नागरिक वृन्द उस कल्याण–कर अग्नि को लेकर घर घर में नई अग्नि की स्थापना करते हैं। इस अग्नि के ग्रहण करने का दृश्य भी बड़ा अद्भुत है। अंधकार वृत नगरमय असंख्य उल्का प्रवाह की दौड़ धूप का दर्शन करने से सृष्टि के प्रथम ज्योति स्फुरण की कथा स्वयं ह्रदय में उदित होता है।

पूर्वोक्त विवरणों की आलोचना करने से स्पष्ट ही समझ में आ जाता है कि केर पूजा का प्रधान उद्देश्य वर्ष में एक बार प्रजाओं को नवीन सृष्टि की बातों का स्मरण करा देना है। एक साल के संचित पाप तापादि को दूर कर सभी को सुपवित्र नवउज्जीवित जीवन को लेकर संसार क्षेत्र में अग्रसर करना ही इसका उद्देश्य है। इसे ही बता देना ही इस अनुष्ठान का उद्देश्य है। धर्माचरण के साथ तत्व उपदेश का इस तरह के उच्च आदर्श किसी दूसरी जगह है, ऐसा हमें नहीं लगता।

चतुर्दश देवता का प्रभाव त्रिपुरेश्वर गण वंश परम्परा क्रम से चतुर्दश देवता के प्रति विशेष आस्थावान रहे हैं। त्रिपुरा के इतिहास में इसके बहुत से प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन नरपतिगण ने बहुत समय चंताई के मुख से चतुर्दश देवता का प्रत्यादेश प्राप्त कर बहुत से कार्य किये है। चतुर्दश देवताओं ने सेनापति के रूप में समर भूमि में अवतीर्ण होकर युद्ध भूमि में विजय प्राप्त किया है, इस तरह के विश्वास के उदाहरण भी त्रिपुरा के इतिहास में विरल नहीं हैं। यह सभी दृष्टांत नरपतिगणों के कुल देवता के प्रति अचल भक्ति और दृढ़ निर्भरता के परिचायक है। कालक्रम से कूट चक्री लोगों के हाथों में भी इस तरह के पवित्र और दायित्व पूर्ण चंताई का कार्य भार सौंपा गया था। कोई कोई दुष्ट बुद्धि चंताई ने स्वार्थ सिद्धि के अभिप्राय से या देवता के महात्मय प्रचार के उद्देश्य से अथवा राज

---

(1) राजमाला त्रिलोचन खण्ड, 29 पृष्ठ।

(2) केर पूजा के समय बांस के प्रशस्त भाग में छिद्र करके उसमें रस्सी बाँधी जाती है। उस रस्सी के दूसरे हिस्से को लेकर वेग पूर्वक घुमाने से वायु के आघात से भों भों शब्द होता है। वह शब्द बहुत गंभीर, उच्च और दूरगामी होता है।

प्रल—146

राजद्रोही दल के अधीन होकर चतुर्दश देवता के प्रत्यादेश का ढोंग रचकर नाना तरह के अनर्थ करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर बहुत तरह की चेष्टायें की थी। इस तरह के दृष्टांत भी त्रिपुरा के इतिहास में देखे गये हैं। यहाँ पर इस तरह की केवल एक घटना उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

चंताईगणों का प्राधान्य

महाराज विजयमाणिक्य दोर्दण्ड प्रतापशाली एवं राजनीति कुशल भूपति थे। उनके शासनकाल में(ई0 सोलह सदी का शेष भाग) चट्टगाँव में पाठान वाहिनी के साथ आठ महीने तक त्रिपुर का भीषण संग्राम हुआ। इस युद्ध में पराजित पठान सेनापति मोमारक खॉ(मतान्तर में मौहम्मद खाँ) पकड़े गये और लौह पिंजडे में बन्द करके उन्हें राज दरबार में लाया गया। यह मोमारक गौडेश्वर दाउद शाह के श्यालक थे।(1) धृत शत्रु को देवता के सामने बलि प्रदान करने की कथा रहने पर भी मोमारक खाँ को वध करने के लिए महाराज अनिच्छुक थे। किन्तु चंताई की इच्छा कुछ और थी। खाँ साहब को दरबार में हाजिर करने मात्र ही

दुर्लभ चन्ताय नाम राजाते जे कहे।	दुर्लभ चन्ताई ने राजा को कहा।
चतुर्दस देब बली खॉके दिबो ताहे।।	चतुर्दश देव को खां की बलि देगा।।
नृपतिय बोले चन्ताय उचित ना होय।	राजा बोला ये अनुचित है चन्ताई ।
ममारक खॉ बडो लोक सर्व लोके कैय।।	ममारक खां बड़ा आदमी है सब जानते है।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ

अर्थात, दुर्लभ चंताई ने राजा से कहा, चतुर्दश देवता के यहाँ बलि देना होगा। राजा ने कहा कि यह उचित न होगा, मोमारक खाँ बड़ा आदमी है। सभी यह कहते हैं।

चंताई ने सोचा— देवता की दुहाई नहीं देने पर इस कार्य में राजा की सम्मति मिलना कठिन होगा। इसलिए —

चन्ताई बले खॉके बलि दिबार तरे।	चन्ताई बोला खां बलि देने के लिये है।
देवोतार आज्ञा होइछे बलिलो राजारे।।	देवता की आज्ञा है राजा से बोला।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50प

अर्थात, "चंताई ने तब राजा से कहा कि देवता का आदेश है कि मोमारक खाँ की बलि दी जाय"

देवता का प्रत्यादेश सुनकर धर्मप्राण राजा विषम समस्या में पड़ गया। अपना कर्तव्य स्थिर न कर पाने की वजह से —

निःशब्दे रोहिलो राजा, अनुमति ज्ञाने।	निःशब्द राजा ने अनुमति दी।
चन्ताय जे खॉके निलो रत्नोपुर स्थाने।।(2)	चन्ताई ने खां को रत्नापुर(2) रखा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ

दूसरे दिन ममारक खाँ को चतुर्दश देवता के सम्मुख बलि प्रदान की गई। इसी वजह से गौड के साथ त्रिपुरा का मन मुटाव बद्धमूल हो गया था। चंताईयों के इस तरह के कार्य के दृष्टांत त्रिपुरा में बहुत से हैं।

---

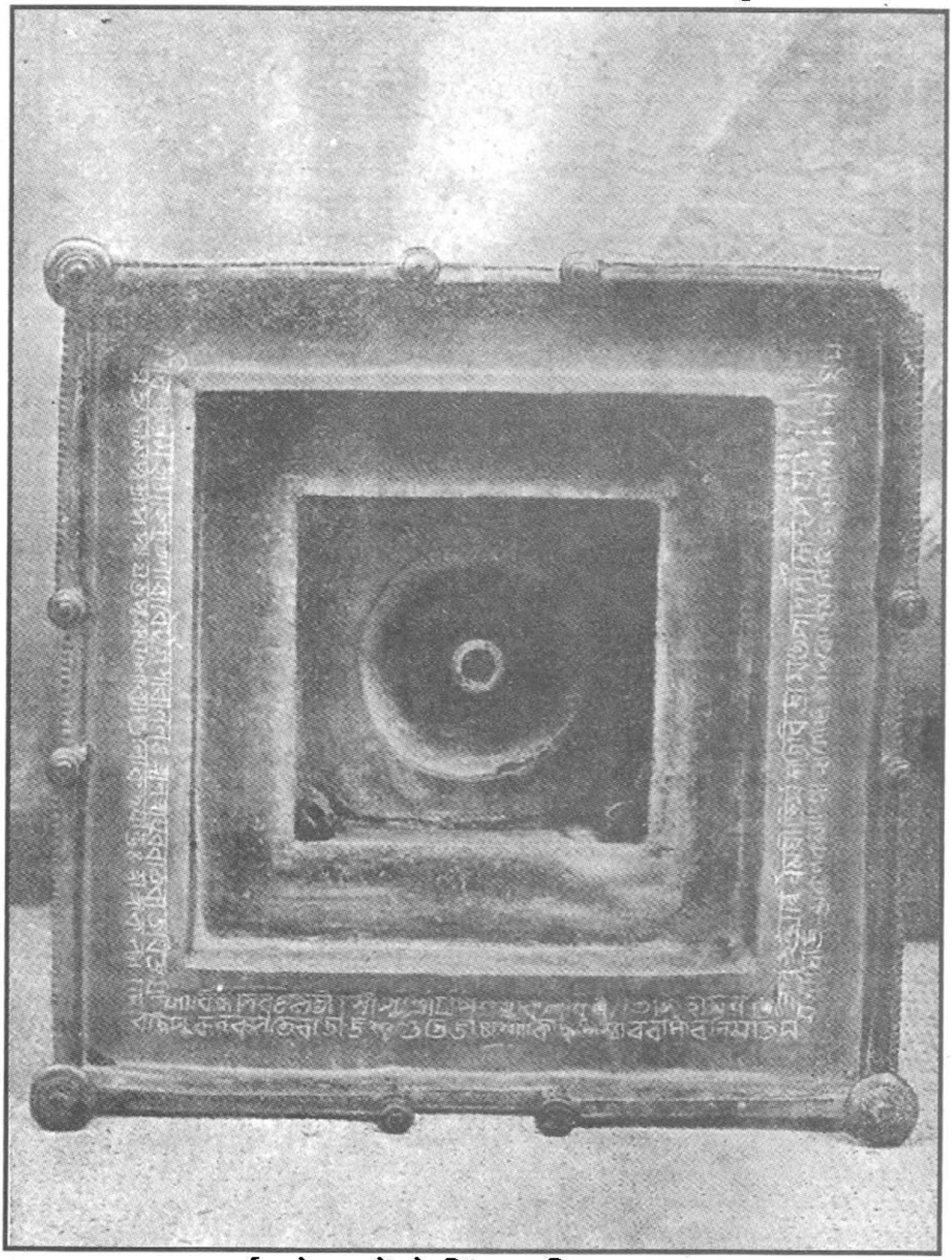
(1)

मोमारक खॉ नामेते गौडेश्वर शाला।	गौड़ेश्वर का साला था ममारक खां।।
महावीर पराक्रम युद्धे अति भाला।।	महावीर पराक्रमी और युद्ध निपुण था।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ

(2) उदयपुर में जहाँ चतुर्दश देवता का मन्दिर था, उस जगह नाम था रत्नपुर। यहाँ पर महाराज रत्नमाणिक्य का घर था।

प्रल–147

(Pratham leher-147) चित्र



चतुर्दश देवताओं के सिंहासनस्थित ताम्रफलक

प्रल–147

चतुर्दश देवता का सिंहासन चतुर्दश देवता का वर्तमान सिंहासन महाराज गोविन्दमाणिक्य का दिया हुआ है। उस सिंहासन के ऊपर संस्थापक ताम्र फलक में जो श्लोक लिखा गया है उससे यह जाना जाता है कि वह सिंहासन ''स्वर्णमयी'' नाम की गिरिजा को अर्पण किया गया था।(1) इसके पश्चात किस समय किस कारणवश वह चतुर्दश देवता के व्यवहार में आये हैं यह जानने का कोई उपाय नहीं है। ताम्र पत्र में खुदाई किया गया श्लोक नीचे दिया जा रहा है –

''श्रीकल्याणमहीमहेन्द्रतनयो वैर्युग्र दावानलः।
श्रीलश्रीयुवराज राजविजयी गोविन्द देवः कृती।।
दीप्यदीर्घ शटाप्तकेशरीलसत्सिंहासनं शोभनं।
भक्तया स्वर्णमयीति संज्ञागिरिजा सत्पादपदमेऽर्पयत।।(2)
अत्युददाम प्रतापप्रथित पुरुयशा(3) व्याप्त लोकत्रयान्तः।
श्रीश्रीकल्याणदेव त्रिपुर नरपतेरात्मजश्चंडतेजाः।।
शाकेऽंग ग्राब वाणावणिमति समदादौर्ज्यशुक्ले(4) नवम्यां।
श्रीश्रीगोविन्ददेवो हिमगिरितनयायै हि सिंहासना ग्रयं।।

अनुवाद

''भूमण्डल में इन्द्र तुल्य श्री कल्याणमाणिक्य के पुत्र शत्रुओं के लिए भीषण दावानल स्वरूप है। राजगणों के विजेता कृति युवराज गोविन्द देव दीप्तिशाली और दीर्घ केशर युक्त केशरी समूह में शोभायमान मनोहर सिंहासन को भक्ति के साथ ''स्वर्णमयी'' नाम की देवी पार्वती के चरणों में अर्पण किया।''

''नरपति कल्याण देव के पुत्र अत्युग्र प्रताप द्वारा जिनका यश त्रिभुवन में व्याप्त हो चुका है, उस प्रचण्ड तेजा श्रीगोविन्ददेव 1571 शक में कार्तिक महीने की शुक्ल नवमी तिथि में इस उत्कृष्ट सिंहासन को हिमगिरि तनया को सम्प्रदान किया।''

---

(1) महाराज धर्ममाणिक्य ने एक मन वजन के स्वर्ण द्वारा भुवनेश्वरी मूर्ति का निर्माण कराया था। इसके अलावा स्र्वणमयी प्रतिमा स्थापना की बात का कोई पता नहीं चला। सम्भवतः वह सिंहासन इस देवी के व्यवहार में आता। देवी मूर्ति के अपह्रत होने के पश्चात वह चतुर्दश देवता के लिए लाया गया था।

(2) अर्पयत् व्याकरण दुष्ट है। आर्पयेत् होना उचित था।

(3) ''यशा'' स्थल पर ''यशो'' होना संगत था।

(4) ''शुक्ले नवम्यां'' व्याकरण दुष्ट है।

प्रल—148

आराकान के राजा प्रदत्त सिंहासन इस सिंहासन की आलोचना करते हुए हमें एक बात याद आती है। सिंहासन दाता महाराज गोविन्दमाणिक्य राज्य भ्रष्ट अवस्था में कुछ दिनों तक आराकान के राजा के आश्रय में थे। उस स्थान से लौटते वक्त आराकान के मघ नृपति ने गोबिन्दमाणिक्य को जो चीजें विदायी उपदौकन दिया था। उसमें है —

कोतो घर मघ अष्ट धातू सिंहासन।	कुछ घर मघ और अष्ट धातु सिंहासन।
देव जन्ये मघ राजा कोरिलो अर्पण।।	देवता के लिए मघ राजा ने किया अर्पण।।
राजमाला चल गोविन्दमाणिक्य खण्ड 11पृ	राजमाला चल गोविन्दमाणिक्य खण्ड 11पृ

अर्थात, कुछ घर मघों के साथ, अष्टधातु का बना हुआ सिंहासन देवता को अर्पण करने के लिए मघ राजा ने अर्पण किया।

आराकान के राजा का प्रदत्त सिंहासन कहाँ किस अवस्था में है, अब इसकी जानकारी हासिल करना भी एक तरह से असंभव है। त्रिपुरा के किसी देवालय में आराकान अधिपति का सिंहासन अथवा अष्ट धातु का बना सिंहासन है? इसकी जानकारी नहीं मिल पाई।

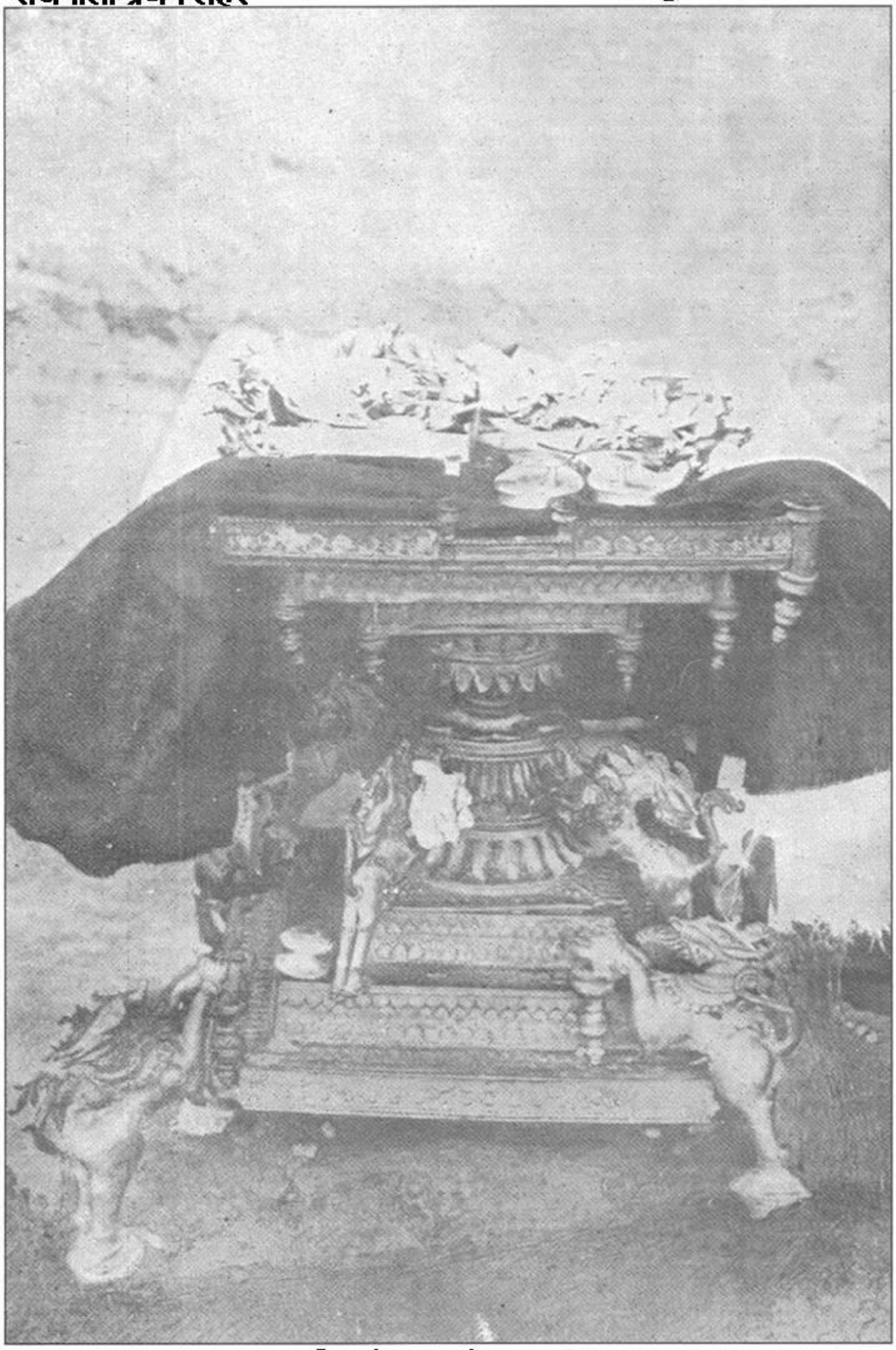
चतुर्दश देवता के सामने खड़े होने पर और अतीत की घटनाओं को याद करने पर हृदय में स्वतः ही एक विभीषिका मिश्रित भक्ति रस का संचार होता है। किसी विग्रह को पाँच हजार वर्ष तक हिन्दू, मुसलमान और किरात आदि विविध श्रेणी के करोड़ों आर्य अनार्य धर्म प्राण भक्तों ने अर्चना और भक्ति किया है और करते आ रहे हैं, उस विग्रहों गौरव और गांभीर्य कम नहीं है। यह बात सहज ही अनुभव की जा सकती है।

त्रिपुर राजवंश के दूसरे कुल देवता की "वृंदावनचन्द्र", "भुवन मोहन", "लक्ष्मी नारायण" आदि विग्रह सम्प्रदाय विशेष के उपास्थ हैं। चतुर्दश देवता विभिन्न सम्प्रदाय के उपास्थ चौदह देवताओं की समीष्ट होने की वजह से, उनके प्रति सभी सम्प्रदायों की श्रद्धा और भक्ति बरकरार रही है।

नरबलि कितने ही पराक्रमशाली वीरों के खून से देव मन्दिर प्रक्षालित हुआ है। कितने ही नर और पशुओं के जीवन का इस देव द्वार पर आहुति प्रदान किया गया है। उनकी संख्या कौन गिन सकता है? इन बातों को सोचने पर हृदय में भयानक विभिषिका का क्षयपात होता है। इस समय नरबलि बन्द हो जाने पर भी हर साल असंख्य पशु बलि द्वारा देवता की अर्चना होती है। असंख्य हंस और कबूतर की बलि दी जाती है। इस तरह की बलि कामरूप प्रदेश में होती है। पहले की पाद टीका में उसका वर्णन आया है। यहां उसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है। कालिका पुराण के 55 अध्याय में पक्षी बलिदान की व्यवस्था है।

———————

प्रल–148
(Pratham leher-148) चित्र



चतुर्दश देवताओं का सिंहासन

प्रल–149

राज चिन्ह

राज चिन्ह(लांक्षन) महाराज त्रिलोचन के राज्याभिषेक के वर्णन के प्रसंग में राजमाला में लिखा गया है।

बोसाइलो सिंहासने मोहर मारिलो।	बैठाउँगा सिंहासन पर मोहर लगाकर।
शिव आज्ञा अनुसारे द्वि–ध्वज करिलो।।	द्विध्वज किया शिव आज्ञा अनुसार।।
चन्द्रेर वंशते जन्म चन्द्रेर निशान।	चन्द्रवंश में चन्द्र जन्म का निशान।
शिबबरे त्रिलोचन त्रिशूलध्वज तान।।	शिव वर से त्रिशूल ध्वज त्रिलोचन नाम।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17–18 पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17–18 पृ

अर्थात, सिंहासन पर बैठकर मोहार लगा दिया, शिव की आज्ञा से दो ध्वज बनाया। चन्द्रवंश में जन्म तो चन्द्र का ही निशान लगाया । शिव वर से त्रिलोचन का त्रिशूल ध्वज कहा गया।

इसके अलावा और कुछ वस्तु और उपाधि त्रिपुरा के राज चिन्ह में शामिल है। यथा स्थान में उनके नाम एवं पूर्ण विवरणों का उल्लेख किया जायेगा।

राज प्रतीक चिन्हो का प्राचीनत्व राजपताकाओं में प्रतीक चिन्ह आधुनिक वस्तु नहीं है। प्राच्य प्रदेश से लेकर प्रतीच्य में भी इस तरह के प्रतीक पा चुके हैं। महाभारत में – अर्जुन का पताका हनुमान चिन्ह द्वारा शोभित था। इस पताका को ''कपि ध्वज'' कहा जाता था। प्राचीन काल में राजपुत्रों में राजप्रतीक का व्यवहार होता था। मेवाड़ का राज पताका रक्त वर्ण है। उसके मध्य भाग में सुवर्ण मण्डित सूर्य मूर्ति अंकित की जाती है। अबंर की पताका पाँच रंगों वाली है। चन्देरी राज्य में सिंह का चिन्ह अंकित रहता है। यूरोप के सभी राजाओं में राज चिन्ह है।

राज चिन्हों का नाम व विवरण त्रिपुर भूपतिवृन्द प्राचीन काल से ही राज चिन्ह धारण करते आ रहे है। त्रिपुरा के राज चिन्हों में नौ प्रकार के चिन्हों का उल्लेख मिलता है।(1)

1. चन्द्र बाण या चन्द्र ध्वज
2. त्रिशूल ध्वज या सूर्यबाण
3. मीन मानव(माइ मूरत)

---

(1) त्रिपुरा के उस समय के परराष्ट्र सचिव श्रीश्रीयुक्त महाराजमाणिक्य बहादुर के वर्तमान चीफ सेक्रेटरी श्रीयुक्त दीवान विजय कुमार सेन एम. ए., बी. एल. महोदय ने इस बारे में जिन जो सभी विवरणों का संग्रह किया था। वह श्रीयुक्त अमूल्यचरण विद्याभूषण महोदय के लिखित विवरण और उल्लिखित ''त्रिपुरा के राज चिन्ह'' नाम के प्रबन्ध में ''भारतवर्ष 1323, प्रथम संख्या'' में यह लिख गया। (अनुवादक–अर्थात आज से 87 साल पहले लिखा गया था।)

प्रल–150

4. श्वेत छत्र
5. आरंगी
6. ताम्बुल पत्र(पान)
7. हस्त चिन्ह(पंजा)
8. राज चिन्ह **(Coat of Arms)**
9. सिंहासन

इन सभी चिन्हों में कौन सा चिन्ह किस अर्थ में या किस उद्देश्य से व्यवहार किया जाता है, यहाँ पर हम उसी का संक्षिप्त विवरण प्रदान कर रहे हैं।

1. चन्द्र बाण या चन्द्र ध्वज –यह सुवर्ण निर्मित अर्ध चन्द्राकृति चिन्ह, सुदीर्घ रौप्य दण्ड पर स्थित है। त्रिपुर राज वंश चन्द्र से समूद्भूत है, उसी के निदर्शन स्वरूप स्मारणातीत काल से भूपति गण इस चिन्ह को धारण करते आ रहे हैं। राज दरबार में जिस सम्प्रदाय के लोग इस चिन्ह को धारण करते हैं, उनकी उपाधि ''छत्रतुइया'' है।(1) इसे सिंहासन दक्षिण की ओर धारण किया जाता है।

2. त्रिशूल ध्वज या सूर्य बाण– यहाँ भी स्वर्ण निर्मित त्रिशूलाकार चिन्ह है। यह चिन्ह चांदी के दण्ड के ऊपर संस्थापित है। इसके मूल में एक ऐतिहासिक तथ्य छुपा हुआ है। महाराज ययाति के पुत्र द्रुहयु से गणना में अधस्तन 39 स्थानीय महाराज त्रिपुर थे। प्रजा पीड़क और विविध दुष्कर्मों में रत रहने की वजह से, प्रजाओं के आर्तनाद से व्यथित हृदय शूलपाणि ने कोपविष्ट होकर, त्रिपुरा का विनाश साधन किया इसके बाद संभावित संतति राज महिषी हीरावती पुत्र कामनार्थ भूतभावन भवानी पति की आराधना में प्रवृत्त हुई। उसकी उग्र तपस्या के फलस्वरूप भगवान आशुतोष ने प्रसन्न होकर प्रत्यावेश किया। ''तुम्हारे गर्भ से अपूर्व श्री सम्पन्न एक पुत्र रत्न जन्म ग्रहण करेगा। वह पुत्र त्रिलोचन नाम से जाना जायेगा और राजकुल को गौरवान्वित करेगा। महादेव ने और भी कहा –

दुई ध्वज कोरिबा जे तार आगे चिन्ह।	दो ध्वज रखोगे उसके आगे चिन्ह।
चन्द्रवंश चन्द्रध्वज त्रिशूलध्वज भिन्न।।	चन्द्रवंश चन्द्र ध्वज त्रिशूल ध्वज भिन्न।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15 पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 15 पृ

अर्थात,– ''दो ध्वजायें करोगे उसके आगे यही चिन्ह रहेगा। चन्द्रवंश का चन्द्र ध्वज रहेगा। लेकिन त्रिशूल ध्वज उसमें अलग से दिया जायेगा।''

....

(1) त्रिपुर भाषा में तुई शब्द का अर्थ है– धारण करना। इसी कारणवश छत्र वाहक श्रेणी को यह उपाधि प्रदान की गई है। इसके अलावा तुई शब्द का दूसरा अर्थ है –पानी। इसके अलावा वाहक को ''तुइनाइ'' कहा जाता है। अतः छत्रतुइया नाम भी सही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

प्रल–150
(Pratham leher-150) चित्र



चन्द्रध्वज और त्रिशूल ध्वजधारी

प्रल–151

कथित चन्द्र ध्वज और त्रिशूल ध्वज के विषय में संस्कृत राजमाला में लिखा है –
त्रिलोचनोति धर्मज्ञः शिवभक्ति परायणः।
शिवांश जातो नृपतिश्चन्द्रशूल ध्वजोऽभवत्।।

शिव कृपा संज्ञात त्रिलोचन को आम जनता ने शिवांश जात या शंकर का पुत्र कहकर घोषणा की। वे चन्द्र वंशोद्भूत कहकर चन्द्र ध्वज और शिवांश जात कहकर ध्वज धारण किया। राजमाला में है –

शिव आज्ञा अनुसारे द्वि–ध्वज करिलो।।	द्विध्वज किया शिव आज्ञा अनुसार।।
चन्द्रेर वंशते जन्म चन्द्रेर निशान।	चन्द्रवंश में चन्द्र जन्म का निशान।
शिबबरे त्रिलोचन त्रिशूलध्वज तान।।	शिव वर से त्रिशूल ध्वज त्रिलोचन नाम।।
से हेतू त्रिपुर राजार होये दुई ध्वज।	इस तरह त्रिपुर राजा का हुआ दो ध्वज।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17–18 पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17–18 पृ

ये दोनों प्रतीक चिन्ह राजवंश के प्रधान राज चिन्हों में परिगणित है। त्रिलोचन के विवाह यात्रा में भी इन दोनों चिन्हों को व्यवहार किया जाने का उल्लेख है।

चन्द्र–ध्वज त्रिशूल–ध्वज अग्रेते निशाना।	चन्द्र ध्वज त्रिशूल ध्वज सामने रहे निशाना।
संगे जतो लोक चले नाहिक गणना।।	संग चले लोग इतने कौन करे गणना।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 22 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 22 पृ

त्रिलोचन के समय से दरबार में, अभियान के समय एवं हर तरह के राज कार्य में त्रिपुर भूपति वृन्द चन्द्र ध्वज के साथ त्रिशूल ध्वज व्यवहार करते हुए आ रहे हैं। चन्द्र ध्वज की तरह त्रिशूल ध्वज भी छत्रतुइया सम्प्रदाय के राज भृत्य द्वारा सिंहासन के दाहिनी ओर रखा जाता है।

त्रिपुर वाहिनी का उन दोनों ध्वजों को धारण कर करीब के अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त करने के निदर्शन इतिहास में पाये जाते हैं। महाराज युझार फा रांगामाटी प्रदेश के अधिपति लिका राजा के विरूद्ध युद्ध यात्रा के समय –
आदौ विनिर्गतस्तस्य चन्द्रांकित महाध्वजः।
तत् पश्चान्निर्गतस्तस्य त्रिशूलाकारक ध्वज्।।

संस्कृत राजमाला।

प्राचीन काल में ध्वज(पताका) को ''बाणा'' कहा जाता था। उसी बाणा शब्द

से चन्द्र बाण, त्रिशूल बाण आदि कहे जाते हैं।(1) चन्द्र और त्रिशूल ध्वज के अलावा हनुमान चिन्ह युक्त पताका भी त्रिपुर राज्य चिन्ह में अपना स्थान बना लिया है। यह चन्द्र वंशज नरपतिगणों का एक कौलिक चिन्ह है। अर्जुन के हनुमान ध्वज कथा स्थानान्तर में उल्लेख किया गया है।

3. मीन मानव(माइमूरत)– इसे साधारणतः माइमूरत कहा जाता है। माइ–मत्स्य एवं मूरत का अर्थ है मूर्ति या मानव। इसका अर्द्ध भाग(कटि देश तक या कमर तक) नारीमूर्ति है, एवं कमर का निचला हिस्सा मीनाकृति है अर्थात मछली का है। मानवांश सुवर्ण का और मीनांश रजत निर्मित है। यह भी रौप्य दण्ड पर स्थित है।

यह चिन्ह मुसलमानों के समय भी(मुगल शासन काल में) व्यवहार किया जाता था। ''सयेर–उल्–मुताक्खरीने'' में इसका उल्लेख मिलता है। मुस्लिम लोग इस तरह के चिन्ह को ''माहीमारितिव्'' कहते थे।

दूसरे किसी जाति में भी इस चिन्ह के व्यवहार के उदाहरण विरल नहीं हैं। उनमें यह चिन्ह विशेष सम्मान के निदर्शन स्वरूप व्यवहार किये जाते थे।

त्रिपुर राज्य में यह चिन्ह जलदेवी(गंगा) की प्रतिमूर्ति के रूप में व्यवहार में लाया जाता है। इस मूर्ति का दक्षिण हस्त एक पताका लिये हुए है। प्रजाओं के यहाँ राजधर्म की पवित्रता की घोषणा करना ही इस पवित्रतामयी गंगा मूर्ति धारण का मुख्य उद्देश्य है। यह चिन्ह छत्रतुइया सम्प्रदाय के द्वारा सिंहासन के दक्षिण किनारे रखा जाता था।

अध्यापक श्रीयुत अमूल्य चरण विद्याभूषण महोदय त्रिपुरा के राज चिन्ह के विवरण में कहते हैं कि मुसलमानों के प्रदत्त नामानुसार अथवा **Steingass** के अनुसार इस चिन्ह का नाम है ''माहीमारतिव्'' इस बारे में उनका कहना है –

''अशिक्षित लोग इसे ''माहीमरात'' अथवा ''माइमरात'' अथवा ''माइमूरत'' तक कहते हैं।''

असल में माहीमरात या माइमरात कोई नहीं कहता। यह नाम अमूल्य बाबू ने कहां से पाया है, हमें मालूम नहीं। यह चिन्ह त्रिपुरा में माहीमूरत अथवा माइमूरत नाम से परिचित है। शिक्षित अशिक्षित सभी यही कहते हैं। माही या माइ शब्द मत्स्य को ही समझा जाता है। विद्याभूषण महाशय मत्स्य जीवी सम्प्रदाय विशेष को माइफरास या माहीमाल इत्यादि कौलिक उपाधियों की बात अथवा मत्स्य–धृत विषय के महाल माइमहाल की कथा विस्मृत हो चुकी है। किन्तु व्यक्ति या मनुष्य को मूरत कहा जाता है। यह उनके न जानने की बात नहीं है। इस अवस्था में अर्द्ध नारी और अर्द्ध मीणाकृति चिन्ह को माइमूरत या माहीमूरत कहने से ही लोगों को

---

(1) पताका को ''बाणा'' कहने का दृष्टान्त अन्यत्र विरल नहीं है कृष्णमाला में है

देखे बहु सैन्य संगे श्वेत रक्त बाण।
युद्ध सज्जे गति येन आगे ते निशान।।

प्राचीन राजमाला में है

चन्द्रोध्वज त्रिशूलध्वज चलिछे आगे बाणा।
श्वेत छत्र आरंगी गावल येवा सोना।।

प्रल–152

(Pratham leher-152) चित्र



माईमूरतधारी छत्रतुईया

प्रल–153

(Pratham leher-153) चित्र



ताम्बूलपत्रधारी आरंगीधारी छत्रतुईया हस्तचिन्ह(पांजा)धारी बाछाल

प्रल–153
अशिक्षित क्यों होना होगा – यह तत्व हृदयगंम करना दुष्कर है। यह चिन्ह त्रिपुर राज्य में प्राचीन काल से ही – जिस नाम अभिहित होता आया है। उसे परित्याग कर मुसलमानों के अथवा अंग्रेंजो के प्रदत्त नाम को ग्रहण करना होगा और उसे नहीं ग्रहण करने पर लोग अशिक्षित हो जायेगें। – अमूल्य बाबू के इस तीव्र वाक्य का क्या कुछ मूल्य भी है ?

चन्द्रबाण, त्रिशूल बाण, छत्र, आरंगी और गावल राजमाला में यही कुछ चिन्हों का उल्लेख मिलता है। माइमूरत का उल्लेख नहीं है। वह न रहने पर भी चिन्ह जो विशेष प्राचीन है, इसमें कोई संदेह नही। इस चिन्ह के बारे में सर रोपार लेथ ब्रीज साहब **(Sir Roper Lethbridge)** की स्वरचित **''The Golden Book of India''** नामक ग्रंथ में उन्होनें लिखा है

“The family congnisance is the device of a figure half man, half fish, said to be derived from the figure of a fish very widely borne on their flags by ancient Rajput chiefs.”

लेथ ब्रीज ने इस चिन्ह को त्रिपुर राज वृन्दों के वंशगत विशेष चिन्ह कहकर स्वीकार किया है एवं राजपूतों में इस चिन्ह का बहुतयात से प्रचलन है– कहकर उन्होनें इसका विवरण दिया है। राजपूतों में प्रचलित इस चिन्ह के वर्णना प्रसंग में उन्होनें शिशु मत्स्य की बात कही है। त्रिपुरा के चिन्ह में जिस मत्स्य को संयोजित किया गया है वह शिशु मत्स्य वाचक नहीं है बल्कि मकर वाचक है। मकर गंगा का वाहन है। मकर, मीन या मत्स्य संज्ञक है, इसके बहुत से प्रमाण हैं। प्रदयुम्ब के मकरध्वज को ''मीन केतन'' कहा गया है। इस ध्वज को धारण के निमित्त कामदेव का एक नाम ''मीन केतन'' भी है। गंगा के साथ मीन का विशेष सम्बन्ध है। इसीलिए नारी मूर्ति के(गंगा मूर्ति) के निम्न भाग में मीनाकृति संयुक्त है।

इस मूर्ति के दक्षिण हस्त में पवित्रता का ध्वज है – यह बात पहले ही कही गई है। बाम हस्त में एक पद्म शोभायमान है। गंगा देवी के ध्यान में उन्हे ''कमल–करधृता'' कहकर वर्णन किया गया है। इससे भी यह चिन्ह गंगा देवी की मूर्ति के रुप में स्वीकृत है।

4. श्वेत छत्र– यह चन्द्र राजाओं के और प्रधान व्यक्तियों का एक विशेष चिन्ह है। उत्तर गो–गृह के समर में समवेत् कौरव वाहिनी के सम्मुखीन होकर बृहन्नला रूपी अर्जुन ने उत्तर को कहा था –

यस्येतत् पाण्डुरं छत्रं विमलं मूर्द्धि तिष्ठति।

\+   +   +   +   +

प्रल–154

एष शांतनवो भीष्मः सर्वेषां नः पितामहः
राजाश्रियाभिवृद्धश्च सुयोधनवशानुगः।।
महाभारत विराट पर्व 55 अध्याय 55–58 श्लोक।

मर्म "जिनके मस्तक पर पाण्डुर वर्ण(श्वेत) सुविमल छत्र शोभायमान है वे हमारे पितामह शान्तनु नन्दन भीष्म है।" महाभारत में अन्यत्र भी देखने को मिलता है कि दुर्योधन के विपुल वाहिनी के नगर में प्रवेश के समय –

श्वेतच्छत्रैः पताकाभिश्चामरैश्च्च सुपाण्डुरैः।
रथैर्णागौः पदातैश्च शुशुभेऽतीव संकुला।।
महाभारत वन पर्व 251 अध्याय 47 श्लोक।

मर्म– श्वेत छत्र, श्वेत पताका और श्वेत चामर से शारदीय सुविमल नभ मण्डली तरह सेना मण्डली सुशोभित हो उठी।

कवि श्री हर्ष ने कहा है –

नलः सितच्छत्रित कीर्ति–मण्डलः।
स राशि वासीन्महसां महोज्जवलः।।
नैषधिय चरितम् प्रथम सर्ग 1 श्लोकार्ध।

महाराज नल के मस्तक पर छाये शुभ्र आत पत्र को उनकी सुविमल कीर्ति मण्डल के रूप में कवि ने वर्णना की है। श्री हर्ष ई0 सन दसम सदी के प्रथम भाग में अर्विभूत थे।

उद्धृत वाक्यावली के आलोचना से जाना जाता है कि चन्द्रवंशीय भूपति और प्रधान व्यक्तिगण स्मरणातीत काल से श्वेत छत्र धारण करते आ रहे हैं। त्रिपुर नृपतिवृन्द भी प्रथानुसार यह छत्र व्यवहार कर रहे हैं। द्रुहयु के अधस्तन 25 वें पुरुष महाराज प्रतर्द्दन प्राचीन राजधानी से श्वेत छत्र साथ ले गये थे। राजरत्नाकर 12 सर्ग 89 श्लोक में इस विषय का उल्लेख मिलता है।

छत्रतुइया सम्प्रदाय के राजभृत्य सिंहासन के दक्षिण की ओर यह चिन्ह धारण करते हैं।

5. आरंगी– यह श्वेत वस्त्र विनिर्मित व्यजनी विशेष है। प्राचीन ग्रन्थों में इस आत पत्र के रूप से व्यवहार करने का प्रमाण मिलता है। यह चिन्ह भी प्राचीन काल से व्यवहृत होता है। महाराज त्रिलोचन के विवाह के यात्रा काल में भी श्वेत छत्र के साथ यह चिन्ह भी साथ था –

नवदण्ड श्वेत छत्र आरंगी गावल।	नव दण्ड श्वेते छत्र आरंगी गावल।
पात्र मंत्री संगे गेलो आनन्द बहुल।।	पात्र मंत्री साथ गये ह्रदय आनन्द उछल।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 22पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 22पृ

अर्थात नवदण्ड, श्वेत छत्र, आरंगी, गावल – आनन्द के पात्र मित्रों के साथ ये चीजें भी गई।

यह चिन्ह भी पहले कहे गए चिन्हों की तरह छत्रतुइया सम्प्रदाय के द्वारा सिंहासन के दक्षिण की ओर रखा जाता है। यह भी बहुत बृहत रौप्य दण्ड पर संस्थापित रहता है।

प्रल–155
(Pratham leher-155) चित्र



ताम्बूलपत्रधारी आरंगीधारी छत्रतुईया हस्तचिन्ह(पांजा)धारी बाछाल

प्रल–155

6. ताम्बुल पत्र(पान)– यह चिन्ह रौप्य निर्मित है। बाछाल(1) सम्प्रदाय के लोगों को इस चिन्ह को धारण करने के अधिकार प्राप्त हैं। इस सिंहासन के बाँयी ओर रखा जाता है।

हिन्दु लोग शांति और मंगल के चिन्ह स्वरूप ताम्बुल(पान) का व्यवहार करते हैं। राजा प्रजा के शांति और मंगल दाता है। त्रिपुर भूपति इस अवश्य पालनीय राज धर्म के पालन के लिए सतत तत्पर रहते हैं। यह चिन्ह धारण करके यही वार्ता सभी को जैसे सूचित कर रहा है।

7. हस्त चिन्ह(पंजा)– यह चिन्ह भी रौप्य निर्मित है। इस चिन्ह के धारण करने वाले बाछाल सम्प्रदाय के लोग हैं। इसे सिंहासन के बाँयी ओर रखा जाता है।

जगन्माता आद्या शक्ति की ''अभयमुद्रा'' से यह चिन्ह गृहीत हुआ है। राज शक्ति प्रजाओं की एक मात्र भरोसा स्थल है। राजा हमेशा उन्हें अभय दान करने में तत्पर हैं। इस चिन्ह से यही सूचित किया जाता है। मुसलमानों के समय एवं इसके पूर्व हिन्दुओं के राजत्व काल में भी इसका व्यवहार था। वे इसे भिन्न अर्थ में व्यवहार करते हैं।

8. राज चिन्ह **(Coat of Arms)**–

राज चिन्ह में व्यवहृत चिन्हों का विवरण

इस चिन्ह के सबसे ऊपर त्रिशूल ध्वज है। उसके नीचे चिन्ह चन्द्र ध्वज है। उसके दोनों ओर चार पताका और दो सिंह मूर्तिया अंकित है। मध्य भाग में एक ढाल **(Shield)** विराजमान है। अंकित चिन्हों में त्रिशूल ध्वज और चन्द्र ध्वज की बात पहले ही कही गई है। दोनों ओर अंकित सिंह द्वय क्षात्रवीर्य के या राजशक्ति के प्रतीत हैं एवं चारों पताकायें हस्ती और आरोही, ढाली, तीरन्दाज एवं गोलंदाज ये चतुरंग वाहिनी निदर्शन स्वरूप व्यवहार की जाती है।(2) मध्य भाग में अंकित ढाल को चार भागों में विभक्त कर एक एक भाग में निम्नोक्त एक एक चिन्ह अंकित किया गया है। यथा –

---

(1) महाराज धन्यमाणिक्य के शासनकाल में सेनापति राय चयचाग थानांचि पर विजय प्राप्त कर जिन सभी कुकी रमणियों को ले आये थे, बाछाल गण उन्हीं के गर्भजात संतान हैं यथा

बहुतर स्त्रीलोक दासी आनिछिलो।
सेई स्त्रीर गर्भजात बाछाल जन्मिलो।।
त्रिपुर वंशावली।

(2) प्राचीन काल में सेनाओं में श्रेणी भेद के अनुसार पताका में भिन्नता थी। प्राचीन राजमाला में है–

पताका अनेक शोभे प्रति फौजे फौजे।
शुभ्रवर्ण ढालिते, रक्त तीरन्दाजे।।

अर्थात हर फौज के श्रेणी में अलग अलग पताका शोभित थे। ढाल में शुभ्र वर्ण और तीरन्दाजों में रक्त वर्ण का पताका था।

प्रल–156
1. मीन मानव
2. ताम्बुल पत्र(पान)
3. हस्त चिन्ह(पंजा)
4. पाँच तारा

इनमें 1. मीन मानव 2. पान और 3. पंजा का विवरण इसके पहले ही दिया गया है। पाँचो तारा पंच–श्री समन्वित राज्य–श्री का परिचायक है।

पंच श्री का तात्पर्य त्रिपुर राजाओं के नाम के पहले पाँच श्री का व्यवहार होता है। राजा का पूर्ण नाम अगर लिखना हो तो – ''विषम समर विजयी महा महोदय श्री श्री श्री श्री श्रीयुक्त महाराज वीर विक्रमकिशोरदेव वर्ममाणिक्य बहादुर'' इस तरह का लिखना होता है। लिपि संक्षेपार्थ सचराचर श्रेणीबद्ध तरीके से 5 श्री न लिखकर पंच–श्री लिखा जाता है। यह अशास्त्रीय या निरर्थक लिपि नहीं है।

राजा के नाम के पहले पाँच श्री व्यवहार की प्रथा अति प्राचीन है। बररूचि रचित पत्र कौमुदी में है –

''षडगुरोः स्वामीनः पंचद्वेभृत्ये चतुरोरिपौ।
श्रीशब्दानाम त्रय मित्रे ऐकैकम् पुत्र भार्ययोः।।''

पत्र कौमुदी।

स्वामी के(राजा) नाम में जो श्री का व्यवहार किया जाता है। उसका एक तात्पर्य है
आद्याकीर्ति द्वितीया प्रकृतिषु करूणा दान्ततासाम् तृतीया।
तुर्यास्यात् दान–शौंडयम् नृपकुल महिता पंचमी राजलक्ष्मी।।''

उद्भट।

कृष्णवर्ण होइछे सब अग्नि अस्त्र बाणा।
हस्तीबर परे यतो लोहार बीर बाणा।।

उन दिनों पताका को ''बाण'' कहा जाता था। उद्धृत वाक्य की आलोचना से जाना जाता है कि खड्ग चर्मधारी सेना दल – शुभ्र वर्ण, तीरन्दाज गण – रक्त वर्ण एवं गोलन्दाज गण – कृष्ण वर्ण पताका व्यवहार करते थे। लौह विनिर्मित वीर बाण(हनुमान का चेहरे से रंजित) गजारोही सेनाओं के लिए निर्धारित था।

त्रिपुर राज्य के भूतपूर्व पॉलिटिकल ऐजेंट बोल्टन साहब ने **(Mr C.W. Bolton)** बहुत पहले त्रिपुरा के **Coat of Arms** का विवरण संग्रह किया था। वे भी पताका चतुष्टय चतुरंग वाहिनी के व्यवहार के लिए सुरक्षित था, बताते हैं।

प्रल–156

(Pratham leher-156) चित्र

राजमाला प्रथम लहर　　　　पृष्ठ संख्या – 156



राज – लांक्षन (**Coat Of Arms**)

प्रल–157

प्रवचन या Motto उस चिन्ह के निम्न भाग में देवनागरी अक्षरों में एक वाक्य अंकित है – ''किलविदुवीरतां सारमेकं ''। तात्पर्य यह है ''वीर्य ही एक मात्र सार है।'' यह सुदृढ़ नीति वाक्य के ऊपर त्रिपुर राज्यभीत्ति स्थापित है। 1015 त्रिपुराब्द में(1312 बंगला सन्) 17 आषाढ़ राजधानी अगरतल्ला में त्रिपुरा साहित्य सम्मिलनी की प्रतिष्ठा सभा में सभापति कवि सम्राट श्रीयुक्त डा0 रविन्द्र नाथ ठाकुर ने एक सारगर्भ Motto आधारित गहन गवेष्णा पूर्ण एक प्रबन्ध पाठ किया था। उसकी आलोचना से इस बारे में कुछ हृदयगम किया जा सकता है।(1)

भारत सम्राज्ञी के दिल्ली के दरबार के समय ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से त्रिपुरेश्वर स्वर्गीय वीरचन्द्रमाणिक्य को एक पताका उपहार दिया गया था। उसमें यह सारे चिन्ह दिया गया था।

9. सिंहासन

सिंहासन का आकार व प्राचीनत्व –यह सिंहासन सोलह सिंहों से लगाया गया अष्टकोण था। यह सिंहासन प्राचीन काल से व्यवहृत होता आ रहा है। महाराज त्रिलोचन के राज्यभिषेक के समय भी ऐसा सिंहासन था। राजमाला में भी इसका उल्लेख मिलता है।(2) प्रकृत रूप से सोलह सिंहों में अष्टकोण में संस्थापित आठ सिंहों में यह सिंहासन उठा रखा है। बाकी आठ सिंह केवल नाम मात्र इसमें जुडे हुए हैं।(3)

....

(1) यह निबन्ध 1312 साल में श्रावण महीने के ''बंग दर्शन''(नव प्रथा से) में प्रकाशित हुआ है।

(2) त्रिपुर खण्ड 17 पृ।

(3) त्रिपुरेश्वर की ग्रन्थागार में रक्षित ''राज्यभिषेक पद्धति'' नामक हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ, उल्लेखित ग्रन्थ में सिंहासन अर्चना में जो मंत्र लिखा गया है, उसके साथ इस सिंहासन के गठन में एकरूपता दिखाई देती है। उस मंत्र के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।

उँ सिंहासनं विरचितं गजदंतादि निर्मितं।
षोडश प्रतिमा युक्तं सिंहैः षोडशभिर्युतं।।
चतुर्हस्त प्रमाणन्तु निर्मितं विश्वकर्मणा।
भूपतेरासनार्थाय तव पूजां करोम्यहं।। इत्यादि।

प्रल—158

सिंहासन की मौलिकता नष्ट नहीं हुई   इस सिंहासन का बहुत बार संस्कार होने पर भी उसकी मौलिकता नष्ट नहीं की गई एवं प्रधान उपकरणों को जहाँ तक संभव हो सका है, अक्षुण्ण रखा गया है। किसी किसी का कहना है कि पहले सिंहासन चतुष्कोण था। आकार परिवर्तन कर अष्टकोण किया गया हैं पुनः कुछ लोगों के अनुसार महाराज कृष्णमाणिक्य को नया सिंहासन का निर्माता कहा गया है, लेकिन ठोस प्रमाण के बिना यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। त्रिपुरेश्वरगण राष्ट्र विप्लव के फलस्वरूप समय समय पर राज पाट छोड़ने पर बाध्य होने पर भी सिंहासन और चतुर्दश देवता को कभी परित्याग नहीं किया। उसे सदा अपने साथ रखे थे और उन्हें रखना असम्भव होने पर विश्वस्त पार्वत्य प्रजा के घर में उसे सुरक्षित रखते थे। किसी किसी समय सिंहासन को निभृत गिरि निर्झरणी में निम्मजित कर रखने की बात भी सुनी गई है। इसी कारण समसेर गाजी उदयपुर की राजधानी अधिकार में लाने पर भी सिंहासन न मिलने पर, पार्वत्य जातियों को बाध्य करने के उद्‌देश्य से बाँस का सिंहासन निर्माण कराकर गदाधर ठाकुर के पुत्र एवं महाराज धर्ममाणिक्य पौत्र लवंगठाकुर नाम के व्यक्ति को लक्ष्मणमाणिक्य आख्या प्रदान पूर्वक उस सिंहासन पर बैठाया था। इससे प्राचीन सिंहासन विनष्ट और नया सिंहासन निर्माण की कल्पना की जा सकती है, किन्तु सही प्रमाण के अभाव में यह विचार्य है या नहीं, यह विवेचना का विषय है।

सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होनें त्रिपुरेश्वर को वर्तमान सिंहासन प्रदान किया था एवं यह राजचक्रवर्ती का सिंहासन है। त्रिपुरा राज्य में यह सुदृढ़ प्रवाद प्रचलित है।

सिंहासन की अर्चना विधि सिंहासन के सामने प्रतिदिन चण्डी पाठ एवं यथा नियम से उस आसन की अर्चना होती है। इसके साथ कुछ शालिग्राम चक्र भी अर्चित होते हैं। सिंहासन की तरह प्रथमोक्त पाँच चिन्ह(चन्द्रबाण, त्रिशूलबाण, मीन—मानव, श्वेत—छत्र और आरंगी) प्रतिदिन अन्न व्यंजनादि भोग द्वारा अर्चित होते थे। दुर्गोत्सव, खार्ची पूजा, केर पूजा और गंगा पूजा इत्यादि पर्वो के उपलक्ष्य में दो के हिसाब से बकरे की बलि द्वारा अर्चना की जाती है।

विजयदशमी के दिन प्रशस्ति बन्धन के समय त्रिपुरेश्वर सिंहासन पर बैठते थे। उस समय सभी राज दर्शन और यथा योग्य आशीर्वाद और अभिवादन ग्रहण करते हैं।

इसके अलावा और कई राज चिन्ह हैं। उनमें गावल(बृहदाकार की श्वेत पताका) श्वेत चामर एवं मयूर पुच्छ का नाम उल्लेख योग्य है। श्वेत छत्र की तरह श्वेत पताका और श्वेत चामर चन्द्रवंशीय राजाओं में राज चिन्ह में शामिल होने की बात है। महाभारत वन पर्व 251 अध्याय में उल्लेख है। इसका पहले ही उल्लेख किया गया है। मयुर पुच्छ भी चन्द्रवंशीय प्राचीन राज चिन्हों में व्यवहार किया जाता रहा है।

प्रल—158

(Pratham leher-158) चित्र



गावल (श्वेत पताका) धारी (दो व्यक्ति)

राजरत्नाकर में इन सभी चिन्हों का उल्लेख मिलता है। राजमाला में त्रिपुर के विवाह यात्रा के समय दूसरे चिन्हों के साथ "गावल" के व्यवहार में लाने के प्रमाण हैं। गावल राजद्वार के दोनों किनारे एवं चामर और मयूर पुच्छ सिंहासन के दोनों किनारे धारण किये जाते हैं।

माणिक्य उपाधि

माणिक्य कौलिक उपाधि होने पर भी वह त्रिपुरा के राज्य चिन्हों में परिगणित होता है। माणिक्य बहादुर कहने से ही त्रिपुरेश्वर को समझा जाता है। रत्न फा के समय से ही यह उपाधि आरम्भ हुई है।

महाराज रत्न फा मृगया के उपलक्ष्य में पर्वत में जाकर एक समुज्ज्वल भेकमणि अर्थात मेढक की मणि को प्राप्त किये थे। कहा जाता है त्रिपुर राज्य में कैलाशहर के विभाग के अन्तर्गत एक जगह यह मणि मिली थी। इसके बाद से ही "माणिक्य भण्डार" नाम हुआ है। यही नाम इस समय में भी है।

माणिक्य उपाधि लाभ की प्राप्ति त्रिपुरेश्वर ने यह मणि और कुछ हाथियों को दिल्लीश्वर को उपदौकन प्रदान किया था। सम्राट उस दुष्प्राप्य और महार्ध्य माणिक्य को देखकर अचरज में पड़ गये। त्रिपुरेश्वर को वंशानुक्रम में माणिक्य की उपाधि से भूषित किया तब से ही त्रिपुरेश्वरगण इस उपाधि को धारण करते आ रहे हैं। इस बारे में संस्कृत राजमाला में लिखा है –

ततः स मणिमादाय राजा दिल्लीमुपागतः।
दिल्लीशाय मणिं दत्वा नत्वास्तत्वा पुरःस्थितः।।
दिल्लीशस्तं मणिं प्राप्य दृष्टा विष्मय मानवः।
प्रशस्य च महिपालं चितंयामास बिस्तरं।।
अमुष्ठैकं प्रदास्यामि प्रतिरुपं धरातले।
माणिक्य इति विख्यातिं दत्वोवाच नृपं प्रति।।
सर्वे माणिक्य नामानस्तब बंशोद्भवा इति।
ततः प्रभृतिख्यातो सौ रत्नमाणिक्य नामकः।।

संस्कृत राजमाला।

बंगला राजमाला का अभिमत कुछ भिन्न है। उसमें लिखा है–

रत्न फा नाम तार पिताये राखि छिलो।	रत्न फा नाम दिया पिता त्रिपुरेश्वर ने।
रत्नमाणिक्य ख्याति गौडेश्वरे दिलो(1)।।	रत्नमाणिक्य ख्याति दी गौडेश्वर ने।।(1)
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 67पृ	राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 67पृ

(1) राजमाला संग्राहक कैलाश बाबू ने कहा, यह मणि गोडेश्वर तुग्रल खां को उपढौकन दिया गया था। विश्वकोश संकलयिता ने भी उक्त मत का समर्थन किया है। रत्नमाणिक्य के कालनिर्णय के सम्बन्ध में भ्रम में पतित होने पर इन लोगों ने तुग्रले का नामोल्लेख किया है। हम लोग भी इस समय इस भ्रम में पतित हुए थे प्रकृत पक्ष में रत्नमाणिक्य तुग्रल खां के अनेक परवर्ती राजा है।

प्रल—160

स्थानांतर में निर्देश किया गया है, इस समय गौड के सिंहासन पर सुल्तान सामसुद्दीन आसीन थे।(1347 से लेकर 1358 ई सन् तक) एवं सम्राट फिरोज तुगलक दिल्ली के मसनद को अलंकृत कर रहे थे। सामसुद्दीन ने दिल्लीश्वर की उपेक्षा कर अपनी स्वाधीनता की घोषणा किया था, यह इतिहास में भी आया है। अतः वे प्रबल पराक्रांत थे इसमें कोई संदेह नही। इस अवस्था में रत्न फा पूर्वोक्त भेकमणि(मेढ़क की मणि) दिल्लीश्वर या गौडेश्वर को उपदौकन स्वरूप प्रदान किया था, इसका निर्णय करना कठिन है। मुसलमानों का इतिहास इस बारे में नीरव रहने की वजह से, संस्कृत या बंगला राजमाला में इस मतद्वैध का निरसन करना अधिकतर दुःसाध्य हो गया है। मूलतः उपहार चाहे दिल्लीश्वर को दिया गया हो या गौडेश्वर को, यह मुसलमान राजा को ही दिया गया था, एवं मुसलमान राजा की तरफ से माणिक्य उपाधि मिली थी, इस बारे में कोई संदेह नहीं है। गौडेश्वर की सहायता से रत्नमाणिक्य ने राज्य प्राप्त किया था। अतः इस सहायता के कारण कृतज्ञता निदर्शन स्वरुप यही लगता है कि पूर्वोक्त उपहार गौडेश्वर को ही देने की बात कोई विचित्र नहीं है। शायद इसी के फलस्वरूप, त्रिपुर भूपति को किसी अन्य शक्ति के द्वारा प्राप्त उपाधि ग्रहण करने का प्रथम सूत्रपात हुआ है।

त्रिपुरा को छोड़ दूसरे किसी जगह के राजाओं को माणिक्य उपाधि रहने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। जयन्तीया के राजवंश में तीन राजाओं के नाम के साथ ''माणिक'' उपाधि संयोजित हुई थी।(1) एवं भुलुया के एक मात्र लक्ष्मण राय ने माणिक्य उपाधि ग्रहण किया था, लेकिन यह उपाधि उनकी कौलिक उपाधि नहीं थी। उक्त दोनों राज्य ही एक समय त्रिपुरा के अधीन थे। उस समय कोई कोई राजा त्रिपुरेश्वरों का अनुकरण कर ''माणिक्य'' धारण कर अपने को गौरवान्वित समझते थे। उस समय की आलोचना करने पर इसी तथ्य की उपलब्धि होती है।

प्राचीन मुसलमानों के इतिहास में माणिक्य उपाधि का उल्लेख न रहने पर भी उस समय के आईन—ई— अकबरी, रियाजूस सलातीन एवं जामीउत्तारिख आदि ग्रन्थों में त्रिपुरेश्वरों के ''माणिक्'' उपाधि का उल्लेख मिलता है। रत्नमाणिक्य के समय से लेकर बाद में आने वाले राजाओं के मुद्रा में और शिलालिपियों में माणिक्य उपाधि का उल्लेख है। यह उपाधि इस समय राजकीय सभी कार्यों में दलील व सनन्द एवं शिलालिपियों में इसके प्रमाण मिलते हैं।

....

(1) 1. विजयमाणिक् 1564—1580ई 2. धनमाणिक 1596—1612ई
3. यशमाणिक् 1612—1625ई

आश्चर्य की बात यह है कि जयन्तिया और भुलुया राजगणों में जिन लोग ने ''माणिक्य'' या ''माणिक'' उपाधिग्रहण किए थे, उन लोगों के नामों के साथ त्रिपुर भूपतिवृन्द नाम का विशेष सादृष्य है। इससे अनुकरण प्रियता का परिचय मिलता है।

प्रल–161

(Pratham leher-161) चित्र



आसा और सोटा बरदार

प्रल—161

मुसलमान प्रदत्त राजचिन्ह पूर्वोक्त उपाधि और चिन्ह के अलावा ''आसा'' और ''सौंटा'' ये दो चिन्ह भी राज चिन्हों में व्यवहृत होता रहा है। कहा जाता है ये दोनों चिन्ह मुसलमान बादशाह के दिये गये उपहार हैं। किंतु किसी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है। इस बारे में दो विषयों पर ध्यान देना जरूरी है —1. राज दरबार में दूसरे अन्य राजचिन्ह सभी हिन्दुओं के द्वारा ग्रहण करने की व्यवस्था रहते हुए भी ये मुसलमानों के दोनों चिन्ह को ग्रहण किया है। उसकी उपाधि ''चोपदार'' और ''सोटाबरदार'' है। 2. अभिषेक मण्डप में ये दोनों चिन्ह व्यवहार में नहीं लाये जाते। ये दोनों चिन्ह मुसलमान प्रदत्त हैं इसका आभास मिलता है।

राज चिन्ह के बारे में इसके अतिरिक्त कोई विवरण इस समय संग्रह करने का कोई उपाय नहीं है। बहुत सी बातें भिन्न भिन्न लोगों ने कही हैं, लेकिन स्पष्ट प्रमाण के अभाव में उसे स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं।

राजसूय यज्ञ में त्रिपुरेश्वर

त्रिपुरेश्वर के राजसूय यज्ञ गमन कथा सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में त्रिपुरेश्वर उपस्थित थे, इसे सभी स्वीकार करना नहीं चाहते। यहाँ तक कि पाण्डु नन्दन सहदेव के दिग् विजय उपलक्ष्य में त्रिपुरा आगमन की बात भी वे अस्वीकार करते हैं। इन सभी मतांतरवादियों के मतामत को लेकर आलोचना से पहले इस सन्दर्भ में राजमाला का मत क्या है, यह देखना भी आवश्यक है।

राजमाला के त्रिलोचन खण्ड में है —

एईमते त्रिलोचन गेलो अग्निकोने।	इस तरह त्रिलोचन गये अग्निकोण।
राजा युधिष्ठर देखा कराये भीमसेने।।	राजा युधिष्ठर से मिलाये भीम सेन।।
त्रिलोचन देखिया बिस्तर कैलो मान।	त्रिलोचन को देख उन्होंने किया बहुत मान।
राखिलेक राजा यत्ने दिया दिव्य स्थान।।	रखा यत्न से नृपति को देकर दिव्य स्थान।।
तृणमय घरे थाके त्रिलोचन राजा।	तृणमय घर में रहे त्रिलोचन राजा।
अग्निकोन होइते आइसे लोइया निज प्रजा।।	अग्निकोण से लेकर आये अपनी प्रजा।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33पृ

अर्थात, ''इस तरह त्रिलोचन अग्नि कोण में गये। महाराज युधिष्ठिर के साथ त्रिलोचन को ले जाकर भीमसेन से मिलाया। त्रिलोचन का बड़ा सम्मान किया। महाराज युधिष्ठिर ने बड़ा सम्मान कर उन्हें दिव्य स्थान में रखा। एक तृण का बना हुआ घर में त्रिलोचन महाराज को रखा गया था। अग्नि कोण से अपने सारी प्रजाओं को ले आये।''

उद्धृतांश में, ''गेलो अग्निकोने'' अर्थात अग्नि कोण में गये वाक्य भ्रम संकुल है। हस्तिनापुर से त्रिपुर राज्य अग्नि कोण में स्थित है। अतएव त्रिपुरा से हस्तिनापुर यात्रिओं के लिए ''गेलो अग्नि कोण'' वाक्य का प्रयोग नहीं हो सकता। ''अग्नि कोण होइते गेलो'' अर्थात अग्नि कोण से गया ऐसा कहना संगत था। उद्धृत शेष पंक्ति में सन्निविष्ट ''अग्नि कोण होइते आइसे'' अर्थात अग्नि कोण से आया इत्यादि वाक्यों की आलोचना से यह भ्रम स्पष्टतः दूर होगा। लिपि

प्रल–162

कार के प्रमाद से ऐसा हुआ है। प्राचीन राजमाला के उक्त से यह सहज ही समझ में आ जायेगा। उस ग्रंथ में लिखा गया है –

एहिमोते महाराजा होइलो अग्निकोने।
राजा युधिष्ठिर देखा कराय भीमसेने।।

"इसी तरह महाराज ने अग्नि कोण की ओर रूख किया। राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से मुलाकात कराया।

राजमाला के वाक्य द्वारा महाराज त्रिलोचन के हस्तिनापुर गमन का प्रमाण मिलता है, लेकिन वे राजसूय यज्ञ के बाद में गये थे। संस्कृत राजमाला की आलोचना से इस बारे में स्पष्ट प्रमाण मिलेगा। संस्कृत राजमाला में लिखा है –

द्रुहयुराजसुतोजातस्त्रिपुराख्यो महाबलः।(1)
तमोगुणसमायुक्तः सर्बदैबाति गर्वितः।।
युधिष्ठिरस्य यज्ञार्थे सहदेवेन निर्जितः।
राजसूये स गतवान् युधिष्ठिर समादृतः।।

महाराज त्रिलोचन का हस्तिना गमन

इससे भी यह प्रमाण हो रहा है कि महाराज त्रिपुर राजसूय यज्ञ में गये थे। इसके बाद त्रिपुर नन्दन त्रिलोचन की अलौकिक सुख्याति सुनकर सम्राट युधिष्ठिर उन्हें हस्तिना ले गये थे। यथा –

"त्रिलोचनस्य सुख्यातिं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः।
इन्द्रप्रस्थं निनायैनं तत् सौन्दर्य दिदृक्षया।।
शिवरूपन्च तं दृष्टा बहु सम्मानमाचरत्।।"

संस्कृत राजमाला।

राजरत्नाकर का मत भिन्न रूप है। इस ग्रंथ में महाराज चित्ररथ को राजसूय यज्ञ का यात्री कहकर उल्लेख किया गया है – यथा

"महाराजश्चित्ररथो राजसूये महाक्रतौ।
बहु सम्मानित स्तत्र निज राज्यमुपागमत्।।"

पुरू और त्रिपुर की वंशतालिका तुलना

राजरत्नाकर की यह उक्ति दोनों वंश के(पुरू और त्रिपुर वंश) पुरुष संख्या की समता के ऊपर निर्भरशील है, ऐसा आभास होता है। वंश लता की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि सम्राट युधिष्ठिर और त्रिपुरेश्वर चित्ररथ सम पर्याय के व्यक्ति थे। अर्थात दोनों ही चन्द्र से 43 स्थानीय थे। दूसरे पृष्ठ में यह प्रदर्शित किया जा रहा है।

---

(1) इस वाक्य द्वारा बहुत से लोग सोचते हैं कि त्रिपुर द्रुहयु के पुत्र थे। यह धारणा अभ्रान्त नहीं है। त्रिपुर द्रुहयु के अधस्तन 49 स्थानीय व्यक्ति हैं। "द्रुहयु राज सूतोजात" इस वाक्य द्वारा द्रुहयु के वंश जात को समझा जाता है।

प्रल–163

पुरूवंश लता (महाभारत के अनुसार)	त्रिपुरवंश लता विष्णु पुराण और राजमाला के अनुसार
(1) चन्द्र	(1) चन्द्र
(2) बुध	(2) बुध
(3) पुरूरवा	(3) पुरूरवा
(4) आयु	(4) आयु
(5) नहुष	(5) नहुष
(6) ययाति	(6) ययाति
(7) पुरू	(7) द्रुहयु
(8) जन्मेजय	(8) बभ्रु
(9) प्रतिन्वान	(9) सेतू
(10) संयाति	(10) आनर्त
(11) अहंयाति	(11) गांधार
(12) सार्वभौम	(12) धर्म(घर्म)(1)।
(13) जयत्सेन	(13) धृत(घृत)(1)।
(14) अवाचीन	(14) दुर्म्मद
(15) अरिह	(15) प्रचेता
(16) महाभौम	(16) पराचि
(17) अयुतनायी	(17) पराबसु
(18) अक्रोधन	(18) पारिषद
(19) देवातिथि	(19) अरिजित्
(20) अरिह(द्वितीय)	(20) सूजित्
(21) ऋृक्ष	(21) पुरूरवा(द्वितीय)
(22) मतिनार	(22) विवर्ण
(23) तंसु	(23) पुरूसेन
(24) इलिन	(24) मेघवर्ण
(25) दुष्मंत	(25) विकर्ण
(26) भरत	(26) बसुमान
(27) भूमन्यु	(27) कीर्ति

(1) सम्भवतः लिपिकार के प्रमादवश इस तरह के नामों का व्यक्तित्व हुआ है। किसी किसी पुराण में भी यह नाम मिलता है।

प्रल–164

पुरू वंश लता (महाभारत के अनुसार)	त्रिपुर वंशलता (विष्णु पुराण और राजमाला के अनुसार)
(28) सूहोत्र	(28) कनीयान्
(29) हस्ती	(29) प्रतिश्रवा
(30) विकुठंन	(30) प्रतिष्ठ
(31) अजमीढ	(31) शत्रुजित्
(32) सम्वरण	(32) प्रतर्द्दन
(33) कुरू	(33) प्रमथ
(34) बिदुरथ	(34) कलिन्द
(35) अनश्वा	(35) क्रम
(36) परीक्षित	(36) मित्रारि
(37) भीमसेन	(37) वारिवर्ह
(38) प्रतिश्रवा	(38) कार्मुक
(39) प्रतिप	(39) कलिंग
(40) शांतनु	(40) भीषण
(41) चित्रवीर्य	(41) भानुमित्र
(42) पाण्डु	(42) चित्रसेन
(43) युधिष्ठिर(1)	(43) चित्ररथ
	(44) चित्रायुध
	(45) दैत्य
	(46) त्रिपुर
	(47) त्रिलोचन

इस वंश तालिका के अनुसार युधिष्ठिर और चित्ररथ को समपर्याय में देखकर राजरत्नाकर के रचयिता ने राजसूय यज्ञ में चित्ररथ की उपस्थिति की कल्पना की है। इसके अलावा इस मत को समर्थन करने का कोई भी प्रमाण विद्यमान नहीं है। पूर्वोक्त तालिका में युधिष्ठिर और त्रिपुर के बीच दो पुरुष का व्यवधान परिलक्षित होने पर भी उसे ग्रहण नहीं किया जायेगा। उभय वंश के बीच दीर्घकालीन इस तरह सामान्य पार्थक्य का होना अस्वाभाविक नहीं कहा जायेगा।

और एक बात भी उल्लेख योग्य है। महाराज युधिष्ठिर ने द्वापर के शेष भाग में

---

(1) महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर चन्द्र से 43 स्थानीय है और विष्णु पुराण के अनुसार 49 स्थानीय बताया गया है। यहाँ पर महाभारत का मत ही ग्रहण किया गया है।

साम्राज्य प्राप्त किया था। महाराज त्रिपुर भी द्वापर के अन्त में राजा बने थे।(1) इसके द्वारा भी समकालीन निर्णित हुए हैं। इन सभी कारणों से महाराज त्रिपुर को ही राजसूय यज्ञ का यात्री माना जा सकता है। महाराज त्रिलोचन उनके कुछ कालों पश्चात सम्राट के द्वारा आहूत होकर हस्तिनापुर में गये थे। इस बात को अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

विरूद्धवादियों का मत खण्डन इस मत के विरूद्धवादियों का कहना है कि त्रिपुरेश्वर यज्ञ यात्रा के बारे में पूराणादि किसी ग्रन्थ में कोई प्रमाण नहीं मिलता। महाभारत में जो ''त्रिपुर'' नाम का उल्लेख है, उसे वर्तमान त्रिपुर राज्य कहकर वे स्वीकार नहीं करते, इस विषय में राजमाला के संग्राहक कैलाश बाबू कहते है –

महाभारत में लिखा है– ''सहदेव त्रैपुरराज और पौरवेश्वर को जय करके सौराष्ट्राधिपति की ओर वे धावमान हुए थे।'' सहदेव कैसे भारत के पूर्व प्रांत स्थित त्रिपुरा से उछलकर पश्चिम सागरतीर स्थित सौराष्ट्र में उपनीत हुए थे ? + + + + खासतौर से महाभारत के सभा पर्व के पच्चीसवें अध्याय में लिखा है– ''अर्जुन उत्तर की ओर, भीम पूर्व की ओर, सहदेव दक्षिण की ओर एवं नकुल ने पश्चिम दिशा पर विजय प्राप्त किया था। सहदेव ने जो पूर्व भारत की ओर गमन किया था, महाभारत में इसका कोई उल्लेख नहीं है।''

उन्होनें और भी कहा है

''दक्षिण दिग् विजयी सहदेव के विजय वृतान्त में जो त्रिपुरा का उल्लेख है, आधुनिक जबलपुर के करीब परित्यक्त नगरी ''तित्तर'' कहकर उल्लेख किया गया है। असल में हैहय वंशजों के राजधानी त्रिपुरी को भारत के पूर्व प्रान्त स्थित त्रिपुरा समझ लेना एकदम भ्रमात्मक कार्य है।

– कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग प्रथम अध्याय 2–3 पृ।

अध्यापक श्रीयुत अमूल्य चरण विद्याभूषण महाशय भी इसी मत के पक्षपाती नहीं हैं। सहदेव के विजय के उपलक्ष्य में उन्होनें कहा है –

''इसके बाद उन्होनें माहिष्मती के राजा को पराजित किया, इसके पश्चात सहदेव ने दक्षिण की ओर यात्रा की एवं त्रैपुर को वशीभूत किया। माहिष्मती दक्षिणभारत के प्राय निम्न भाग में स्थित है। इसके दक्षिण की ओर महाभारत का त्रैपुर देश है। त्रैपुर के पश्चात सहदेव ने पौरवेश्वर को जय किया। अतएव यह स्पष्ट रूप से प्रतीयमान हो रहा है कि महाभारत का त्रैपुर देश माहिष्मती और सुराष्ट्र के मध्य किसी स्थान पर था। यह कभी भी भारत के पूर्व प्रान्त स्थित वर्तमान त्रिपुर राज्य नहीं हो सकता। + + + + सहदेव ने दक्षिण दिशा को जीतने के लिये यात्रा की थी। उन्होनें कभी भी पूर्वांचल की यात्रा नहीं की थी।''

---

(1) राजमाला में महाराज त्रिपुर के बारे में लिखा गया है –

अनेक बत्सर से ये छिलो एइ मते।	अनेक वर्ष यह तो था इसी मन में।
द्वापर शेषेते शिव आसिलो देखिते।।	द्वापर अंत शिव आये देखने।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 11पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 11पृ

अर्थात अनेक सालों तक वह इसी मत में था और उसे देखने के लिए द्वापर के अन्त में शिवजी आये – राजमाला त्रिपुर खण्ड।

प्रल–166

सहदेव भारत के पूर्व दिग्वर्ती त्रिपुरा से एक छलांग से पश्चिम सागर के किनारे सौराष्ट्र में जाने को कैलाश बाबू असम्भव कहते हैं एवं जबलपुर के किनारे तित्तर को ही महाभारतोक्त त्रिपुरा कहते हैं। महाभारत के पाठक मात्र इस बात से अवगत है कि दिग् विजय के विवरण की लिपि में किसी भी भौगोलिक श्रृखंला की रक्षा नहीं की गई है। गहरे अभिनिवेश के साथ महाभारत की आलोचना करने पर यह स्पष्ट दिखाई देखा जायेगा कि क्षत्रिय राजाओं का पराजय वृतान्त पार्वत्य वन्य और द्वीप वासियों के वृतान्त से स्वतन्त्र रूप से वर्णित हुआ है। इसी कारण से भारत के सुदूर स्थित दो प्रांतवर्ती स्थानों का नाम एक साथ उल्लेख करने की आवश्यकता हो पड़ी थी। भीम, अर्जुन एवं नकुल दिग् विजय की आलोचना करने पर इस तरह की विश्रृखंला परिलक्षित होगी।(1)इस तरह की विश्रृखंला का और एक कारण भी हो सकता है। महाभारत में है– दिग् विजय के उपलक्ष्य में बहुत से स्थानों पर एक राजा पर विजय प्राप्त करके उस विजित राजा की सहायता से दूसरे राजा को आक्रमण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस राजा को पराजित करना आसान है उसे पहले आक्रमण किया गया है। और जिन राजाओं पर विजय प्राप्त करना कष्ट सह्य है, विजित राजाओं को लेकर उन पर विजय प्राप्त की गई है। युद्ध इसी सुविधा का अवलम्बन के निमित्त भी भौगोलिक प्रथा की रक्षा करने में भी समस्या आ खड़ी हो गई थी।

महाभारत में सहदेव के दिग् विजय के विवरण में नीचे दिये गये स्थानों का नाम क्रमानुसार लिखा गया है – किष्किन्ध्या, माहिष्मती, त्रैपुर, पौरव और सौराष्ट्र आदि है।(2)

....

(1) श्रद्धाष्पद महामहोपाध्याय श्रीयुक्त पण्डित हर प्रसाद शास्त्री, एम. ए., सी. आई. ई. महाशय ने हमारे एक पत्र के उत्तर में जो बताया था वह त्रिपुरा के अवस्थान के बारे में कैलाश बाबू के मत का ही समर्थन है। अन्त में उन्होनें लिखा है ''मुझे जहाँ तक ज्ञात है सहदेव पश्चिम दिशा में ही दिग् विजय के लिए गये थे।''

सहदेव विजित त्रिपुरा के विषय में पहले जो कहा गया है। इसके अतिरिक्त यहाँ कहने की कोई बात नहीं है। ''सहदेव पश्चिम दिशा में गये थे।'' यही महाभारत द्वारा समर्थित नही है।

(2) सहदेव के दिग् विजय के बारे में महाभारत में आता है –

तं जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणा पथम्।
गुहामासादयामास किष्किन्ध्यां लोक विश्रुताम्।।
\+ + + + +
गच्छ पाण्डवशार्दुल रत्नान्यादाय सर्वशः
अविध्नस्तु कार्याय धर्मराजाय धीमते।।

शेष अगला पृष्ठ में देखे

प्रल–167

कैलाश बाबू, भारत के पूर्व किनारे त्रिपुरा से एक छलांग में पश्चिम सागर के किनारे सौराष्ट्र में चले जाने को असम्भव समझते हैं। किन्तु महाभारत में लिखित पर्यायानुसार क्रम से आये हुए स्थानों पर विजय प्राप्त करने के लिए दक्षिणात्य के निम्न भाग स्थित किष्किन्ध्या और माहिष्मती को जीतकर, कैलाश बाबू के कथित जबलपुर के तित्तर या त्रिपुरा की और धावित हुए थे। एवं इनके बाद सहदेव पौरव की तरफ गये थे – यह स्वीकार करना ही होगा। यह गमनागमन कोई छोटे से छलांग लगाने की बात नहीं है, इस बात को कैलाश बाबू ने शायद सोचकर देखा भी नहीं है। खासतौर से सहदेव महिष्मती विजय के पश्चात् दक्षिण की ओर आगे बढ़कर त्रिपुरा को आक्रमण किया था। इस अवस्था में कैलाश बाबू के रचित जबलपुर के नजदीक त्रैपुर में आगमन की संभावना ही कहाँ है ? बल्कि सहदेव दक्षिण समुद्र के उपकुल से होकर त्रिपुरा में उपस्थित होना संभव हो सकता है। भारत के मानचित्र को अच्छी तरह देखने पर ऐसा लगता है कि त्रिपुर राज्य हस्तिनापुर से पूर्व दक्षिण कोने पर रहने पर भी प्रकृत्त रूप से दक्षिणांश में ढ़ल गया है। अतएव उसे दक्षिण दिग् विजयी के हाथों में ही पड़ने की संभावना है। सहदेव हस्तिनापुर से एक सरल रेखांकित पथ को अवलम्बन कर दक्षिण की ओर चले थे, इस तरह की धारणा मन में पोषण करने का कोई ठोस कारण दिखाई नहीं देता। जो भी हो, कैलाश बाबू इस समय परलोक में है, अतएव इस विषय में अधिक कुछ कहना असंगत है। अमूल्य बाबू दक्षिण पथ पर– माहिष्मती और सौराष्ट्र के मध्य किसी स्थान पर त्रिपुरा के अवस्थान की कल्पना मात्र कर बैठे हैं। उसके अस्तित्व के बारे शायद वे अवगत नहीं है। क्योंकि अवगत होने पर भी प्रमाणों का प्रयोग नहीं किया है।

कैलाश बाबू एवं अमूल्य बाबू में त्रिपुरा की स्थिति के विषय में मत वैषम्य रहने पर भी सहदेव विजित त्रिपुरा जो वर्तमान त्रिपुर राज्य नहीं है, इस विषय में

....

ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।
तन्त्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः।।
+ + + +
माद्रीसुत्र स्ततः प्रायाद्विजयी दक्षिणां दिशम्।
त्रैपुरं स्ववशेकृत्वा राजानमितौजसम्।
निजग्राह महाबाहुस्तरसा पौरवैश्वरम।।
आकृतिं कौशिका चर्यैं यत्नेन महता ततः।।
वशे चक्रे महाबाहुं सुराष्ट्राधिपतिं तदा।
सुराष्ट्र विषयस्थश्च प्रेरयामास रूक्मिणे।। इत्यादि
सभापर्व 30 अध्याय।

प्रल–168
दोनों ही एक मत है। हम देख रहे हैं कि अर्जुन दिग्विजय के लिए उत्तर की ओर गये थे और भारत के उत्तर पूर्व प्रांत स्थित प्रागज्योतिषपति भगदत्त को ही उन्होनें पराजित किया था। दूसरी जगहों पर जैसे त्रिपुरा का नाम मिल रहा है, उसी तरह भारत के उत्तर प्रांत में प्रागज्योतिष नामक दूसरा कोई स्थान मिलता, तो शायद कैलाश बाबू और अमूल्य बाबू भारत के उत्तरपूर्व प्रांत स्थित प्रागज्योतिष को महाभारत के पन्नों से पौंछ देने से भी कुंठित नहीं होते।(1) जिस तरह उत्तर दिग् विजयी अर्जुन ने उत्तर पूर्व कोने में स्थित(ईशान कोण) प्रागज्योतिष राज्य को जीता है, उसी तरह दक्षिण दिशा के विजेता सहदेव ने दक्षिण पूर्व कोने में स्थित(अग्नि कोण) त्रिपुरा को जीतेगें, इस विचित्र मानने का कोई औचित्य नहीं है। सहदेव सागर के किनारे किनारे पूर्व की ओर आगे बढ़ते हुए आस पास राज्यों पर विजय प्राप्त किये थे। किन्तु कहाँ तक आगे बढ़े थे, यह जानना आसान नहीं है। प्राचीन काल में त्रिपुरा की सीमा रेखा सागर तट तक विस्तृत थी। उन दिनों सागर भी दूर नहीं था। सर्व–जन–विदित तथ्य के प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। रघुवंश में यह स्थान ''तालीवन श्याम उपकंठ'' कहकर इसकी प्रकृष्ठ वर्णना की गई है। सूक्ष्म(किरात देश) समुद्र उपकंठ में इसके होने का इसे ही प्रकृष्ठ प्रमाण कहा जा सकता है। सहदेव समुद्र के किनारे के पथ से होकर यहाँ तक आये थे। इस तरह के सिद्धान्त शायद अयौक्तिक नहीं होगा यह पहले भी हम एक बार कह चुके हैं।

सभी ने केवल सहदेव के दिग्वजय को ध्यान में रखकर त्रिपुरा की आलोचना की है। महाभारत के दूसरी जगहों पर भी त्रिपुरा का नाम आया है। उस ओर उन्होनें दृष्टिपात नहीं किया। भीष्म पर्व में है –

द्रोणादंतरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान।
मागधैश्च कलिंगैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते।।
प्रागज्योतिषादनु नृपः कौशल्योऽय बृहद्वलः।
मेकलैः करूविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः।।
भीष्म पर्व 87 अध्याय 8/9 श्लोक।

---

(1) एकाधिक राज्यों के नाम से मन में एक प्रश्न का उदय हो रहा है। एक वंश के द्वारा सुरक्षित राज्य का नाम विशेष शाखा के बिना दूसरे वंश के द्वारा गृहीत होना कितना अस्वाभाविक है। विभिन्न राज्य के नामों के एकत्व के द्वारा लगता है कि दोनों राज्यों में किसी समय किसी तरह का सम्बन्ध था, इतिहास भी सम्भवतः उस प्राचीन सम्बन्ध को भूल गया है।

प्रल–169

मर्म – ''द्रोण के पश्चात् प्रागज्योतिष के अधीश्वर प्रबल प्रताप भगदत्त, मगध, कलिंग और पिशाचों के साथ तत्पश्चात कौशलाधिपति बृहद्वल, मेकल, कुरूविन्द और त्रिपुर को साथ किये हुए थे।''

यहाँ पर प्रागज्योतिष और मेकल का नाम मिल रहा है। प्रागज्योतिष राज्य त्रिपुर राज्य के करीब था। बाद में वह प्रदेश ''आसाम'' आख्या को प्राप्त हुआ। मेकल – मेखली प्रदेश(मणिपुर राज्य) था। यह प्रदेश भी इस समय त्रिपुरा के नजदीक एक प्रांत की हैसियत से हिन्दू गौरव की घोषणा कर रहा है। इस अवस्था में उद्धृत श्लोक में त्रिपुरा शब्द द्वारा प्रागज्योतिष और मणिपुर से सटा हुआ बताया गया है। त्रिपुरा को नजर अन्दाज करके जबलपुर के समीप एक त्रिपुरा अथवा दक्षिणात्य के कल्पित त्रिपुरा को लक्ष्य बनाना संगत नहीं हो सकता। प्राचीन ग्रंथों में हेड़म्ब(प्रागज्योतिष) और मणिपुर के साथ त्रिपुरा के नामोल्लेख के और भी प्रमाण मिलते हैं –

बरेन्द्र ताम्रलिप्तन्च हेड़म्ब मणिपुरकम्।
लौहित्य स्त्रैपुरं चैव जयंताख्यं सुसंगकम्।।
भविष्य पुराण ब्रह्म खण्ड।

हेड़म्ब(प्रागज्योतिष) लौहित्य(ब्रह्मपुत्र) जयंता और मणिपुर– आदि के साथ त्रिपुरा के नामोल्लेख द्वारा त्रिपुरा को उन सभी स्थानों के साथ सटा हुआ समझा जाता है। यही वर्तमान त्रिपुरा राज्य है – यह आसानी से समझ में आता है।

इन सभी तर्कित वाक्यों को त्याग करने पर भी त्रिपुरेश्वर के राजसूय यज्ञ में शामिल होने के और भी प्रमाण महाभारत में मिल रहे हैं। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के यहाँ यज्ञ में समागत व्यक्तियों का विवरण दिया था। महाभारत में हम देख रहे हैं –

ये परार्द्धे हिमवतः सूर्योदये गिरौनृपाः।
कारूषेच समुद्रांते लौहित्यमभितश्च ये।।
फलमुलाशशा ये च किराताश्चर्म वास सः।
क्रूरशस्त्राः क्रूरकृतस्तांश्च शश्यामहं प्रभो।।
चन्दनागुरू काष्ठानां भाराण कालीय कस्य च।
चर्मरत्न सुवर्णनां, गन्धानांचैव राशयः।।
सभा पर्व 52 अध्याय 8–10 श्लोक।

मामार्थ– उदयाचल वासी राजागण, कारूषदेशीय भूपालगण, समुद्रांत निवासी भूपतिवर्ग, ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारे बसे हुए राजागण एवं क्रूर कर्मा, क्रूर शस्त्र,

चर्मवसन और फल मुलोपजीवी किरात वृन्दों को देखा है। वे चन्दन और अगुरू काष्ठ के भार चर्म, रत्न, सुवर्ण एवं नाना प्रकार के सुगन्ध द्रव्य को लकर दरवाजे पर खड़े हैं।

यहाँ पर ब्रह्मपुत्र नदी के दोनों किनारे बसने वाले सभी राजाओं के मत में उपस्थित होने के प्रमाण मिल रहे हैं। त्रिपुरा की राजधानी उन दिनों ब्रह्मपुत्र के तटवर्ती त्रिवेग नामक स्थान पर थी। अतएव त्रिपुरेश्वर भी ब्रह्मपुत्र के तटीय राजाओं से थे। इस बात को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। सभी किरात त्रिपुरेश्वर की प्रजा थे। राजसूय यज्ञ के बहुत पहले ही किरात देश पर विजय प्राप्त की गई थी और त्रिपुर राज्य की प्रतिष्ठा की गई थी। किरातों के द्वारा संग्रहित अगुरू काष्ठ और सुवर्ण आदि त्रिपुर राज्य का विपुल ऐश्वर्य था। जहाँ त्रिपुरेश्वर की अनुपस्थिति की कल्पना की जाती है, वहीं अगुरु इत्यादि उपदौकन केवल किरातो की उपस्थिति संभव नहीं हो सकती। इनकी उपस्थिति के द्वारा ही त्रिपुरेश्वर की उपस्थिति प्रमाणित होती है।

राजमाला में स्पष्ट शब्दों में लिखा है – त्रिपुरेश्वर राजसूय यज्ञ में गये थे और वहाँ उनका भव्य स्वागत सम्मान और मर्यादा प्रदान की गई थी। राजमाला सर्व सम्मति से प्रमाणित ग्रंथ है और इस ग्रंथ की कोई भी उक्ति उपेक्षणीय नहीं है। खासतौर से महाभारत आदि ग्रंथों के उदाहरण इस उक्ति के परिपोषक के रूप में इन्हें प्रदर्शित किया गया है।

सामरिक बल और समर इत्यादि विषयक विवरण

सामरिक बल

सैन्य संख्या का आभाष प्राचीन काल में त्रिपुरा का सामरिक बल कम नहीं था। त्रिलोचन के पुत्र महाराज दक्षिण की सैन्य संख्या के विषय में आलोचना करने से इसका आभास मिलता है। यथा –

राजार अनुज दस होइलो सेनापति।	राजा के अनुज दस हुए सेनापति।
सर्ब सेना भाग कोरि दिलो भ्रातृप्रति।।	सभी सेना विभाजित हुई अनुज प्रति।।
पन्च पन्च सहस्र सेना एक अंश पाय।	पंच सहस्र के हिसाब सेना एक अंश के प्रति।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 34पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 34पृ

अर्थात, राजा के दसों अनुज सेनापति हुए। सभी सेनाओं का विभाजन कर पाँच पाँच हजार की सेना दस भाईयों में बाँट दिया।

प्रल–171
यहाँ पर पचास हजार सेनाओं का एक हिसाब मिल रहा है। इसके अलावा किरात सेनायें और महाराज द्रुहयु के साथ जो क्षत्रिय सेनायें आई थी उनका अधिनायकत्व भ्राताओं को न देकर राजा ने उन्हें अपने हाथों में रखा था। यथा –

''राजार निजेर सेना किरात सकल।
पूर्वे द्रुहयु संगे आइसे क्षत्रियेर बल।।''

अर्थात सभी किराती सेनाओं को राजा ने जिम्मे रखा। इसके पहले द्रुहयु के साथ जो क्षत्रिय सेनायें आई थी उनकी भी बागड़ोर उन्होनें अपने हाथ में रखी।''

उन दिनों किरात सेनायें भी कम नहीं थी। इसके अलावा जिन राज्यों को जीता जाता था उन राजाओं की सेनाओं को अपने सैनिक दल में मिला लेने की भी प्रथा थी।

छें थुम फा खण्ड में पाया जाता है कि उनकी महिषी ने गौड के दो तीन लाख सेनाओं के विरूद्ध लड़कर विजय प्राप्त किया था(1)। यह अल्प सैन्य बल का परिचायक नहीं है। राजमाला के प्रथम लहर में जगह जगह उन सेनाओं की संख्या का परिचय मिलता है। पर स्पष्ट रूप से कोई बात लिखी नहीं गई है। इस लहर में गजारोही, अश्वारोही और पदातिक सेनाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। उन दिनों नौ–युद्ध की प्रथा प्रचलित नहीं हुई थी। राजमाला में महाराज युझारु फा का लिका अभियान के वर्णन प्रसंग में लिखा गया है –

युद्ध हेतु सैन्य सेना गेलेक साजिया।।	युद्ध हेतु सेना हो गई प्रस्तुत।।
हस्ती घोड़ा चलिलेक अनेक पदाति।	हस्ती, घोड़ा चले अनेक पदाति।
भिन्न भिन्न क्रमे चले जार जेई रीति।।	भिन्न भिन्न क्रम से चली जिसकी जैसी परिणति।।
राजमाला प्रल युझार खण्ड 50पृ	राजमाला प्रल युझार खण्ड 50पृ

अर्थात, ''युद्ध हेतु सारी सेनायें सज गई। हस्ती, घोड़ा और अनेक पदाति चले। भिन्न भिन्न क्रम से अपने अपने रिति रिवाजों के साथ चले।''

यहाँ पर गजारोही, अश्वारोही और पदातिक इन तीन श्रेणीयों के सेना का परिचय मिलता है। इसके अलावा तीरन्दाज सेनाओं की बात भी है।

सेना नायक

राजा के भ्राता सेनापति सुप्राचीन काल में सेनापतित्व का पद किसी श्रेणी विशेष में निबद्ध नहीं था। त्रिलोचन के पुत्र महाराज दाक्षिण के शासनकाल में भ्राताओं को सेनापति पद पर नियुक्त किया गया था। महाराज छें थुम फा के पहले तक पुरुषानुक्रम से यही नियम था(2)।

---

(1)

दुई तीन लक्ष सेना आइसो कटक।	दो तीन लाख सेना आई कटक में।
मिलिते चाहेन राजा देखि भयानक।।	मिलने चाहे राजा देख भयानक।।
राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ	राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ

अर्थात – ''दो लाख सेनाओं का जत्था आया देखकर युद्ध के भयानक परिणाम को देखकर राजा ने मिलना चाहा।''

(2)

राजार अनुज दस होइलो सेनापति।	राजा के अनुज दस हुए सेनापति।
सर्ब सेना भाग कोरि दिलो भ्रातृ पति।।	सभी सेना विभाजित हुई अनुज प्रति।।
पन्च पन्च सहस्र सेना एक अकों पाय।	पंच सहस्र के हिसाब सेना एक अंश के प्रति।
पुरूषानुक्रमे एई रीति होये ताय।।	पुरूषानुक्रम से चली आ रही यह रीति।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 34पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 34पृ

अर्थात – राजा के दसों अनुज सेनापति हुए। सभी सेनाओं का विभाजन कर भ्राताओं को दिया सभी के जिम्मे पाँच पाँच हजार सेनायें सौंपी। पुरुषानुक्रम से वहाँ यही रीति चली आ रही थी।

प्रल–172

जामाता सेनापति   महाराज छें थुम फा (नामांतर कीर्तिधर) के समय गौड वाहिनी के साथ युद्ध के समय जामाता को सेनापति बनाया गया था। तभी से अनेक पुरुष तक राज जामाता गण इस सन्मानित पद के अधिकारी थे।(1) कालांतर में भी इस नियम का भंग हुआ था। तब योग्यतर और विश्वस्त व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाया जाता था।

सेनापति के प्रति देवत्व आरोप   किसी किसी समय सेनापति के प्रति देवत्व आरोपण का दृष्टांत भी राजमाला में मिलता है। यह देवता के प्रति अविचलित भक्ति और विश्वास का परिचायक है। छें थुम फा की महिषी ने गौड के साथ जो युद्ध किया था, उस युद्ध में –

चतुर्दश देबताये आगे चलि जाय।	चतुर्दश देवता के यहाँ आगे आ गये।
सेनापति जानिया त्रिपुरा पीछे धाय।।	सेनापति जानकर पीछे त्रिपुरा लोग धाए।।
चतुर्दश देवता अग्रे जाइया काटे।	चतुर्दश देवता के यहाँ जाकर आगे दिया काट।
पड़िलो अशेष सैन्येर देबेर कपटे।।	खेत रही अशेष सेना, दैव का प्रयोग।।
राजमाला प्रल छें थुम खण्ड 58 पृ	राजमाला प्रल छें थुम खण्ड 58 पृ

अर्थात – चतुर्दश देवता आगे जा रहे हैं। सेनापति ही जा रहे हैं। यह जानकर त्रिपुरा वाहिनी पीछे पीछे दौड़ रही थी।(अर्थात सेनापति को यहाँ चतुर्दश देवता के रूप में माना गया था) चतुर्दश देवता अर्थात सेनापति ने आगे बढ़ कर गौड की सेनाओं को काटना शुरू किया। देवता की कृपा गौड की असंख्य सेनाये खेत रह गई।

रणभेरी   उन दिनों ढोल अर्थात नागाड़ा बजाकर सेनाओं को समावेत किया जाता था यथा –

ए बोलिया ढोले बाडि दिते आज्ञा कोइलो।	यह कहकर नगाड़े पर करने को कहा आघात।
जतो सैन्य सेनापति सब सजि आइलो।।	सभी सैन्य सेनापति आए कर साज।।
राजमाला प्रल छे थुम खण्ड 56 पृ	राजमाला प्रल छे थुम खण्ड 56 पृ

अर्थात – यह कहकर नगाड़े बजाने का आदेश हुआ। इस आवाज को सुनकर सभी सैन्यों और सेनापति सज धज कर आये।

युद्ध के समय ढोल, दगड(डगर) आदि की सहायता से ही रणवाद्य का प्रयोजन निष्पादन किया जाता था। हेड़म्ब राज के साथ त्रिपुर राज दाक्षिण के समर में इसका परिचय मिलता है –

होइलो तुमुल युद्ध दुई सैन्य माझे।	हुआ तुमुल संग्राम दो सेनाओं के मध्य।
ढोल दगड़ भेरी नाना बाद्य बाजे।।	ढोल दगड़ भेरी आदि बज उठे सब वाद्य।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 35 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 35 पृ

अर्थात – दोनों सेनाओं के बीच तुमुल युद्ध हुआ। ढोल, दगड, भेरी आदि नाना तरह के वाद्य बज रहे थे।

....

महाराज युझारु फा के लिका अभियान के समय –

जार जेई सेना लोइया भ्रातृगण राजार।	अपनी अपनी सेना साथ चले अनुज राजा के।
सैन्य मध्ये चलिते छे राजा त्रिपुरार।।	सेना मध्य चलते रहे थे राजा त्रिपुरा के।।
राजमाला प्रल युझारु फा खण्ड 50पृ	राजमाला प्रल युझारु फा खण्ड 50पृ

अर्थात – राजा के सभी भ्राता अपनी अपनी सेनाओं को लेकर आये। सेनाओं के मध्य त्रिपुरा के राजा आगे बढ़ रहे हैं।

(1)

एक जामाता विक्रम कोरे दैवगति।	एक जामाता विक्रम करता दैवगति।
तद्वधि राजार जामाता सेनापति।।	तब से ही जामाता हुए सेनापति।।
राजमाला प्रल छे थुम फा खण्ड 59 पृ	राजमाला प्रल छे थुम फा खण्ड 59पृ

प्रल–173

युद्धास्त्र प्रधानतः धनुर्बाण, खड्ग, चर्म, जाठा, और भल्लादि(भाला) आदि अस्त्र लेकर युद्ध किया जाता था। युद्ध शिक्षा काल में भी इन्ही अस्त्रों के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं।

मल्लविद्या–विशारद होइलो सेनाजन।	मल्ल विद्या विशारद हुई सेना गण।
खड़ग चर्म लोइया पांचा खेले(1) ढालीगण।।	खड्ग चर्म ले नकली युद्ध(1) करे ढाली गण।।
खलंमा नदीर तीरे पाषाण पड़िछे।	खलंमा नदी के तीर फैले असंख्या पाषाण।
मला होइले खड़ग लेन्जा(2) ताथे धाराइछे।।	मल्ल होता, धार देते खड़ग शूल(2) पर।।
खलंमा नदीर तीरे बालुचर आछे।	खलंमा नदी के तीर हैं विशाल बालुचर।
बीर सबेर खड़ग चर्म ताथे राखियाछे।।	सभी वीरों ने खडग ढ़ाल छुपाया उसमें।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ

अर्थात सेनायें मल्ल विद्या में विशारद हो गई। सेनायें खड्ग, चर्म ढ़ाल वाले कृत्रिम युद्ध खेलते थे। खलंमा नदी के किनारे पाषाण खण्ड पड़े हैं। मैला होने पर खड्ग, शूल आदि को वहीं धार देते थे। खलंमा नदी के किनारे बालू की रेत है। सभी वीरों ने अपने अपने हथियार छुपा रखे हैं।

आग्नेयास्त्र प्रचलन महाराज छें थुम फा के साथ गौड वाहिनी का जो भयंकर संग्राम हुआ था, उस युद्ध में केवल ऊपर लिखे अस्त्रों की सहायता से ही त्रिपुरा की विजय हुई थी, ऐसी बात नहीं है। इस संग्राम में आग्नेयास्त्र का भी व्यवहार हुआ था। राजमाला में इस बारे में सम्पूर्ण नीरवता का पालन करने पर भी त्रिपुर वंशावली में इसका उल्लेख मिलता है।(3) मुसलमानों में भी धनुर्बाण और खड्गादि के प्रयोग के प्रमाण अनेक जगहों पर मिलते हैं। उनके पास आग्नेय अस्त्र भी थे।

राजा की युद्ध यात्रा

महाराज त्रिपुर का अभियान प्राचीन काल में त्रिपुर भूपति वृन्द एवं समर क्षेत्र में उपस्थित रहते थे एवं दिग्वजय के निमित्त दूर देशों में भी जाते थे। राजमाला में इसके बहुत से प्रमाण हैं। महाराज त्रिपुर के प्रसंग में कहा गया है –

युद्धाकांक्षा अविरत मारे हस्ती घोड़ा।।	युद्धाकांक्षा अविरत मारे हस्ती घोड़ा।।
अन्यत्र नृपति नाहि पारे युद्ध बले।	दूसरे नृपति नहीं जीत सके युद्ध बल से।
सकलेरे जय कोरे निज बाहुबले।।	सभी को जीत लिया निज बाहु बल से।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 10पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 10पृ

---

(1) पाँचा खेला – कृत्रिम युद्ध।

(2) लेंजा – जाठा, शूल।

(3) तीर धनु कामान बन्दूक शुल्पीराय बाँस।
लोइलेक विषयुक्त चोखा बोम बाँस।। त्रिपुर वंशावली।
अर्थात – तीर, धनु, कमान, बन्दूक, तीखे बाँस और विषयुक्त नुकीला बाँस भी साथ लिया।

प्रल—174

महाराज त्रिलोचन का अभियान त्रिपुर के पुत्र महाराज त्रिलोचन के द्वादस वर्ष की उम्र में पार्श्ववर्ती राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करवा लिया। इसके थोड़े दिन पश्चात दिग्वजय के लिए वे स्वयं निकल पड़े थे। त्रिलोचन खण्ड में है —

एईमते नरपति बन्चे कोतो काल।	इसी तरह राज्य करें कुछ काल।
नानान जातीय बहु छिलो महीपाल।।	नाना जातीय बहुत थे वहां महीपाल।।
काइफेंग चाकमा आर खुलंग लंगाई।	काइफेंग चाकमा और लंगाई खुलंग।
तनाउ तैयंग आर रयां आदि ठाई।।	और थे रयां आदि तनाउ तैयंग।।
थानांछि प्रतापसिंह आछे जतो देश।	थानांछि प्रताप सिंह है जितने देश।
लिका नामे आर राजा रांगामाटी शेष।।	लिका नाम और राजा रांगामाटी शेष।।
एई सब जिनीबारे इच्छा मने होइलो।	ये राज्य जीतने की जागी मन में वासना।
पात्र मंत्री संगे राजा मंत्रणा कोरिलो।।	पात्र मंत्री आदि साथ करे राजा मंत्रणा।।
पात्रादिर अनुमति लोइया त्रिलोचने।(1)	पात्रादि की अनुमति लिया त्रिलोचन।(1)
युद्धसज्जा कोरिया चलिलो सेनासने।।	युद्ध सज्जा कर चले करने सेनागण।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 32पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 32पृ

अर्थात् "इस तरह राजा ने कुछ काल बिताया। चारों ओर नाना जाति महिपाल सब थे। उनमें काइफेंग चाकमा, सुलंग लंगाई, तनाउ तैयंग और रयां आदि तो थे ही। थानांछि प्रताप सिंह आदि जितने देश थे उनमें रांगामाटी में लिका नाम के एक शेष राजा थे। इन्हें जीतने की राजा की इच्छा हुई। अपने अमात्य वर्ग और मंत्रियों के साथ मंत्रणा किया। इनसे मंत्रणा के पश्चात् सेनाओं को साथ लेकर युद्ध साज सज्जा करके चल पड़े।"

अन्य राजगणों का अभियान हाम राजा के पुत्र वीरराज ने समरांग में अपने जीवन की आहुति दी थी।

हामराज तार पुत्र भालो राजा होइलो।	हामराज पुत्र उनके बने राजा अति सुसज्जन।
तान पुत्र बीरराज युद्ध कोरि मोइलो।।	उनके पुत्र वीरराज ने रण में किया मृत्यु वरण।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 39 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 39 पृ

अर्थात "हाम उनके पुत्र अच्छे राजा हुए और उनका पुत्र वीरराज ने युद्ध करके वीरगति पाई।"

महाराज युझारु फा ने लिका अभियान में स्वयं यात्रा की थी। राजमाला में है —

जार जेई सेना लोइया भ्रातृगण राजार।	अपनी अपनी सेना साथ चले अनुज राजा के।
सैन्य मध्ये चलिते छे राजा त्रिपुरार।।	सेना मध्य चलते रहे थे राजा त्रिपुरा के।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50 पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50 पृ

अर्थात "राजा के सभी भाई अपनी अपनी सेनाओं के साथ आए। सेनाओं के मध्य स्वयं त्रिपुरा के राजा चल रहे थे।"

---

(1) युद्धाति के बारे में पात्रों की अनुमति ग्रहण करना राजनीति सम्मत कार्य है। यथा —

प्रागात्मा मंत्रीनश्वैच ततो भृत्या महीभृता।
जेयश्चानंतरं पौरा विरूद्धैत ततोऽरिभिः।।
यस्त्वेतान बिजितैव बैरिणो बिजिगीषते।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेन वाध्यते।।

मार्कण्डेय पुराण 27 अध्याय।

मामार्थ — राजा, पहले आत्मा को, पश्चात मंत्रियों को बाद भृत्य वर्ग को और अंत में पौर वासियों के साथ मंत्रणा करके तब शत्रुओं का विरोध करेगें। जो आत्मा आदि पर विजय प्राप्त नहीं करके बैरियों पर विजयी की अभिलाषा करते हैं वे अजितात्मा नरपति अमात्यों द्वारा विजित होकर शत्रु वर्ग के अधीन होने पर बाध्य होते हैं।

शुक्र नीति आदि ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

प्रल–175

बंग देश पर कब्जा इस युद्ध में विजय प्राप्त करके भी त्रिपुरेश्वर की राज्य विस्तार की प्यास नहीं गई। उन्होनें लिका के राजा को पराभूत कर रांगामाटी प्रदेश को हस्तगत करने के पश्चात –

रोहिलो अनेक काल से स्थाने नृपति।	रहे बहुत काल तक वहाँ नृपति।
बंगदेश आमल कोरिते होइलो मति।।	बंग देश दखल करने की हुई उनकी मति।।
विशालगढ आदि कोरि पर्बतिया ग्राम।	विशालगढ़ आदि करके और पहाड़ी ग्राम।
कालक्रमे सेई स्थाने होइलो त्रिपुर धाम।।	काल क्रम पर वह स्थान हुआ त्रिपुर धाम।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ

अर्थात – ''बहुत दिनों तक वहाँ राजा रह गये। इसके पश्चात बंग देश पर कब्जा करने की उनकी इच्छा हुई। विशालगढ़ आदि पहाड़ी गाँवों पर अपना अधिकार विस्तार किया। काल क्रम से वह स्थान त्रिपुरा का हो गया।''

गौडाधि के साथ युद्ध का सूत्रपात इसके बाद त्रिपुरा के समरांगन में एक अभूतपूर्व घटना घटी थी। यहाँ पर उसका संक्षिप्त ब्यौरा प्रदान किया जा रहा है। हमने छें थुम फा खण्ड में पाया है हीरावंत खाँ बंग राज्य के अधीनस्थ एक चौधुरी(सामंत) थे।(1) महाराज छें थुम फा(नामांतर सिंहतुंग फा या कीर्तिधर) ने उनके राज्य(मेहेर कुल प्राचीन कमलांक) अधिकार कर लेने पर हीरावंत कोई उपाय न देखकर अंत में उन्होनें गौडेश्वर का आश्रय ग्रहण किया। गौडाधीश ने इस घटना से क्षुब्ध होकर त्रिपुरा विजय के लिए विशाल सेना वाहिनी भेजी। त्रिपुरेश्वर स्वयं वीर पुरुष और समर निपुण होने पर भी प्रतिपक्ष के सैन्य संख्याधिक्य की बातें सुनकर उनके ह्रदय में सामयिक दुर्बलता के लक्षण दिखाई दिये। उन्होनें स्वयं समर भूमि में अवतीर्ण होने में यहाँ तक कि किसी तरह के लोहा लेने में अनिच्छा प्रकाश की। राज महिषी ने राजा को रण विमुख देखा तो दुःखी और क्षुब्ध हो उठी और क्षुब्ध सिंहनी की तरह दहाड़ उठी और अपने भयातुर पति से कहा–

अख्याति कोरिते चाहो आमा वंशे तुमि।	अख्याति करना चाहते मेरे वंश में तुम।
बोले, आसि देखो रंग युद्ध कोरि आमि।।	कहा आओ देखो युद्ध करते है हम।।
ए बोलिया ढोले बाडि दिते आज्ञा कोइलो।	यह कहकर नगाड़े पर करने को कहा आघात।
जतो सैन्य सेनापति सब सजि आइलो।।	सभी सैन्य सेनापति आए कर साज।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ	राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ

अर्थात ''तुम हमारे वंश की अख्याति करना चाहते हो। इतना कहकर रानी ने नगाड़े पर चोट करने के लिए आज्ञा प्रदान किया। नगाड़े की आवाज सुनकर सभी सेनायें और सेनापति सज धज कर युद्ध हेतु आ गये।''

सेनापतियों को अपने अपने अधीनस्थ सेनाओं के साथ देखकर –

महादेबी जिज्ञासिलो विनय कोरिया।	पूछा महादेवी ने विनय वचन।
कि कोरिबा पुत्र सब कहो विवेचिया।।	क्या करोगे पुत्र, कहो सोच अपने मन से।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ	राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ

अर्थात महादेवी ने विनय के साथ कहा, पुत्रो, खूब सोचकर बताओ कि अब तुम क्या करोगे ?

---

(1) संस्कृत राजमाला के अनुसार ये त्रिपुर राज्य के ही एक सामंत थे। यह उक्ति निर्भर योग्य नहीं है। क्योंकि हीरावंत मेहेर कुल के चौधरी थे। उन दिनों मेहेर कुल त्रिपुरा के अधीन नहीं था। हीरावंत को लेकर युद्ध के पश्चात वह स्थान त्रिपुरा के अधीन हुआ।

प्रल–176

गौड़ सैन्य आसिया छे जेनो यमकाल। गौड़ सेना आई है जैसे यमकाल।
तोमार नृपति होइलो बनेर शृगाल।। तुम्हारे नृपति हो गये वन में श्रृगाल।।
युद्ध कोरिबार आमि जाइबो आपने। युद्ध करने मैं जाऊँगी स्वयं।
जेई जन वीर होव चलो आमा सने।। जो हो वीर चले मेरे संग।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ

अर्थात – ''गौड सेना क्या आई है। जैसे भयानक काल ही आया है। तुम्हारा राजा जंगल का सियार बन गया है। युद्ध करने मैं जाऊँगी। तुम में जो वीर हो मेरे साथ चलो। तब –

रानी वाक्य सुनि सभे वीर दर्पे बोले। रानी वाणी सुन वीर, दर्प से कहा तभी।
प्रतिज्ञा कोरिलो युद्धे जाइबो सकले।। प्रतिज्ञा किया युद्ध में हम जायेंगे सभी।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ

अर्थात – रानी के वाक्य सुनकर सभी वीरों ने दर्प से कहा, हम प्रतिज्ञा करते हैं, हम सभी युद्ध करने जायेंगें।

महारानी युद्ध व जयलाभ इसके बाद महारानी से हृष्ट चित्त से मंत्री और सेनापतियों को लेकर एक बृहत भोज का आयोजन किया और स्वयं रन्धनादि के तत्वाधान में नियुक्त रही। रात में सेनाओं को मद्य मांस इत्यादि के द्वारा षोडशोपचार से भोजन कराकर, दूसरे दिन खूब सवेरे हाथी पर सवार होकर विपुल वाहिनी के साथ युद्ध यात्रा की। पहले भयभीत होने पर भी महारानी के उत्तेजनापूर्ण वाणी सुनकर और सैनिकों का उत्साह देखकर उदीप्त चित्र से महाराज स्वयं युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। दो दण्ड बेला पर युद्ध शुरू हुआ। सारा दिन तुमुल युद्ध के बाद एक दण्ड बेला रहते असंख्य नर रक्त से समर क्षेत्र को पल्लवित कर विजय लक्ष्मी त्रिपुरा की अंकशायिनी हुई।(1) राजमाला के अनुसार, ''यह युद्ध गौडेश्वर के साथ हुआ था। यह हम पहले ही बता चुके है। इस बारे में राजमाला का कहना है –

ए सब वृतान्त से जे(हीरावंत) गौडेते कोहिलो। यह सब वृतान्त(हीरावंत) कहा गौड़ से।
रंगामाटि जुझिबारे गौड सैन्य आइलो।। रांगामाटी में जंग हित सेना आई गौड से।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 56 पृ

अर्थात ये सारी बातें हीरावंत ने गौडेश्वर से कहा। रांगामाटी जीतने के लिए गौड की सेना आई।''

युद्ध का प्रतिपक्ष निर्धारण संस्कृत राजमाला का मत भिन्न है। इस ग्रन्थ के वर्णन द्वारा यह जाना जाता है कि दिल्लीश्वर के साथ युद्ध हुआ था(2)। इस मतद्वैधता की मीमांसा करना दुसाध्य होने पर भी ऐतिहासिकगण ही राजमाला का पोषण करते हैं। हम गौडेश्वर द्वारा त्रिपुरा आक्रमण की बात ही सत्य मानते हैं। इसके बाद इस विषय पर प्रमाण प्रदान किया जाता है।

---

(1)

दुई दण्ड बेला उदय होइलो महारण। दो दण्ड बेला पर शुरु हुआ महारण।
एक दण्ड बेला थाके सन्ध्या तत्क्षण।। एक दण्ड बेला अंत संध्या आई तत्क्षण।।
राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 58 पृ राजमाला प्रल छें थुम फा खण्ड 58 पृ

अर्थात सूर्योदय के दो दण्ड के पश्चात यह महारण शुरू हुआ। संध्या होने के पहले दिन एक दण्ड रहते तक संग्राम हुआ।

(2) एवं नित्यं सतेनोक्तयो दिल्लीश्वर दयामयः।
बहु सैन्य समायुक्तो गंगातीरे मुपागतः।। आदि संस्कृत राजमाला।

प्रल–177

इस युद्ध के समय गौडेश्वर कौन थे एवं दिल्लीश्वर ही कौन थे। राजमाला में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है।

तुग्रल खां और जाजनगर इतिहास की आलोचना से जाना जाता है कि 1165 शकाब्द में(1243 ई0) लक्षणावती के मालिक तुग्रलतुगन खाँ को आक्रमण करके सम्पूर्ण रूप से पराभूत हुए थे। किसी किसी के अनुसार यह जाज नगर ही त्रिपुरा है। उनका यह सिद्धान्त अभ्रान्त होने पर तुगन खाँ छें थुम फा की महिषी के हाथों लांक्षित हुए थे इस तरह कहा जाता है। किन्तु इस विषय में मतान्तर है। किसी किसी का कहना है कि तुगन खाँ ने जो जाजनगर आक्रमण किया था, वह उड़ीसा की राजधानी जाजपुर है। मेजर स्टुअर्ट ने उड़ीसाधिपति के द्वारा तुगन खाँ के पराजय का वृतांत लिपिबद्ध किया है।(1) इतिहासकार हंटर साहब ने स्टुअर्ट के मत का ही समर्थन किया है(2)। कैलाश चन्द्र सिंह महाशय भी उसी मत के पक्षपाती हैं(3)। तुगन के द्वारा आक्रांत जाज नगर जो त्रिपुरा राज्य नहीं है। हमें इस विषय के प्रकृष्ट प्रमाण मिलें हैं। उसे यहाँ दिया जा रहा है –

गौड देशी भग्न पाइक देशेते पौंछिया।
बोलिलेन युद्धबार्ता महा दुःखी होइयौ।
दूत बोले महाराज कोरि निवेदन।
त्रिपुरासुन्दरी नाम राज रानी होन।।
+ + महायुद्ध कोरिलेन रानी।
एतो बड़ो युद्धा रानी कभु नाहि सुनि।।
+ + + +
एतो सुनि गौड राजा ताज्जब(4) होइलो।
नारी संगे युद्ध कोरि सैन्य क्षय होइलो।।

अर्थात गौड देशीय भग्न ह्रदय दूत अपने देश में पहुँचकर महादुःखी मन से युद्ध वार्ता बताया। दूत ने कहा महाराज मैं निवेदन करता हूँ। त्रिपुरासुन्दरी नाम की रानी ने महायुद्ध किया। इतने बड़े युद्ध रानी की बात मैंने नहीं सुना है।

यह सुनकर गौड राजा को बड़ा ताज्जुब हुआ और कहा रानी के साथ युद्ध करके सेना का क्षय हुआ है।

विजित गौडेश्वर का अनुसन्धान किसी भी ग्रंथ में इस विजित गौडेश्वर का नामोल्लेख नहीं है। यह बात पहले ही बतायी गई है। त्रिपुर वंशावली में युद्ध का समय निर्धारित हुआ है। दूसरे किसी ग्रंथ में इसका भी उल्लेख नहीं है। उस पुस्तिका के रचियता कहते हैं –

छयशत पंचास सन त्रिपुरा यखन।
त्रिपुरासुन्दरी रानी कोरे एई रण।। त्रिपुर वंशावली।

अर्थात 650 त्रिपुराब्द में महारानी त्रिपुरासुन्दरी ने यह युद्ध किया था।

---

(1) **Stewarts History of Bengal P.P. 38-39.**
(2) **Hunter's Orissa Vol. II P.4**
(3) भारती 7 भाग 12–13 पृष्ठ, ''जाज नगर'' शीर्षक प्रबन्ध।
(4) ताज्जब – विस्मित।

प्रल–178

त्रिपुर वंशावली रचियता के अनुसार बंग के सेन वंशीय किसी राजा के साथ युद्ध हुआ था।(1) वे राजा के नाम नहीं बता सके। 650 त्रिपुराब्द में ई0 सन् 1240 था। इतिहास की आलोचना से ज्ञात होता है कि मौहम्मद गौरी के सेनापति मौहम्मद–ई–बख्तयार खिलजी ने 1199 ई0 सन् में महाराज लक्ष्मण सेन को पराजित कर बंग देश में पठान राज्य की स्थापना की। किसी किसी इतिहासकार ने इस बात की उपेक्षा की हैं। इसके बावजूद भी यह घटना आधुनिक नहीं जान पड़ती। मुसलमान इतिहास का ''मिनहज–ई–सिराज'' ने ''तबकात्–इ–नासेरी'' नामक ग्रंथ में लक्ष्मण सेन के ऊपर पलायन का जो कलंक आरोपित किया है, वह सत्य नहीं हो सकता। किन्तु बख्तयार के द्वारा बंग विजय की कहानी मिथ्या नहीं है। पर इस विजय के समय निर्धारण में बहुत से मतभेद दिखाई देते हैं। बुकानन साहब के अनुसार 1207 ई0 सन् ''मेजर रेभर्टी और मुंशी श्याम प्रसाद मतानुसार 590 हिजर् (1194ई), डा. राजेन्द्र लाल मित्र और बाबू कैलाशचन्द्र सिह के मतानुसार 1205 ई, पठान विजय का काल निर्धारण हुआ है। स्टुअर्ट और वाइज के मतानुसार 600 हिजरी सन् अर्थात 1203 से 1204 ई0 सन्, डाक्टर किलहर्न(2) और रिभरिज के मत(3) 1199 ई0 सन् और ब्लैक मैन के मतानुसार(4) 1198 से – 1199 ई0 सन् पठानों के द्वारा बंग विजय हुआ था। गौड राजमाला के लेखक ने ब्लैक मैन के मत का अनुसरण किया है(5)। विल फोर्ड साहब के मत से(6) 1207 ई0 सन्, रमा साहब के अनुसार(7) 1205 ई0 सन् प्राच्यविद्यार्णव श्रीयुक्त नगेन्द्र नाथ बसु महाशय के अनुसार(8) 1197 से 1198 ई0 सन्, स्वर्गीय पण्डित उमेश चन्द बटब्याल महाशय के मतानुसार(9) 1224 शकाब्द(1202 से 1203 ई0 सन्) पठान विजय की बात कही गई है। गया के विष्णुपाद मन्दिर के प्रशस्ति आलोचना से निर्णित हुआ है, गोविन्द पाल देव 1161 ई0 सन् मगध के सिंहासन पर बैठे थे(10) उनके 38 साल राज्य भोग के पश्चात मौहम्मद–ई–बखतियार

---

(1) जे समये एई युद्ध त्रिपुरे होइलो।
गौड दैशे सेनवंशी राजगण छिलो।।
(त्रिपुर वंशावली)

अर्थात जिस समय यह युद्ध त्रिपुरा में हुआ उस समय गौडदेश में सेन वंशी राजा लोग थे।

(2) **Indian Antiquary -Vol. XIX.**

(3) **J.A.S.B. -1898. Pt.1, P. 2**

(4) **J.A.S.B. -1873 Pt. 1, P.211**

(5) गौड राजमाला 71 पृष्ठ।

(6) **Asiatic Researches Vol. IV. P. 203**

(7) **Initial Coinage of Bengal.**

(8) **J.A.S.B. -1896. P. 31**

(9) साहित्य 1301, 3 पृष्ठ

(10) **J.A.R.S. -Vol. III. No. 18**

ने बिहार जय किया था।(1) इस घटना के दो साल बाद गौड विजय हुआ था। इस युक्ति का अनुसरण इतिहासकार श्रीयुत राखाल दास बन्द्योपाध्याय महाशय ने पठान विजय का काल 1200 ई0 सन् निर्धारित किया है।(2) उदीयमान इतिहास का स्नेह भाजन श्रीमान् यतीन्द्र मोहन राय महाशय ने राखाल बाबू का मत ही समर्थन किया है।(3) "सम्बन्ध निर्णय" ग्रंथ में सेन राजवंश का जो राजत्व काल निर्धारित हुआ है, उसकी आलोचना से जाना जाता है कि महाराज लक्ष्मणसेन राजत्व काल 1123 से 1203 ई0 सन्(4) है। और पुनः कुछ इतिहासकारों के मत से लक्ष्मण सेन बाद भी एक सदी तक बंग देश में सेन वंशजों का प्रमुखत्व अक्षुण्ण था। उनका कहना है बखतयार बंग विजय की कहानी सत्य होने पर भी पुनः हिन्दुओं ने बंग देश पर अपना कब्जा कर लिया था। दृष्टांत स्वरूप मौहम्मद इ बखतयार आधी सदी के बाद मुगीशउद्दीन युजबक, नोदिया(नदिया) पर विजय प्राप्त कर विजय कहानी स्मरणार्थ नूतन मुद्रा बनवाने की बात की चर्चा की गई है।(5)

इतिहासकारों के शेषोक्त मत के समर्थन योग्य और भी प्रमाण हैं। माधव सेन, केशव सेन और विश्व रूप सेन नाम के लक्ष्मण सेन की तीन पुत्र थे। सेन वंशज राजगणों के ताम्र फलक में माधव सेन का नामोल्लेख नहीं है। लेकिन केशव और विश्वरूप सेन का नाम मिलता है। यह भी स्थिरीकृत हुआ है कि लक्ष्मण सेन के बाद ताम्र शासन में जहाँ जहाँ पर माधव सेन का नाम उत्कीर्ण हुआ था, उसे काटकर वहाँ केशव सेन का नाम खुदाई कर दिया गया है। इससे यही अनुमान लगाया जा रहा है। माधव सेन के आदेश से ही ताम्र फलक उत्कीर्ण हुआ था। इसके अनुसार दान सिद्ध होने के पहले माधव सेन परलोक सिधार गये और केशव सेन सिंहासन पर बैठकर माधव सेन का नाम काटकर अपना नाम खुदवा लिया।(6) मदन पाण्डेय के ताम्र फलक में से भी एक नाम उठवाकर उसकी जगह विश्वरूप सेन का उत्कीर्ण हुआ है।(7) यह भी पूर्वोक्त शासन की तरह माधव के नाम की जगह

---

(1) **J.A.S.B. -1876 Pt. 1, P.P.331-32**

(2) **J.A.S.B. -1913 P. 277 & 285**

(3) ढाका का इतिहास दूसरा खण्ड, दसवाँ अध्याय 399पृ

(4) आदिशुर और वल्लाल सेन परिशिष्ट 31पृ(बंगला में)

(5) **Catalogue of Coins in the Indian Museum. Calcutta -Vol. II Pt II P.146 No. 6**

(6) गौड का ब्राह्मण 257 टीका

(7) **Journal of the Asiatic Society of Bengal.**

प्रल–180

विश्वरूप का नाम खुदाई किया गया है, ऐसी धारणा कुछ लोगों के मन में है। रामजय कृत कुलपंजिका इंडोऐरिअन एवं आईन–ई–अकबरी ग्रंथों में लक्ष्मण सेन के पश्चात मधु सेन राजा का नाम मिलता है। किसी किसी इतिहासकार के मत से मधु सेन और माधव सेन एक ही व्यक्ति हैं।(1) सेन वंशीय लोगों के शासनकाल के हिसाब से यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होती। बाद में इस पर आलोचना करेंगे।

विश्वरूप सेन के ताम्र शासन में उन्हें ''गर्ग यवनान्वय प्रलय काल रूद्र'' इस विशेषण से अलंकृत किया गया है। इसके द्वारा अनुमान होता है कि उन्होनें यवनों को बारम्बार पराजित किया था। सम्भवतः गौड देशीय तुरस्कदेशीय को गर्ग यवनान्वय कहा गया है।।

लक्ष्मण सेन के पश्चात उनके तीनो पुत्र ही एक के बाद एक बंग के सिंहासन पर आसीन हुए थे। पूर्वोक्त प्रमाण द्वारा यही जाना जाता है। हरि मिश्रा के कारिका में लिखा है –

बल्लाल तनयो राजा लक्ष्मणोंभूत् महाशयः।
\+ + + +
तत्पुत्र केशवो राजा गौड राज्यः विहाय सः।

कुलाचार्य एडु मिश्र ने लिखा है–

नृपं तं केशवो भूपतिः सैन्येर्विप्रगणैः पितामहकृतै रणैश्च यक्तोगतः। तां चक्रे नृपतिर्महादरतया सम्मानयन् जिविकां तद्वर्गस्य च तस्य च प्रथमतश्चक्रे प्रतिष्ठान्वितः।''

लक्ष्मण सेन के बाद जो गौड में सेन राजाओं का अधिपत्य अक्षुण्ण था इस विषय में इससे अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। बंगाल सरकार द्वारा संगृहीत एक हस्तलिखित प्राचीन संस्कृत ग्रंथ में उल्लेख है। ''परम भट्टारक महाराजाधिराज परम् सौगत ''मधुसेन'' ने 1194 शक में(1272 ई0) विक्रम पुर में अपना अधिपत्य विस्तार किया था।(2) कहा जाता है कि इन्होनें तुरूकों को बार बार पराजित किया था। इस समय प्राय समग्र बरेन्द्र भूमि, राढ़, मिथिला बागडि के पश्चिमांश मुसलमानों के हस्तगत होने पर भी मधुसेन, दुर्भेद्य एकडाला दुर्ग में(3)

---

(1) ढाका का इतिहास दूसरा खण्ड दसम् अध्याय 413पृ।

(2) बंग का जातीय इतिहास राजन्य कांड 354पृ।

(3) दुरदुरिया से आठ मील दक्षिण में बाना और लक्ष्या नदी के संगम स्थल पर यह जगह है। एकडाला के अवस्थान के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। एवं एक से अधिक एकडाला का अस्तित्व विद्यमान है।

उत्तर पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है ''सम्राट के आगमन से सम–सु–उद्दीन सुवर्ण ग्राम के करीब दुर्भेद्य एकडाला दुर्ग में आश्रय ग्रहण किया'' यही एकडाला ही हमारा लक्ष्य स्थल है। यह दुर्ग महाराज बल्लाल सेन द्वारा निर्मित हुआ था।

में आश्रय लेकर पूर्वबंग में अपने स्वतंत्रता की रक्षा करने में सक्षम हुए थे। तारिख—इ—बरणी नाम की एक मुसलमान इतिहास ग्रंथ से जाना जाता है कि जिस समय दिल्लीश्वर बलबन, तुगरल खाँ को दमन करने के लिए बंग देश में आगमन हुआ था। उस समय(1280 ई0 सन् में) सुवर्ण ग्राम के सिंहासन पर दनौज राय नाम के एक हिन्दू नरपति अधिष्ठित थे। दक्षिण में समुद्र तट तक उनका एकाधिपत्य था। हरि मिश्र विरचित राढी ब्राह्मणों की कुलंजी ग्रंथ में है, गौडेश्वर लक्ष्मण सेन के पुत्र केशव सेन एवं केशव सेन के पुत्र दनौज माधव थे। समय की समता को देखकर अनुमान किया जाता है कि यह दनौज माधव और पूर्व कथित मधु सेन अभिन्न व्यक्ति है। माधव शब्द की जगह पूर्वोक्त संस्कृत ग्रन्थ में मधु लिखा जाना कोई विचित्र बात नहीं है।

गौड के साथ त्रिपुरा का युद्ध 1240 ई0 सन् की घटना है। इस युद्ध से पहले 1200 ई0 सन् में मुसलमानों द्वारा बंग विजय की बात अभ्रान्त होने पर, लक्ष्मण सेन शासनकाल का अवसान त्रिपुर युद्ध के पहले ही हो चुका था। उस युद्ध के पश्चात(1280 ई0 सन्) सुवर्ण ग्राम के सिंहासन लक्ष्मण सेन के पैात्र और कैशव सेन के पुत्र दनौज माधव को हम अधिष्ठित देख रहे हैं। लक्ष्मण सेन के पश्चात और दनौज माधव के पहले केशव सेन ने बंग का सिंहासन अलंकृत किया था। इतिहास और ताम्र फलक इसके प्रमाण मिलने की बात हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। अतएव त्रिपुरा आक्रमण के समय(1240 ई0 सन्) केशव सेन बंग के सिंहासन पर आसीन थे, एवं वे ही त्रिपुरा आक्रमण करके महारानी त्रिपुरासुन्दरी के हाथों विध्वस्त हुए थे। इस तरह के सिद्धान्त पर उपनीत होना शायद असंगत नहीं होगा। हम लोग केशव सेन को ही त्रिपुरा आक्रमणकारी के रूप में चित्रित करते हैं।

विजयश्री विभूषिता महारानी का नाम विजयीमाला विभूषिता महारानी के उद्देश्य से स्व0 कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने कहा — '' भारतीय महिलाओं में इस तरह के दृष्टांत अति विरल हैं। गढ़मण्डल की अधीश्वरी दुर्गावती एवं झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई ने भीषण समय में अपने अपने प्राणों की आहुति पूर्वक अक्षय कीर्ति स्थापन करके वीरेन्द्र समाज में वरणीया हो गई है। किन्तु विजयलक्ष्मी

---

(1) स्वर्गीय कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने त्रिपुरा आक्रमणकारीयों का नाम या जाति का निर्णय नहीं किया है। सुहृदय श्रीयुत पण्डित अच्युत चरण चौधरी तत्वनिधि महाशय ने गियासउद्दीन को ही आक्रमणी कहकर स्थिर किया है।(श्रीहट्ट के इतिवृत्त द्वितीय भाग प्रथम खण्ड छठवाँ अध्याय 75पृ) यह निर्धारण अभ्रान्त नहीं है। गियासउद्दीन ने 1212—1227 ई0 सन् तक बंग राजत्व किया था। त्रिपुरा आक्रमण 1240 ई0 सन् की घटना है। अतएव इस युद्ध के पहले ही गियासउद्दीन का शासन काल खत्म हो गया था।

का सहचर्य उनके अदृष्ट में नहीं घटा है। विजय पताका उनके सिर पर उड्डीन नहीं हुआ। यह नितान्त ही दुःख का विषय है, राजमाला के लेखकों ने बीरेन्द्र समाज की वीरांगनाओं व इस तरह की रमणी रत्नों का नाम अपने ग्रन्थों में लिपिबद्ध नहीं किया।(1) श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रणेता ने इन वीरांगनाओं के नाम को न पाकर दुःख प्रकाश किया है।(2)

इस तरह की प्रातः स्मरणीय वीरेन्द्र कुल वरणीया महिला का नाम विस्मृति के अंधकार गह्वर में चिर दिन तक छिपा रहना विधाता की इच्छा नहीं हो सकती। सौभाग्यवश इस वीर्यवती ललना का नामोद्धार करने का सुअवसर पाकर, मैं विमल आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। उनका नाम ''त्रिपुरा सुन्दरी'' था। इस नाम का उल्लेख पहले ही किया गया है। फिर भी यहाँ पर पुनरावृत्ति किये बिना नहीं रह सका –

रानी संगे सैन्यगण युद्धे प्रवेशिलो।
त्रिपुरासुन्दरी रानी हस्ती सोयार होइलो।।

अर्थात रानी के साथ सेनाओं ने रण भूमि में प्रवेश किया। त्रिपुरासुन्दरी रानी हस्ती पृष्ठ पर सवार हुई

\+ + + +

छयशत पंचास सन त्रिपुरा तखन।
त्रिपुरासुन्दरी रानी कोरे एई रण।।
त्रिपुर वंशावली।

अर्थात 650 त्रिपुराब्द में महारानी त्रिपुरासुन्दरी रानी ने यह युद्ध किया था।

आत्म विरोध व गौरव हानि महाराज रत्न फा ने आत्म कलह में लिप्त होकर इस तरह की वीर प्रसविनी त्रिपुरा के अम्लान गौरव को म्लान करने का सूत्रपात किया था। इस सन्दर्भ का विवरण(आत्म विरोध) शीर्षक नामक आख्यायिका में लिखित होगा। महाराज रत्न फा ने गौड की सैन्य सहायता से स्वयं युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण होकर पैतृक सिंहासन अधिकार किया था।

——————————— + ———————————

अभियान और सैन्य चालन

अभियानकाल की सतर्कता राजाओं के युद्ध यात्रा के समय डंका, पताका, चन्द्र ध्वज और त्रिशूल ध्वज इत्यादि सभी राज चिन्ह साथ साथ चलते थे। गजारोही, अश्वारोही एवं पदातिक सेनाएँ श्रृखंलाबद्ध तरीके से परिचालित होती थी एवं अभियान के समय राजा को निरापद रखने के लिए विशेष व्यवस्था की जाती थी। लिका अभियान में जिस प्रणाली से

....

(1) कैलाश बाबू की राजमाला दूसरा भाग, द्वितीय अध्याय 25पृ।
(2) श्रीहट्ट का इतिवृत्त दूसरा भाग, प्रथम खण्ड, छटवाँ अध्याय 75पृ।

प्रल–183

सेना परिचालित हुई थी, उसकी आलोचना से इसका आभास मिजता है। यथा –

हस्ती घोड़ा चलिलेक अनेक पदाति।	हस्ती, घोड़ा चले अनेक पदाति।
भिन्न भिन्न क्रमे चले जार जेई रीति।।	भिन्न भिन्न क्रम से चली जिसकी जैसी परिणति।।
अग्र होइया सैन्य चले पीठवर्ती परे।	आगे आगे सेना चली पीछे वाले पश्चात।
लांगाई सैन्य चलिलेक नाउड़ाई तदन्तरे।।	लांगाई सेना चली नाउड़ाई पश्चात।।
जार जेई सेना लोइया भ्रातृगण राजार।	अपनी अपनी सेना साथ चले अनुज राजा के।
सैन्य मध्ये चलिते छे राजा त्रिपुरार।।	सेना मध्य चलते रहे थे राजा त्रिपुरा के।।
दाहिनें बाँये दुई भाग सेनापतिगण।	दाँये बाँये दो भाग हुए सेनापतिगण।
बहु सेनापति रहे पृष्ठेते रक्षण।।	बहुत सेनापति रहे पीछे सुरक्षा के कारण।।
ताहार पश्चाते रहे आर सेनापति।	इसके पश्चात रहे और सेनापति।
राज भ्रातृ सकलेरे त्राण कोरे अति।।	राज भ्रातृ सभी को त्राण देने अति।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50 पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50 पृ

अर्थात हाथी, घोड़ों के साथ बहुत बडी पदातिक सेनायें चली। भिन्न भिन्न क्रम से जिसकी जो रीति है। उसी के अनुसार सभी चल रहे थे। आगे आगे जो सेनायें चल रही थी, उसके पीठ की ओर दूसरी सेनायें चल रही थी। लागांई सेनायें आगे थी और नावडाई सेनायें पीछे थी। राजा के सभी भाई जो एक एक सेनापति भी थे अपनी सेनायें लेकर चल रहे थे। सेनाओं के बीच त्रिपुरा के राजा चल रहे थे। दाहिनें ओर बाँये दो भाग होकर सेनापति चल रहे थे। बहुत से सेनापति पीछे की रक्षा के लिए रह रहे थे। उसके पीछे फिर दूसरे सेनापति थे। राजा के भ्राता सभी के लिए अत्यन्त त्राण हित रह रहे थे।

उस समय पटमन्डप व उसके जैसा अन्य कोई सुविधाजनक वस्तु नहीं था। अभियानकाल में जगह जगह में शिविर लगाने के निमित्त गृह निर्माण करके रखते थे। यह दायित्व कुकिगणों के उपर था, राजमाला में लिखा है– कुकि सैन्य आगे आगे बनाये ये घर। यह नियम वर्तमान काल में भी प्रचलित है।

——————————— + ———————————

सेनाओं की उच्छश्रृंखलता

सेना विभाग में सुरा का प्रभाव

सामरिक विभाग के कर्मचारियों में अतिरिक्त मद्य पान की प्रथा प्रचलित थी। किसी किसी समय वे सुरामत होकर आत्म कलह में लिप्त हो जाते थे। यह कलह कभी कभी ऐसा भयानक हो उठता था कि अपने में मार काट कर प्राण विर्सजन में भी कुठिंत नहीं होते थे। बहुत समय उसे निवारण करना महाराज के लिए भी असंभव हो जाता था। इस विषय में किचिंत मात्र हम आभास दे रहे हैं –

बड़ बड़ योद्धा सब बीर अतिशय।	बड़े बड़े बलवान योद्धा सभी वीर भयानक।
महाबल पदभारे क्षिति कम्प होय।।	महा बलवानों के पदभार से धरती रहती प्रकम्पित।।
मद्य मांसे रत सब गोयार प्रकृति।	मद्य मांस रत सभी गंवार प्रकृति।
तृण प्राय देखे तारा गजमत्त–मति।।	तृण सम देखे सभी मद मत्त हस्ति।।
त्रिपुरार कुले पुनः बहु बीर होइलो।	त्रिपुरा के कुल में पुनः हुआ बहुत से वीर।
मद्य पान कोरि सबे कलह कोरिलो।।	मद्यपान कर, करते सभी महाकलह गम्भीर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ

अर्थात बड़े बड़े योद्धा सभी महावीरों, वे ऐसे महाबलशाली थे कि उनके पद भार से मोदिनी कम्पायमान हो उठती थी और मतवाले हाथी को भी वे तृण सम देखते थे, मद्य मांस में रत सभी गँवार प्रकृति के थे। त्रिपुरा में पुनः बहुत से वीर हुए और मद्य पान करके सभी ने आपस में कलह किया।

प्रल–184

तुमुल होइलो युद्ध घोर परस्पर।	पुनः हुआ तुमुल युद्ध घोर परस्पर।
ताहा निबारिते नाहि पारे नृपबर।।	रोक न सके उन्हें स्वयं त्रिपुरेश्वर।।
आत्मकुल कलहेते महायुद्ध छिलो।	आत्म कुल कलह से वहां महायुद्ध हुआ।
पड़िलो अनेक बीर रक्ते नदी होइलो।।	मरे अनेक वीर नदी का खून बहा।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ

अर्थात तुमुल युद्ध हुआ, परस्पर में राजा भी निवारण नहीं कर सके। आत्म कलह महा युद्ध हुआ। बहुत वीर मारे गये और खून की नदी बह चली।

राजा व राज्य के उपर सेनापतियों का प्रभाव सेनापतियों के भी समय समय पर उच्छश्रृखंल होकर नाना तरह के असंगत कार्य करने के दृष्टांत भी राजमाला में देखने को मिलते हैं। यहाँ तक की राजा की हत्या करने में भी वे कुंठा बोध नहीं करते थे। महाराज प्रतापमाणिक्य इसी श्रेणी के दुर्दान्त सेनापतिओं के हाथों निहत होना पड़ा था।

रत्नमाणिक्य राजा स्वर्गे होइलो गति।	रत्नमाणिक्य राजा की हुई स्वर्ग गति।
अधार्मिक प्रतापमाणिक्य होइलो ख्याति।।	अधार्मिक प्रतापमाणिक्य की हुई ख्याति।।
ताहाने मारिलो रात्रे दस सेनापति।	मार गिराये उस रात दस सेनापति।
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 69–70 पृ	राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 69–70 पृ

अर्थात रत्नमाणिक्य स्वर्ग सिधार गये। इसके बाद अधार्मिक प्रतापमाणिक्य राजा हुआ और उसे दस सेनापतियों ने रात में हत्या किया।

सामरिक विभाग विषयक इसके अतिरिक्त विवरण यहाँ उल्लेख करना असंभव है। राजमाला की आलोचना से ऐसे अनेक वृतांत मिलेंगे जो इस इस आख्यायिका में आलोचना नहीं हो सके।

राज्य की अवस्था

राजधानी

किरात राज्य में प्रथम राजपाट –त्रिपुरेश्वरगण किरात राज्य में आकर, सबसे पहले कोपल या कपिल नदी के तटवर्ती त्रिवेग नगर में राज पाट की स्थापना की। ''कपिल ब्रह्मपुत्र नदी का ही नामांतर है।'' इस त्रिवेग के अवस्थान के निर्णय को लेकर पूर्वाभाष में आलोचना की गई है। त्रिवेग आगमन के पहले यह वंश कहाँ था, वह भी पूर्वाभाष में मिलेगा।

''खलंमा'' नामक स्थान पर राज पाट महाराज त्रिलोचन के समय तक त्रिवेग में ही राजधानी थी। त्रिलोचन के पुत्र दाक्षिण ने भ्रातृ विरोध के फलस्वरूप उस राजधानी को परित्याग कर बरवक्र नदी के किनारे ''खलंमा'' नामक स्थान पर नया राज पाट की स्थापना की।(1) इस समय बरवक्र नदी के उत्तर तटवर्ती भूभाग त्रिपुरा से

---

(1)

कपिला नदीर तीरे पाट छाड़ि दिया।	कपिला नदी के तीर राजधानी को छोड़कर।
एकादश भाई मिलि मंत्रणा कोरिया।।	एकादश भाईयों ने मंत्रणा की मिलकर।।
सैन्य सेना सने राजा स्थानांतरे गेलो।	सैन्य सेना साथ राजा गए स्थानांतर।
बरबक्र उजानेते खलंमा रहिलो।।	उपरी भाग बरबक्र बसे खलंमा जाकर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ

प्रल–185

हस्तच्युत एवं काछाड़ राज्य अधीन हो गया था। कुछ दिनों के पश्चात इस राजधानी को भी परित्याग करने का संकल्प हुआ था।(1) किन्तु राजा के परलोक सिधारने से वह संकल्प कार्य में परिणित नहीं हो सका।

कैलाशहर में राजपाट प्रतीत उर्द्धतन 12 पुरुष महाराज कुमार द्वारा मनु नदी के करीब कैलाशहर में राज पाट स्थापित होने पर भी उस समय ''खलंमा'' को राजधानी त्याग करने का कोई प्रमाण नहीं है। बल्कि प्रतीत के राजत्व के प्रथम भाग में भी ''खलंमा'' में राजधानी रहने का प्रमाण है।

त्रिपुर एवं हेड़म्ब राजा का व्यवहार हेड़म्ब राजा के साथ महाराज प्रतीत ने मित्रता करके बरवक्र नदी को दोनो राज्यों की सीमा के रूप में निर्धारण किया था। इस मित्रता को स्थायी करने के लिए वे कुछ दिनों तक हेड़म्ब में जाकर रहे। इस घटना से कामाख्या, जंयता(जंयतिया) आदि राजाओं को विशेष चिन्ता हुई। उन्होनें हेड़म्ब और त्रिपुरा में मनमुटाव पैदा करने के उद्देश्य से एक सुन्दरी युवती को भेजा। पुराणों में पाया जाता है कि देवतागणों को कभी कभी अप्सराओं को भेजकर योगियों का योग भंग करने में सफलता मिली है। जो मनमोहिनी रमणी मुनियों के मन को विचलित करने में समर्थ है, वही रमणी दोनों राजाओं के मन में कलह भी पैदा कर सकती है। इसमें अचरज की बात क्या है। षडयन्त्रकारियों का अभीष्ट सिद्ध हुआ। प्रेरित रमणी की चातुरी विमुग्ध छलना से दोनों राजाओं में गजकच्छप युद्ध छिड़ने की सूचना हुई। तब त्रिपुरा के महाराज प्रतीत, रमणी को लेकर हेड़म्ब राज त्याग कर खलंमा चले आये थे।(2)

नाना स्थान पर राजधानी प्रतिष्ठा काछाड़ पति ने ससैन्य पीछे से अनुसरण करने से इसी समय प्रतीत खलंमा की राजधानी त्यागकर धर्म नगर में एक नई राजधानी की स्थापना की थी। इसके बाद कैलाशहर वहाँ से कैलार गढ़(कस्बा) में राजधानी परिवर्तित हुई। कैलाशहर में दीर्घ काल तक राजधानी रही। उस प्रदेश में जो काताल और काकचाँद की आख्यायिका प्रचलित है, उसकी आलोचना से ज्ञात होता है कि भयानक दुर्भिक्ष से दोनों नगरी ध्वंस होने पर राजधानी के स्थानांतण करने की आवश्यकता आ पड़ी थी। इस कहानी को यहाँ पर देने की सुविधा नहीं हो सकी। इस टीका के अगले अंश में उसे सन्निविष्ट किया जायेगा।

....

(1)

ना रहिबो एथाते जाइबो अन्य स्थान।	नही रहूंगा यहां, जाऊँगा अन्य स्थान।
मन स्थिर कोरे जाइते ताहार उजान।।	मन स्थिर किया उपरी भाग में जाने का।।
अद्य कल्य जाइबो मने बासना ना त्यजे।	आज कल में जाएगें, मनोवासना न त्यागी।
सेई स्थाने कालबश होइलो महाराजे।।	उसी स्थान पर कालवश हुए महाराजा।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ

अर्थात ''मैं यहाँ नहीं रहकर दूसरी जगह चला जाँउगा ऊपर की ओर(नदी के उद्‌गम् की ओर जाना) जाने के लिए मनः स्थिर कर लिया। आजकल करते करते महाराज की वासना तो रह गई और अन्त में परलोक सिधार गये।

(2)

सुन्दरी देखिया राजा भुलियाछे मन।	सुन्दरी को देख राजा का भ्रमित हुआ मन।
खलंमार कुले आइसे त्रिपुर राजन।।	खलंमा तीरे आए त्रिपुर राजन।।
राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 48 पृ	राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 48 पृ

अर्थात सुन्दरी को देखकर राजा का मन उधर ही भटक गया। ''खलंमा'' के किनारे राजा आ गया।

प्रल–186

त्रिपुरा का राज पाट राज्य के उत्तरी अंश में(काछाड़ और श्रीहट्ट) जब था तो समय समय पर नाना जगहों पर गृह निर्माण के प्रमाण मिलते हैं। धर्म नगर विभाग के अन्तर्गत फटिक उली(फटि कुली) नाम के एक स्थान पर महाराज डांगर फा ने एक पुरी का निर्माण कराया था। श्रीहट्ट जिला के कानिहाटी परगना में प्रतापगढ़ के दक्षिण की ओर नागड़ा छडा के किनारे उस समय के धर्म नगर के विभाग के अन्तर्गत मानिक भण्डार और कल्याणपुर आदि स्थानों में अब भी राजबाड़ी(राजमहल) के भग्नावशेष एवं विस्तीर्ण राज पथ और जलाशय आदि प्राचीन समृद्धि के शेष चिन्ह अब भी दिखाई देते हैं एवं इन्हें त्रिपुरेश्वरों की कीर्ति कहकर अब भी लोग घोषणा करते है। मानिकभण्डार अंचल पहले कैलाशहर विभाग के अन्तर्गत था।

एक समय बरबक्र के दक्षिण किनारे पर सारा भूभाग त्रिपुरा राज्य के अन्तर्गत था। उस समय आधुनिक करीमगंज सब डिविजन के अधिकांश जगह त्रिपुरा के आधीन रहने

निम्नलिखित प्रमाण से जाना जाता है।

A Thousend years ago the KarimGunge Sub Division seems to have been included in the Tippera Kingdom

Allene's Assam Districts Gazetteers Vol. II (Shylhet) Chap II P- 22

उदयपुर का राज पाट — महाराज युझारु फा ने(नामांतर हिमती) रांगामाटी को जय करके नवविजित प्रदेश में एक राजधानी की स्थापना की। बाद में(उदयमाणिक्य के शासन काल में) इस जगह का नाम उदयपुर हुआ। यहाँ पर सुदीर्घ काल तक त्रिपुरा का राज पाट था। महाराज युझारु फा ने बंग देश के कुछ अंशों पर विजय प्राप्त कर विशालगढ़ में एक राजधानी स्थापित किया था। यहाँ पर त्रिपुरा का एक सेना निवास भी था।

डांगर फा द्वारा राज्यविभाजन — डांगर फा के शासन काल में उन्होनें अपने 17 पुत्रों में राज्य को विभाजित किया था। किन्तु यह विभाजन कार्यकर हुआ था या नहीं पता नहीं चलता। कार्य परिणीत होने पर भी यह व्यवस्था अधिक कालों तक स्थायी नहीं हो पाई। क्योंकि डांगर फा के जीवित काल में ही उनका कनिष्ठ पुत्र महाराज रत्नमाणिक्य ने गौड वाहिनी की सहायता से सत्रह भाईयों के साथ अपने पिता को युद्ध में पराजित करके सारा राज्य हथिया लिया था। उन्होनें अपने पैतृक राजधानी रांगामाटी में ही(उदयपुर) राजत्व किया था। पूर्वोक्त सत्रह विभागों के नाम हैं(1) राज नगर (2) काइचरंग (3) आचरंग

प्रल–187

(4) धर्म नगर (5) तारक स्थान (6) विशालगढ. (7) खूँटीमुडा (8) नाकीबाड़ी (9) अगरतल्ला(10) मधुग्राम (11) थानांचि (12) मुहुरी नदी तीर (13) लांउगांग (14) बराक का तीर (15) तैलाई रूंग (16) धोपा पायर (17) मणिपुर।

इसके द्वारा किसी किसी पहाड़ी स्थान को इस समय बता पाना भी दु:साध्य है। बहुत दिन पहले ही उन स्थानों का नाम बदल गया है। अधिकांश अभी तक पहले के नाम से ही परिचित हैं। उनका स्थान निर्णय करना कठिन नहीं है। जगहों का विवरण जहाँ तक संग्रह किया जा सका है। वह प्रदान किया जा रहा है।

राज्य विस्तार

महाराज त्रिलोचन के शासन काल में राज्य विस्तार –त्रिपुरेश्वरों के किरात भूमि में आने के पश्चात, उन्होंनें उत्तर की ओर से क्रमशः दक्षिण की ओर अपना राज्य विस्तार किया था। महाराज त्रिलोचन के शासन काल में सीमा विस्तार करने की चेष्टा प्रारम्भ हुई। उन्होनें काइफेंग, चाकमा, खुलंग, लंगाई, तनाउ, तैयंग, रियांग, थानांचि, प्रताप सिंह, लिका आदि पास पड़ोस के छोटे छोटे राज्यों पर विजय प्राप्त कर उनके अधिकृत जगहों को अपने राज्य में मिला लिया था। इनमें से किसी किसी ने बाद में त्रिपुरा के शासन को आमान्य करने के पश्चात उनके लांक्षित और विपन्न होने के बहुत से प्रमाण भी राजमाला में मिलते हैं।

महाराज त्रिलोचन के बाद के काल का विवरण त्रिलोचन के पुत्र महाराज दाक्षिण के शासन काल में बरबक्र नदी के उत्तर तटवर्ती भूखण्ड हेड़म्ब के कब्जे में होने से त्रिपुरा राज्य की सीमा कुछ छोटी हो गई थी। परवर्ती त्रिपुरेश्वर गणों ने इस क्षति के उद्धार के निमित्त विशेष चेष्टा की थी, ऐसा नहीं लगता। दक्षिण की ओर राज्य विस्तार करना ही उनका लक्ष्य था। लिका राज्य महाराज त्रिलोचन के द्वार विजित होने पर भी बाद में त्रिपुर राजा की वश्यता अस्वीकार करने पर महाराज युझारु फा ने पुनः उस राज्य को(रांगामाटी) जय करके वहाँ अपना राज पाट स्थापन किया था। इसके बाद महाराज युझारु फा ने बंग देश विजय के अभिलाषी होकर विशालगढ़ आदि स्थानों में अपना अधिपत्य स्थापन किया था। इसके द्वारा ही त्रिपुरेश्वरों का बंग देश के उपर हस्तक्षेप करने का सूत्रपात हुआ।

प्रल–188

त्रिपुरेश्वर के साथ गौडेश्वर का युद्ध इसके पश्चात् महाराज छें थुम फा और महारानी त्रिपुरासुन्दरी ने गौडेश्वर को पराजित कर मेहेरकुल पर कब्जा किया। इस युद्ध के फलस्वरूप मेघना के तीर तक त्रिपुरा राज्य की सीमा प्रसारित हुई थी। इनके शासन काल में या उसके कुछ ही दिनों के पश्चात चट्टगाँव में त्रिपुरा का शासनदण्ड चालू हो गया था। किन्तु थोड़े दिनों पश्चात ही प्रतापमाणिक्य के शासनकाल में वह पुनः मुसलमानों के कब्जे में चला गया। इस समय त्रिपुरा का अपार अर्थ एवं कुछ हाथी मुसलमानों के हाथ लगे थे।

त्रिपुरा पर्वत के हाथी का वर्णन प्रधानतः हाथियों के लिए ही त्रिपुरा के प्रति मुसलमानों की लोलुप दुष्टि पड़ी थी। भारत के अनेक स्थलों पर बहुत से हाथी मिलते हैं, किन्तु त्रिपुरा पर्वत के हाथी सबसे अधिक सुन्दर एवं हर मायने में श्रेष्ठ माने जाते हैं। अबुल फजल, मुगल सम्राट अकबर के पीलखाना के वर्णन प्रसंग में आईन–ई–अकबरी ग्रंथ में लिखते हैं – **The best elephants are those of Tipperah**(1)

प्रतापमाणिक्य के कनिष्ठ भ्राता मुकुटमाणिक्य ने आराकान राज मैंगदि को हाथी उपदौकन प्रदान द्वारा प्रसन्न किया था। उनके शासन काल में राज्य की सीमा के बारे में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ।

आत्म विरोध

गौड की सहायता ग्रहण महाराज रत्न फा ने(बाद में रत्नमाणिक्य) भ्राताओं को हटाकर पैतृक सिंहासन प्राप्त करने के लिए गौड की सहायता ली थी। इस अपरिणामदर्शिता के फलस्परूप त्रिपुरा की राजनीति में जो अवनति हुई थी, किसी भी समय उसे सुधारने का सुयोग नहीं हुआ। इस कार्य के लिए रत्नमाणिक्य पर दोषारोपण करना निरर्थक है। उनके पिता डागर फा को इस कार्य के लिए ही अनिष्ट का कारण समझना चाहिए। उनके कार्य का स्थूल मर्म यह है –

महाराज डांगर फा(नामांतर हरिराय) के अठारह पुत्र थे। अपने पुत्रों की बुद्धि परीक्षा करने के पश्चात उन्होनें समझा कि कनिष्ठ रत्न फा सबसे तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न हैं। भविष्य में वही सिंहासन का अधिकारी होगा।(2) किन्तु ज्येष्ठ को अतिक्रम करके

---

(1) **Gladwin's Ayeen Akbery Vol. I. P. 94**

(2) पुत्रों की परीक्षा विषयक विवरण डांगर फा खण्ड में दिया गया है।

कनिष्ठ को राज्याधिकार कौलिक प्रथा सम्मत नहीं है। इसलिए उन्होनें रत्न फा को राज्य में रखना ही उचित नहीं समझा। उसे प्रचुर अर्थ और सैन्य इत्यादि देकर गौड में ही प्रेरण किया। सम्भवतः भ्रात्‌विरोध के निवारण के उद्‌देश्य से ही एक मात्र ज्येष्ठ पुत्र को राज्य का अधिकारी नहीं करके रत्न फा छोड़ बाकी सत्रह पुत्रों में राज्य का विभाजन कर दिया। इस विभाजन के बारे में पूर्ण विवरण हम पहले ही दे चुके हैं। इस समय रत्न फा को राज्य भाग से वंचित नहीं करते तो शायद वे गौड की सहायता अभिलाषी नहीं होते।

रत्न फा के प्रति भातृवध का अपवाद रत्न फा अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर थोड़े समय में ही गौडेश्वर के प्रिय पात्र हो उठे। वे पिता और भ्राताओं को खदेड़ कर पैतृक राज्य को हस्तगत और पिता के असंगत कार्यो के उपयुक्त फल प्रदान करने के लिए गौडेश्वर से सहायता माँगी। गौडाधिप ने हष्ट चित्त से विपुलवाहिनी रत्न फा के देश में भेजा एवं गौड वाहिनी की सहायता से पिता को राज्यच्युत और भ्राताओं को अवरूद्ध करके रत्न फा सिंहासन पर बैठे। इससे मुसलमानों का बार बार त्रिपुरा आक्रमण का पथ प्रशस्त हो उठा था। इसके बाद राज परिवार में कलह उपस्थित होने पर ही दुर्बल पक्ष रत्न फा के सुगम पथ के अनुसरण से गौड की सहायता से राज्य में राष्ट्र पिल्लव का सूत्रपात करते थे। इस सुयोग से मुसलमानों ने पार्वत्य अपरिचित रास्ताओं को पहचान लिया था और त्रिपुरा के सामरिक बल की परीक्षा करने का सुअवसर प्राप्त किया था। गौड की सहायता से सिंहासन के अधिकारी त्रिपुरेश्वरों के दुर्बलता का उत्तरोत्तर बढ़ जाना स्वाभाविक एवं अनिवार्य हो उठी थी। इसका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। इसके फलस्वरूप त्रिपुरा के राजनैतिक गांभीर्य की भयानक क्षति हुई थी।

यहाँ पर एक बात कहने की है। जेम्स लांग (**Rev. James Long**) साहब ने 1850 ई0 सन्‌ में राजमाला का एक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया था।(1) उसमें उन्होनें लिखा है – **Returning with the aid of Mahammadan troops, he conquered the kingdom and the beheaded his brothers.**(2)

---

(1) **J.A.S.B. -Vol XIX**

(2) रत्न फा ने भ्राताओं को पकड़ कर लाने के समय रास्ते में जिस स्थान पर विशेष घटना घटी थी, उन सभी स्थानों का एक एक नामकरण हुआ था। इस प्रंसग के वर्णन उपलक्ष्य में

प्रल–190
अर्थात रत्न फा ने मुसलमान सैनिक बल के सहायता से राज्य जय करके अपने भ्राताओं का शिरच्छेद किया। कैलाश बाबू ने इसी उक्ति पर निर्भर करके लिखा है –भीषण संग्राम में महाराज राजा फा और अनुचरण निहत हुऐ।(1) भ्रातृ रूधिर से रंगे गए विजयी पताका को अनुरंजित कर महाराज रत्न फा ने त्रिपुर सिंहासन पर आरोहण किया।

विश्वकोष सम्पादक महोदय ने लिखा है – कुमार रत्न फा निष्कन्टक होने के लिए कुचक्री सप्तदस भ्राताओं का प्राण नाश करके राजा हुए।(2)

इन सभी ने लँग साहब के वाक्य को ही प्रतिध्वनि किया है। राजमाला में है, रत्न फा के राजधानी आक्रमण करने पर डांगर फा ने ससैन्य पलायन किया था। उस समय थानांचि पहाड़ी पर उनकी मृत्यु हुई। वे पुत्र द्वारा निहत हुए थे या मृत्यु का और कोई कारण था, इसका पता नहीं चलता। भ्राताओं को

....

राजमाला में है –

मुडा काटि राज भ्रातृ आने जेई स्थाने।	पर्वत श्रृंग काट राजभ्रातृ को लाया जिस स्थान।
समार कोरिया नाम बोले सर्ब जने।।	समार कहकर उसे कहते हैं सभी वहाँ।।
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 66 पृ	राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 66 पृ

अर्थात सिर काटकर राज भ्राताओं को वहाँ लाया गया। उस जगह को समार नाम से सभी जानते हैं।

यहाँ पर बंगला में मुडा काटि शब्द आया है। शायद लाँग साहब ने भाई का मुडा(मस्तक) काटा गया था कहकर इसका अर्थ लगाया था। इसके अतिरिक्त इस तरह की कल्पना करने का कोई आभास राजमाला में नहीं है। अगर हमारा यही अनुमान सत्य हो तो अंग्रेजों के यह त्रुटि मार्जनीय हो सकती है। किन्तु हमारे देश के इतिहासकारों ने साहबों की लेखनी को वेद वाक्य समझकर अनेक विभ्रांति मूलक उक्तियों को ग्रहणकर इतिहास की जो विकृति फैलाया है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यहाँ पर भी यही हुआ है।

त्रिपुरा अचंल में पर्वतों को छोटे छोटे श्रृंगों को मुडा कहते हैं। सोनामुडा, रांगामुडा और चन्डिमुडा साधारण उँचाई वाले पर्वत श्रृंगों के नाम हैं। पहाड़ी इलाके में अनेक स्थलों पर इस श्रेणी की मुडाओं को काटकर रास्ता निकाला जाता है। यहाँ पर भी वही हुआ था। इसलिए लिखा गया है। ''मुडा काटि राज भ्रातृ आने जेई स्थाने।'' यह मुडा शब्द मस्तक या सिर नहीं है। अभियान के समय पर्वत के श्रृगों को काटकर रास्ता निकालने का और एक दृष्टांत यहाँ पर दिया जा रहा है। महाराज कल्याणमाणिक्य की विपुल वाहिनी के आचरंग अभियान के उपलक्ष्य में लिख है।

गिरि नदी गुहा पथ, लंघिया जे महासत्त	गिरि नदी गुहा पथ, लाँध दिया राजा
पथ कोरे पर्वत काटिया	राह करे पर्वत को कर विदीर्ण
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड70पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड70पृ

अर्थात गिरि, नदी और गुहा के पथ को लाँघ कर पर्वत काटकर रास्ता बनाया था।

(2) कैलाश बाबू के राजमाला द्वितीय भाग द्वितीय अध्याय 31पृ।

(3) विश्वकोष आँठवा भाग 202पृ।

रत्न फा ने वध नहीं किया। उनको पकड़ कर अवरूद्ध किया था। उदाहण स्वरूप –

गड़ जिनि रांगामाटी छाड़ाइया लोइलो।	गढ़ जीत लिया रांगामाटी छुड़ाय।
डांगर फार सैन्य सब पर्वतेत गेलो।।	डांगर फा की सेना पर्वत गई पलाय।।
आरराज पुत्र सभे भंग दिलो ताय।	और राज पुत्रों ने रण भंग दिया वहाँ।
गौड सैन्य तार पाछे खेदाइया जाय।।	गौड सैन्य उन्हें खदेड़ती रही वहाँ।।
थानांचि पर्वते राजा डांगर फा मरिलो।	थानांचि पर्वत में जा डांगर फा मरे।
आर जतो राज पुत्र लडाइया धरिलो।।	और राज पुत्र लड़ते हुए गये पकड़े।।
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 66 पृ	राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 66 पृ

अर्थात ''गढ़ जीतकर रांगामाटी को छुड़ा लिया। डांगर फा की सारी सेनायें पर्वत पर चली गई। सभी राजपुत्रों ने उनका साथ छोड़ कर रण भंग कर दिया। गौड की सेनायें उनके पीछे उन्हें खदेडती हुई आगे बढ़ी। थानांचि पर्वत पर राजा डांगर फा की मृत्यु हुई और जितने राज पुत्र थे उन्हें लड़ाई में पकड़ लिया गया''

यहाँ पर भ्रातृ वध की कोई बात नहीं है। संस्कृत राजमाला में मिलता है डांगर फा की मृत्यु युद्ध में नहीं हुई थी। रोग ग्रस्त होकर उनकी मृत्यु हुई थी। जिन्होनें भाइयों को पाकर भी हत्या नहीं की, वे पितृ हन्ता होंगें? यह बात विश्वास योग्य नहीं है। किन्तु उनके प्रति अकारण भातृ हत्या का दोषारोप करना पूर्वोक्त व्यक्तियों के लिए नितान्त ही असंगत हुआ है। इन व्यक्तियों में विश्वकोष संकलिता ही सभी को परास्त कर रत्न फा के सिर पर सत्रह भ्राताओं के हत्या का पाप चढ़ा दिया है। त्रिपुरा के इतिहास की आलोचना करते हुए उन्हें और भी बहुत सी भित्तिहीन बातों की अवतारना करते हुए देखा गया है। यहाँ भी अत्यन्त दुःख का विषय है, यह कहना पड़ेगा।

रत्नमाणिक्य पितृ और भातृहंता न होने पर भी, पिता को राज्य से विताडित करके और भ्राताओं को अवरूद्ध कर राज्य प्राप्त किया था। यह बात सही है। महाराज डांगर फा ने अपने कार्यों द्वारा भ्राता विरोध की सृष्टि की थी एवं अपरिणाम दर्शिता फलस्वरूप स्वयं भी पुत्र के हाथों सम्राट शाहजहाँ की अवस्था प्राप्त हुए थे।

रत्न फा के सहायक गौडेश्वर रत्न फा के सहायक गौडेश्वर कौन थे? यह देखना आवश्यक है। कैलाश बाबू के अनुसार रत्न फा ने लक्षणावती के मालिक तुग्रल खाँ की सहायता प्राप्त की थी। उन्होनें कहा है, ''692 त्रिपुराब्द में(1201 ई0 सन्) भ्रातृ रूधिर से विजयी पताका अनुरंजित कर महाराज रत्न फा ने त्रिपुर सिंहासन आरोहण किया और मुसलमान इतिहास लेखकों ने इसे ही तुग्रल

द्वारा त्रिपुरा जय कर वर्णना किया है'' इस उक्ति के प्रमाण स्वरूप उन्होनें स्टुयार्ट की निम्न लिखित मन्तव्य का उल्लेख किया है – **In theYear 678 (1279 A.D.) he assembled a very numerous army, and invaded the country of Jagenagar (Tipprah). After having defeated the Raja in a general engagement, he plundered the inhabitants and brought away with him immense wealth and one hundered elephants."**

Stewart's History of Bengal P. 44.

यह उक्ति अभ्रांत नहीं है। महाराज रत्नमाणिक्य की मुद्रा आलोचना से ज्ञात होता है कि वे तुग्रल खाँ के शासनकाल के बहुत बाद राजा हुए थे। इस बारे में इसके बाद विशेष रूप से आलोचना की जायेगी। वह मुद्रा 1288 शकाब्द में(1366 ई0 सन्) निर्मित हुई थी। इसके द्वारा रत्नमाणिक्य के शासन काल का आभास मिलता है। किसी किसी के अनुसार रत्नमाणिक्य 1352 ई0 सन् में राजा हुए थे। तुग्रल खाँ 1279 ई0 सन् में बंगाल का शासन का दायित्व पाकर 1282 ई0 सन् तक उस पद पर प्रतिष्ठित रहे। अतएव, रत्नमाणिक्य के लिए उनकी सहायता लेना संभव नहीं हो सकता। तुग्रल खाँ द्वारा त्रिपुरा आक्रमण की बात सच होने पर वह रत्नमाणिक्य के शासन काल के पहले की घटना है।

इतिहास के आलोचना से जाना जाता है कि 1347 ई0 सन् से 1358 ई0 सन् तक सुल्तान सामसउद्दीन(शमसुद्दीन) बंगला के मसनद पर आसीन थे। इनके गौड के शासन भार अपनाने के कुछ दिनों के पश्चात जाजनगर(त्रिपुरा) आक्रमण करके त्रिपुरेश्वरों को बाध्य कर प्रभृत अर्थ और बहुत से हाथी भी ले जाने की बात इतिहास के पन्ने में आई है। समय के साथ सामंजस्य की समता की रक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यही सुल्तान सामसउद्दीन(शमसुद्दीन) ने ही रत्न फा(रत्नमाणिक्य) का पक्ष लेकर त्रिपुरा आक्रमण किया था।

इसी समय फा को ''माणिक्य'' उपाधि मिली। राजमाला में लिखा है –

रत्न फा नाम तार पिताये राखि छिलो।	रत्न फा नाम दिया पिता त्रिपुरेश्वर ने।
रत्नमाणिक्य ख्याति गौडेश्वरे दिलो।।	रत्नमाणिक्य ख्याति दी गौडेश्वर ने।।
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 67 पृ	राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 67 पृ

अर्थात ''रत्न फा नाम उनके पिता ने रखा था। और रत्नमाणिक्य की ख्याति उन्हें गौडेश्वर ने प्रदान की।''

इस बारे में विस्तृत विवरण स्थानांतर में दिया गया है। अतएव यहाँ पर अधिक आलोचना की आवश्यकता नहीं है।

प्रल–193

शासन तंत्र   प्राचीन काल में (मुसलमानों के साथ संश्रय होने के पहले) शासन प्रणाली कैसी थी? यह निर्णय करने का कोई साधन नहीं है। पात्र, मंत्री, सेना आदि कर्मचारियों के अति अल्प संख्या की पद के नाम ही पाये जाते हैं। उस समय संभवतः शासन और विचार दोनों तरह के कार्य इन्ही के द्वारा परिचालित होता था।(1) सेनापति सैनिक विभाग के मुख्य थे। दूसरे विभागों की खोज खबर न मिलने पर भी सामरिक विभाग जो विशेष शक्तिशाली था, उसके निदर्शन राजमाला में भरे पड़े हैं। इसके पहले इस विषय में कुछ परिचय प्रदान किया गया है। इस समय शासन तंत्र सम्पूर्ण रूप से सेनापतियों के हाथों में था। वे ही पात्र, मंत्री आदि शासन विभाग के प्रधान पदों पर अधिकार बनाये रखते थे।

राजकर   राजकर किस नियम से ग्रहण किया जाता था? उसे भी जानने का कोई सूत्र नहीं मिल रहा है। पहाड़ी प्रजायें उनके हाथों बनाये गये नाना तरह के कपड़े, पीज, लोहा और काँसे के निर्मित विविध वस्तुओं गजदन्त, मृग और भैंसें आदि के श्रृंग, घोड़े और बकरे आदि के पर्वत सुलभ कुछ चीजे एवं विविध वन जंतु हर साल राजकर स्वरूप प्रदान किया जाता थे – इसके प्रमाण हैं। कोई कोई सम्प्रदाय कर के बदले सरकारी निर्दिष्ट कार्य निर्वाह करते थे। समतल भूमि के करग्रहण करने की प्रणाली क्या थी? इसकी जानकारी मिली नही मिली है, फिर भी राज्य कर बहुत कम था, इसमें संदेह नही।

बंगाली उपनिवेश   महाराज बंग के समय त्रिपुरा में बंगाली उपनिवेश स्थापना का सूत्रपात हुआ।(2) इसके पश्चात महाराज रत्नमाणिक्य के समय बंग देश से नाना जाति बहु संख्यक लोगों को लाकर राज्य में बसाया गया था। उन्होनें गौडेश्वर के अनुमति से दस हजार घर बंगाली प्रजा लाकर बसाया था। इनमें कुछ सज्जन व्यक्ति भी थे। रत्नमाणिक्य खण्ड में इस बारे में विस्तारपूर्वक विवरण मिलेगा। यह साढे पाँच सौ साल पहले की घटना है।

---

(1) राजमाला में है। ''नीतिये पालित राज्य पात्र मित्र गण।''
अर्थात निति पूर्वक राज्य का पालन पात्र, मित्र गण मिलकर करते थे।''

(2)

तान पुत्र होइलेक बंग महाराजा।	उनके पुत्र हुए बंग महाराजा।
आपनार नामें राजा स्थापिलेक प्रजा।।	अपने नाम से राजा ने बनाया प्रजा।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 46 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 46 पृ

अर्थात ''उनके पुत्र बंग महाराजा हुए और अपने राजा ने प्रजाओं को बसाया।''

प्रल–194

यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना संगत जान पड़ रहा है। रत्नमाणिक्य के लक्षणावती में रहते समय तीन बंगाली सज्जनों से उनका परिचय हुआ। उनमें एक चिकित्सा व्यवसाय करने वाले वैद्य वंश के धन्वंतरी गोत्र के जय नारायण सेन थे, दूसरे दो लोग कायस्थ थे। उनमें एक दक्षिण राढ़ी घोष वंश के थे। नाम था ''बड खण्डव घोष''। दूसरे का नाम था पण्डित राज। महाराज रत्नमाणिक्य राज दण्ड ग्रहण के पश्चात इन तीनों व्यक्तियों को स्वराज्य में ले आये थे। बड खण्डव घोष का आदि निवास राढ़ देश के अन्तर्गत रांगामाटी नाम के स्थान पर था(1)। ऊपर दो व्यक्तियों का आदि हम नहीं जानते। उन्होनें पहले आधुनिक सराइल परगना के अधीन कालीकच्छ ग्राम में अपना निवास निर्माण किया था। इसके बाद राजधानी के परिवर्तन के साथ उन्हे भी अपनी निवास भूमि बदलनी पड़ी थी। इन्होंनें मुसलमानों के अनुकरण कर त्रिपुरा की शासन प्रणाली का प्रर्वत्तन किया था। त्रिपुरेश्वर के विश्वस्त कर्मचारी होने से उन्हें ''विश्वास'' उपाधि दी गई थी। तीष्णा परगना के अन्तर्गत वातिसा निवासी वैद्य गणों को इस समय राज चिकित्सा पद मिला था।

प्रवाद के अनुसार, महाराज रत्नमाणिक्य के समय एक दल ब्राह्मण त्रिपुरा में आगमन पूर्वक वहाँ के प्राचीन ब्राह्मणों हराकर राजकीय पुरोहित का पद सँभाला। तलाबायेक और कालियाजुरी आदि स्थानों में अब भी उनके वंशज हैं।

राजाओं का काल निर्णय

महाराज त्रिपुर, ईश्वर फा, चन्द्रशेखर, युझारु फा, डुंगुर फा, कीर्तिधर, रत्नमाणिक्य, प्रतापमाणिक्य आदि राजाओं का कालज्ञापक विवरण

प्राचीन त्रिपुर भूपतिवृन्द के शासन काल का निर्धारण करना नितान्त ही कष्टकर विषय में बदल गया है। महाराज त्रिपुर और उनके आत्मज त्रिलोचन सम्राट युधिष्ठिर के समकालीन निर्णीत होने से इसकी प्राचीनता पाँच हजार साल से

(1) रांगामाटी मुर्शिदाबाद से बारह मील दक्षिण में गंगा के पश्चिम तीर पर स्थित है। इसका दूसरा नाम ''कर्ण सोना'' या ''कर्ण सेन पुरी'' है। प्रवाद के अनुसार प्राचीन काल में यहाँ ''कर्ण सेन'' नाम के नरपति की राजधानी थी। फार्गुसन के अनुसार यह स्थान हियेन् सांग(हुएनसांग) की लिखित ''किरण सुवर्ण'' नगरी अभिन्न है। कप्तान लेयर्ड ने इस रांगामाटी का पुरातत्व एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रचार किया है।

(J.A.S. Bengal Vol. XXII. P.P 281-282)

प्रल–195

अधिक माना गया है। किंतु इसके अविर्भाव काल, उनका सिंहासन रोहण करने का शकांक निर्णय करना असाध्य है। महाराज त्रिलोचन ने एक महीने की उम्र में सिंहासनरूढ़ होकर 120 सालों तक राज्य किया था।(1) त्रिलोचन के पुत्र दाक्षिण का विवरण राजमाला में यत् किंचित मात्र मिलने पर भी उनके शासन के निर्णय उपयोगी कोई भी बात उसमें नहीं है। दाक्षिण के पश्चात् तैदाक्षिण से कीर्ति(नामांतर नवराज या नवराय) तक 69 राजाओं का विशेष विवरण नहीं मिलता है। इसमें 73 संख्यक राजा नील ध्वज(नामांतर ईश्वर फा) 84 साल(2) एवं 77 संख्यक राजा चन्द्रशेखर(नामांतर माइंचुं फा) 59 सालों(3) तक राज्य भोग किया था। राजमाला और श्रेणीमाला की आलोचना से बस इतना ही विवरण जाना गया है। त्रिपुर सिंहासन 118 संख्यक राजा हिमती(नामांतर युझारु फा) त्रिपुराब्द के प्रवर्तक हैं। अतएव उनके साढ़े तेरह सौ साल पहले राजत्व किया था – यह निर्धारण किया जा सकता है। इस हिमती के पहले एवं पूर्व कथित महाराज चन्द्रशेखर के परवर्ती 40 राजाओं का काल निर्णय का कोई निदर्शन नहीं मिल रहा है। महाराज हिमती के परवर्ती चौथे महाराज कीरिट(नामांतर डुंगुर फा या हरिराय) 51 त्रिपुराब्द में एवं उनके अधस्तन 17 महाराज धर्मधर(नामांतर छेंका छाग) 604 त्रिपुराब्द में यज्ञ सम्पादन किया था। उनके प्रदत्त ताम्र शासन द्वारा यह प्रमाणित होता है। अतएव, उन लोगों के शासन काल का एक मामूली निदर्शन मिल रहा है। शेषोक्त यज्ञ कर्ता धर्मधर के पुत्र महाराज कीर्तिधर ने(नामांतर छेंथुम फा या सिंह तुंग फा) राज महिषी त्रिपुरासुन्दरी देवी के उत्साह से 650 त्रिपुराब्द में गौड के साथ युद्ध किया था। इससे उनके शासन काल निदर्शन मिलता है, किन्तु इनमें कौन राजा, किस सन् से शुरू करके कितने सालों तक राजत्व किया था इसे ज्ञात करने का कोई उपाय नहीं है।

---

(1) विंशाधिकसतं वर्षं राज्यं भुक्ता त्रिलोचनः (संस्कृत राजमाला।)

(2) ईश्वर फा नामे होइलो नन्दन ताहार।
कोरिलो चौरासी वर्ष राज्य अधिकार।। श्रेणी माला और राजमाला।

अर्थात – ''ईश्वर फा नाम का उन्हें एक पुत्र हुआ। चौरासी वर्ष तक राज्य शासन किया।''

(3) माइंचुं नामे राजा जन्मे तखन घरे।
उनसठ वर्ष से जे राज्य भोग कोरे।। श्रेणीमाला और राजमाला।

अर्थात – माइंचुं फा का राजा उनके घर जन्मा, जिसने उनसठ सालों तक राज्य शासन किया।

प्रल–196

कीर्तिधर के परिवर्ती, राज्य सूर्य से राजा फा तक चार राजाओं का राज्यांक नहीं मिल रहा है। राजा फा के पुत्र रत्न फा(बाद में रत्नमाणिक्य) के राज्यांक के विषय में मतभेद दृष्टिगोचर होता है। कैलाश बाबू के अनुसार इन्होनें 692 त्रिपुराब्द में(1282 ई0 सन्) सिंहासन पर आरोहण किया था। चाकला रोशनाबाद के सेटेलमेंट ऑफिसर मिस्टर कमिंग **(J.G.Cumming, ICS)** साहब के अनुसार रत्नमाणिक्य का राजत्व काल 1279 से लेकर 1323 ई0 सन् तक 44 साल है। परलोकगत सेंडिस साहब ने **(E.F.Sandy's)** उनके लिखित **History of Tripura** नामक ग्रन्थ में उसी मत का समर्थन किया है। इसका कोई अंक ही विशुद्ध नहीं है। महाराज रत्नमाणिक्य का 1288 शकाब्द्ध की(1366 ई0 सन्) उत्कीर्ण दो मुद्रायें मिली हैं। अतएव 1366 ई0 सन् में वे जीवित थे एवं राजपद पर आसीन थे। यह निःसन्देह रूप से प्रमाणित हो रहा है, क्योंकि सिंहासन पर अधिष्ठित न होने पर उनके नाम की मुद्रा तैयार नहीं होती। किन्तु उनके राज्यभिषेक और परलोक गमन का समय निर्धारण करने का कोई सुविधा नहीं है।

रत्नमाणिक्य स्वर्गगामी होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रतापमाणिक्य सिंहासन पर बैठे थे। वे अधार्मिक और अत्याचारी थे। इसलिए थोड़े दिनों के पश्चात सेनापतियों ने उनकी हत्या कर दी। प्रतापमाणिक्य के अपुत्रक होने से उनके कनिष्ठ भ्राता मुकुटमाणिक्य और मुकुटमाणिक्य के बाद उनके पुत्र महामाणिक्य सिंहासन पर बैठे। इनके किसी का भी शासन काल निर्धारण करने का कोई उपाय नहीं है। प्रतापमाणिक्य से महामाणिक्य तक, तीन राजाओं ने 1430 ई0 सन् तक शासन दण्ड की परिचालना की थी। मामूली तौर से मात्र यही समय निर्धारण किया जा सकता है। महामाणिक्य राजमाला प्रथम लहर के अन्तर्गत शेष राजा थे।

प्रल—197

त्रिपुराब्द

त्रिपुराब्द व बंगाब्द में पार्थक्य त्रिपुरा राज्य में एक स्वतन्त्र सन् प्रचलित है। उसे त्रिपुरा सन् या त्रिपुराब्द से जाना जाता है। वर्तमान 1332 बंगला सन् होने पर 1335 त्रिपुराब्द होगा अतः केवल बंगला सन् से तीन वर्ष आगे का फर्क होता है। 590 ई0 सन् में यह सन् प्रचलित हुआ था।

त्रिपुराब्द के विषय में विद्याविनोद का मत त्रिपुराब्द के प्रर्वतक कौन हैं। इस बारे में भिन्न भिन्न व्यक्तियों के भिन्न मत हैं। पूज्यपाद श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय ने महाराज आदि धर्म पाल के ताम्र शासन की आलोचना करके कहा है —

"इस सनन्द से त्रिपुरा सन प्रर्वतन का समय कुछ माने में समझ में आता है। आज तक अनेक अनुसंधान से भी निर्णय नहीं किया गया कि त्रिपुरा सन् के प्रवर्तक कौन थे। किसी किसी के मतानुसार वीरराज त्रिपुरा सन् के प्रर्वतक हैं। वीरराज त्रिलोचन से गणना में उन्नीसवें राजा हैं। किन्तु त्रिपुरा से सप्तम् राजा धर्म पाल प्रदत्त सनन्द में जब 51 त्रिपुराब्द का उल्लेख है, तब वीरराज के समय सन् प्रवर्तन की बात किसी तरह भी संभव नहीं हो सकती। मेरा अनुमान है, महाराज धर्म पाल के पूर्ववर्ती सातवें राजा त्रिपुरा के समय से त्रिपुरा सन् आरम्भ हुआ अथवा त्रिपुरा के पुत्र महाराज त्रिलोचन ने पिता के नाम से या राज्य के नाम से सन् प्रर्वतन किया। त्रिलोचन एक असीम प्रतापशाली राजा थे। उनके द्वारा ही त्रिपुरा सन् प्रर्वतन ही सर्वथा संभावित है।"

श्री श्रीयुत का कैलाशहर भ्रमण, 38पृ

असल में यह निर्णय करना असंभव है। सनन्द दाता महाराज धर्मधर या धर्मपाल त्रिपुर के अधस्तन सप्तम पुरुष नहीं है। महाराज त्रिपुर अथवा त्रिलोचन द्वारा त्रिपुराब्द प्रवर्तित होना जो असंभव है, पुरुषानुक्रम की गणना से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस समय 1335 त्रिपुराब्द चल रहा है।(लेखक जब इस ग्रंथ की रचना कर रहे थे। उस समय त्रिपुराब्द 1335 था)। वर्तमान त्रिपुरेश्वर महाराज त्रिपुर के 139 अधस्तन पुरुष है। अतएव त्रिपुर या उनके लड़के त्रिलोचन को त्रिपुराब्द का प्रवर्तक मान लेने से प्रति पुरुष के औसतन कुछ कम या अधिक नौ साल पड़ेगा। साधारण नियमानुसार प्रति पुरुष 33 साल के हिसाब से काल गणना होती है। त्रिपुर भूपति वृन्दों के काल निर्णय के उपलक्ष्य में नाना कारणों से यह नियम सम्पूर्ण लागू न होने पर भी नौ सालों में एक एक पुरुष की गणना

संगत नहीं हो सकती और यह हिसाब भी विशुद्ध कहकर स्वीकार्य भी नहीं है। विशेषतः महाराज त्रिपुर ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शामिल होने के लिए हस्तिना गमन की कथा संस्कृत राजमाला में भी पाई जाती है।(1) इसके पश्चात महाराज त्रिलोचन की सुख्याति सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें भी हस्तिना में बुलाया था। यह भी राजमाला में देखने को मिलता है।(2)

राजमाला के इस मत के विरूद्ध वादियों का कोई अभाव नहीं है। यह महाभारत आदि प्रमाणित ग्रंथों की सहायता से इसके पहले राजमाला के मत के समर्थन में यथोचित चेष्टा की गई है। यहाँ उनकी पुनरावृत्ति करना निष्प्रयोजन है।(3)

ऊपर जिनका उद्धरण किया गया है, उससे यह ज्ञात होगा कि त्रिपुर एवं त्रिलोचन दोनों ही युधिष्ठिर के समकालीन राजा थे। युधिष्ठिर के काल निर्णय को लेकर अब तक नाना व्यक्तियों द्वारा जो आन्दोलन हुआ है। वह परस्पर मत विरूद्ध होने पर भी सभी के अनुसार युधिष्ठिर का काल निर्णय कुछ कम साढे चार हजार वर्ष निर्णित हुआ है। प्रकृत पक्ष में उनका प्राचीनत्व पाँच हजार वर्ष से भी कुछ अधिक है। क्योंकि वे द्वापर के अन्तिम समय के राजा थे। अतएव उनके समकालीन महाराज त्रिपुर और महाराज त्रिलोचन त्रिपुराब्द के प्रर्वतक नहीं हो सकते। जिस अब्द की चतुर्दशसदी मात्र चल रही है। उसके पांच हजार साल पहले प्रचलित होने की बात असंभव सी है। अतएव यह मत ग्रहण नहीं किया जा सकता।

वीरराज सम्बन्धी प्रचलित मत त्रिपुरेश्वर वीरराज ने बंग देश पर विजय प्राप्त करके उस विजय के स्मृति रक्षार्थ त्रिपुराब्द का प्रचलन किया था। त्रिपुर राज्य में यही प्रचलित मत ही सबसे अधिक प्रबल है। किसी किसी पॉलिटिकल ऐजेंट भी इस मत का समर्थन करते है। इतिहासकार **Sir Roper Lethbridge** भी इसी मत के पक्षपाती हैं।

---

(1) द्रुहयुराज सुतो जात त्रिपुराख्यो महाबलः।
तमोगुण समायुक्तः सर्व दैवातिगर्बितः।।
युधिष्ठिरस्य यज्ञार्थे सहदेवेन निर्जितः।।
राजसूये स गतवान् युधिष्ठिर समादृतः।। —संस्कृत राजमाला।

(2) त्रिलोचनस्य सुख्यातिं श्रृत्वा राजा युधिष्ठिरः।
इन्द्रप्रस्थं नीनायैनं तत् सौन्दर्य दिदृक्षया।। —संस्कृत राजमाला।

बंगला राजमाला में भी इस वाक्य का उल्लेख है।

एईमते त्रिलोचन गेलो अग्निकोने। राजा युधिष्ठर देखा कराये भीमसेने।।	इस तरह त्रिलोचन गये अग्निकोण। राजा युधिष्ठिर से मिलाये भीम सेन।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 33पृ

अर्थात इस तरह महाराज अग्नि कोण की ओर गए। भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर से इन्हें मिलवाया।

(4) राजसूय यज्ञ में त्रिपुरेश्वर शीर्षक आख्यायिका देखिये। 161पृ

प्रल–199

उनकी रचित **'The Golden Book of India'** नामक ग्रंथ में लिखा है –

"Eighty eighth in descend from Chandra was Rajah Biraraj, who introduced the Tippera Era, used in the Rajmala or Chronicles of the kings of Tipperah."

अर्थात "चन्द्र के अधस्तन 88 स्थानीय त्रिपुरेश्वर वीरराज द्वारा राजमाला में व्यवहृत त्रिपुरा प्रचलित हुआ है।"

इतिहास की आलोचना से त्रिपुर राजवंश में दो वीरराज का अस्तित्व मिलता है। एक तो महाराज त्रिपुर के अधस्तन 19 हैं और दूसरे महाराज त्रिपुर के 42 अधस्तन हैं। दोनों ने ही सिंहासन प्राप्त किया था। प्राचीन प्रवाद इनमें से किस व्यक्ति पर आरोहित हुआ है, जानने का कोई साधन नहीं है। **Leth bridge**(लेथ ब्रीज) साहब ने वीरराज को चन्द्र से अधस्तन 88 कहा है। यही त्रिपुर से अधस्तन पर राजा है। अतएव लेथ ब्रीज के अनुसार द्वितीय वीरराज हामराज के पुत्र हैं। इन्होंनें युद्ध क्षेत्र में प्राण त्याग किया था। इस बारे में राजमाला में है–

हामराज तार पुत्र भालो राजा होइलो।	हामराज पुत्र उनके बने राजा अति सुसज्जन।
तान पुत्र बीरराज युद्ध कोरि मोइलो।।	उनके पुत्र वीरराज ने रण में किया मृत्यु वरण।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 39पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 39पृ

अर्थात हामराज उनके पुत्र अच्छे राजा हुए और उनके पुत्र वीरराज ने युद्ध करके प्राण त्याग किया।

संस्कृत राजमाला में वीरराज का नामोल्लेख हुआ है। यथा –

हामराजस्य तनयो वीरराजो महिपतिः।

प्रथम वीरराज के बारे में इसके अतिरिक्त कोई बात नहीं पाई जा रही है। द्वितीय वीरराज गजेश्वर के पुत्र थे। राजमाला में इनके नामोल्लेख के अतिरिक्त और कोई कथा नहीं मिलती –

गजेश्वर नामे छिल नृपति नन्दन।	गजेश्वर नाम का था भूपति नन्दन।
पालिलो अनेक काल राज्य प्रजागन।।	पाला अनेक काल राज्य प्रजागण।।
बीरराज हईल तान घरे एक सुत।।	बीरराज हुआ उसके घर एक सुत।।
तान पुत्र नागपति बहु गुणयुत।	उसका पुत्र नागपति बहु गुणयुत।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 40पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 40पृ

अर्थात –"राजा के लड़के का नाम था गजेश्वर इन्होनें बहुत दिनों तक राज्य को और प्रजाओं का पालन पोषण किया, वीरराज नाम के एक लड़का हुआ और बहुत गुण युक्त नागपति नाम का उनका पुत्र हुआ।"

संस्कृत राजमाला में इनका नाम वीरराज की जगह "विराज" लिखा गया है। यहाँ भी भिन्न नाम के अतिरिक्त और कोई विवरण नहीं दिया गया। यथा –

गजेश्वरस्य तनयो विराज इतिविश्रुत।।

प्रल–200
अब देखा जा रहा है कि प्रथम वीरराज युद्ध में मारे गये थे। द्वितीय वीरराज का कोई विवरण राजमाला में नहीं है। जन श्रुतियों के आधार पर बंग देश विजय के स्मृति रक्षार्थ त्रिपुरा सन् प्रचलित हुआ था। किन्तु इन दिनों में कोई बंग विजेता नहीं है। खासतौर से पूर्वक नियम से काल गणना करने से इनमें से कोई भी त्रिपुराब्द के प्रर्वतक कहकर गण्य नहीं हो सकते। प्रथम वीरराज को त्रिपुरा सन् का प्रर्वतक मान लेने से प्रति पुरुष औसतन ग्यारह साल एवं द्वितीय वीरराज से हर पुरुष चौदह वर्ष पड़ता है। पुरूषानुक्रमिक काल गणना के नियमानुसार यह ग्रहणीय नहीं हो सकते अतएव, यह मत भी त्याज्य है।

कैलाश चन्द्र सिंह महाशय मत — उनकी संगृहीत राजमाला में इस बारे में लिखा है–

"जन श्रुति के अनुसार किसी प्राचीन नरपति ने दिग्वजय के उद्‌देश्य से गंगा के पश्चिम किनारे विजय वैजयंती पताका फहराकर उस घटना को चिरस्मरणीय करने के लिए एक अब्द का प्रचलन किया इसे ही इस समय त्रिपुराब्द के नाम से जाना जाता है।"

–कैलाश बाबू की राजमाला, दूसरा भाग, प्रथम अध्याय 9पृ

कैलाश बाबू ने अब्द प्रर्वतक का नाम नहीं बताया। द्रुहयु द्वारा सगरद्वीप में राज पाट स्थापना की बात मिलने पर बाद में वह स्थान परित्यक्त हो गया था। बाद के इतिहासों में पाया जाता है कि महाराज विजयमाणिक्य ने गंगा के तीर तक राज्य जय किया था। इसके पहले त्रिपुर वाहिनी द्वारा बंग विजय होने पर भी और किसी को यहाँ तक आगे बढ़ते देखा नहीं गया। विजयमाणिक्य के शासनकाल के बहुत पहले ही त्रिपुराब्द प्रचलित हुआ था। अतएव कैलाश बाबू का अभिमत भी ग्रहणीय नहीं है। स्पष्टतः प्रथम बंग विजेता को ही अब्द का प्रर्वतक कहा जाता है। गंगा तीर तक विजय के साथ जन श्रुति से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं है।

परेश नाथ बन्दोपाध्याय का मत — इतिहासकार परेश नाथ बन्दोपाध्याय ने त्रिपुराब्द के प्रचलन विषयक आलोचना के द्वारा उन्होनें स्वतन्त्र एक मत का प्रचार किया है। उन्होनें कहा है – 590 ई0 सन् में त्रिपुराब्द का प्रारंभ हुआ। सम्भवतः कम्बोजों ने त्रिपुरा आक्रमण और विजय प्राप्त कर इस अब्द का प्रचलन किया है।

बंगला का पुरावृत्त।

प्रल—201

इस मत का भी समर्थन नहीं किया जा सकता। कम्बोजों के त्रिपुरा आक्रमण की बात त्रिपुरा इतिवृत्त के अगोचर है। मघों के द्वारा इस राज्य के आक्रांत होने के प्रमाण हैं। इसके अलावा पुर्त्तगाली जल दस्यु समय समय पर आते थे। कम्बोज एवं मघ अथवा पुर्त्तगाल एक नहीं है। यहाँ पर इस बारे में दो चार बातें कर लेना आवश्यक है।

दो कम्बोज देश के अवस्थान विषयक विवरण प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। शक्ति संगम ग्रंथ में लिखा है —

पांचाल देशमारभ्य म्लेच्छाद्दक्षिण पूर्वतः।
कम्बोज देश देवेशि वाजिराशि परायणः।।

अर्थात ''पांचाल देश से लेकर म्लेच्छ देश के दक्षिण पूर्व तक कम्बोज देश है। यहाँ पर बहुत से घोड़े उत्पन्न होते हैं।''

इस बारे में महा कवि कालीदास का मत कुछ स्वतंत्र है। उन्होनें कहा है —

विनिताध्वश्रामस्तस्य सिंधुतीर विचेष्टनैः।
तत्र हुणावरोधानां भर्त्रुषु व्यक्तविक्रमम्।।
कम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्य मनीश्वराः।
गजालान परिक्लिष्टै रक्षोटैः सार्द्धमानताः।।
तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुगां द्रविणः राशयः।
उपदा बिबिशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्।।
ततो गौरीगुरूं शैलमारूरोहाश्व साधनः।

— रधुवंश चतुर्थ सर्ग।

ममार्थ — ''महाराज रघु ने पारसीक, सिंधु नद तीर वासी एवं हुनों को पराजित करके कम्बोज देश के राजाओं को पराजित किया। कम्बोजों ने उनके यहाँ अवनत होकर उत्कृष्ठ अश्व और बहुत से सुवर्ण उन्हें भेंट प्रदान किया। इसके बाद रघु ने अश्व की सहायता से गौरीगुरू पर्वत पर आरोहण किया।''

गौरीगुरू पर्वत के बारे में मतभेद है। मल्लिनाथ के अनुसार हिमालय और गौरीगुरू अभिन्न हैं। पाश्चात्य भुगोलविद् टलेमी, गोरिया**(Goryaia)**

नाम के एक जनपद का उल्लेख किया है।(1) इस जनपद की छाती को चीरकर गौर नदी ने काबुल नदी में आत्मसर्मपण किया है। ऋकसंहिता और महाभारत में यह नदी(गौरी नदी) के नाम से अभिहित हुई है। इस नदी तट की पर्वत माला टलेमी के मतानुसार ''गोरिया'' नाम से आख्यायित है। किसी किसी के अनुसार कालीदास ने इसी पर्वत श्रृखंला को गौरी गुरू नाम से उल्लेख किया है। इन सभी मतों का मुल्याकंन करना दुरुह है, और यहाँ उसकी आलोचना की कोई आवश्यकता नहीं है। रघुवंश के अनुसार वर्तमान सिंधु और लन्डई नदी के पूर्वांश में कम्बोज का अवस्थान निर्णित हुआ है। इससे कम्बोजों के द्वारा त्रिपुरा आक्रमण की संभावना अति विरल है।

और एक कम्बोज देश का अस्तित्व पाया जाता है। इसका नामान्तर कम्बोडिया है। लेयस(लाओस) के दक्षिण में, कोचीन चीन के पश्चिम में, श्याम उप सागर और चीन सागर के उत्तर में एव श्याम देश के पूर्व में है। इस चतुः सीमा के मध्यवर्ती भूभाग कम्बोज या कम्बोडिया अन्तर्गत है। कोई कोई इस प्रदेश को ब्रह्माण्ड पुराणोक्त अंगद्वीप भी कहते हैं। इस प्रदेश से प्राप्त शिलालिपि से जाना जाता है कि कम्बोज देश श्याम देश से आनाम के दक्षिणांश तक फैला हुआ था। यहाँ के किसी किसी शिलालिपि में किरात जाति का उल्लेख मिलता है। इस सूत्र के आधार पर बहुतों का अनुमान है कि किरात और कम्बोज गण अभिन्न हैं। वे लोग परेश बाबू के लिखित ''कम्बोज'' शब्द को लेकर किरात जाति के ओर ही वे अपनी उँगली से संकेत करना चाहते हैं। और एक सम्प्रदाय का अनुमान है कि किरात लोग उस देश के आदिम आदिवासी हैं। और पूर्वोक्त कम्बोज लोगों ने उन पर विजय प्राप्त कर वहाँ पर राज्य की स्थापना की। इन सभी अनुमानों के आधार कहाँ हैं, ज्ञात नहीं । जानने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि परेश बाबू के कथित कम्बोज द्वारा त्रिपुरा विजय की क्या किसी इतिहास में नहीं मिल रही है। अतएव, कम्बोजी लोग जहाँ रहे और जिस जाति के हों, त्रिपुरा के साथ उनकी संघर्ष होने की बात विश्वास योग्य नहीं है। अगर तर्क के खातिर परेश बाबू की उक्ति मान भी ले तो कम्बोंजियों के द्वारा त्रिपुराब्द प्रचलन युक्त समर्थन नहीं की जा सकती वे इतिहास की नजरों में धूल झोंककर उन्होनें त्रिपुरा पर विजय प्राप्त किया था। यह स्वीकार कर लेने पर भी किसी दिन उस राज्य में अधिपत्य की स्थापना नहीं कर सके। इतिहासकारों को निर्विवाद से यह बात स्वीकार करनी ही होगी। यहाँ पर त्रिपुरा राज्य में कम्बोजियों द्वारा विजय के निदर्शन

....

(1) **Ptolemy, Bk VII Ch. I.**

स्वरूप अब्द प्रचलित हुआ था, एवं विजेता के द्वारा प्रचलित अब्द को ग्रहण करके उस समय के दोर्दण्ड प्रतापी त्रिपुरेश्वरगणो ने अपने पराजय की घटना को चिरस्मरणीय किया था, यह बात नितान्त ही अयौक्तिक एवं अद्भुत धारणा है। यह धारणा पोषण करना सबके लिए संभव नहीं हो सकती।

विश्वकोष संकलियता मत विश्वकोष संकलियता प्राच्य विद्यार्णव महाशय ने और एक नया मत व्यक्त किया है। उन्होनें कहा है –

''1862 ई0 सन् में महाराज ईशान चन्दमाणिक्य की मृत्यु हुई, उस समय त्रिपुराब्द 1272 था। अतएव ई0 सन् और त्रिपुराब्द में 590 साल का अन्तर है। अतएव ई0 सन् 682 में त्रिपुराब्द प्रथम प्रचलित हुआ था। इससे ईशान चन्द के मृत्यु काल से 1180 साल पहले त्रिपुराब्द प्रथम प्रचलित हुआ था। 1180 सालों में 35/36 पुरुष गिना जा सकता है। अगर ये ऐसा हो तो महाराज शिवराज या देवराज के समय त्रिपुराब्द प्रचलित हुआ होगा।''

विश्वकोष आठवाँ भाग 202पृ

यहाँ एक अनुमान मात्र है। पहले ही कहा गया है, बंग विजय के स्मृति चिन्ह स्वरूप त्रिपुराब्द का प्रचलन हुआ था। शिवराज या देवराज द्वारा बंग विजय होने का कोई निदर्शन इतिहासों में नहीं है, अथवा इनके द्वारा अन्य कोई भी ऐसा उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ, जिसकी स्मृति रक्षार्थ एक नया अब्द का प्रचलन संभव हो सके। विशेषतः महाराज ईशान चन्द्रमाणिक्य के उद्धृतन 35/36 पुरुषों का नाम शिवराज या देवराज नहीं है। वे उस महाराजा से 62/63 उर्ध्व पुरुष थे। अतएव, विश्वकोष का निर्धारण जो प्रमादपूर्ण है। यह अति सहज ही हृदयगंम होगा। ई0 सन् 682 में त्रिपुराब्द के प्रचलन होने की बात भी अभ्रान्त नहीं है। पहले ही कहा गया है कि त्रिपुराब्द का प्रचलन 590 ई0 सन् से त्रिपुराब्द आरंभ हुआ है।

महाराज प्रतीत सम्बन्धी मत पुनः किसी किसी का कहना है कि महाराज प्रतीत ने ही पहले बंग में आगमन किया हुआ था और वे ही त्रिपुराब्द के प्रर्वतक हैं। इसके पहले राजमाला की ''प्रुफ कापी'' **(Proof Copy)** स्वरूप जो अल्प संख्यांक ग्रंथ मुद्रित हुए थे। उसमें लिखा गया है –

''ऐई मते रंगेते प्रतीत राजा आसे।
शिवदुर्गा विष्णु भक्ति होइलो विशेषे।।''

अर्थात – ''इसी तरह रंग में प्रतीत राजा आये। शिव दुर्गा विष्णु भक्ति विशेष रूप से हुई।

लिपिकार प्रमादवश इस हस्त लिखित ग्रंथ में रंगेते शब्द की जगह बंगेते लिखा गया है। इस बंगेते शब्द का अवलम्बन करके पूर्वोक्त मतावलम्बीगण कहते

हैं, "महाराज प्रतीत बंग देश जय करके उस विजय की स्मृति रक्षार्थ सन् का प्रर्वतन किया है। इस तरह का सिद्धान्त असंगत नहीं होगा।"

यहाँ हम भी पहले भ्रम में पड़े थे, किन्तु राजमाला के अनन्य उक्तियों के साथ इस मत का सामंजस्य नहीं दिखाई देने पर प्राचीन राजमाला के अनुसंधान की जरूरत पड़ी। उसकी आलोचना करने पर पता चला कि "रंगेत" शब्द ही विशुद्ध है। इस ग्रंथ में लिखा है

"एईमते रंगसमे आसिलो त्रिपुर।
शिवदुर्गा विष्णु भक्ति होइलो प्रचुर।।" प्राचीन राजमाला

अर्थात "इस तरह रंग(आनन्दपूर्वक) के साथ त्रिपुरेश्वर आये। शिव दुर्गा विष्णु भक्ति बहुत हुई।"

"रंग समे" वाक्य का अर्थ है रंग के साथ। त्रिपुर शब्द द्वारा त्रिपुरेश्वर(प्रतीत) को समझाया जा रहा है कि यह त्रिपुर प्रदेश नहीं है।

"बंगेते" शब्द के भ्रमात्मक धारणा पर निर्भर करके जिन लोगों ने महाराज प्रतीत के बंग में आगमन की बात कही है और उनके द्वारा अब्द प्रर्वतन की बातों को सत्य मानकर सोचते हैं। निम्नोक्त विवरण की आलोचना करने पर उनका भ्रम अपनोदित होगा।

राजमाला की आलोचना से जाना जायेगा कि महाराज त्रिलोचन की राजधानी कपिला "ब्रह्मपुत्र" नदी के तटवर्ती त्रिवेग नाम के नगर में थी। त्रिलोचन के परलोक सिधारने के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र के साथ द्वितीय पुत्र राजा दाक्षिण और अन्य पुत्रों के साथ विवाद होने पर –

कपिला नदीर तीरे पाट छाड़ि दिया।	कपिला नदी के तीर राजधानी को छोड़कर।
एकादश भाई मिलि मंत्रणा कोरिया।।	एकादश भाईयों ने मंत्रणा की मिलकर।।
सैन्य सेना सने राजा स्थानांतरे गेलो।	सैन्य सेना साथ राजा गए स्थानांतर।
बरबक्र उजानेते खलंमा रहिलो।।	उपरी भाग बरबक्र बसे खलंमा जाकर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ।

अर्थात कपिला नदी के किनारे कर पाट छोड़ दिया। एकादश भाइयों ने मिलकर मंत्रणा किया, सैन्य सेनाओं के साथ राजा स्थानांतर पर गये। बरवक्र(बराक) नदी के ऊपर की ओर खलंमा जाकर रहे।

इसके द्वारा जाना जाता है कि महाराजा दाक्षिण त्रिवेग परित्याग कर बरवक्र(बराक) नदी के ऊपर की ओर खलंमा नाम के स्थान पर अपना राज पाट स्थापन किया था। यहाँ पर कुछ दिनों तक रहने के पश्चात सेनायें एक दिन मद्मस्त अवस्था में आत्म कलह शुरू किया। इसके फलस्वरूप "पंच सहस्र बीर सेस्थाने मोरिलो" अर्थात पाँच हजार वीर वहाँ मर गये। इस दुर्घटना के बाद राजा ने सोचा –

ना रहिबो एथाते जाइबो अन्य स्थान।	नही रहूंगा यहां, जाउँगा अन्य स्थान।
मन स्थिर कोरे जाइते ताहार उजान।।	मन स्थिर किया उपरी भाग में जाने का।।
अद्य कल्य जाइबो मने बासना ना त्यजे।	आज कल में जाएगें, मनोवासना न त्यागी।
सेई स्थाने कालबश होइलो महाराजे।।	उसी स्थान पर कालवश हुए महाराजा।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ।

प्रल–205

राजा दाक्षिण ने राजधानी परिवर्तन का संकल्प करके भी आयु शेष होने की वजह से उस संकल्प को कार्य में परिणित नहीं कर सके। इसके पश्चात –

दाक्षिण मरिलो राजा तार पुत्र छिलो।	दाक्षिण मरा उसका पुत्र राजा हुआ।
तैदाक्षिण नाम राजा तखने कोरिलो।।	तैदाक्षिण नाम राजा उसी क्षण किया।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38 पृ।

अर्थात "दाक्षिण मर गये, उनका पुत्र तैदाक्षिण नाम के राजा तब सिंहासन पर बैठे।"

+ + + + + + + + + +

बहुकाल सेई स्थाने पालिलेक प्रजा।	बहुकाल उसी स्थान पाला अपनी प्रजा।
मेखली राजार कन्या विभा कोइलो राजा।।	मेखलीराजकन्या से विवाह किया राजा ने।।
ताहार औरसे पुत्र सुदाक्षिण नाम।	उनके औरस से पुत्र सुदाक्षिण नाम।
रूपे गुणे सुदाक्षिण बडे अनुपाम।।	रूप गुण में सुदाक्षिण थे बडे अनुपम।।
बहुकाल सेई राजा रहिलो तथात।	बहुत दिनों तक वह राजा रहे वहां ही।
सेई स्थाने राजार मृत्यु होइलो उत्पात।।	हुई मौत वहीं राजा की मचा उत्पात बड़ा ही।।
तरदाक्षिण नाम राजा ताहार तनय।	तरदाक्षिण नाम राजा थे उनके तनय।
बहुकाल पाले प्रजा निति यज्ञमय।।	बहुकाल पाले प्रजा को रहे नित्य यज्ञ मय।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38–39 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 38–39 पृ।

अर्थात "बहुत दिनों तक वहाँ पर प्रजाओं को पाला पोषा। मेखली(मणिपुर) राजा की कन्या से राजा ने शादी की। उनके औरस जात पुत्र थे सुदाक्षिण। रूप, गुण में सुदाक्षिण बडे अनुपम थे। बहुत दिनों तक वह राजा वहाँ रहे। वहीं पर राजा की मृत्यु हुई। इसके बाद बहुत उत्पात हुआ। उनके लड़के का नाम तरदाक्षिण था। उनकी निति यज्ञमय थी और बहुत दिनों तक उन्होनें प्रजाओं का पालन किया।"

तरदाक्षिण के समय तक राजधानी का परिवर्तन नहीं हुआ उद्धृत वाक्य से यही प्रमाणित हो रहा है। तरदाक्षिण परिवर्ती महाराज बिमार तक 49 राजाओं का नाम राजमाला में मिलता है। उनके शासनकाल में भी राजधानी के परिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है। महाराज बिमार के पुत्र कुमार छाम्बुल नगर में शिव दर्शनार्थ गये थे। उस समय कैलाशहर में एक घर निर्माण कराने की बात राजमाला में मिलती है। किन्तु इस समय भी बरवक्र के तटवर्ती खलंमा के राज पाट को परित्याग नहीं किया गया। कुमार के अधस्तन 13 महाराज प्रतीत ने हेड़म्ब राजा के साथ प्रीति से, स्थापन पूर्वक दोनों ही प्रतिज्ञाबद्ध होकर दोनों राज्यों के बीच की सीमा सुदृढ़ किया। दोनों की मित्रता अधिक से अधिक सुदृढ़ करने के अभिप्राय से महाराज प्रतीत कुछ दिनों तक हेड़म्ब में रहे। इस समय –

दुई नृपे अनेक कोरिलो संभाषण।	दोनों नृपतियों ने परस्पर किया संभाषण।
एकासने बोसे दोंहे एकत्रे भोजन।।	एकासन बैठे दोनो, किया एकत्र भोजन।।
राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 46 पृ	राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 46 पृ।

अर्थात "दोनों राजाओं ने आपस बहुत सी बातें की। एकासन पर दोनों का बैठना और एक भोजन होता था।"

दोनों राजाओं के इस तरह के प्रीति भाव को देखकर पार्श्ववर्ती दूसरे राजाओं को विशेष चिंता हुई। उन्होनें षडयन्त्र के तहत एक अपूर्व सुन्दरी कामिनी को दोनों में विभेद पैदा करने के लिए भेजा। इसी सूत्र के चलते हेड़म्ब और त्रिपुर भूपति में मन मुटाव होने की वजह से त्रिपुरेश्वर प्रतीत उक्त

प्रल–206

रमणी को लेकर स्वराज्य में लौट आये। इससे हेड़म्ब राजा ने क्रुद्ध होकर त्रिपुरा आक्रमण के लिए स्वयं अभियान किया था। तब –

ससैन्य हेड़म्बो आइसे त्रिपुर नगरी।	ससैन्य हेड़म्ब आये त्रिपुर नगरी।
हेड़म्बेर एइ तत्व सुनिलो सुन्दरी।।	हेड़म्ब का यह प्रण सुनी तब सुन्दरी।।
जीवन वधेर भये सुन्दरी आपन।	जीवन वध के भय से कहा सुन्दरी ने स्वयं।
काँदिया कोहिलो सुनो त्रिपुर राजन।।	रोकर कहा, सुनो हे त्रिपुर राजन।।
एई देश छाडो राजा आमा प्राण राखो।	यह देश छोड़ो मेरा प्राण रखो।
नहे आमि चले जाबो तुमि एथा थाको।।	नहीं तो मैं चली जाँउ तुम यहीं रहो।।
सुन्दरी देखिया राजा भुलियाछे मन।	सुन्दरी को देख राजा का भ्रमित हुआ मन।
खलंमार कुले आइसे त्रिपुर राजन।।	खलंमा तीर आए त्रिपुर राजन।।
राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 48 पृ	राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 48 पृ

अर्थात – "सेनाओं के साथ हेड़म्ब त्रिपुर नगर आये। हेड़म्ब के आगमन का यह तत्व जब सुन्दरी ने सुना तो जीवन वध के भय से वह रोती हुई बोली। सुनो त्रिपुर राजन् इस राज्य को तुम छोड़ दो, राजा मेरे प्राणों की रक्षा करो, नहीं तो मैं चली जाँउगी, तुम अकेले रहो। सुन्दरी को देखकर राजा का मन खो गया था। खलंमा में त्रिपुर राजन आ गये।

"खलंमार कुले आइसे" इस वाक्य के द्वारा जाना जाता है कि उस समय भी उनकी राजधानी खलंमा में थी। महाराज प्रतीत हेड़म्ब से आने पर सीधा खलंमा में नहीं जाकर भी उस समय बंग भूमि में नहीं आये थे। – धर्मनगर गए थे। हेड़म्बपति ससैन्य त्रिपुर नगरी में आगमन की बात जो यहाँ उद्धृत वाक्य में मिल रही है। वह नगरी हमारी कथित धर्मनगर है। नीचे दिये गये वाक्यों की आलोचना से इसका प्रकृष्ट प्रमाण मिल जायेगा।

प्रतीत नामेते होइलो ताहार तनय।
हेड़म्ब राजार संगे होइलो प्रणय।।
दुई जने एकता सुनिया अन्य राजा।
\+ \+ \+ \+
मने बड़ो भय पाइया कोरिलो संधान।
दुई जने कराइलो बड भेद ज्ञान।।
तबे बड़ो युद्ध होइलो दुई राजार बोले।
निज स्थान छाडिया प्रतीत राजा चले।।
धर्मनगर नामें छिलो एक ढाँई।
सेखाने आसिलो राजा संगे बंधु भाई।।

–राजा बाबू के घर में रखी गई राजमाला।

अर्थात "प्रतीत नाम का उनका एक पुत्र हुआ। हेड़म्ब राजा से उनका बड़ा ही प्रणय भाव था। दोनों में गहरी एकता की बात सोचकर दूसरे राजाओं को चिंता हुई। दोनों में भेद पैदा किया और दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। अपने स्थान को छोड़ कर प्रतीत राजा चले गये। धर्मनगर उनकी एक जगह थी। अपने साथ भ्रात् सम बन्धुओं को लकर आये थे।"

हेड़म्ब से लाई गयी उस सुन्दरी के अनुरोध से और हेड़म्ब अधिपति के आक्रमण के डर से

प्रल–207
महाराज प्रतीत धर्म नगर से खलंमा में गये थे, इसलिए राजमाला का पहले उद्धृत किया वाक्य मिल रहा है – "खलंमार कुले आसे त्रिपुर राजन"(खलंमा में आये त्रिपुर के राजा)।

इससे स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है, प्रतीत के शासनकाल तक खलंमा में ही उनकी राजधानी थी और उन्होनें धर्म नगर में और एक राजधानी की स्थापना की थी। धर्म नगर जूरी नदी के किनारे बसा हुआ है। महाराज प्रतीत के पहले महाराज कुमार के मनु नदी के तटवर्ती कैलाशहर नगरी में और एक गृह निर्माण की कथा पहले ही कही गई है। इन सभी विवरणों से जाना जाता है कि महाराज प्रतीत के शासन काल तक त्रिपुर भूपतिगण आसाम की सीमा को पार कर बंग देश पर अपना हस्त प्रसारण नहीं किया, क्योंकि उस समय त्रिवेग कैलाशहर और धर्मनगर आदि स्थान आसाम के अन्तर्गत थे। इस अवस्था में महाराज प्रतीत ने बंग देश पर विजय प्राप्त त्रिपुराब्द का प्रर्वतन किया था। इस तरह के सिद्धान्त के उपयुक्त प्रमाण नहीं मिल रहे हैं।

और एक बात महाराज किरीट के(आदि धर्म पाल) 51 त्रिपुराब्द में ताम्र शासन द्वारा भूमिदान करने का विवरण इसके पहले दिया गया है। ये प्रतीत के अधस्तन आठवें राजा थे। प्रतीत को त्रिपुराब्द का प्रर्वतक मान लेने पर 51 साल की अवधि में आठवें पुरुष का अभ्युदय नितान्त ही अस्वाभाविक जान पड़ता है। अतएव इस हिसाब से भी प्रतीत को त्रिपुराब्द का प्रर्वतक कहा नहीं जा सकता।

श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रणेता मत पूर्वोक्त मतवादियों के मत को खण्डन करने के लिए जो बातें कही गई हैं, लगता है यही यथेष्ठ है। इस समय और एक मत की आलोचना में प्रवृत्त ही रहा हूँ। श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रणेता सुहृदवर श्रीयकुत्त अच्युतचरण चौधरी तत्वनिधि महाशय ने लिखा है –

"प्रतीत के पुत्र मिरिछिम, तत्पुत्र गगन, उनके पुत्र नवराय या नवराज, तत् पुत्र युझारु फा(युद्धजय या हिमतिछ) ने रांगामाटी को जीतकर वहाँ एक नये राजभवन की स्थापना की थी। उन्होनें नव–देश विजय के स्मृति – रक्षार्थ आदि पुरुष के नामानुसार त्रिपुराब्द का प्रचलन किया।"

श्रीहट्ट का इतिवृत्त, द्वितीय भाग, प्रथम खण्ड, चतुर्थ अध्याय 49पृ

युझारु फा के विषय में राजमाला में है –

एईमते रांगामाटी त्रिपुरे लोइलो।।	इसी तरह रांगामाटी को ले लिया त्रिपुर।।
नृपति युझार पाट तथाते कोरिलो।।	राजधानी वहाँ बसाया नृपति युझार ।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ

अर्थात – इस तरह त्रिपुर ने रांगामाटी को ले लिया। नृपति युझारु ने वहाँ राजधानी की स्थापना की।

\+ \+ \+ \+

प्रल–208

रोहिलो अनेक काल से स्थाने नृपति।	रहे बहुत काल तक वहाँ नृपति।
बंगदेश आमल कोरिते होइलो मति।।	बंग देश दखल करने की हुई उनकी मति।।
विशालगढ आदि कोरि पर्बतिया ग्राम।	विशालगढ़ आदि करके और पहाड़ी ग्राम।
कालक्रमे सेई स्थाने होइलो त्रिपुर धाम।।	काल क्रम पर वह स्थान हुआ त्रिपुर धाम।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52 पृ

संस्कृत राजमाला में भी यह विवरण दिया गया है। इसके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं

''ततः संप्राप्य सकलं सविशालगड़ाधिकं।
पर्वत ग्रामबहुलं गजबाजी समयुतं।।
ततः प्रभृति जातास्य युझारू रिति नामता।
ततः स विधिं पुण्यं कृत्वा स्वर्गमुपाषषौ।।

अब्दप्रवर्तक संबन्धी शेष सिद्धान्त उद्धृत वाक्यावली द्वारा प्रमाणित हो रहा है, महाराज हिमति(नामांतर युझारु फा या हामतार फा) सर्वप्रथम बंग देश के कुछ अंशो पर अधिकार किया था। इसके पहले किसी भी त्रिपुर भूपति के बंग देश पर विजय प्राप्त करने का प्रमाण नहीं है। अतएव, यह युझारु फा बंग विजय की स्मृति रक्षार्थ त्रिपुराब्द का प्रर्वतन किया था। इस तरह के निर्धारण द्वारा जन श्रृति की सार्थकता की रक्षा होगी और इस निर्धारण द्वारा युझारू फा के अधस्तन चौथे स्थानीय महाराज किरीट(नामांतर दान कुरू फा या हरिराय) 51 त्रिपुराब्द में आदि धर्म फा उपाधि ग्रहण पूर्वक यज्ञ सम्पादन और ताम्र पत्र द्वारा भूमिदान किया था – इस विषय का भी सामंजस्य रक्षित होगा।

और भी देखा जा रहा है, उक्त निर्धारण के अनुसार हिसाब करने से वर्तमान त्रिपुरेश्वर तक औसतन हर पुरुष का 21 साल से कुछ अधिक पड़ता है। त्रिपुर राजवंश के सम्यक विवरण की आलोचना करने से इस गड़बड़ता का परिणाम असंगत और असंभव कहना या महाराज युझारु फा द्वारा त्रिपुराब्द के प्रर्वतन की बात अस्वीकार करने का कोई कारण ही नहीं रह सकता। अतएव इसे ही संगत निर्धारण कर ग्रहण किया जा सकता है।

प्रल—209

कताल और काक चन्द

कताल और काक चन्द का विवरण कताल और काक चन्द के साथ त्रिपुर पुरावृत्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस टीका 185पृ में राज्य की अवस्था शीर्षक में इनका नामोल्लेख मात्र किया गया है। यहाँ पर उनके स्थूल विवरण दिया जा रहे हैं।

ये दो सहोदर भाई थे। कताल ज्येष्ठ था और काक चन्द कनिष्ठ था। इनका घर था त्रिपुरा राज्य के अन्तर्गत कैलाशहर में। कताल के पास विशाल नगद सम्पत्ति थी और काक चन्द थे अपार शस्य सम्पद के अधिकारी।

दोनों में अकृत्रिम भ्रातृ भाव रहने पर उनकी झगड़ालू पत्नीयों ने उस पवित्र भाव का एकान्त अभाव था। इसलिए प्रतिनियत कलह हेतु दोनो भाई स्वातन्त्रय अवलम्बन कर विभिन्न घरों में रहने पर मजबूर हुए। किन्तु इस पर उनमें पूर्व भाव का बिन्दु मात्र भी वैलक्षण्य दिखाई नहीं दिया।

कैलाशहर में दुर्भिक्ष एक समय स्वतंत्र—स्वतंत्र कार्य के लिए कताल और काक चन्द दीर्घ काल के लिए प्रवास यात्रा पर निकले। दोनों के परिवार के लोग घर पर थे। इस समय देश में भयानक दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। अधिक से अधिक अर्थ देकर भी एक मुठ्ठी अन्न मिलना असंभव था। इस दुर्घटना में हजारों लोगों की मृत्यु हुई। प्राणों की ममता वश पति पत्नी को एवं जननी को अपनी संतान को भी परित्याग करने में कोई कुंठा नहीं हुई। जिनके गृह में सामान्य परिमाण में शष्य था, दस्यु और तस्करों की वजह से वे सम्बल विहीन होकर अनाहार में अपने दिन बिताने पर मजबूर हो गये। बहुत से लोगो ने प्राण बचाने के लिए देश का त्याग कर दिया। सारा देश एक भयानक श्मशान में बदल गया।

इस भीषण दुर्दिन में कताल के भण्डार में विपुल धन राशि संचित होने पर भी उनकी पत्नी और पुत्र आदि अनशन से व्याकुल हो उठे। कताल की स्त्री प्राणांतकारी विपदा से परित्राण की आशा से काक चन्द की पत्नी की शरणापन्न हुई। अपने इच्छानुसार मूल्य लेकर धान देकर जीवन रक्षा के लिए उससे बहुत अनुनय— विनय किया। किन्तु क्रूर स्वभाव वाली काक चन्द की पत्नी का हृदय नहीं गला। इस तरह की भयानक विपदा में कताल की स्त्री को धान देकर सहायता करना तो दूर की बात ठहरी — उसे कर्कश भाषा में कह दिया — ''तुम जिस रूपये के गर्व में धरती को तृण के बराबर देखती हो। अब उसी रूपये को घोंट कर ही अपने जीवन की रक्षा करो, मेरी तरह

प्रल–210

गरीब की सहायता लेकर क्यों अपनी आत्म मर्यादा छोटी करोगी।'' काक चन्द की स्त्री की बस यही एक रट थी। काताल की स्त्री के व्याकुल क्रन्दन, बालक बालिकाओं के क्षुधा पीड़ित सजल नयन और शीर्ण देह देखकर उस पाषाण हृदय में करूणा का संचार नहीं हुआ। प्रचुर मात्रा में अर्थ के बदले भी वह एक मुठ्ठी धान देने के लिए भी तैयार नहीं हुई।

काताल के परिवारवर्ग की मृत्यु   कहीं भी शष्य का नामोनिशान तक नहीं था। किसी से सहायता की कोई गुंजाइश नही। सभी अपने आत्म रक्षार्थ व्यस्त और विपन्न थे। कौन किसकी सहायता करेगा? काताल की स्त्री किसी भी तरह शष्य संग्रह नहीं कर सकी। असहाय अनाहार छोटे सभी संताने अनाहार से अशेष यंत्रणा भोगकर एक एक करके उसकी आँखों के सामने काल के कराल ग्रास में समा गई। अन्त में उनकी भी शोक संतप्त देह भी संतानों के साथ चिरनिद्रित हो गई। काताल का समृद्धशाली सुख का संसार जन शून्य हो गया। अगणित अर्थ उनके परिवार वर्ग की रक्षा नहीं कर सका।

काताल का तालाब व आत्महत्या   इस हृदय विदारक घटना के कुछ दिन पश्चात काताल देश लौटे। वे सारी परिस्थितियों से अवगत होकर शोक और क्षोभ से म्रियमान–भाव(दुखित) होकर इतने दिनों तक जिस विपुल अर्थ के अधीश्वर मानकर पर अपने पर गर्व करते थे, वही सम्पदा प्रिय परिवार की रक्षा करने में नाकामयाब रही है, देखकर उनके हृदय में जो शोकानल प्रज्वलित हुआ था, वह अब असहनीय हो उठा। काताल ने घर के सामने एक विशाल तालाब खनन कराया था। अपार सम्पत्ति को सरोवर में निक्षेप कर स्वयं भी उसके गर्भ में समा गये। काताल की सारी यंत्रणा का भी जल में अवसान हो गया।

काकचांद का तालाब   इसके थोड़े दिन बाद काक चन्द घर आकर अग्रज और उनकी संतान सतंतियों की शोचनीय मृत्यु की घटना से अवगत हुए। उनका भ्रातृ वत्सल हृदय एकदम टूट गया। निर्मम गृहणी ही इस भयंकर अनर्थ की मूल है, यह सोचते हुए अपने जीवन के प्रति, संसार के प्रति, पाप की जीवंत मूर्ति सहधर्मिणी के प्रति घोर विराग पैदा हुआ। घर के भण्डार घर में स्थित शब्य भ्रातृ वियोग का उन्हें मूलभूत कारण लगा।

सपरिवार काकचांद की मृत्यु   भ्रातृ शोकोक्त काक चन्द बहुत सोच विचार के पश्चात अग्रज के पथ का ही अनुसरण करने पर कृत संकल्प हुए। उनका भी एक तालाब था। उन्होनें भण्डार को तोड़कर सभी शस्य को उसी सरोवर में फेंक दिया। और परिवार के सभी सदस्यों को एक नाव में चढ़ाकर सभी को अच्छी तरह से बाँधा और खुद भी उस पर सवार हुए, क्षण में नाव को सरोवर के बीच में ले जाकर एक कुल्हाड़ी से उस नाव के तलहट को तोड़

प्रल–211

दिया। इसी तरीके से थोड़े ही समय में काक चन्द ने सवंश भ्रातृ वध के पापों का प्रयाश्चित किया। आज काताल और काक चन्द नहीं हैं – उनके वंशज भी नहीं है। लेकिन नाम रह गया है। इस भ्रातृ युगल के बारे में जो जन श्रुति है। उसके साक्षी स्वरूप, काताल का तालाब और काक चन्द का तालाब आज भी है इस समय काताल के तालाब चारों किनारों को लेकर कैलाशहर बना है। उससे पश्चिम की ओर थोडी दूरी पर काक चन्द का तालाब कैलाशहर का उच्च अंग्रेजी विद्यालय स्थापित हुआ है। सरकारी व्यय से संस्कार होने पर भी उसके परिसर का सौन्दर्य नष्ट हो गया है।

काताल और काक चन्द का परिचय काताल और काक चन्द का परिचय संग्रह करना इस समय दुःसाध्य है। बहुत लोगों का अनुमान है, ये लोग दास जाति के समृद्धशाली गृहस्थ थे और ये भ्रातृ युगल ही वहाँ के आदिम अधिवासी थे। प्राचीन जमाने में कैलाशहर अचंल में किरात जाति का ही प्राधान्य था। उनके प्रभाव नष्ट हो जाने पर क्रमशः हिन्दू और मुसलमानों की बस्ती स्थापित हो गई। काताल और काकचाँद उसी समय के होने की ही संभावना है।

कैलाशहर दीर्घ कालीन तक त्रिपुरा की राजधानी प्रतिष्ठित थी। जिस भीषण दुर्भिक्ष की कहानी को लेकर काताल और काकचाँद की आख्यायिका की सृष्टि हुई है, वह भयानक दुर्भिक्ष ही कैलाशहर की राजधानी को स्थानांतरित करने का मुख्य कारण है। इस घटना का विशुद्ध काल निर्णय करना दुःसाध्य है।

अगुरू काष्ठ

किरात देश में अगुरू इस टीका 169पृ पर अगुरु काष्ठ का उल्लेख मिला है। महाभारत के सभापर्व में राजसूय यज्ञ में उपस्थित व्यक्ति महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में त्रिपुरा से गये लोगों सुवर्ण आदि के साथ अगुरू काष्ट ले गये थे। उसकी एक वर्णना महाभारत के एक सभा पर्व के 52 अध्याय के आठ से दस श्लोकों में आई है, जिसे उद्धृत किया गया है। महाभारत के सभा पर्व में राजसूय यज्ञ में उपस्थित व्यक्ति वर्गो के वर्णना के उपलक्ष्य में किरातगण दूसरे द्रव्यों के साथ अगुरू लेकर उपस्थित थे। यथा –

चन्दनागुरू काष्ठानां भारान्कालीय कस्य च।
चर्म रत्न सुवर्णानां गंधनाश्वैब राशयः।।

महाभारत सभा पर्व 52 अध्याय 10 श्लोक।

इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के समय किरात देश अगुरू के लिए प्रख्यात था। इस समय भी त्रिपुरा के पार्वत्य स्थानों में एवं आसाम अचंल में बहुत बड़े पैमाने पर अगुरू की पैदाइस है। स्थानीय भाषा में इसे आगर कहा जाता है। आसाम प्रदेश में

प्रल–212
अगुरू उत्पन्न होने की कथा महाकवि कालीदास को भी ज्ञात थी। उनके रघुवंश काव्य में है
–

चकम्नेतीर्ण लौहित्ये तस्मिन् प्रागज्योतिषेश्वरः।
तद् गजालामतं प्राप्तै सहकालागुरूद्रुमैः।। रघुवंश 4सर्ग

अगुरू वृक्ष का विवरण यह चन्दन जातीय वृक्ष है। बहुत से लोग इसे ''अगुरू चन्दन'' कहते हैं। इस वृक्ष के पत्ते के साथ चन्दन के पत्तों का अनेक सादृश्य है। चन्दन वृक्ष के समग्र भाग का सारांश व्यवहार के उपयोगी होता है, आगर वृक्ष वैसा नहीं है। इस जातीय वृक्ष के अभ्यांतरस्थ भाग में जगह जगह पर नाना आकार, विशिष्ट खण्डों में सार जन्मता है। बहुत समय तक ये लकडियों के साथ जुडे होते हैं। किसी किसी समय ये लकडी से पृथक स्वतंत्र रूप से पिंडाकार में भी रह सकते हैं। इन खण्डों को ''दोम'' कहा जाता है। यह दोम ही मूल्यवान है। वृक्ष के दूसरे अंश बहुत ज्यादा किसी काम में नहीं लगते। किसी किसी देश में इसके छिलके से कागज तैयार होता है। प्राचीन काल में कागज या ताल पत्र के बदले इसी वृक्ष के छिलके ही ग्रन्थ लिखने के कार्य में व्यवहृत होते थे।

किसी वृक्ष में अगुरू जन्म हुआ है, विशेषज्ञों को छोड़ कर सभी लोग इसे समझ नहीं सकते हैं। साधारणतः जिस वृक्ष में अगुरू उत्पन्न होता है, उस वृक्ष पर काले रंग की चीटियाँ हमेशा रहती है। यही आगुरू उत्पन्न होने के आभास के विशेष अवलम्बन हैं। व्यवसायी लोग इसके अलावा भी और लक्षणों पर निर्भर करते हैं।

अगुरू वृक्ष का कार्यकारिता आगुरू वृक्ष का काठ श्वेत वर्ण का होता है, किन्तु उसका दोम(सारांश) काले रंग का होाता है। इसकी सुगन्ध बडी मनमोहक है। देव अर्चना आदि कार्यो में में इसे धूप की तरह जलाया जाता है एवं पत्थर पर घिस कर चन्दन की तरह व्यवहार किया जाता है। अगुरू का इत्र अति उत्कृष्ट एवं विशेष मूल्यवान है। इस देश में इत्र एवं एसेन्स प्रचलित होने के पहले अगुरू विशाल एक विलासी द्रव्यों में गिना जाता था। वैष्णव पदावली ग्रंथों में ''अगुरू, चन्दन, चुआ'' सदा भोग्य वस्तुओं में गिना जाता है, बारम्बार अगुरू का उल्लेख मिलता है। उन दिनों अरब, पारस्य और ग्रीस आदि दूरवर्ती देशों में बहुत से अगुरू भेजे जाते थे। इस समय भी बहुत से देशों में विशाल पैमाने पर रप्तानी होती है(भेजा जाता है।)। अगुरू से इत्र, तेल, साबुन और ऐसेन्स आदि विशेष सम्मान योग्य विलास द्रव्य प्रस्तुत होते हैं।

अगुरू केवल विलासियों के ही उपभोग्य नहीं है। यह दवा के रूप में भी व्यवहार

प्रल–213
किया जाता है। अगुरू का तेल किसी किसी रोग में महोपकारी है। वैद्यक ग्रंथों में अगुरू तिक्त, उष्ण और कटु गुणों से भरपूर कहकर वर्णना किया गया है। इसके अलावा भी कफ, वायु, मुख रोग, कर्ण और आँखों की पीड़ा, ग्रंथि पीड़ा एवं रूष्ट रक्त जनित पीड़ा का इससे उपशम होता है।

अगरतला के साथ अगुरू का सम्बन्ध

किरात प्रदेश में(त्रिपुरा और आसाम अचंल) अगुरू के पेड़ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है, यह बात हम पहले भी बता चुके है। त्रिपुर राज्य किरात प्रदेश में संस्थापित हुआ था, यह भी हम बता चुके हैं। प्राचीन काल में आसाम में ही त्रिपुरा की राजधानी थी, अतएव, पुराने जमाने से ही इस मूल्यवान वस्तु त्रिपुरेश्वर गण की एकायत्त सम्पत्ति कहा जा सकता है। आज भी इस सम्पदा का परिमाण कम नहीं है। सबसे अधिक धर्मनगर विभाग में ही इसका अधिक्य दिखाई देता है।

यहाँ पर और एक बात उल्लेखनीय है। त्रिपुर राज्य की वर्तमान राजधानी आगर के वनों को काटकर बनाई गई थी, कहकर ही इसे आगरतल्ला कहा जाता है। इस तरह की एक जन श्रुति प्रचलित है। इस बारे में मत विरोध रहने पर भी इस जन श्रुति के द्वारा आगर(अगुरू) वृक्ष की अधिकता ही प्रमाणित हो रही है।

———————————

किरात जाति

राजमाला में किरात जाति की बात बार बार उल्लेख की गई है। त्रिपुर राज्य किरात देश में अवस्थित है एवं किरात जाति ही इस राज्य की आदिम अधिवासी है। अतएव इस जाति का संक्षिप्त परिचय प्रदान करना आवश्यक है। इनका विस्तृत विवरण बाद में दिया जायेगा। किरात देश और उसके अवस्थान का विवरण पहले ही उल्लेख किया गया है।

किरात जाति के बारे में पाश्चात्य पंडितों के मत

ई0 सन् पाँचवी सदी में **NONNOS** ग्रीक भाषा में एक महाकाब्य लिखा था उसका नाम **DIONYSIAKA** या **BASSARIKA** है। इस ग्रंथ में किरातों का वर्णन किया गया है। ग्रंथकार कहते हैं, किरात जाति नाव युद्ध में अभ्यस्त थी। उनकी नावें चमड़े की बनी थी। इन किरातियों का अधिनायक का नाम था –**Thyamis** और **Olkaros** ये दोनों ही नौचालन विशारद थे व **Tharseros** के

पुत्र थे। ग्रीक ग्रंथ में किरात का नाम **CIRRADIOI** कहकर उल्लेख किया गया है।(1) **M' Crindle** ने किरादई को किरात कहकर व्याख्या किया है। **"Periplus of the Erythracan Sea"** के रचियता किरातो को **Kirrhadai** संज्ञा दिया है। **Pliny** ने किरातों को **Scyrites** या **Syrites** नाम से अभिहित किया है। **M' Crindle** ने कहा है – किरातगण पार्वत्य जाति है व अरण्या व पर्वत उनके वासस्थान है, शिकारलब्ध द्रब्य उनकी उपजीविका है। शास्त्र सम्मत हिन्दु धर्माचार की रक्षा करके नहीं चलते थे, इसलिए उन्हें शुद्रत्व की प्राप्ति हुई है।(2) प्राचीन शिलालिपि के पाठोद्धार से जाना जाता है कि किरातगणों ने आसाम से लेकर ब्रह्म देश तक सारे स्थानों पर अपना अधिकार जताया था। नेपाल के ''किरांति'' जाति किरात जाति की ही अंतर्निर्विष्ट है। इस विषय में कोई संदेह नहीं रह सकता।(3) कालक्रम से इस किरात जाति ने पूर्व भारत की पार्वत्य भूमि पर अधिकार स्थापित कर लिया। जिन जगहों पर जाकर इन्होनें निवास किया है वह सारी भूमि किरात भूमि के नाम से आख्यात हुई है। फलस्वरूप किरात भूमि का परिसर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया था।

शास्त्रग्रन्थों में किरात का विवरण

किरातगण बहुत प्राचीन जाति के हैं। वैदिक ग्रंथों में इनकी बातें है। बाजसनेयी संहिता में उल्लेखित है– ये लोग गुहावासी(30–16) हैं। अथर्ववेद में(10/4/14) एक ''कैरातिकार''(किरातबाला) का उल्लेख है। **Lassen** अपने ''भारतीय पुरातत्व'' में **(Lassen Indische Alterthumskunde, 12, 530- 534)** में प्रमाण दिया है कि किरातगण वैदिक युग के पश्चात नेपाल के पूर्वांचल में रहते थे।(4)

---

(1) **"By the Cirradioi are ment the Kirata, a race spread along the shores of Bengal to eastward of the mouths of the Ganges as far as Arracan. They are described by the author of the "Periplus of the Erythracan Sea" who calls them the Kirrhadai as savages with flat noses. He places them on the coast to the west of the Ganges but erroneously. They are the Airrhadai of Ptolemy" – M'Crindle's Ancient India P. 199 (1901).**

(2) **M' Crindle's Ancient India P. 61**

(3) **M' Crindle** कहते हैं, किरात लोग भूटान के आधिवासी हैं। इस समय नेपाल में उनके बहुत बहुत से परिवार रह रहे हैं।

(4) **The Pygmies are the Kirata –the Mongolian hillmen of Bhotan or the wild tribes of the Assam frontier perhaps" – (InterCourse between India and the western world - H.G. Rawilinson P. 27**

तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/–4/12/1 देखिये।

प्रल–214 नक्शा फोटो **(Pratham leher-214)**



प्रल—215
मानव धर्म शास्त्र में किरातों को बृषलत्व—प्राप्त क्षत्रिय आख्या से अभिहित किया गया है। यथा —

''शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातय।
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च।।
पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः।।''

मनु संहिता —(10 / 44)

बहुत से लोगों ने किरातों को म्लेच्छ आदि आख्या प्रदान किया है।(1) किन्तु ये लोग मूलभूत रूप से क्षत्रिय थे। इसे आधुनिक पंडितों ने भी स्वीकार किया है।(2)

किरात भूमि का अवस्थान निर्णय एक समय हिमालय के पूर्वांश में, वर्तमान भूटान, आसाम का पूर्वांश, मणिपुर, त्रिपुरा, ब्रह्म देश यहाँ तक चीन समुद्र के तटवर्ती कम्बोज तक किरातों की आवास भूमि थी। इस समय भी नेपाल के पूर्वांश से आसाम अंचल पार्वत्य प्रदेश और त्रिपुरा आदि जगहों में किरात जाति के लोग निवास करते हैं। नेपाल की पार्वतीय वंशावली पाठ करने से जाना जाता है आहीर वंश के बाद 19जन किरात वंशज राजाओं ने नेपाल में राजत्व किया था। इसके बाद भी दीर्घकाल तक वहाँ किरातियों का प्राधान्य था। अंत में नेपाल राज पृथ्वीनारायण ने इन्हें पराभूत किया। इसके पश्चात दीनहीन अवस्था में इन्हें अरण्य वासी होना पड़ा है। आसाम और त्रिपुरा अचंल के किरातगण, द्रुहयु वंशज क्षत्रियगण(वर्तमान त्रिपुर राजवंश) द्वारा विध्वस्त हुए हैं।

किरात जाति की अवस्था किरातियों में उनके सम्प्रदाय और जातियाँ हैं। उनमें राजाओं की भी संख्या कम नहीं थी। दिग्विजय के लिए अर्जुन, भीम और नकुल ने किरात राजाओं के साथ युद्व किया है।(सभापर्व 25, 29 और 31 अध्याय) सभापर्व के चतुर्थ अध्याय में दो और 29 अध्याय में सात किरात राजाओं का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा वन पर्व में और भीम पर्व में भी किरातियों का उल्लेख मिलता है।

किरातियों में कोई कोई सम्प्रदाय सुसभ्य और कोई कोई सम्प्रदाय नितांत ही असभ्य चर्म वस्त्र पहने थे। इनमें जो ज्यादा दुष्ट थे, उन्हें अधम किरात कहा जाता था।

---

(1) भेदाः किरातशबर पुलिन्दा म्लेच्छ जातयः।''

अमरकोष — शुद्रवर्ग 56 / 57पर्याय

(2) **Zimmer (Altindisches Leben P. 32), Ludwig (Translation of the Rigveda 3.207), Vincent Smith (Journal of the Royal Asiatic Society, 1909, 258)**

प्रल–216

हदा के लोग

हदा का विवरण पहले ही कहा गया है कि त्रिपुरा जाति में किसी किसी सम्प्रदाय के लोग राज चिन्ह धारण करते हैं एवं कोई कोई सम्प्रदाय देवार्चना आदि कार्य भी करता है। इसके अतिरिक्त दूसरे सभी कार्य सम्प्रदाय विशेष को सौंपा गया है। इनके द्वारा राज सरकारी जो सभी कार्य सम्पादित होते हैं, स्थानीय भाषा में उसे हदा कार्य(हदा का कार्य) कहते हैं और कार्य निर्वाहकों को हदा लोक(हदा के लोग) कहा जाता है।

त्रिपुरा जाति कई सम्प्रदायों में बँटी हुई है। इसके विवरण स्थानांतर में दिया गया है। उनमें 'पुराण तिपरा' सम्प्रदाय ही अधिक प्राधान्य लिये हुए है और यही हदा के कार्य करते हैं। हदा के लोग राजकर से मुक्त हैं। जिस सम्प्रदाय के हदा के लोग द्वारा जो जो कार्य सम्पन्न होते हैं, उसके कुछ स्थूल विवरण यहाँ पर दिये जा रहे हैं। वे साधारणतः नीचे लिखे ग्यारह हदा या सम्प्रदाय में विभक्त हैं।

1. बाछाल –जन श्रुति है कि ये लोग पहले त्रिपुरा राज्य के अधिपति थे। इन्हें पराजित कर चन्द्रवंशीय क्षत्रियों ने त्रिपुरा राज्य पर अधिकार किया था। इस जन श्रुति का कोई आधार नहीं है। हालामों से त्रिपुर राज्य चन्द्रवंशियों के हाथों में आया है। यही ऐतिहासिक सत्य है। बाछाल लोग पहले ''सुवा'' के अधीन ''हस्ती खेदा''(हाथी पकड़ने का) कार्य करते थे। इस समय इनके ऊपर निम्नोक्त कार्य भार अर्पित है।

(क) राजदरबार में इन लोगों को रौप्यनिर्मित ''पान'' और ''पांजा'' वहन करना पड़ता था। त्रिपुरेश्वरगण जब जुलुस लेकर कहीं जाते थे तब बाछालों को यह कार्य करने पड़ते थे। पान और पांजा(पंजा) राजकीय सुल्तानों का अंग था।

(ख) राजबाड़ी में(राजमहल में) पार्वत्य पद्धति के अनुसार किसी प्रजा का अनुष्ठान होने पर बांस से देव देवी की मूर्ति का निर्माण और पूजा मंडप बनाना इनका काम था। पूजा में पानी की व्यवस्था भी करते थे।

(ग) त्रिपुर राज्य में विवाह के समय विवाह–वेदी के चारों ओर पत्र शाखा संयुक्त बाँस गाड़कर देने की प्रथा है। राज परिवार के किसी के विवाह में यह कार्य बाछालों का अधिकार है।

(घ) प्रतिवर्ष विजय के दूसरे दिन ''हसम'' भोजन नाम के असीमित मद्यपानादि क्रिया का एक अनुष्ठान होता है। इस अनुष्ठान के लिए बाछालों को

प्रल–217
बाँस के बनाये हुए दीपाधार तैयार करना पड़ता है। इस उपलक्ष्य में जो सब ''नवआतिया तिप्रा''(1) निमंत्रित होते थे, उनके आहार के लिए बाँस का बाड़ा देकर उस जगह को घेरना पड़ता था।(2) यह कार्य भी बाछाल लोगों को करना पड़ता था।

2. सिउक –सिउक शब्द का अर्थ है शिकारी। ये लोग राज परिवार के आहर हेतु पशु पक्षियों का शिकार करते हैं। इसके अलावा राजदरबार में ''उपाधि वितरण के समय'' चन्दन के पात्र को धारण करते हैं। राज परिवार के व्यक्तियों को विवाह के उपलक्ष्य में मांगलिक कार्य के लिए पार्वत्य अचंल से सधवा(एयो) लाते हैं। और पात्री(वधु) पक्ष के लिए जल भरने का भी कार्य करते हैं। कुआई–तुइया लोगों के साथ इन्हें चन्द्रातप देकर विवाह वेदी सजाना पड़ता हैं।

3. कुआई तुइया – पान सुपारी वाहक को ''कुआई तुइया'' कहा जाता था। इनके छः प्रघान कार्य हैं।

(क) दरबार में उपाधि वितरण के समय फूल की माला देना।

(ख) सिंहासन घर में प्रतिदिन धूप अगरबत्ती देना एवं विशेष पूजा के लिए राज सिंहासन धोना।

(ग) पूजा का प्रसाद बाँटना।

(घ) पूजा के समय महाराज एवं ठाकुर परिवार के बैठने के लिए उपयुक्त स्थान आदि का बन्दोबस्त करना।

(ङ) विवाह के समय पात्र(वर) के एवं पात्र(वर) पक्ष के जल भरने का कार्य करना।

(च) सिउकों के साथ विवाह वेदी को सजाना।

4. दैत्य सिंह या दुई सिंह – ये राजकीय ध्वजा या निशान वहन करते थे। युद्ध के समय श्वेत पताका वहन करना इन का कार्य था। दरबार में, जूलुस में एवं पूजा के समय श्वेत निशान वहन करते थे। इसके अलावा ये लोग देवता की मूर्ति(काठाम) बनाते थे एवं ''हसम'' भोजन के समय मांस काटते थे।

5. हुजुरिया 6. छिलटिया – ये मूलतः एक ही हदा के दो बाजु या सम्प्रदाय है। हुजुरे अर्थात त्रिपुरेश्वर के यहाँ सर्वदा उपस्थित रहना पड़ता था। इसलिए इन्हें हुजुरिया आख्या से आख्यायित किया जाता था। इन्हें समय पर

---

(1) ये स्थानीय भाषा में काताल नाम से जाने जाते थे।

(2) चारों ओर बाँस का बाड़ा से घिरे जगह को ''तिपरागण वितल'' कहते थे।

प्रल–218
बहुत तरह के कार्य करने पड़ते थे। राजप्रासाद से विभिन्न देवालयों में या पूजा के स्थान पर बलि के लिए भोगद्रव्यादि ये वहन करते थे।

7. आपाइया – यह शब्द मत्स्य क्रेता को कहते हैं। ये पहले राज परिवार के व्यवहार के लिए मत्स्यादि क्रय करते थे। बाद में इन्हें राजमहल में जलाने की लकडी की व्यवस्था का काम सौंपा गया था।

8. छत्रतुइया या छकक तुइया – इस शब्द का अर्थ है– छत्र वाहक। ये राज दरबार के समय चन्द्रबाण , सूर्यबाण, माहिमूरत, छत्र, आरंगी आदि सुल्तानत अर्थात राज चिन्ह धारण करते थे।

9. गालिम –ये पूजक थे। केर, खार्ची आदि पूजा के समय ये ही पुरोहित का काम करते थे।

10. सूबे नाराण –पूजा एवं हसम भोजन के उपलक्ष्य में मछली काटना इनका कार्य था।

11. सेना –पूर्वोक्त दसों सम्प्रदायों के मध्य यदि कोई आगम्यागमन करता था(अर्थात मौसेरी बहन, ज्येष्ठ भ्राता की कन्या, पितृत्य की कन्या प्रभृति को शादी करने पर) तो उसे त्रिपुरेश्वर के आदेश से वंश और समाज से निकाल दिया जाता था। ऐसे अपराधी को ''सेना'' नाम से बुलाया जाता था। फिर भी वे अपने पुत्रादि स्वजाति को भोज देकर पुनः समाज में शामिल हो सकते थे। ये हसम के समय चुल्ली(चूल्हा) प्रदान करते थे। रसोई के बर्तनों को धोते थे और ठाकुर लोगों के जूठन को साफ करते थे। हसम भोजन तैयार होने पर ये दमामा बजाकर निमंत्रित लोगों को भोजन के लिए आह्वान करते थे। ''सेना'' खार्ची पूजा के समय ढोल बजाने का कार्य करते थे।

हदा के लोगों को छोड़ कर ''जुलाई'' सम्प्रदाय द्वारा महारानी एवं राज परिवार वर्ग व्यक्तियों के आवश्यक कार्य भी इन्हें करना पड़ता था।

———————

प्रल–219

राजमाला में वर्णित विशेष विशेष विवरण के साथ शास्त्र वाक्यों का सादृश्य

(प्रथम लहर)

सप्तदीप का विवरण राजमाला के प्रथम लहर 5पृ के ग्रंथारंभ में लिखा है।

चन्द्रवंशे महाराजा ययाति नृपति।
सप्तद्वीप जिनिलेक एक रथे गति।।

अर्थात सूर्यवंश में महाराजा ययति नाम के राजा थे। जिन्होनें सात द्वीपों पर विजय प्राप्त की थी। जिनके एक रथ में गति थी।(अर्थात कोई उनके रथ को रोकने वाला नहीं था)।

राजा परिक्षित के प्रश्न के उत्तर में सुखदेव ने सप्तद्वीपों के बारे में जिस आख्यायिका का वर्णन किया था, श्रीमद्भागवत् से उसके कुछ अंश दिये जा रहे हैं –

यावदवभाषयति सुरगिरिमनुपरिक्रामन् भगवानादित्यो।
बसुधातलमर्द्धेनैव प्रतपत्यर्द्धेनाच्छादयति तदाहि।।
भगवदुपासनोपचिताति पुरुष प्रभावस्तदनभिनंदन् समजेवेन।
रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्व।।
स्तरणिमनुपर्यक्रामत् द्वितीय इव पंतगः। एवं कुर्वानं प्रियव्रतमागत्य।
चतुराननस्तवाधिकरोऽयं न भवतीति निवारयामास।।
ये वा उह तद्रथचरणमेमिकृताः परिखा तास्ते सप्त सप्त सिंधव आसन्।।
यत एव कृताः स्प्तभुवोद्वीपा जम्बु प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौंच शाक पुष्कर संज्ञः।।
तेषां परिमाणं पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुतरोत्तरो यथा संख्यं
द्विगुण मानेन वहिः समन्तत उपकप्ताः।।

श्रीमद्भागवत् पंचम स्कन्ध, पहला अध्याय 29 से 32 श्लोक।

मामार्थ– महाराज उनके(प्रियव्रत के) प्रभाव की बात क्या कहूं? एक समय भगवान आदित्य जब सुमेरू पर्वत प्रदक्षिण करके लोकालोक पर्वत तक प्रकाश कर रहे थे, उससे भूमण्डल का अर्ध भाग प्रकाशमान और अर्द्ध भाग तिमिरावृत्त हो रहा था। यह अच्छा नहीं लग रहा था। तब वह राजा दिवाकर के प्रति दृष्टिपात करके लोकालोक तक प्रकाश करने के धरातल के अर्द्ध भाग में प्रकाश और बाकी अर्द्ध भाग में अन्धकार फैल रहा है – देख, यह अच्छा नहीं लग रहा था और इससे असंतुष्ट होकर उन्होनें प्रतिज्ञा किया कि मैं अपने प्रभाव से रजनी को भी दिन में बदल दूँगा। बाद में सूर्य के रथ तुल्य वेगशाली ज्योतिर्मय रथ पर आरोहण

प्रल–220

पूर्वक द्वितीय भास्कर की तरह सात बार सूर्य के पीछे की ओर भ्रमण किया अर्थात सूर्य के अस्ताचल की ओर ढलने के समय प्रियवत ने स्वयं उदयाचल में आरोहण किया। हे राजन प्रियवत का उस तरह का आचरण असंभव नहीं है, क्योंकि भगवान की उपासना से उनमें अलौकिक प्रभाव बढ़ गया था। परन्तु जब वे वैसा कर रहे थे। तब भगवान ब्रह्मा ने उनके यहाँ आगमन पूर्वक उन्हें निवारण करके कहा, वत्स, निवृत हो जाओ, यह तुम्हारा अधिकार नहीं है।

प्रियब्रत के रथ चक्र द्वारा जो सात गर्त हुए थे, वही सात गर्त सात समुद्र बन गये। इन सातों सागरों द्वारा ही सात द्वीप बने हैं। उनके नाम है, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक एवं पुष्कर।

हे राजन, इन सभी द्वीपों का परिमाण पहले के विस्तार से क्रमशः द्विगुण है। ये समुद्र के बाहर चारों ओर फैले हैं।

इन सप्तद्वीपों के बाहर एक एक समुद्र है, ये लवणयुक्त जल, इक्षुरस जल, सुरा जल, घृत जल, दधि जल, दुग्ध जल, एवं शुद्ध जल समन्वित है। ये सभी समुद्र सप्तद्वीप के परिखा स्वरूप है।

वहिष्मतिपति प्रियव्रत, एक तत्तुल्य चरित्रवान सात आत्मजों को प्रत्येक को पूर्वोक्त एक एक द्वीप का अधिपति बनाकर रखा गया था। उन सप्त पुत्रों के नाम हैं– आग्मीध्र, इध्माजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और बीतिहोत्र।

पूर्व कथित सप्तद्वीप का परिमाण फल नामोत्पत्ति का कारण, शासन कर्ता, प्राकृतिक विवरण आदि विषयों के बारे में श्रीमद्भागवत् के पाँचवें स्कन्ध में अनेक विवरण दिये गये हैं। यहाँ पर उनकी आलोचना करना असंभव है।

स्वयं के प्रति देवत्व का आरोप महाराज त्रिपुर बहुत अनाचारी एवं देवद्वेषी हुए थे। यहाँ तक कि वे अपने को देवता कहकर घोषणा करने में भी कुंठित नहीं हुए। राजमाला के त्रिपुर खण्ड में लिखा है।

1.

अपना के आपने देवता कोरे ज्ञान।	अपने को स्वयं देवता रूप करता ज्ञान।
माना कोरे अन्येयदि कोरे यज्ञ दान।।	मना करता दूसरे यदि करते यज्ञ दान।।
राज प्रल त्रिपुर खण्ड 10 पृ	राज प्रल त्रिपुर खण्ड 10 पृ

अर्थात ''अपने को स्वयं देवता समझते थे। दूसरों को यज्ञादि में दान में इत्यादि देने पर मना करते थे।

2.

अनेक बत्सर से ये छिलो एइ मते।	अनेक वर्ष यह तो था इसी मन में।
द्वापर शेषेते शिव आसिलो देखिते।।	द्वापर अंत शिव आये देखने।।
अपना होइते से ये ना जानिलो बड़ो।	अपने से बड़ा न जाना कहीं किसी कों।
कालवश होईलो राजा ना चिने ईश्वर।।	कालवश हुआ राजा ने पहचाना नहीं ईश्वर को।।
राज प्रल त्रिपुर खण्ड 11 पृ	राज प्रल त्रिपुर खण्ड 11 पृ

अर्थात ''अनेक कालों तक वह इसी तरह रहा। द्वापर युग के अंत में शिवजी उसे देखने आये। अपने से श्रेष्ठ उसने उन्हें नहीं माना। ईश्वर को नहीं पहचानकर राजा कालवश हुआ।

प्रल–221

ताहा देखि कुपित होईलो पशुपति।	यह देख कुपित हुए पशुपति।
सकल मंगल शिव नाहि अब्याहति।।	सभी मंगल हित नाहि अव्याहति।।
+ + + +	
मारिलेक शूल अस्त्र हृदय ऊपर।	मारा शूल अस्त्र हृदय ऊपर।
शिव मुख हेरि राजा त्याजे कलेवर।।	शिव मुख देख राजा त्यागे कलेवर।।
राज प्रल त्रिपुर खण्ड 11 पृ	राज प्रल त्रिपुर खण्ड 11 पृ

अर्थात – उसे देखकर शिवजी कुपित हुए। शिवजी सभी मंगलों के दाता हैं। उनसे किसी की अव्याहति नहीं है।

\+ + + +

शिवजी ने उसके हृदय पर शूल द्वारा प्रहार किया। राजा ने शिवजी का मुखावय देखते हुए प्राण त्याग किया।

धर्म विश्वास विवर्जित महाराज त्रिपुर ने हर तरह के धर्मानुष्ठानों को बन्द करके धार्मिकों के ऊपर नाना विधि अत्याचार और उपद्रव मचाकर राज्य की और प्रजाओं की दुरावस्था की थी एवं इसके फलस्वरूप जिस तरह से उनकी हत्या हुई थी, राजमाला के त्रिपुर खण्ड में इस बारे में विवरण मिलेगा।

राजमाला के अनुसार त्रिपुर महादेव जी के हाथों मारे गये थे। पुरातत्व आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय त्रिपुर राज्य में शैव सम्प्रदाय का विशेष प्राधान्य था। इस विषय को लेकर पूर्वाभाष में विस्तृत भाव से आलोचना की गई है। त्रिपुर के परलोक गमन के पश्चात भी इस राज्य में शैव धर्म बाहुल्य प्रभाव कम नहीं था। महाराज त्रिलोचन ने, जननी की शिव आराधना के फल से और उनके वर के प्रभाव से जन्म ग्रहण किया था। राजमाला का यही मत है। इन सभी विषयों की आलोचना करने से यह स्पष्ट होता है कि अधार्मिक और शिवद्वेषी त्रिपुर की शैव सम्प्रदाय के हाथों मृत्यु हुई थी। व्यक्ति हो या कोई सम्प्रदाय भी क्यों न हो, अधर्माचरण ही उनकी मृत्यु का कारण था। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

सत्य युग में अत्रि वंश में जन्में प्रजापति अंगराज–नन्दन पापात्मा वेण ने राज्य प्राप्ति के पश्चात जो धर्म विगर्हित कार्य किया था, महाराज त्रिपुर भी ठीक तदनुरूप पाप कार्यानुष्ठानकारी थे। इसके प्रमाण मिल रहे हैं। इन दोनों का चित्र करीब रखने योग्य है। वेण के चरित्र के बारे में जाना जाता है –

"स आरूढ नृपस्थान उन्नद्धोऽष्ट विभूतिभिः।
अवमेने महाभागान् स्तब्धः संभावितः स्वतः।।
एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरंकुश इव द्वीपः।
पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसीं।।
न षष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्न्मं भेरी घोषेन सर्वतः।।

– श्रीमद्भागवत् चतुर्थ स्कन्ध 14 अध्याय 4 श्लोक।

मामार्थ – वेण राजासन पर आरूढ होकर, लोकपालों के आँठो ऐश्यर्य के द्वारा दिनों दिन अधिक उद्धृत होने लगे और अपने को संभावित अर्थात मैं ही शूर, मैं ही पण्डित हूं, कहकर अभिमान से स्तब्ध होकर, महाभाग व्यक्तियों की

अवज्ञा करने लगे। इस प्रकार ऐश्वर्य मद से अन्ध और गर्वित होकर अंकुश विहीन हाथी की तरह, रथारूढ़ होकर सर्वत्र पर्यटन करते थे। उसके भ्रमण से स्वर्ग – मर्त्य प्रकम्पत होता था। इसके बाद सभी स्थानों पर भेरी द्वारा घोषणा देकर इन बातों को कहा, ''अरे ब्राह्मणों सावधान, सावधान, कभी भी यज्ञ होम आदि मत करना।'' इस तरह अपने अधिकार के बल से धर्म कर्म एकदम बन्द करा दिया।''

वेण धर्महीन मर्यादा संस्थापन के निमित्त प्रयासी हुआ। इसके फलस्वरूप राज्य में नाना तरह के उपद्रव को देखकर और धर्म लोप के अंश को उपस्थित होने पर, शंकान्वित, मारिची आदि ऋषिगणों ने उसे धर्म कार्य में रत करने के लिए प्रियवचन से बहुत उपदेश और अनुरोध किया। किन्तु जिस सुफल की प्रत्याशा से वे जिस कार्य में प्रकृत हुए थे, उस का विषमय फल उत्पन्न हुआ। श्रीमद्भागवत् में इस विषय में निम्नलिखित धारणा को व्यक्त किया है—

श्रीवेण उबाच

वालिशावत युयं वा अधर्मे धर्ममानिनः।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते।।
अवजाननत्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरं।
नानु विदंन्ति ते भद्रमिहलोके परत्र च।।
को यज्ञ पुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी।
भर्तृस्नेहविदुराणां यथा जारे कु घोषितां।।
विष्णुविरिंचो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः।
पर्ज्यन्योधनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः।।
एते चान्ये च विवुधाः प्रभवो वर शपयोः।
देहे भवंति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः।।
तस्मान्मां कर्मर्भिर्विप्ना यजध्वंगत्मत्सराः।
बलिंच सहयं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभूक् पुमान्।।
इथं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः।
अनुनीयमानस्तदग्धक्रां न चक्रे भ्रष्टमंगलः।।

श्रीमद्भागवत् चतुर्थ स्कन्ध 14 अध्याय 17—20 श्लोक।

ममार्थ— मुनियों के इन सभी उपदेशों को सुनकर वेण क्रोध से अधीर हो गया और कहा, ''अरे तुम लोग तो बडे मूर्ख हो, अधर्म को धर्म कहकर मानते हो, मैं सबका अनादिकाल से पति हूं। मुझे परित्याग कर जो उपपति के तुल्य

प्रल–223
दूसरे की उपासना करते हैं। वे अति मूढ हैं। मैं, जो नृप रूपी ईश्वर हूँ, मेरी प्रभु व तद्रूप जानकर अवज्ञा करते है किन्तु उस अपराध से इहलोक या परलोक में वे कभी भी आप लोगों का मंगल नहीं कर सकते।

अरे ऋषियों, यज्ञ पुरुष कौन है ? जैसे स्वामी स्नेह विमुख असती स्त्री उपपति के प्रति स्नेहवती होती है, उसी की तरह तुम अपने प्रभु के प्रति श्रद्धा का त्याग कर किसके प्रति इतनी भक्ति दिखा रहे हो? अरे तुम क्या नहीं जानते कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरूण, कुबेर, यम, सुर्य, मेघ, पृथिवी, जल ये सभी और दूसरे सभी देवता जो वर और श्राप प्रदान में समर्थ हैं, वे सभी इस नरपति की देह में विद्यमान हैं। इसी से राजा सर्वदेव स्वरूप है। अतएव वे ही ईश्वर है। इसके अलावा और जो है, सभी उनके अंश मात्र है।

हे द्विजगण, मैं वही राजा हूं। तुम मात्सर्य त्यागकर कर्म द्वारा मेरी ही अर्चना करो और मेरे लिए कर आदि आहरण करो मेरे अलावा और कौन आराध्य है ? उत्पत्तगामी पापात्मा वेण विपरीत बुद्धि प्राप्त कर इस प्रकार कहने से मुनियों ने पुनः विविध तरीके से विनय वाक्यों द्वारा प्रार्थना करने लगे, किन्तु वह दुरात्मा सभी मंगलों से भ्रष्ट हो गया था। उसने मुनियों की प्रार्थनानुसार कार्य नहीं किया।

इस धर्म विगर्हित दांभिकता के फलस्वरूप ऋषियों की कोप दृष्टि में पड़ गया और उन्हीं के हाथों उसकी मृत्यु हुई। हरिवंश ग्रंथ के हरिवंश पर्व में पंचम अध्याय में वेण चरित्र का वर्णन है। वह भी श्रीमद्भागवत् के वर्णना अनुरुप ही है। इसलिए यहाँ पर उसकी विस्तार से आलोचना नहीं की गई। राजमाला के साथ आख्यायिका मिलान करने पर स्पष्ट ही प्रतीयमान होगा कि त्रिपुरेश्वर महाराज त्रिपुर वेण के चरित्र का नकल करते हुए उसी की तरह पाप पंक में निम्मजित होकर ध्वंस को प्राप्त हुए थे।

द्वापर के अंत में त्रिपुर के समकालीन, कारूष या पुण्ड्र देश के अधिपति वासुदेव के पुत्र महाराज पौण्ड्रक ने ''मैं ही वासुदेव हूं'' कहकर घोषणा किया था और श्री कृष्ण के समीप निम्नोक्त वार्ता के साथ दूत प्रेरण/प्रेषण किया था–

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव नचापरः।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वस्तु मिथ्याविधां त्यज।।
यानि तमस्मचिन्हानि मौच्याद्विभर्षि सात्वत।
त्यक्त्वै हि मां त्वं शरणं नोचेद्देहि ममाहवं।।

श्रीमद्भागवत् 10 स्कन्ध 66 अध्याय 3 श्लोक।

प्रल–224

ममार्थ– भूतानुकम्पार्थ में अकेले ही वासुदेव के रूप में अवतीर्ण हुआ हूं। दूसरा कोई नहीं हुआ है। अतएव, तुम मिथ्या वासुदेव का नाम परित्याग करो। हे सात्वत् तुम मूढत्व प्रयुक्त होकर हमारे चिन्हों को धारण किये हो। उन्हें परित्याग पूर्वक आकर मेरे शरणागत बनो। अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो।

चीटियों के पर ही चरम मूल प्राप्ति की तरह, मृत्यु के लिए मदमत्त पौंड्रक के इस धर्म विगर्हित कार्यों में प्रवृत्ति ने जन्म लिया था। अंत में श्री कृष्ण के अस्त्रों के सामने उसके जीवन में देवत्व प्राप्ति की दुराकांक्षा सूझ गई। हरिवंश, विष्णु पुराण और ब्रह्म पुराण में इसका विवरण आया है।

भगदत्त भी श्री कृष्ण के प्रति विद्वेषी थे। किन्तु वे स्वयं को देवता कहकर घोषणा नहीं की। इन सभी विषयों की आलोचना से समझा जाता है शैव धर्म प्रवाहित पूर्व भारत पहले तो श्री कृष्ण को स्वीकार करने में कुंठित थे। बाद में उत्तरोत्तर उस अचंल में वैष्णव धर्म प्रतिष्ठित हुआ था।

यहाँ पर और एक आश्चर्यजनक सादृश्य परिलक्षित होता है, वेण और त्रिपुर जिस तरह पापाचारी थे, वेण के पुत्र महाराज पृथु और त्रिपुर के पुत्र त्रिलोचन उसी तरह धार्मिक प्रजा रजंक एवं उनके सद्ज्ञानान्वित होने के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। दुख दावानल दाहनांत में सुशीतल शांति का पानी सिंचन होता है, वह विधि के विधान में ही है। जिसके प्रसाद से घने अधंकार में शांतिमय स्निग्ध ज्योति विद्यमान है– पाप के ताण्डव अभिनय के बाद पुण्य का पवित्र ज्योति स्फुरण, उसी करूणामय के विचित्र विधानों में है।

विष्णु संक्रमण में श्राद्ध त्रिलोचन खण्ड में महाराज त्रिलोचन के धर्म कार्यानुष्ठान के बारे में आलोचना में कहा गया है

बिषु संक्रमने पितृलोक श्राद्ध कोरे।	पितृ लोक का श्राद्ध करें जब बिषु संक्रमण।
ब्राह्मणे अन्नादि दान प्राते निरन्तरे।।	प्रातः निरंतर ब्राह्मणों को अन्नादि दान।।
राज प्रल त्रिलोचन खण्ड 33 पृ	राज प्रल त्रिलोचन खण्ड 33 पृ

अर्थात विष्णु संक्रमण में पितृलोक का श्राद्ध किया जाता है। रोज सबेरे अन्नादि दान किया जाता है।

यह विष्णु संक्रमण और विषुव संक्राति एक ही बात है। शास्त्रों में जिस समय दिनमान और रात्रिमान समान होता है अर्थात चैत्र महीने के अंत के दिन, जब सूर्य मीन राशि अतिक्रमण करके मेष राशि एवं अश्विन महीने के शेष दिन में जिस समय

प्रल–225
सूर्य कन्या राशि से तुला राशि में गमन करते हैं उसी समय को विषुब कहा जाता है। प्रतिलोम और अनुलोम गति से इसका हिसाब लगाया जाता है। इस बारे में ज्योर्तिवचन नीचे दिया जा रहा है –

"मेषसंक्रमतः पूर्वं पश्चात् तारा दिनांतरे।
प्रतिलोम्यानुलोम्येन विषुवारंभणं भवेत्।।
विषुवारंभणं यत्र समं मानं दिवानिशोः।"

शास्त्रों के अनुसार विषुब संक्रांति श्राद्ध के लिए प्रशस्त मानी जाती है। याज्ञवल्क संहिता में है –

"आमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयन द्वयम्।
द्रव्यं ब्राह्मण सम्पत्तिविषुर्वियुवत् सूर्य संक्रमः।।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्र सूर्ययोः।
श्राद्धं प्रतिरूचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्त्तिताः।।'

याज्ञवल्क संहिता प्रथम अध्याय 217 / 18 श्लोक।

ममार्थ – अमावस्य, अष्टका, वृद्धि, अपर पक्ष, दक्षिणायण, संक्रान्ति, उत्तरायण संक्रांति, कृष्ण सारादि, मृगप्राप्तिकाल, ब्राह्मण संपत्ति प्राप्ति काल, मेष और तुला संक्राति(विष्णु संक्रांति), सामान्य संक्रांति, व्यतिपात योग, गजच्छाया(चन्द्र मघा नक्षत्र में या सूर्य हस्त नक्षत्र में रहने पर यदि त्रयोदशी तिथि हो), चन्द्र और सूर्य ग्रहण एवं जिस समय श्राद्ध करने की विशेष इच्छा हो उस समय को श्राद्ध काल कहते हैं।

गज–कच्छप युद्ध विवरण

महाराज त्रिलोचन के पुत्र दृक्पति और दाक्षिण में पितृ राज्य लेकर विवाद उपस्थित होने पर इस उपलक्ष्य में युद्ध भूमि में बहुत लोकक्षय हुआ था। इस युद्ध के बारे में राजमाला में लिखा है –

एईमते युद्ध कोईलो सर्ब सहोदर।	इस तरह युद्ध किये सभी सहोदर मिलकर।
गज कच्छपेर मतो जूझिलो विस्तर।।	गज कच्छप की भांति जूझे विस्तृत परस्पर।।
आत्म कलह भातृ धनेर जन्य हय।	आत्म कलह धन के लिए हुआ वहां।
पितृ धन जन हेतू बहु सेना क्षय।।	पितृ धन जन के लिए बहुत सेना मरी जहां।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36 पृ।

प्रल–226

अर्थात – ''इसी तरह सभी भाईयों में युद्ध हुआ। गज कच्छप की तरह भयानक युद्ध हुआ। भातृ धन के लिए आत्म कलह शुरू हुआ। पितृ धन और जन के लिए बहुत सी सेनायें मारी गई।''

गज कच्छप के युद्ध के साथ इस युद्ध का विशेष सादृश्य है। दोनों युद्ध ही पैतृक सम्पत्ति लेकर भ्राताओं में हुआ था।

गज कच्छप युद्ध का विवरण महाभारत में आया है। इससे जाना जाता है खगराज गरूड क्षुधार्त होकर अपने पिता, कश्यप के यहाँ आहार्य प्रार्थी होने पर उन्होनें कहा था –

कश्यप उवाच –
इदंसरो महापुण्यं देवलोकेऽपि विश्रुतम्।।
यत्र कुर्माग्रजं हस्ती सदा कर्यत्यवांमुखः।
तर्योजन्मांतरे वैरत सम्प्रवक्ष्याम्य शेषतः।।
तन्में तत्वं निवोधस्व यतप्रमाणौ च ताबुभौ।
आसीद्विभावसुर्नाम महर्षिः कोपनो भ्रिशम्।।
भ्राता तस्यानुजस्चासित् सुप्रतिको महातपाः।
स नेच्छति धनं भ्राता सहैकस्थं महामुनिः।।
विभागं कीर्त्यत्येव सुप्रतीको हि नित्यशः।
अथब्रविच्चतं भ्राता सुप्रतीकं विभावसुः।।
विभागं बहबो मोहत् कुर्तमिच्छन्त नित्यशः।
ततो विभक्तास्त्यन्यऽन्यं विक्रुधन्तऽर्थ मोहिताः।।
ततः स्वार्थपरान् मूढान् प्रथग् भूतान् स्वकैध नैः।
विदित्वा भेदयन्तेतान मित्रा मित्ररूपिणः।।
विदित्वा चापरे भिन्नानंतरेषु पदतन्तथ।
भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते।।
तस्माद् विभागं भ्रातृणां न प्रशंसन्ति साधवः।
गुरूशास्त्रऽनिबद्धनामन्योन्येनाभिशंकिनाम्।।
नियन्तं न हि शक्यस्तं भेदतो धनमिच्छसि।
यस्मात् तस्मात् सुप्रतीक हस्तित्वं समवाप्यससि।।
सप्तस्तेवं सुप्रतीको विभावसुरथाब्रबीत्।
त्वमप्यन्त जलचरः कच्छपः संभ बिष्यसि।।
एवमन्योन्यशापात् तौ सुप्रतीक विभावसु।
गजकच्छपतां प्राप्तावर्थार्थं मूढ चेतसौ।।
रोष दोषानुसंगेन तिर्यग्योनिगतावुभौ।
परस्पर द्वेशरतौ प्रमाण बलदर्पितौ।।
सरस्यस्मिन् महाकायै पूर्व बैरानुसारिणौ।
तयोरन्यतः श्रीमान् समुपैति महागजः।।

प्रल–227
यस्य बृंहति शब्देन कूर्मोऽप्यन्तर्जलेशयः।
उत्थितोऽसौ महाकायः कृत्स्नं विक्षोभयन् सरः।।
यं दृष्टवा वेष्टित करः पततोष गजो जलम्।
दंत हस्ताग्रलांगुल पाद वेगेन वीर्यवान्।।
विक्षोभयं स्ततो नागः सरो बहु ऋषाकुलम्।
कूर्मोअप्यभ्युद्यतशिरा युद्धायाभ्येतिवीर्यवान्।।
षडच्छ्रितो ये जनानि गजस्ताद्विगुणायतः।
कूर्मस्त्रियोजनोत्सेधो दस योजन मंडलः।।
ताबुभौ युद्ध सम्मत्तो परस्पर वधैषिनौ।
उपयुज्याशुण्ड कर्मेदं साधयेहित मात्मनः।।
महाभ्रमणशकांशं तं भुक्त्वामृतमानय।
महागिरि समप्रख्यं घोररूपंच हस्तिनम्।।

महाभारत आदिपर्व 29 अध्याय 13–32 श्लोक।

मामार्थ – महर्षि कश्यप ने कहा, वत्स्य कुछ ही दूरी पर वह जो पवित्र सरोवर देख रहे हो। वह देवलोक में भी विख्यात है। वहाँ पर तुम देखोगे। एक हाथी अवामुंख होकर कूर्म रूपी अपने ज्येष्ठ सहोदर को आकर्षण कर रहा है। उनके आकार का परिमाण और जन्मांतरीण बैर वृतान्त में आद्योपांत वर्णन कर रहा हूं – श्रवण करो।

विभावसु नाम के अति कोपन स्वभाव के एक महर्षि थे। उनके कनिष्ठ सहोदर महातपाः सुप्रतीक भ्राता के एकसाथ होकर रहने में नितान्त अनिच्छुक थे। इसलिए वे अपने ज्येष्ठ भ्राता के यहां सर्वदा पैतृक धन के बँटवारे की बात उत्थान करते थे। एक समय विभावसु ने क्रुद्ध होकर सुप्रतीक से कहा, देखो बहुत से लोग मोहवश होकर पैतृक धन के बँटवारे की अभिलाषा करते हैं। किन्तु धन के विभाजन के बाद मदमस्त होकर परस्पर विरोध खड़ा करते हैं। स्वार्थवश मूढ व्यक्ति अपने धनदि पर अधिकार पा लेने के बाद शत्रु पक्ष मित्र भाव से प्रवेश करके उनमें आत्म विच्छेद पैदा कर देते हैं। क्रमशः दोष दर्शाते हुए परस्पर में रोष वृद्धि और बैर भाव को बद्धमूल कर देते हैं। ऐसा होने पर उनके सर्वनाश की ही संभावना रहती है। इस भ्राताओं में धन का विभाजन साधु सज्जनों का अभिप्रेत नहीं है किन्तु तुम नितान्त अनभिज्ञ की तरह बारम्बार उत्थान करते हो। मैं तुम्हे बारण(निषेध) करने पर भी तुम कर्णपात नहीं करते। अतएव तुम बारण–योनि(हस्ती) प्राप्त होओगे। सुप्रतीक ने इस तरह शाप ग्रस्त होकर विभावसु को कहा, तुम कच्छप योनि में प्राप्त होगें।

इस तरह सुप्रतीक और विभावसु पारस्परिक श्राप के प्रभाव से गजत्व और कच्छपत्व

प्रल–228

योनि प्राप्त हुए हैं। अब वे रोष–दोष तिर्यग् योनि प्राप्त हैं। परस्पर विद्वेषरत और शरीर के गुरूत्व और बल दर्प से दर्पित होकर जन्मातंरीण बैर के अनुसार इस सरोवर में हैं। वह देखो गज की बृहंति शब्द से महाकाल कच्छप सरोवर को आलोडित कर जल मध्य से ऊपर उठ रहे हैं। गज उसे देखकर अपने अति विशाल शुण्ड दण्ड उठाकर अस्फालनपूर्वक जल में अवगाहन करा रहा है। उसका शुण्ड, पूंछ और चारों पैरों के संचालन से सरोवर विक्षोभित हो रहा है। अतिपराक्रांत कूर्म भी अपना मस्तक उठाकर युद्ध के लिए आगे बढ़ रहा है। गज का कलेवर छह योजन उँचा है और द्वादस योजन लम्बा है। कुर्म तीन योजन उँचा और उसकी परिधि है दस योजन। हे वत्स, वे परस्पर के विनाश में कृत संकल्प होकर युद्ध में मत हो उठे हैं। उन्हें भक्षण कर अपनी अभीष्ट को सिद्ध करो।

इस तरह गरूड के उदरस्थ होने पर गज कच्छप का विवादों का निवारण हुआ था। वर्तमान काल के हस्ती और कच्छप के पारस्परिक आकारों को वैषम्य देखकर यह युद्ध असंभव सा लगेगा, उन दिनों के कच्छप इस समय के हाथी से छोटे नहीं थे। हिमालय के पास शिवालिक पर्वत पर प्राप्त प्रस्तरीभूत कच्छप का कंकाल जिन्होनें देखा है वे जानते हैं, वह कंकाल बृहदाकार हाथी से किसी माने में छोटा नहीं है।

———————————— + ————————————

यदुवंश ध्वंस का विवरण राजमाला के दाक्षिण खण्ड में हम देखते हैं – महाराज दाक्षिण की सेनायें सुरामत होकर परस्पर काट काट मार मार करके ध्वंस हो गई थी। इस बारे में राजमाला में है –

मद्य मांसे रत सब गोयार प्रकृति।	मद्य मांस रत सभी गंवार प्रकृति।
तृण प्राय देखे तारा गजमत्त–मति।।	तृण सम देखे सभी मद मत्त हस्ति।।
त्रिपुरार कुले पुनः बहु बीर होइलो।	त्रिपुरा के कुल में पुनः हुआ बहुत से वीर।
मद्य पान कोरि सबेकलह कोरिलो।।	मद्य पान कर, करते सभी महाकलह गम्भीर।।
तुमुल होइलो युद्ध घोर परस्पर।	पुनः हुआ तुमुल युद्ध घोर परस्पर।
ताहा निबारिते नाहि पारे नृपबर।।	रोक न सके उन्हें स्वयं त्रिपुरेश्वर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ।

प्रल–229

आत्मकुल कलहेते महायुद्ध छिलो।	आत्म कुल कलह से वहां महायुद्ध हुआ।
पड़िलो अनेक बीर रक्ते नदी होइलो।।	मरे अनेक वीर नदी का खून बहा।।
तर्जन गर्जन कोरे बड़ अहंकार।	तर्जन गर्जन करते फैला महा अहंकार।
अस्त्राघाते पड़े जतो नाहि सीमा तार।।	अस्त्राघात पड़े कितने, सीमा नही उसकी ।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 37 पृ।
+ + + +	+ + + +
यदुवंश क्षय जेनो मुहूर्तेके होइलो।	यदुवंश का क्षय जैसे हो गया क्षण में।
चिंताए विकल राजा सर्ब सैन्य मोइलो।।	चिंता में विकल राजा, सारी सेना मरी रण में।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 38 पृ।

अर्थात – ये सभी मद्य मांस रत थे और गँवार प्रकृति के थे। मत हाथियों को भी वे तृण के समान देखते थे। त्रिपुरा में पुनः बहुत से वीर पैदा हुए और मद्यपान करके आपस में कलह किया। परस्पर में तुमुल और घोर युद्ध हुआ। उसे राजा भी रोक नहीं सके। आत्म कलह से महा युद्ध हुआ। बहुत से वीर खेत रहे और उनका रक्त जैसे नदी ही हो गया। अहंकार से तर्जन गर्जन करने लगे और कितने मरे इसकी कोई सीमा नहीं रही।

\+ + + +

यदुवंश का ध्वंस क्षण में हो गया। राजा चिन्ता में विकल हो गये। उनकी सारी सेनायें मर चुकी थी।

यदुवंश ध्वंस के साथ इस सैन्य क्षय का विशेष सादृश्य है, इसलिए उपमा के कारण यदुवंश की बात प्रासांगिक रूप से आई है। यदुकुल निर्मूल का विवरण महाभारत में जो मिलता है। उसके अंश यहा उद्धृत किया जाता है –

वैशम्पायन उवाच –
विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम्।
सारण प्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकां गतान्।।
ते तान् साम्बं पुरष्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा।
अब्रुबन्नुपसंगम्य दैवदण्ड निपीडितः।।
इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः।
ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिश्यति।।
इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भ प्रधर्षिताः।
प्रत्यब्रुवंस्तान् मुनयो यत्तच्छृनु नराधिप।।
वृष्ण्यंधक विनाशय मूषलं घोरमायसम्।
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति।।
येन युयं सुदुवृर्ता नृशंसा जातमन्यवः।
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमूते राम जनार्दनौ।।

– महाभारत मूसल पर्व प्रथम अध्याय 15–20श्लोक।

ममार्थ – "वैशम्पायन ने कहा, महाराज एकदा महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारद द्वारका नगर में आये। सारण आदि कुछ महावीर उनके दर्शन कर देव दुर्विपाक वशतः साम्ब को स्त्री वेश पहना कर उनके यहाँ जाकर कहा, हे महर्षिगण ये अमित पराक्रम वभ्रु की पत्नी है। महात्मा वभ्रु ने पुत्र प्राप्ति के लिए बहुत ही अभिलाषी हुए हैं। अतएव, आप लोग बताइये कि ये क्या प्रसव करेगी।"

सारण आदि वीरगणों के इस बात को कहने पर वे सर्वज्ञ ऋषिगण अपने को

प्रल–230

प्रताड़ित समझकर रोषपूर्वक उन्हें सम्बोधन करके कहा, दुवृत्तों यह वासुदेव तनय साम्ब, वृष्णि और अंधक वंश विनाश के निमित्त घोरतर लौहमय मूसल प्रसव करेगा। इस मुसल के प्रभाव से महात्मा बलदेव और जनार्दन को छोड़ कर यदुवंश के सभी एक साथ नष्ट होगें।''

यह अमोघ शाप ही यदुवंश ध्वंस का कारण हुआ था। यादवगणों ने इस अभिसम्पात से बचने के लिए चेष्टा की त्रुटि नहीं की। साम्ब के मुसल प्रसव करने पर वह राज पुरुषों द्वारा चुर्णित होकर समुद्र में निक्षिप्त हुआ एवं मदिराक्त यादवों को सतत सतर्क रखने के अभिप्राय से, और कृष्ण की अनुज्ञा से, उनमें सुरा बनाना और व्यवहार बन्द हुआ, किन्तु वह अधिक काल स्थायी नहीं हुआ। कुछ दिनों के पश्चात वे सभी इतने उच्छ्रंखल हुए कि भगवान वासुदेव के सामने सुरापान करने से नहीं हिचकते थे।

यादव, श्री कृष्ण के उपदेशानुसार सपरिवार प्रभास तीर्थ में गये। वहाँ पर सुरामत सात्विकी और कृतवर्मा में कलह उपस्थित हुआ और वह कलह अंत में भयानक युद्ध में बदल गया। मदिरा विभोर भोज और अंधकगण मत्ता में एक–एक पक्ष का अवलम्बन कर, दोनों ओर से तुमुल संग्राम हुआ।

इस युद्ध में –

बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः।
हतं दृष्टवा तु शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः।।
एरकानां तदा मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः।
तद्भुष्मुषलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम्।।
जघान कृष्णस्तां स्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन्।
ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा।।
जघुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः, काल चोदिताः।
यस्तेषामेरकां कश्चिर्जग्राह कुपितो नृप।।
वज्र भूतेन सा राजन्नदृश्यत तदा विभो।
तृणं च मुषलीभुतमपि तत्रव्यदृश्यत।।
ब्रह्मदण्ड कृतं सर्वमिति तद्विद्धिपार्थिव।
अविद्धयान् विध्यते राजन् प्रक्षिपन्तिस्म यत्तृणम्।।
तद्वज्रभूतं मूषलं व्यदृश्यत तदा दृढम्।
अवधीत् पितरं पुत्रः पितापुत्रं च भारत।। इत्यादि।

महाभारत मूसल पर्व तृतीय अध्याय 35 से 41 श्लोक।

प्रल–231

रण क्षेत्र में कबन्ध दर्शन

मूल ग्रंथ के 58पृ, "गौड के साथ युद्ध", अध्याय में गौडेश्वर के साथ महाराज छें थुम फा के युद्ध विवरण में लिखा गया है –

दुई दण्ड बेला उदय होइलो महारण।	दो दण्ड बेला पर शुरु हुआ महारण।
एक दण्ड बेला थाके सन्ध्या तत्क्षण।।	एक दण्ड बेला अंत संध्या आई तत्क्षण।।
एमत समय राजार उर्द्ध दृष्टि होइलो।	इसी समय राजा की आँखे गई उधर।
देखिलो गगने एक कबन्धे नाचिलो।।	देखा गगन में कबन्ध एक नाचता थर थर।।
ताहा देखिया सैन्येर लोमान्वित होय।	यह देख सैन्य रोमांच हुआ बड़ा।
एक दण्ड नाचि मुण्ड भूमिते पडय।।	एक दण्ड नाचा मुण्ड फिर भूमि पर पड़ा।।
राम कृष्ण नारायण नृपति स्मरिलो।	राम कृष्ण नारायण को नृपति ने किया स्मरण।
रामायण प्रमाण जे राजाये बलिलो।।	राजा ने कह दिया प्रमाण है रामायण।।(2)
एक लक्ष नर यदि युद्ध कोरि मरे।	एक लक्ष नर यदि मर जाये रण में।
तबे से कबन्ध नाचे गगन ऊपरे।।	तो कबन्ध एक नाचता है गगन ऊपर में।।
राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 58 पृ	राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 58 पृ।

अर्थात दो दण्ड बेला होने पर महारण शुरू हुआ और एक दण्ड दिन रहने तक युद्ध चलता रहा। इसी समय राजा की दृष्टि ऊपर की ओर गई। उन्होनें आकाश में एक कबंध को नाचते देखा। यह देखकर सेनाओं का रोमांच हुआ। एक दण्ड तक नाचने के बाद वह मुण्ड नीचे गिर पड़ा। राम, कृष्ण नारायण को राजा ने स्मरण किया। राजा ने कहा कि रामायण में इसके प्रमाण हैं। एक लाख मनुष्य जब युद्ध में मरते हैं तो एक कबंध आकाश में नाचता है।

किसी किसी रामायण में रण क्षेत्र में कबंध दर्शन का उल्लेख मिलता है। किन्तु राजमाला की युक्ति के साथ कुछ मत वैषम्य है। इस ग्रंथ के अनुसार एक लाख सैन्य क्षय होने पर रण क्षेत्र में कबन्ध दिखाई देता है। साधक कवि महात्मा तुलसीदास ने कहा है कि दस कोटि सैन्य विनाश होने पर एक कबन्ध समर प्रागंण में नृत्य करता है।

उनकी उक्ति है –

मरे कोटिदस पयदर जबंहि।
नाचत एक कबन्ध रण तबंहि।।
नृत करतः जब कोटि कबन्धा।
तब एक खेचर उठत निबन्धा।।
खेचर कोटि नाचहिं निह कंटा।
तब एक धनुकर बाजत घंटा।। आदि

तुलसीदास रामायण लंका कांड

अद्‌भुत रामायण में है, उग्रचण्डा रूपिनी सीता रंणागन में सहस्त्र कन्ध रावण को वध करके उसके मुण्ड को लेकर मातृका गणों के साथ क्रीडा में प्रवृत्त

प्रल—232
हुई थी। उस समय —
न कोऽपि राक्षसस्तत्र करपाद शिरोषुतः।
कबन्धा ये च नृत्यंति तेषां पादा प्रतिष्ठिताः।।
कबन्धं रावणस्यापि नृत्यन्तं च व्यलोकयत्।
तद्दृष्ट्वा सुमहाघोरं प्रेतराजपुरोपमम्।।
अद्भुत रामायण 24 सर्ग 35/36 श्लोक।

———————————————

| मंडल | राजमाला के प्रथम लहर के मूलांश के शिव वाक्य में है —

एई जे मण्डले तुमि महाराजा होइला।	यह जो मण्डल है जहां तुम हुए महाराजा।
जिनिबा सकल राजा आमा बर पाइला।।	दिया वर हमने जीतेगें सभी राजा।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 32 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 32 पृ।

मण्डल शब्द संस्कृत भाषा से आया है एवं यह बहु प्राचीन शब्द है। वैदिक ग्रंथादि में भी इसका उल्लेख है।

प्राचीन काल में विस्तृति ज्ञापक भुक्ति, मण्डल और खण्डल आदि शब्द प्रचलित थे। ''मण्डल की विस्तृति'' भुक्ति से छोटा है एवं खण्डल से बड़ा है। मण्डल नामक विभाग उन दिनों द्वादस राज के नाम से नाम से अभिहित होता था। यथा —
''साल्मण्डले द्वादस राजके च।
देशे च बिम्बे च कदम्बके च।।''

मण्डल का विवरण मनु संहिता में, अमर टीका में एवं मेदिनी कोष में मिलता है। ब्रह्मबैवर्त्त पुराण में इसकी विस्तृति के बारे में लिखा है —
''चतुर्योजन पर्यन्तमधिकारं नृपस्य च।
यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वर।।''
ब्रह्मबैवर्त्त पुराण 86 अध्याय।

उद्धृत श्लोक में मण्डल का परिमाण फल के साथ मण्डलेश्वर का उल्लेख मिलता है। अभिधान में ''मण्डलेश'' ''मण्डलेश्वर'' और ''मण्डलाधिपति'' आदि शब्द मिलते हैं। मण्डलेश्वरगण के विशेष समृद्ध एवं शक्तिशाली होने का भी अनेक परिचय उपलब्ध हैं। एक उदाहरण दिया जा रहा है —
''उपतेः कोष दण्डाभ्यां सामात्यः सह मंत्रिभिः।
दुर्गस्थश्चितंयेत् साधु मण्डलं मण्डलाधिपः।।''
कामन्दकीय नीतिसार(8/1/1)

प्रल–233

इस श्लोक में हमें मिलता है, मण्डलाधिपति का कोष, दण्ड, अमात्य, मंत्री और दुर्गा आदि सहाय थे। अतएव, इसके द्वारा मण्डलाधिपति का शासन तंत्र पुर्णांग रहने का प्रकृष्ट परिचय मिलता है। पूर्वोधृत ब्रह्मबैवर्त्त पुराण के वाक्य द्वारा जाना जाता है कि नृप या राजोपाधिकारी व्यक्तियों से मण्डलेश्वर का अधिकार सौ गुणा अधिक था। वे ''परमेश्वर'', परमभट्टारक, राजाधिराज के(सम्राट के) सामंत थे। एवं उन दिनों उनका सम्मान और प्रतिपत्ति असाधारण थी।

किसी किसी के अनुसार, मण्डलेश्वर राजचक्रवर्ती(सम्राट) की उपाधि थी। शब्द कल्पद्रुम का भी यही मत है। उस ग्रंथ में लिखा है ''सम्राट या मण्डलेश्वरः। यो मण्डलस्य........ द्वादस राज मण्डलस्य ईश्वरः।'' प्राचीन विवरणों की आलोचना करने से यही ज्ञात होता है कि चार योजन परिमित स्थान के अधिपतियों को नृप या राजा, बारह राजा के अधिपतियों को मण्डलेश्वर या मण्डल एवं बारह मण्डलेश्वरों के अधिपति व्यक्ति को राजचक्रवर्ती या राजाधिराज या सम्राट कहा जाता था। सभी मण्डलेश्वर सम्राट के सामंतो में गिने जाते थे। ये भूमि के अधिपति थे, इसलिए इनकी उपाधि भौमिक भी हुई है। भौमिक शब्द काल क्रम से भुइयाँ हो गया है। द्वादस भौमिक या बारह भुइयाँ उपाधि मण्डलेश्वर उपाधि के बदले प्रचलित हुई थी।

शासन की सुविधा के लिए यह प्रणाली पाश्चात्य देशों में गृहीत हुई थी। ग्रीस के इतिहास में ''डोडेको पोलिस'' या द्वादस विभाग के बारे में विवरण मिल रहा है। मध्य युग के इउरोप(यूरोप) में फिउडेल प्रथा **(Feudal System)** प्रवर्तित हुई थी। ये सारी प्रथायें भारतीय शासन प्रणाली के अनुसरण से ही हुई हैं। यह एक सहज बोधगम्य बात है।

त्रिपुरा स्वाधीन राज्य होने पर भी राजमाला के रचियता ने उन दिनों के प्रथानुयायी ''मंडल'' शब्द का उल्लेख किया है। मूलतः इसका संगत व्यहार कहा नहीं जा सकता। संभवतः भारत सम्राट के अधीन राज्यपाद करके ही शायद मण्डल शब्द को व्यवहार किया गया है।

बंग देश में अब भी ''मण्डल'' शब्द का प्रचलन है। पर द्वादस भौमिक से उत्पन्न भुईयाँ शब्द जैसे वर्तमान काल में भद्र समाज में सम्मान सूचक उपाधि हो गया है। इसके अलावा निम्न समाज में गाँव के प्रधान व्यक्तियों ने मण्डल उपाधि को प्राप्त किया है। काल प्रभाव से देश और समाज के अवनति के साथ सम्मानजनक उपाधियाँ भी अवनत स्थान या पात्र को आश्रय में आई।

———

प्रल—234

देवता का दर्शन लाभ

प्रथम लहर में महाराज त्रिलोचन द्वारा चतुर्दश देवता की अर्चना के बारे में कहा गया है —

शिब आज्ञा अनुसारे चंताई नृपति।	शिव आज्ञा अनुसार चंताई नृपति।
क्षीरोदेर तीरे गेलो अति शीघ्रगति।।	क्षीर सागर तीर गये अति शीघ्र गति।।
यथाते आछये विष्णु गोलोकाधिकारी।	जहां हैं विष्णु गोलोकाधिकारी।
अनंतरे शयया परे बसिछेन हरि।।	अनंत की शैया पर बैठे हैं हरि।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 29 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 29 पृ।
+ + + +	+ + + +
चंताई राजा के द्वारे राखि गेलो आगे।	राजा को द्वार पर आगे रखा चंताई ने।
शिब आग्या अनुसारे कहिबार लागे।।	शिव आज्ञा अनुसार कहने लगा।।
चंन्ताई आसिछि प्रभू राजा रहे द्वारे।	चन्ताई आए और प्रभू राजा रहे द्वार।
वार्षिक पूजन नाथ पूजिबार तरे।।	यह वार्षिक पूजन है नाथ, पूजा का दरबार।।
सुनिया हासिलो प्रभु त्रिभुवनपति।	सुनकर हंसे प्रभु त्रिभुवन पति।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 30 पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 30 पृ।

अर्थात — ''शिव आज्ञा के अनुसार चंताई और राजा शीघ्र गति से क्षीर सागर गये। जहाँ गोलोक बिहारी विष्णु हरि अन्नतनाग की शैय्या पर बैठे है।

\+ + + + + + + +

चंताई, राजा को द्वार पर रखकर, शिव आज्ञा के बाद, कहने के लिए भीतर गये। चंताई ने कहा मैं आ रहा हू प्रभु। राजा को द्वार पर रखा हूं और वार्षिक पूजा करने की बात जब उसने कहा तो त्रिभुवन पति ने मुस्कुरा दिया।''

अन्यत्र में मैछिली राज्योपख्यान में है —

आषाढ़ मासरे शुक्ला अष्टमी तिथिते।	आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी तिथि में।
पूजा गृहे गेले राजा चन्ताई सहिते।।	पूजा गृह गये राजा ले चन्ताई को साथ में।।
चतुर्दश देवताके प्रत्यक्ष देखिलो।	चतुर्दश देवता का किया प्रत्यक्ष दर्शन।
जार जेई निजासने बोसि प्रजा लोइलो।।	प्रजा लिया देवों ने बैठे स्व स्व आसन।।
बर मागिलेन राजा पुत्रेर कारणे।	वर माँगा राजा ने पुत्र के कारण से।
ना होइबो तब पुत्र कहे त्रिलोचने।।	न होगा तुम्हारा पुत्र कहा त्रिलोचन।।
क्रोध होइलो नृपति मृत्यु ना जानिलो।	क्रोध वश नरपति ने न जाना अपनी मरण।
मारिलो शिवेरे तीर पायेते पडिलो।।	मारा तीर शिव को जो गिरा जाकर चरण में।।
+ + + +	+ + + +
ताहा सुनि शिबे कोहे चन्ताइर प्रति।।	यह सुन शिव ने कहा चन्ताई से।।
कलियुगे जतो लोक होइबो पापमति।	कलियुग में लोग रहेगें पाप मति से।
देखा नाहि दिब आमि पुजार समय।।	दर्शन नहीं दूँगा मैं पूजा के समय।।
पदचिन्ह पाइबेक जे सबे पूजय।	पद चिन्ह पायेंगें जो पूजेंगें निश्चय।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड खण्ड 44 पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड खण्ड 44 पृ।

अर्थात— ''आषाढ़ महीने की शुक्ला अष्टमी तिथि में राजा चंताई के साथ पूजा गृह में गये। चतुर्दश देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन किया। अपने अपने सिंहासन पर बैठकर देवताओं ने पूजा को ग्रहण किया। राजा ने शिवजी की पुत्र हेतु वर प्रार्थना की और शिवजी ने कहा ''तुम्हें पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी''। अपने मौत को उसने नहीं पहचाना और क्रोधवश भगवान शंकर पर तीर मारा। तीर उनके पैरों के यहाँ गिर पड़ी।

\+ + + + + + + +

इन इन बातों को सुनकर शिवजी ने कहा कलियुग में जितने लोग पापमति होगें मैं उन्हें अब दर्शन नहीं दूँगा। हाँ, जब लोग पूजा करने आयेगें — मेरा पद चिन्हों का उन्हें दर्शन होगें।

उद्धृत वाक्य, वाक्यवालियों की आलोचना से जाना जाता है कि उन दिनों लोग देवता के दर्शन

प्रल–235
एवं देवताओं के साथ वाक्यालाप करने के अधिकारी थे। राजमाला रचियता की यह उक्ति अपनी मानसिक उपज नहीं है – ये शास्त्र सम्मत बातें है।। महर्षि नारद देवलोक में गमन करते थे। देवताओं के साथ बातचीत करते थे। बहुत समय अनेक तरह के संवाद प्रदान द्वारा देवताओं को तुष्ट या रूष्ट भी करते थे। इस तरह की बातें शास्त्रो में प्रायः ही पाई जाती हैं। केवल नारद ही क्यो, उस समय सभी महापुरुषों के लिए देवलोक का द्वार खुला रहता था। इस तरह के दृष्टांत के भी अभाव नहीं है। देवार्चन के समय देवता का दर्शनालाभ एवं वर प्रार्थना की बातें भी शास्त्रों में बहुत हैं। परिवर्ती दिनों में धर्म भाव की शिथिलता के साथ साथ देवताओं का दर्शन लाभ मानव समाज के लिए असंभव हो गया है।

उद्धृत वाक्य में हम देख रहे हैं कि चंताई ने राजा को द्वार पर रखकर विष्णु के मंदिर में प्रवेश किया था। स्कन्ध पुराण के विष्णु खण्ड 23 अध्याय में ठीक इसी तरह का एक वर्णन आ रहा है। इसमें है, तपोधन नारद महाराज इन्द्रद्युम्न को लेकर ब्रह्मा के साथ मिलने गये थे। वे सभी राजा को द्वार पर रखकर ब्रह्मा से मिलने भीतर गये थे।

कलियुग में देवता का दर्शन नहीं होगा यह महादेव का यह वाक्य राजमाला में लिखा गया है। स्कन्ध पुराण में भी इसके अनुरूप वाक्य हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र में बालूका राशियों द्वारा देवतागण विकल इन्द्रिय होकर भगवान के दर्शन के लिए प्रार्थना करने पर प्रत्यादेश हुआ था –

"अशरीरा तदावाणी पुनः प्रादुर्वभुवह।। ।17।
अत्त्रर्थे भोः सुरा यत्नं कर्त्तुमर्हत मा वृथा।
अद्य प्रभृति देवस्य दर्शनं दुर्लभं भुवि।। ।18।
तत्र स्थानेऽपितं नत्वा तद्दर्शन फलं लभेत।
स्वयंभुवोऽन्तिकं गत्वा हेतुं ज्ञास्यथ निश्चितम्।। ।19।

स्कन्ध पुराण विष्णु खण्ड नवम् अध्याय।

ममार्थ – सहसा आकाशवाणी हुई, भगवान पुनराविर्भूत होगें। हे देवताओं, इसके लिए अब बृथा यत्न मत करो। अद्यावधि पृथ्वी में भगवान दर्शन दुर्लभ होगें। इस क्षेत्र में उन्हें प्रणाम करने से, उनके दर्शन का फल प्राप्त होगा। इस घटना का कारण ब्रह्मा के यहाँ जाकर निशिचित रूप से ज्ञात करो।"

इन सभी वाक्यों द्वारा बहुत से लोग धर्म जगत के इतिहास में तीन युगों की कल्पना करते हैं प्रथम युग – अंधकार मिश्रित आलोक का युग। इस समय मनुष्यगण देवताओं का दर्शन करते हैं। उनके साथ बातें करते हैं। यह भी कहा जाता है। अति

अस्पष्ट ऐतिहासिक स्मृति के साथ कल्पना विजड़ित युग है। द्वितीय युग —ऐतिहासिक स्मृति कुछ स्पष्ट है, तथापि कल्पना प्रवण है। इस काल में देवताओं का न दर्शन होने पर भी आकाशवाणी इत्यादि द्वारा प्रत्यादेश को पाना। तृतीय युग है —ऐतिहासिक घटनाओं का युग। इस युग में इतिहास के साथ देवताओं का कोई सम्पर्क नहीं है। दृश्यमान जगत की घटनाओं को लेकर वह घटित और परिपृष्ठ हुआ है।

किसी किसी ने पुनः इतिहास को लेकर चार स्तरों में विभक्त किया है। उनके मत से प्रथम स्तर उपाख्यान मूलक है। यह स्तर पहले से आखिर एक अमूलक उपकथाओं से पूर्ण है। द्वितीय स्तर को वे लोग उपकथा मिश्रित ऐतिहासिक युग कहते है। इस स्तर में सत्य तो है किन्तु उसमें अनेक असत्य बातें जुडी हुई है। तृतीय स्तर —ऐतिहासिक युग है, उसमें अनेक असत्य कथा मिश्रित हुआ है एवं अनेकांश में एकदेशदर्शिता दोष दुष्ट है। उनके अनुसार चतुर्थ स्तर ही अर्थात प्रमाण प्रयोग द्वारा समर्थित जो विवरण अभी संग्रह किया गया है, वही प्रकृत इतिहास है।

यह मत क्या सर्व सम्मत हो सकता है? इतिहास, काल का साक्षी है। काल विवर्तन से आज जो संभव है। हजार सालों के बाद असंभव हो उठेगा। यहाँ तक कि वर्तमान काल की घटना या विवरणों को काल्पनिक सोचकर सहस्त्र वत्सर के बाद में इतिहास के पन्नों से इसे पौंछ देना पड़ेगा ? यदि ऐसा ही करना हो तो प्राकृत इतिहास संग्रह करना किसी काल में भी संभव नहीं होगा। अवश्य प्राचीन इतिहास में रूपक वर्णनायें बहुत अधिक हैं — काल्पनिक बातें बिलकुल नहीं हैं। यह भी साहस जुटाकर नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसी कारणवश प्राचीन इतिहास को जड़ से उखाड फेंकने की कोशिश संगत नहीं होगी। जिस युग को प्राकृत ऐतिहासिक युग कहा जा रहा है, उस युग के प्रत्नतात्विक भी अनेक कृत्रिम सनन्द या स्वरचित ताम्र शासन के अपवाद से बच नहीं सके। प्राचीन काल के लोग कल्पना प्रिय हो सकते हैं, किन्तु वह कल्पना भी सत्य के संश्रव विवर्जित नहीं थे। धीर स्थिर चित्त से आलोचना करने पर यह प्रमाणित होगा।

———————

प्रल–237

राजमाला प्रथम लहर में उल्लिखित स्थान समूहों के नाम और संक्षिप्त विवरण
(वर्णमालानुक्रमिक)

अवंतिका(पृ 7, ला 8) उज्जयिनी नगरी। यह अवंति शिप्रा नदी के तट पर स्थित है। कालीदास ने उज्जयिनी के वर्णना प्रसंग में कहा है – ''शिप्रावातः प्रियतम ईव'' इत्यादि। मत्स्य पुराण के मत से यह स्थान में मंगल ग्रह का जन्म हुआ था। आदिकाल में इस स्थान में कालिका देवी और महाकाल का मंन्दिर था। शक्ति संगम तंत्र में है–

ताम्रपर्णी समासाद्य शैलाद्र्दशिखरोर्द्धतः।
अवंती संज्ञको देशो कालिका तत्र तिष्ठति।।

कालीदास ने मेघदूत में महाकाल विवरण सन्निविष्ट किया है। स्कन्ध पुराण के मत से अवंतिका नगरी में मोक्षदायिका थी। यथा –

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।
पुरीद्वारकावतीचैव सप्तैता मोक्षदायिका।।

राजमाला में मोक्षदायिका कहकर अन्यान्य पुण्य के भूमि के साथ अवंतिका का नामोल्लेख किया गया है।

अमरपुर(पृ 52, ला 17) यह उदयपुर से पूर्व की ओर गोमती नदी के दक्षिण किनारे पर है। प्राचीनकाल में यहाँ पर त्रिपुरा की राजधानी थी। वर्तमान समय में यह स्थान त्रिपुर राज्य का एक सब डिवीजन है। यहाँ पर दीवानी, फौजदारी, कलेक्टरी ऑफिस के अलावा थाना, तहसील, कोर्ट, सामरिक दस्ता और डाकघर इत्यादि है। सुविशाल ''अमर सागर'' नाम का तालाब है व महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल में खनन किया गया है। इस विशाल अमरसागर तालाब की प्रसिद्ध कीर्ति है, इसी तालाब के पूर्व दिशा में राजबाडी थी अमरमाणिक्य के नामानुसार ही इसका नाम अमरपुर पड़ा है।

अयोध्या(पृ 7, ला 8) यह नगरी सरयू नदी के किनारे स्थित है। यही पर सूर्यवंशीय राजाओं की राजधानी थी। इस पुण्य नगरी की कीर्ति को लेकर महाकवि बाल्मीकी ने रामायण की रचना की थी। इस समय यह स्थान हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर राम सीता की अनेक मूर्तियां प्रतिष्ठित है। स्कन्ध पुराण के अनुसार यह स्थान मोक्षदायिनी है। इसके पहले ''अवंतिका'' शब्द का विवरण लिपि में जो वचन दिया गया है। उसकी

प्रल–238
आलोचना जाना जायेगा। मोक्षदायिका सप्त तीर्थों में अयोध्या भी एक है। यह स्थान मोक्ष प्रदायिनी कहकर ही राजमाला में इसका नामोल्लेख है।

<u>अगरतल्ला(पृ 62, ला 14)</u> यह नगरी त्रिपुर की वर्तमान राजधानी है। एक हावडा नदी के किनारे है और ए बी(आसाम बंगाल रेलवे, अब कथित रेलवे लाइन बंगला देश में) का अखौडा रेलवे स्टेशन से पूर्व की तरफ 3 कोस दूर में अवस्थित है। अब हावडा नदी बीच में आ गई है।

''अगरतल्ला नाम के बारे में नाना तरह के मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है, यहाँ पर प्रचुर मात्रा में आगर(अगुरू) वृक्ष थे। इसलिए इसका नाम अगरतल्ला हुआ। किसी किसी के मतानुसार ''आगर महमूद'' किसी एक मुसलमान के नामानुसार अगरतल्ला नाम हुआ है। राजमाला की आलोचना से जाना जाता है कि महाराज डांगर फा ने अपने सप्तदस संतानों में राज्य का विभाजन करते समय आगर फा नाम के एक पुत्र को यह स्थान दिया था।(1) बहुत से लोगों के मत से अगर फा के नामानुसार इस स्थान का नाम अगरतल्ला नाम से ख्याति हुआ है। हम शेषोक्त मत को ही अधिकतर समर्थन योग्य समझते हैं।

अगरतल्ला पहले पुरातन हवेली और नई हवेली यह दो भागों में विभक्त था। नूतन हवेली की पूर्व की ओर दो कोस(चार मील) की दूरी पर पुरातन हवेली है। महाराज कृष्ण किशोरमाणिक्य बहादुर के शासनकाल में नूतन हवेली में राज पाट स्थापित हुआ। अन्त में केवल नई हवेली में ही राजधानी स्थानांतरित और प्रतिष्ठित हो गई। इस समय पुरातन हवेली में चतुर्दश देवता प्रतिष्ठित हैं। राज परिवार के कुछ लोग पहले वहाँ रहते भी थे।

आगर फा के समय अगरतल्ला में राज भवन बनाया गया था या नहीं, इस विषय में कोई निर्भर योग्य प्रमाण नहीं मिलता है। भवन निर्मित होने पर भी उस समय आगरतल्ला को राजधानी प्रतिष्ठान का गौरव प्राप्त नहीं हुआ था। महाराज डांगर फा के राज्य विभाजन के थोड़े दिनों के भीतर ही उनके कनिष्ठ पुत्र रत्नमाणिक्य ने पिता को सिंहासनच्युत करके सभी भाईयों को अवरूद्ध करके सारे राज्य पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था एवं इसकी राजधानी उदयपुर में ही थी। इसके महाराज कृष्णमाणिक्य ने अगरतल्ला में राज पाट का संस्थापन किया था। ''कृष्णमाला'' ग्रंथ में इस विषय का उल्लेख मिलता है –

''तारपोरे राज गैलो आगरतलाय।
बसति कारने पुरी कोरिलो तथाय।।''

अर्थात इसके बाद राज्य अगरतल्ला में चला गया। रहने के लिए यहाँ पर पुरी बसाया।

---

(1) आगर फा पुत्रे राजा आगरतल्ला दिलो।
राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 62पृ।

प्रल–239

इस पुरी के निर्माण के समय से आज तक करीब देढ़ सदी से अधिक ही समय से अगरतल्ला में ही यहाँ पर त्रिपुरा की राजधानी प्रतिष्ठित है।

आचरंग(पृ 62, ला 6) त्रिपुर राज्य के प्रथम स्थापना के समय यहाँ आचरंग राज्य की दक्षिण सीमा निर्धारित थी। राजमाला में राज्य की सीमा निर्देशक जो उक्तियाँ है, उनकी आलोचना से जाना जाता है।

''उत्तरे तैरंग नदी दक्षिणे आचरंग।''

राजमाला में है, आचरंग त्रिपुर की प्राचीन राजधानी रांगामाटी(उदयपुर) के पूर्व उत्तर दिशा में है –

उदयपुर पूर्ब उत्तर कोने आचरंग।।	उदयपुर पूर्व उत्तर कोने में आचरंग।।
त्रिपुर राजार थाना जाने सर्ब बंग।।	त्रिपुर राजा का थाना, जाने सारा बंग।।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड68पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड68पृ

महाराज यशोधरमाणिक्य के शासनकाल में उदयपुर की राजधानी मुगलों के द्वारा अधिकृत होने के पश्चात, रणजीत नाम के एक त्रिपुर सेनापति ने आचरंग में जाकर अपने को राजा कहकर घोषणा किया था। वे कुछ दिनों तक वहाँ राजत्व करके परलोक सिधार गये। इसके पश्चात उनके पुत्र लक्ष्मी नारायण ने पितृ सिंहांसन को अलंकृत किया।

महाराज कल्याणमाणिक्य ने इस वार्ता को सुनकर लक्ष्मी नारायण को पकड़ने के लिए आदेश प्रदान किया। राजपुत्र गोविन्द नारायण ने सेनाओं के साथ जाकर लक्ष्मी नारायण को पकड़ लिया और सारी सम्पत्ति लेकर राजधानी आये थे। इस बारे में राजमाला में लिखा है –

उदयपुर जखने मगले लोइलो।	उदयपुर जब मुघलों ने लिया।
रणजित सेनापति आचरंगे गेलो।।	रणजीत सेनापति आचरंग गया।।
आचरंगे गिया से जे नरपति होईलो।	आचरंग जाकर वह नरपति हुआ।
निज बाहुबले सेई प्रजाके शासिलो।।	निज बाहु बल से प्रजाशासन किया।।
सेई स्थाने थाकिया जे राज्य भोग कोरे।	रहकर वहीं वह करे राज भोग।
आचरंग रंजितेर(1) मृत्यु होइलो पोरे।।	आचरंग में ही रंजीत(1) हुआ मृत्यु भोग।।
तार पुत्र लक्ष्मी नारायण होइलो नरपति।	उसका पुत्र लक्ष्मी नारायण हुआ नरपति।
राजा होइया राज्य शासे सेई महामति।।	राजा बन राज्य शासन करे वह महामति।।
एई मत कोतो दिन छिलो सेई स्थाने।	इसी तरह कितने ही दिन रह उस स्थान।
कल्याणमाणिक्य राजा दूतमुखे सुने।।	दूत मुँह सुने राजा माणिक्य कल्याण।।
राजा बोले आमा राज्ये लक्ष्मीनारायण।	कहा राजा ने मेरे राज्य में लक्ष्मीनारायण।
राज्यास्पद कोरे सेजे आमा विड़म्बन।।	राज्य शासन करे वह यह कैसा विड़म्बन।।
एमत बोलिया राजा मंत्रीते आदेश।	इस तरह कहकर राजा ने दिया मंत्री को आदेश।
धरिया अनिते ताके आचरंग देश।।(2)	पकड़ लाओ उसे जहाँ आचरंग देश।।(2)

---

(1) इस स्थान पर रणजीत को रंजीत कहा गया है।

(2) आचरंग देश से

प्रल–240

राजार प्रधान पुत्र गोविन्द नारायण।	प्रधान पुत्र नृप थे गोविन्द नारायण।
ताके सम्बोधिया नृप बोलिलो तखन।।	नृप उसे देख कहा करके सम्बोधन।।
रणजीत पुत्र होये लक्ष्मीनारायण।	रणजीत तनय नाम है लक्ष्मीनारायण।
ससैन्ये धरिया ताके आनह आपन।।	ससैन्य पकड़ उसे लाओ तत्क्षण।।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 68–69पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 68–69पृ
+ + + +	+ + + +
सर्ब सैन्य गिया तथा चौदिगे बेष्टन।	सारी सेना जाकर वहाँ किया चारों ओर वेष्टन।
सैन्य समे(1) धरा गेलो लक्ष्मी नारायण।।	सेना साथ(1) पकडा गया लक्ष्मी नारायण।।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 72पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 72पृ

अर्थात, उदयपुर पर मुगलों का अधिकार हो गया तब रणजीत नाम का सेनापति आचरंग चला गया। आचरंग में जाकर वहाँ राजा बन बैठा। अपने बाहुबल से उसने प्रजाओं पर शासन किया। वही पर रहकर वह राज्य भोग करने लगा और वहीं पर अन्त में उसकी मृत्यु हो गई। इसकी मृत्यु के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र राज गद्दी पर बैठा। राजा होकर वह राज्य शासन करने लगा। कुछ दिनों के पश्चात महाराज कल्याणमाणिक्य ने दूत के मुख से सारी बातें सुनी और अपने मंत्री से उसे पकड़ लाने के लिए कहा। राजा ने प्रधान पुत्र गोविन्द नारायण को आदेश दिया और ससैन्य उसे पकड़ कर लाने के लिए कहा। सेनायों ने जाकर चारों ओर से आचरंग को घेर लिया। सेनाओं के साथ लक्ष्मी नारायण पकड़ा गया।

आचरंग उदयपुर से उत्तर पूर्व के किनारे बसा हुआ है। यह बात हम पहले भी बता चुके है। उदयपुर से पूर्व की ओर गोमती नदी के उत्पत्ति स्थान(डम्बुर) से पूर्व भाग में माइनी है। माइनी पहाड़ी के पूरब की ओर एक उपत्यका है। उसके पूर्व भाग में आचरंग नदी है – इसी को साधारणतः "आचलंग" कहा जाता है। यह नदी चट्टगाँव जिले में कर्णफूली नदी में जा गिरती है। इस नदी के किनारे आचरंग(आचलंग) पर्वत है।यह स्थान बहुत दूर है एवं उस समय यह दुर्गम था। त्रिपुर वाहिनी के अभियान के वर्णना प्रसंग में राजमाला में है।

गिरि नदी गुहा पथ लंघिया जे महासत्त	गिरि नदी गुहा पथ, लाँध दिया राजा
पथ कोरे पर्वत काटिया	राह करे पर्वत को कर विदीर्ण
उच्च नीच पथ करि, लंघिया बहुल गिरि	उँच नीच पथ धरि, लाँघकर बहुल गिरि
थरे थरे सैन्येर गमन।	दल बद्ध सैन्य का गमन।
सर्वसैन्य आनन्दित, किछु मात्र नाहि भीत,	सभी सैन्य आनन्दित, बिन्दु मात्र नहीं भीत
राजा सैन्य चलियाछे रुपे।	राज सैन्य चली इस रुप।
एक मास एइ मते, जाइते होइलो पथे,	एक माह इसी तरह, चलती रही इसी राह
आचरंग गिया उत्तरिलो।	पहुँची जाकर आचरंग।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड70पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड70पृ

अर्थात, "गिरि, नदी, गुहा–पथ लाँधकर और पर्वतों को काटकर रास्ता बनाते हुए सभी चल रहे थे। कहीं उँची सड़क तो कहीं नीची सडक बनाकर बहुत से पर्वतों को पार करते दलों के साथ सेनायें चल रही थी। सभी सेनायें आन्नदित थी, बिन्दु मात्र भी किसी के मन में भय नहीं था। इस तरह राज सेनायें रण में जा रही थी। एक महीने तक रास्ते से चलकर सेनायें आचरंग में पँहुच गई।"

गिरि कन्दरा सभी दुरधिगम्य होते हैं। इसलिए साधारणतः उस पार करने में कुछ अधिक समय लगता ही है, किन्तु जहाँ पहुँचते पँहुचते एक महीना लग गया वह स्थान नजदीक नहीं है – यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है।

परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने अपनी संगृहीत राजमाला में राज्य की सीमा के विषय में जो पाठोद्धार किया है। वह निम्न रूप है। –

उत्तरे तैरंग नदी दक्षिणे रसांग (अर्थात उत्तर की ओर तैरंग नदी है। और दक्षिण में रसांग है)।

इस "रसांग" शब्द द्वारा कैलाश बाबू ने दक्षिण की सीमा स्थित आराकान स्थिर किया है। कहाँ से यह पाठोद्धार हुआ है। हमें मालूम नही, लेकिन यह

---

(1) सैन्यसम – सेना के साथ

भ्रम संकुल है। आराकान कभी कभी त्रिपुरा के हस्तगत होने पर भी प्रथमावस्था में राज्य की दक्षिण सीमा रांगामाटी(उदयपुर) तक भी विस्तृत नहीं था। राजमाला की आलोचना करने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि महाराज त्रिलोचन रांगामाटी अधिकार करने पर भी वह पुनः हस्तच्युत हो गया था। महाराज हिमती(नामांतर युझारु फा) रांगामाटी के परवर्ती विजेता हैं। इस अवस्था में आराकान तक राज्य की सीमा कल्पना करने से रांगामाटी के(उदयपुर के) करीब आचरंग को दक्षिण सीमा कहकर निर्धारण करना ही बेहतर है एवं यही विशुद्ध होगा। अन्यथा राजमाला की उक्ति की उपेक्षा करना है और इससे इतिहास भी प्रदूषित हो उठेगा।

महाराज डांगर फा ने अपने सत्रह पुत्रों में राज्य का विभाजन कर देने के बाद एक पुत्र को आचरंग का राजा बनाया था।(1) यह स्थान उन्होनें अपने किस पुत्र को दिया था। राजमाला में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

आर्यावर्त(पृ 7, ला 4) साधारणतः हिमाचल और विन्ध्यगिरि के मध्यवर्ती भूभाग को आर्यवर्त कहा गया है। मेधातिथि और कल्लुक भट्ट आदि मनु संहिता के भाष्यकार और टीकाकारों का भी यही मत है। मेधातिथि ने कहा है –

''पर्वतयोर्हिमवद्धिन्ध्ययोर्यदंतरं मध्यंस आर्यावर्तो देशो बुधैः शिष्टेरूच्यते।'' (मेधातिथि भाषा 2/22) अभिधानिक अमर भी इस मत का समर्थन करते हैं।

मनु के भाष्यकार और टीकाकारों ने आर्यावर्त की जो सीमा निर्धारण की है। वह हम ऊपर दे चुके हैं। उन्हानें मनु के जिस वचन की विवृति दी है, वह वचन हम नीचे दे रहे हैं –

''आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्त गिर्योरार्यावर्तं विदुर्व्वुधा।।

मामार्थ – ''पूर्व और पश्चिम में समुद्र तक विस्तृत, उत्तर और दक्षिण में गिरि इसके मध्यवर्ती स्थान को पण्डितों ने आर्यावर्त कहा है।''

इस वाक्य द्वारा हिमगिरि और विन्ध्याचल के मध्य, पूर्व और पश्चिम में समुद्र तट तक फैले विस्तृत स्थान को आर्यावर्त कहा गया है।

उत्कल(पृ 7, ला 9) पुरुषोत्तम क्षेत्र उत्कल के दक्षिण पूर्व भाग के पुरी जिला में समुद्र तीरवर्ती जगन्नाथ क्षेत्र भारत विख्यात हिन्दु तीर्थ है। सभी सम्प्रदाय के हिन्दु ही इस तीर्थ को पुण्यप्रद कहकर मान्य करते हैं। पुरातत्वविद्गणों में किसी किसी व्यक्ति ने इस तीर्थ बौद्ध धर्म मूलक कहकर

....

(1)
आर पुत्र राजा होइलो आचरंग यत्र।। और एक पुत्र राजा हुआ राज्य आचरंग।।
–(एक अन्य पुत्र जहाँ आचरंग है वहाँ का राजा हुआ)।
राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 62पृ

प्रल–242

घोषणा की है। वे कहते हैं –

1. जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तिया बौद्ध धर्म यंत्र के अनुसरण से निमार्ण हुई है।

2. बुद्ध के रथ यात्रा के अनुकरण से जगन्नाथ की रथ की प्रथा प्रचलित है।

3. श्री क्षेत्र में जाति विचार नहीं है –यह बौद्ध धर्म संगत कार्य है।

4. दशावतार चित्र में बुद्ध की जगह जगन्नाथ मूर्ति अंकित होती है।

एक सम्प्रदाय इसकी कोई बात ही सुनना नहीं चाहते हैं। वे कहते हैं –

क. प्राचीन शास्त्र ग्रंथों में दारू–ब्रह्म की मूर्ति का उल्लेख है। वह बौद्ध धर्म के प्राधान्य स्थापन के बहुत पहले का ग्रंथ है। अतएव, जगन्नाथ मूर्ति के साथ बौद्ध धर्म यंत्र का किसी तरह का सम्पर्क नहीं है।

ख. रथ यात्रा भी बौद्धों के अनुकरण को मध्य नजर रखकर ही की गई है, इसे वे एकदम स्वीकार नहीं करते। बुद्ध के बहुत पहले जगन्नाथ के अलावा बहुत से देवीयों के रथ यात्रा का विवरण मिलता है।

श्रीकृष्ण ने अक्रुर के रथ से यात्रा किये थे, यह बुद्ध देव के अर्विभाव के बहुत पहले की घटना है। इसके द्वारा उस मत का समर्थन मिल रहा है।

ग. श्रीक्षेत्र में जाति विचार नहीं है। यह बात वे स्वीकार नहीं करते। केवल महाप्रसाद ग्रहण काल में जाति विचार नहीं होता। इसके अलावा वहाँ जाति विचार, जाति भेद चिरकाल से ही चला आ रहा है। पुण्य क्षेत्र में महाप्रसाद ग्रहण करने में जाति भेद विचार परित्याग करने की प्रथा को वे आधुनिक विचार धारा बताते हैं।

घ. दशावतार के चित्र में बुद्ध देव की जगह जगन्नाथ की मूर्ति अंकन भी किसी आधुनिक चित्रकार का कार्य है। इसे भी वे अग्राह्य करते हैं।

यहाँ पर ऊपर बताये गये ऋषियों की आलोचना करना असंभव है और अनावश्यक भी। श्रीक्षेत्र हिन्दुओं का तीर्थ कहकर भी शास्त्र मत और जन मत द्वारा स्थरीकृत हुआ है। यहाँ पर उनकी विरूद्धयुक्तियों के किसी विचार में रत होना संभव नहीं हो सकता।

<u>काइचरंग(पृ 62, ला 6)</u> साधारणतः इसे काचलंग कहते है। पूर्व कथित आचलंग नदी के किनारे काछलंग नाले के करीब वर्तमान पार्वत्य चट्टगाँव और त्रिपुर राज्य स्थित साबरूम सब डिवीजन सीमान्त पर यह स्थान स्थित है।

<u>काइफेंग(पृ 32, ला 15)</u> यह कुकी प्रदेश (लुसाईपर्वत) के करीब है। यहाँ पर काइफेंग सम्प्रदाय के कुकीयों का आवास स्थल था।

<u>कामाख्या(पृ 47, ला 8)</u> यह कामरूप का एक प्रधान शहर है। यह

प्रल–243

ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित है। कामाख्या नाम के बारे में कालिका पुराण में लिखा है।

''भगवान उवाच –

''कामार्थमागता यस्मान्मया सार्द्धं महागिरौ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता।।
कामदा कामिनी कामा कांता कामांगदायिनी।
कामांग नाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते।।''

ममार्थ – भगवान ने कहा, यह महादेवी अभिलाष पुराण के लिए मेरे साथ नीलकूट में आगमन हेतु कामाख्या नाम पड़ा है। वे कामदा, कामिनी, कामा, कांता, कामांगदायिनी और कामांग नाशिनी होने की वजह से ''कामाख्या'' के नाम विख्यात हुई है।

कामाख्या एक पीठ स्थान है। यहाँ पर देवी का योनि मण्डल गिरा था। यहाँ पर देवी कामाख्या और भैरव उमानन्द है। गरूड पुराण में लिखा है।–

''कामरूपं महातीर्थं कामाख्या तत्र तिष्ठति।''

– गरूड पुराण(89/16)

महीरंग नामक एक दानव यहाँ का प्राचीन राजा था, कहकर आसाम बुरूजीं में लिखा गया है। महीरंग के बाद उनके ही वंश का नरकासुर राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। कालिका पुराण के 36 से 40 अध्याय में इस बारे में विस्तृत विवरण दिया गया है। कहा जाता है, नरकासुर आसुरी दर्प से उन्मत्त होकर भगवती कामाख्या को विवाह करना चाहा था। वे देवी के चतुराई के जाल में असुर का वह मनोरथ व्यर्थ हुआ था। नरकासुर के द्वारा ही सर्वप्रथम कामाख्या देवी का मन्दिर निर्मित हुआ था।

नरकासुर के पुत्र भगदत्त स्वनाम प्रसिद्ध राजा थे। महाभारत में एकाधिक बार इसका नामोल्लेख हुआ है।

दानव वंश के पश्चात इस स्थान पर क्रमन्वय से ब्रह्मपुत्र वंशज ब्राह्मणों ने नारायण देव वंशज क्षत्रियों ने, पाल वंशजों ने, कामतापुर के राजवंशजों ने और कोच वंश वालो ने राजत्व किया है। समय समय पर इसके छोटे राज्यों में विभक्त होने का भी विवरण मिलता है। इन्द्रवंशीय –आहोम जाति ने यहाँ पर कुछ काल राजत्व किया है। मुसलमानों ने भी बीच बीच में इस पर आक्रमण किया है और हस्तगत भी किया है। अन्त में इस पर अंग्रेजो का अधिकार हुआ। इस देश में एक के बाद एक जो सब राष्ट्र विप्लव हुए हैं, उनका विवरण देना असंभव है।

<u>काशी(पृ 7, ला 8)</u> यह भारतवर्ष का सर्व प्रधान हिन्दू तीर्थ है।

प्रल–244
यह भागीरथी के तट पर अवस्थित है। काशी नाम के उत्पत्ति के सम्बन्ध में शिव पुराण में लिखा है –

''कर्मणां कर्षणात् सा वै काशीति परिकथ्यते।''

ज्ञान संहिता(49 / 46)।

ममार्थ– यहाँ पर सभी जीव शुभाशुभ सभी कर्मों का क्षय करके मुक्ति प्राप्त में समर्थ होते हैं। इसलिए इसका नाम काशी है।

स्कन्द पुराण में काशी खण्ड में है –

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्यमीश्वर।
अतोनामापरं चास्तु काशीति प्रथितः विभो।।(27 / 67)।

ममार्थ– ''उस वाक्य के अगोचर परम ज्योतिः इस क्षेत्र में प्रकाशमान है। अतः यह काशी के नाम विख्यात हो जाये।''

विष्णु और ब्रह्माण्ड पुराण के मत से आयु वंशीय सुहोत्र–नन्दन काश काशी के प्रथम राजा थे। उनके पुत्र काशीराज या काश्य थे। कुछ लोगों का अनुमान है, इस काशीराज के नामानुसार ही उनके राज्य का नाम ''काशी'' प्रख्यात हो उठा। इस मतान्तर की मीमांसा करना सहज सहाय नहीं है।

काशी हिन्दुओं के तीर्थ स्थान होने पर भी बौद्ध युग में इस पुण्य भूमि पर अधिपत्य स्थापन की विशेष चेष्टा हुई थी। वाराणसी के करीब ही सारनाथ ही इसका ज्वाजल्यमान प्रमाण है। मुसलमानों के द्वारा यह तीर्थ भूमि अनेक तरह से उत्पीड़ित हुई थी। किन्तु किसी–किसी भी समय इसका गौरव हानि नहीं हुआ। ईस्वी छठी सदी के अन्त में चीन परिब्राजक हिउयेन सियां(ह्वेन सांग) ने जब वाराणासी धाम में आगमन किया तो उस समय उन्होनें वहाँ पर सौ से अधिक देव मन्दिर और दस हजार देवोपासको को देखा था। उस समय वहाँ बौद्धों की संख्या तीन हजार से अधिक थी।

हिन्दु शास्त्रों के अनुसार काशी से अधिक पवित्र और कोई दूसरा तीर्थ जगत में नहीं है। मत्स्य पुराण में इस मुक्ति धाम के बारे में लिखा है –

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम्।
सर्व्वोषामेव भूतानां हेतूर्मोक्षस्य सर्वदा।। 180 / 47

ममार्थ –''मेरा यह वाराणासी क्षेत्र सदा ही गुह्यतम है। यह सदा समस्त जीवों के मोक्ष प्राप्त का कारण है''

इसके अलावा शिव पुराण, लिंग पुराण, कुर्म पुराण आदि से तथा काशी खण्ड में काशी महात्म्य की अनेक तरह कथा पाई जाती है।

इस स्थान के प्रधान देवता हैं विश्वेश्वर भगवान शंकर। अन्नविधायिनी जगन्माता अन्नपूर्णा दया का दान हाथों से देकर, दीन दुखियों में अन्न वितरण करती है। काशी के

प्रल—245

अन्न सत्र द्वारा समाज द्वारा समाज उपकार हो रहा है। यहाँ का पंच कोष परिमित स्थान पुण्य क्षेत्र के रूप में प्रख्यात है। काशी खण्ड में है।

अविमुक्तान्महाक्षेत्राद्विश्वेश समधिष्ठितात्।
न च किचिंत क्कच्चिद्रम्यमिह ब्रह्माण्डगोलोके।।
ब्रह्माण्ड मध्ये न भवेत पंचक्रोश प्रमाणतः।
यथा यथा हि वर्द्धेत जलमेकार्णवस्य च।
तथा तथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रं प्रलयादपि।
क्षेत्रमेतत्रिशुलाग्रे शुलिनस्तिष्ठति द्विज।
अंतरीक्षे न भूमिष्ठं नैक्षन्ते मूढबुद्धयः।। काशी खण्ड 22 अध्याय 82—85 श्लोक

ममार्थ— जहाँ पर विश्वेश्वर वास करते हैं, वह महाक्षेत्र अविमुक्त(1) से ज्यादा मनोरम और मंगलदायक वस्तु इस ब्रह्माण्ड गोलोक के मध्य कहीं नहीं है। यह स्थान पंचकोश परिमित है। प्रलय काल में एकार्णव का जल जिस तरह जिस परिमाण में वर्द्धित होता है, महादेव जी उस परिमाण से इस क्षेत्र को उन्नत करके ऊपर उठाकर रखते हैं। द्विजवर, यह क्षेत्र शूलधारी महादेव के त्रिशूल के अग्र भाग पर बसा हुआ है। यह आकाश और भूमि पर नहीं है। मूढ़ व्यक्ति इसे नहीं समझ सकते।

काशी राज्य पहले आयु वंशज हिन्दु नृपतियों के द्वारा शासित था। इस समय हैहय लोग द्वारा बार बार काशी आक्रमण और राजा की हत्या कर देने से, काशीश्वर दिवोदास द्वारा गंगा के उत्तर और गोमती के दक्षिण की ओर राजधानी स्थानांतरित हुई थी। किसी किसी पुराण के अनुसार दिवोदास के पहले हैहय लोगों ने काशी राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था। बाद में दिवोदास ने हैहय वंशीय राजा भद्रश्रेन्य का विनाश कर पितृ राज्य को हस्तगत किया। पुनः दिवोदास को पराभूत कर हैहयों ने अपने अधिपत्य को स्थापित करने में समर्थ हुए थे। दिवोदास के पुत्र प्रतदर्दन ने हैहयों को दूर हटाकर पुनः अपने पितृ राज्य पर अधिकार जताया। इस तरह बार बार वाराणसी पर राष्ट्र विप्लव होने के प्रमाण मिलते हैं।

---

(1) काशी धाम अविमुक्त क्षेत्र कहकर ही शास्त्रों में कहा गया है। लिंग पुराण में लिखा है —

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
मम क्षेत्रमिदं तस्माद विमुक्तमिति स्मृतम्।। 92/15

ममार्थ — यह स्थान मेरे द्वारा कभी भी विमुक्त नहीं है। अर्थात मैंने कभी इसका परित्याग नहीं किया नहीं करूँगा। इसलिए यह अविमुक्त नाम से विख्यात है।

प्रल–246
इसके बाद क्रमानुसर प्रद्योत वंशज, गुप्त वंशज और पाल वंशज राजाओं द्वारा शासित होने के पश्चात् यह राज्य मुसलमानों के हस्तगत हुआ था।

मुसलमान शासनकाल में(औरंगजेब के समय) वाराणासी नाम बदलकर इसका नाम "मुहम्मदाबाद" किया गया था। दिल्लीश्वर मुहम्मद शाह ने हिन्दु के पवित्र तीर्थ को किसी हिन्दु राजा के अधीन रखना उचित समझकर वाराणसी से पाँच कोश दक्षिण में स्थित गंगापुर के निवासी मनसा राम नाम के जमींदार को "राजा" उपाधि प्रदान किया और उनके हाथों में वहाँ का शासन भार अर्पित किया। किन्तु मुहम्मद शाह परलोक सिधारने के पश्चात काशीराज के प्रति आक्रमण शुरू हुए। अनेक बात प्रतिघात सहकर मुसलमान शासनकाल अतिक्रांत होने पर अंग्रेजी हुकूमत के समय(वारेन हेस्टिंग के समय) काशी राज्य जमींदारी में बदल गया। दीर्घ काल के पश्चात पुनः यह देशीय राज्यों में इसे स्थान देकर बिट्रिश सरकार ने साधारण आम जनता में उनका आभार प्रकट किया था।

काशी धाम विद्या और ज्ञान चर्चा का केन्द्र स्थल है। ज्ञान पिपासुओं को देखने के लिए यहाँ बहुत कुछ है। इनमें अम्बरपति मानसिंह द्वारा प्रतिष्ठित मान मन्दिर उनकी उल्लेख योग्य कीर्ति है। काशी एक प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान भी है। शिल्प कला के लिए भी यह जगत विशेष प्रसिद्ध हो गया है। बनारस के रेशमी कपड़े, शाल, बनारसी साड़ी और खिलौनों की ख्याति विश्वभर में प्रसिद्ध है।

गंगा के उस पार "व्यासकाशी" बसा हुआ है। वहाँ का विवरण देना यहाँ अनावश्यक है।

<u>किरात देश(पृ 5, ला 17)</u> किरात देश के अवस्थान को लेकर आलोचना इसके पहले हो चुकी है। अतएव यहाँ इसका ज्यादा विवरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण और वामन पुराण आदि के अनुसार किरात देश भारत के पूर्व सीमा पर स्थित है। महाभारत के सभा पर्व 52 अध्याय के वर्णना द्वारा ऊपर उल्लेख किये गये पुराणों के मत–समर्थन किया गया है। ब्रह्म देश और कम्बोज से मिले शिला लेखों से पता चलता है कि उन प्रदेश की पार्वत्य जातियों को ही "किरात" कहा गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक समय हिमालय के पूर्व भाग के स्थान एवं वर्तमान भूटान, आसाम का पूर्वांश, मणिपुर, त्रिपुरा, ब्रह्म देश एवं चीन समुद्र के तटवर्ती कम्बोज तक विशाल भू भाग किरात भूमि के नाम से परिचित होता था। इस समय भी नेपाल के पूर्वांश से आसाम, त्रिपुरा और चट्टगाँव के पार्वत्य प्रदेशों में किरात लोग रहते हैं।

प्रल–247

<u>कुरूक्षेत्र(पृ 7, ला 10)</u> यह हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान है। कुरूक्षेत्र नाम की उत्पत्ति के विषय में महाभारत में लिखा है–

''पूरा च राजर्षिवरेण धीमता, बहुनि वर्षाण्यमितेन तेजसा।
प्रकृष्टमेतत् कुरूणा महात्मना, ततः कुरूक्षेत्रमितीह पप्रथे।।''

मर्म – आदि काल में कुरू नाम के राजर्षि ने इस क्षेत्र का कर्षण किया था– इसलिए इसका नाम कुरूक्षेत्र पड़ा है।

कुरू द्वारा भूमि कर्षण के कारणों को महाभारत और शल्य पर्व के 53 अध्याय में निम्न लिखित प्रसंग से समझाया गया है –

महर्षि ने कहा, प्राचीन काल में कुरूराज इस क्षेत्र का कर्षण करना आरम्भ करने पर देवराज इन्द्र ने उनके समीप आकर पूछा, ''राजन, तुम किस अभिप्राय से यत्न के साथ इस भूमि का कर्षण कर रहे हो?'' कुरूराज ने कहा ''हे पुरन्दर, जो व्यक्ति इस क्षेत्र में कलेवर त्याग करेगें, वे अनायास ही स्वर्गलोक में गमन कर सकेगें। मेरे भूमि कर्षण का यही उद्देश्य है।'' सुरराज उनका उपहास करके चले गये। कुरूराज ने इन्द्र के उपहास से बिन्दु मात्र भी दुखी न होकर एकान्त मन से भूमि कर्षण करने लगे। अन्त में सुरराज ने भूपति का दृढ़ अध्यवसाय देखकर भयभीत होकर देवताओं के यहाँ राजर्षि की वासना को बताया। बाद में वे देवताओं के वाक्यानुसार कुरूराज के यहाँ उपस्थित होकर राजर्षि से बोले, ''राजर्षे, अब तुम्हें कष्ट करने की जरूरत नहीं है। जो लोग इस स्थान पर आलस्य शुन्य होकर अनाहार से प्राण त्याग करेगें अथवा युद्ध में हत होगें, वे अवश्य ही स्वर्गारोहण करेंगे। कुरूराज इन्द्र के वचन से संतुष्ट होकर शांत हो गये। इन्द्र भी सुरलोक को चले गये।

कुरूक्षेत्र नाम सुप्राचीन है। ऋृकवेदीय ऐतरेय ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौम सूत्र, पंचविंश ब्राह्मण, शांखायण ब्राह्मण और तैत्तिरीय–आरण्यक आदि वैदिक ग्रंथों में कुरूक्षेत्र का नामोल्लेख है। इसका दूसरा नाम है ''समन्त पंचक''। महाभारत में है–

प्रजापतेरूत्तरवेदिरूच्यते सनातनी राम समन्त–पंचकम्।
समीजीरे यत्र पुरा दिवौकसो बरेण सत्रेण महाबरप्रदाः।।

शल्य पर्व– 53/1

मर्म – ''हे राम समंत–पंचक ब्रह्मा की उत्तर वेदी कहकर जानी जाती है। जहाँ पहले महावर–प्रद देवताओं ने यज्ञानुष्ठान किया था।''

शतपथ ब्राह्मण और जावालोपनिषद में भी इस स्थान को देवताओं की यज्ञ भमि कहकर उल्लेख किया गया है। महाभारत के कुरूक्षेत्र की सीमा को नीचे लिखे श्लोक में दिखाया गया है–

उत्तरेण दृष्द्वत्या दक्षिणेन सरस्वतीम्।
ये वंसति कुरूक्षेत्र ते बंसति त्रिपिष्टपे।।

प्रल–248

ब्रह्मावेदी कुरूक्षेत्रं पुण्यं ब्रह्मर्षि सेवितम्।
तरन्तुकारन्तु कार्योषदन्तरं रामह्रदानांच नचक्रुकस्य च।।
एतत् कुरूक्षेत्र समंत पंचकं।

वनपर्व 83/205, 208,

ममार्थ –दृषद्वती के उत्तर में और सरस्वती नदी के दक्षिण में पुण्यप्रद ब्रह्मर्षि सेवित ब्रह्मवेदी यह कुरूक्षेत्र है। जो कुरूक्षेत्र में निवास करता है, वह स्वर्गलोक में निवास करता है। तरन्तुक अरन्तुक, रामह्रद और मधुक्रुक इन सभी के मध्य भाग का स्थान ही कुरूक्षेत्र संमत–पंचक है।

कुरूक्षेत्र धर्मक्षेत्र के नाम से भी अभिहित हुआ है।(1) इसके परिमाण फल द्वादस योजन या 48 कोश है। यथा–

''धर्मक्षेत्रं कुरूक्षेत्रं द्वादशयोजनावधि।''

हेमचन्द्र 4/16

कुरू पाण्डवों का सुविख्यात महाभारत युद्ध यहीं पर हुआ था। श्रीमदभागवत् में है –
तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरूः।

भागवत् 9/22/4

अर्थात –सूर्यतनया तपती के गर्भ(संवरण के औरस से) कुरू नाम के जिस राजा ने जन्म लिया, वही प्रथम कुरूक्षेत्रपति हुए हैं, ऐसा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात सम्भवतः यह स्थान उनके ही वंशज राजाओं द्वारा शासनाधीन था। महाभारत युद्ध के बाद यह स्थान पाण्डवों के हाथों में आया। चन्द्रवंशीय राजगणों के बाद यह किन के हस्तगत हुआ यह मालुम नही हो सका। यह स्थान कुछ दिनों तक मगध राजाओं के शासनाधीन रहने के पश्चात कान्यकुब्ज के हिन्दु नृपतियों के अधिकार में आया, इसके पश्चात मोहम्मदगाजनी ने थानेश्वर आक्रमण और कुरूक्षेत्र के ''चक्रस्वामी'' नाम की विष्णु मूर्ति को ध्वंस किया। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज ने एक बार मुसलमानों के हाथों से कुरूक्षेत्र का उद्धार किया था, किन्तु उनके पतन के साथ साथ पुनः कुरूक्षेत्र मुसलमानों के हाथों में चला गया। मुसलमानों ने हिन्दुओं के अनेक तीर्थों का लोप, बहुत से देवालयों का ध्वंस कर किया है। हिन्दू विद्वेषी औरंगजेब तीर्थ यात्रियों को गोली मारकर हत्या करने से भी कुठांग्रस्त नहीं हुआ। सिखों के अभ्युदय से यह अत्याचार दमित हुआ था।

---

(1) श्रीमद्भागवत् गीता के प्रथम पंक्ति में लिखा है –
धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेता ययुत्सव

प्रल–249

कोच(पृ 20, ला 8) प्राचीन कामरूप के मानचित्र की आलोचना करने से जाना जाता है कि उक्त राज्य के अन्तर्गत जलपाईगुड़ी दक्षिण की ओर एक स्थान पर कोच जाति का निवास था। यह राज्य हेड़म्ब राज्य प्रत्यंत देश तक फैला हुआ था। कोच जाति के लोगों ने समय समय पर हेड़म्ब राज्य को आक्रमण भी किया था। राजमाला में हेड़म्बपति एक उक्ति है

मेलच्छ कोच आदि सबे राज्य आसि लोईलो।	म्लेच्छ कोच आदि आकर राज्य किया।
बृद्ध समये आमार विघ्न उपजिलो।।	वृद्धावस्था में आकर यह कैसा विघ्न मिला।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 20पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 20पृ

अर्थात– "म्लेच्छ, कोच आदि ने राज्य पर कब्जा किया। वृद्धावस्था में मेरे लिए यह विघ्न उत्पन्न हुआ।"

योगिनी तंत्र में कोच जाति को "कुबाच" कहा है। उनके द्वारा कामरूप राज्य विजित होगा, इसका भी उल्लेख है। यथा –

सौमारैश्च कुबाचैश्च यवनैर्युद्धमुल्वणम्।
भविष्यति कामपृष्ठे बहुसैन्य समाकुलम्।।
ततो रणे च सौमारां जित्वा यवन–ईप्सितम्।
वर्षमेवाकरोद्राज्यं मकारादि महिपतिः।।
तत् सहायं समासाद्य कुवाचः स्वीय राज्य भाक्।
वर्षांते यवनं हित्वा सौमारो राज्यनायकः।।
कुमारी चन्द्र कालेन्दौ गते शाके महेश्वरी।
कामरूपे मनेः पृष्ठ संयोगं संतविष्यति।।
कामरूपे तथा राज्यं द्वादशाब्दं महेश्वरी।
कुवाच संगतो भूत्वा यवनश्च करिष्यति।।
षष्ठवर्ग–पंचमादिस्ततः शरीरमिच्छति।
शासितव्यं कामरूपं सौमारैश्च कुवाचकैः।।
यवनश्च कुवाचश्च् सौमारश्च तथाप्लव।
कामरूपाधिपो देवि शापमध्येन चान्यकः।।

योगिनीतंत्र 1/12 पटल।

ममार्थ – सौमार, कुवाच(कोच) और यवनों का विशाल युद्ध उपस्थित होगा। इस युद्ध में मकरादि कुवाच नृपति विजयी होकर एक वर्ष तक राज्य शासन करेगें। इसके बाद 1319 शाके(?) में सौमार कामरूप पर अधिकार करके 12 सालों तक शासन करेगें। इस श्राप काल के बीच वहाँ पर यवन(1)

---

(1) यवन –त्रेता युग में बाहु नाम के एक राजा थे। वे हैह्य और तालजंघ से पराजित होकर वन में पलायन किया था और वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। उनके पुत्र सगर ने उम्र बढ़ने पर पितृ शत्रुओं को पराजित कर दिया। वे महर्षि वशिष्ठ आश्रय ग्रहण किया। तब सगर ने वशिष्ठ श्रृषि के सामने कहा –मैं इन पिताशत्रु दोनो का शिरच्छेद करुंगा, प्रतिज्ञा की है अतः आप इन लोगों को आश्रय न

प्रल–250

कुवाच(2) सौमार(3) और प्लव(4) आदि राजगण कामरूप के शासन कर्ता होगें।''

कुवाच या कोच राज्य वर्तमान में कोचबेहार या कूचबिहार नाम से परिचित है। इस राज्य के उत्तर की और जलपाईगुडी जिला के पश्चिम द्वार, पूर्व दिशा में आसाम के ग्यालपाडा जिला के अन्तर्गत पूर्व द्वार, रंगपुर, गदाधर और स्वर्णकोशी नदी, दक्षिण में रंगपुर, पश्चिम में जलपाईगुडी और रंगपुर, – इसका क्षेत्रफल 1307 वर्ग मील था।

खलंमा(पृ 36, ला 5) यह बरबक्र नदी अर्थात वर्तमान बोराक नदी का तटवर्ती स्थान है। त्रिलोचन के पुत्र दाक्षिण, हेड़म्ब राजा से पराजित होकर त्रिवेग(ब्रह्मपुत्र नदी के तटवर्ती) की राजधानी त्यागकर भ्राताओं के साथ खलंमा में आकर राज पाट की स्थापना की थी।

राजमाला में है –

कपिला नदीर तीरे पाट छाड़ि दिया।	कपिला नदी के तीर राजधानी को छोड़कर।
एकादश भाई मिलि मंत्रणा कोरिया।।	एकादश भाईयों ने मंत्रणा की मिलकर।।
सैन्य सेना सने राजा स्थानांतरे गेलो।	सैन्य सेना साथ राजा गए स्थानांतर।
बरबक्र उजानेते खलंमा रहिलो।।	उपरी भाग बरबक्र बसे खलंमा जाकर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड36पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड36पृ

अर्थात – कपिला नदी तट का राज पाट छोड़ कर एकादश भ्राताओं ने मिलकर आपस में मंत्रणा किया। सेनाओं के साथ राजा स्थानांतर में चले गये और बरबक्र अर्थात वर्तमान बोराक नदी के ऊपर की ओर खलंमा नाम के जगह पर जाकर रहने लगे।

....

प्रदान पूर्वक इन्हें निधन करने से मना कर रहे हैं। दोनों ही कार्य मेरे लिए पालनीय है। अतः मेरा क्या कर्तव्य है। कह दीजिये''। वशिष्ठ ने कहा, '' शिरच्छेद और सिर मुण्डन एक रूप कहकर शास्त्रों में कहा गया है। अतएव इनका सिर मुण्डन करके इनका विताडन कर दो। तभी जाकर दोनों पहलुओं की रक्षा होगी। सगर ने वही किया। बाद में इनके बहुत ही म्लेच्छाचारी होने पर इन्हें ''यवन'' कहा गया।

योगिनी तन्त्र1/6 पृ

(2) कुवाच –कोच।

(3) सौमार –स्वर्ग नर्तकी कंकावती शापग्रस्ता होकर कौरव वधु हुई। कुरूक्षेत्र में कौरव नारियों ने जब प्राण त्याग करना शुरू किया, तब उन्होनें चन्द्रचूड पर्वत शिखर पर आरोहण किया था। उस पर्वत पर इन्द्र द्वारा अरिन्दम नामक एक पापाचारी पुत्र का जन्म हुआ। इसके वंशज ही सौमार नाम से परिचित हैं।

योगिनी तन्त्र 2/14 पृ

(4) प्लव – कीर्मी नाम्नी कोई बाहलीक रमणी(बाहलीक गण महाभारत में वर्णित शाल्व के पुत्र हैं।) महाभारत युद्ध के पश्चात काशीधाम के मुक्ति मण्डप में तपस्या करने लगी। बलिपुत्र बाणासुर वहां महाकाल के रूप में काशी के द्वार रक्षक थे। यह महाकाल कीर्म्मी के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उससे मिलित हुए। उससे महांकुश नाम का उनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महादेव जी ने उसे शाल्व राज्य कामरूप दान करके प्लव अर्थात ''जाओ'' इस वाक्य द्वारा मुक्ति मण्डप से विदा कर दिया। महादेवजी के इस वाक्य से वे प्लव नाम से परिचित हुए।

योगिनी तन्त्र 1/6 पृ

प्रल–251
बरबक्र(बराक) नदी के अंश विशेष को त्रिपुरा के लोग खलंमा कहते थे। नदी के नामानुसार भी उसके तटवर्ती स्थान का नाम खलंमा हुआ। पार्वत्य प्रदेश में इस तरह के नामकरण के दृष्टान्त विरल नही है। मनुभेली, सूरमा भेली(वैली), देव भेली(वैली), लंगाई भेली(वैली) इत्यादि स्थानों के नाम नदी के नामानुसार हुए हैं। भेली(वैली) शब्द आधुनिक होने पर भी स्थानों के नाम प्राचीन है। उसके साथ भेली(वैली) जोड़ दिया गया है। खलंमा के विषय में त्रिपुरा का दूसरा इतिहास ''कृष्णमाला'' नामक हस्तलिखित ग्रंथ में लिखा है।

"हिडिम्ब देशेर दक्षिणेते एक नदी।
बरबक्र नाम तार घोषे अद्यावधि।।
खलंमा बलये त्रिपुर सकले।
कुकी सबे बसति करये तार कुले।।" कृष्णमाला

अर्थात "हिडिम्ब देश के दक्षिण में एक नदी है। आज तक उसे बरबक्र(बोराक) ही सभी कहते हैं। खलंमा के अचंल में सभी त्रिपुर निवास करने लगे हैं। नदी के दोनों किनारों पर कुकीयों का वास स्थान है।"

यह स्थान दाक्षिण से प्रतीत तक 67 भूपतियों का राज पाट यही पर था। इसके प्रमाण मिलते हैं, महाराज प्रतीत काछाड़ के राजा के साथ कलह करके खलंमा में चले आने की बात राजमाला में पाई जाती है –

खलंमार कुले आइसे त्रिपुर राजन।।	खलंमा तीरे आए त्रिपुर राजन।।
राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 20पृ	राजमाला प्रल प्रतीत खण्ड 20पृ

अर्थात त्रिपुरा के राजा खलंमा में आये।

महाराज प्रतीत के समय राजधानी स्थानांतरित होने पर भी खलंमा का राज पाट संपूर्ण रूप से त्याग नहीं हुआ था। इससे यही प्रमाणित होता है।

खूंटीमुडा(पृ 62, ला 11) यह स्थान त्रिपुर राज्य के अन्तर्गत अगरतल्ला सदर विभाग एवं ध्वज नगर और विशालगढ़ के पूर्व की ओर बसा हुआ है। महाराज राजधरमाणिक्य कैलाशहर(मनु नदी के किनारे) से उदयपुर जाते समय खूटीमुडा को बांयी ओर रखकर दक्षिणभिमुखी गये थे। यथा –

खुटि मूड़ा बामें कोरि ध्वज नगर पथे।	खुटि मुड़ा को बाँये रखा ध्वज नगर के पथ पर।
बिशालगड़ होइया चले डोम घाटि ताते।।	विशालगड़ से चले डोम घाटी से होकर।।
उदयपुर असि राजा प्रवेशिलो पुरी।	उदयपुर आकर राजा प्रवेश पुरी में।
राज तृल राजधरमाणिक्य खण्ड50पृ	राज तृल राजधरमाणिक्य खण्ड50पृ

डांगर फा ने पुत्रों में राज्य के विभाजन के समय एक पुत्र को खूंटीमुडा में बैठाया था।(1) किस पुत्र को राजा के रूप में यहाँ पर अधिकारी बनाया था यहाँ पर पता नहीं चला।

---

(1)

खूँटिमूड़ा दिलो एक नृपति नन्दन।।	खूँटि मुड़ा का राज्य पाया और एक नन्दन।।
राज प्रल डांगर फा खण्ड62पृ	राज प्रल डांगर फा खण्ड62पृ

अर्थात एक राजपुत्र को राजा ने खूटीमुडा प्रदान किया।

प्रल—252

इस जगह पर प्राचीन इमारत का निदर्शन एवं पक्का बंधाया हुआ विशाल तालाब आदि अब भी वहाँ दिखाई देता है। एक विशाल तालाब को खूटामारा का तालाब कहा जाता है। संभवतः खूटीमुडा की जगह खूंटामारा हो गया है।

खुलंग (पृ 32 ला 15) यह कुकी प्रदेश के(लुसाई पर्वत) के अधीन एक स्थान है। यहाँ पर कुकी जाति का वास स्थान था।

गौड (पृ 53 ला 29) इसी स्थान पर बंग देश की राजधानी प्रतिष्ठित थी। शक्ति संगम तन्त्र में गौड के वर्णन में है।

बंगदेशं समारभ्य भुवनेशांतगं शिवे।
गौडदेशः समाख्यातः सर्वशास्त्र विशारदः।।

"बंग देश से लेकर भुवनेश्वर की सीमा तक भूमि को गौड देश कहा गया है। यहाँ के लोग सर्वशास्त्र विशारद हैं।"

पहले पंच गौड अर्थात पाँच प्रदेशों का नाम गौड था। माधवाचार्य ने अपने दुर्गा महात्म्य में अकबर बादशाह को पंच गौडेश्वर कहा है —

पंच गौड नामे देश पृथिवीर साय।
एकाब्बर नामें राजा अर्जुन अबतार।।

अर्थात पंच गौड देश दुनिया में श्रेष्ठ है। अर्जुन के अवतार की तरह एक अकबर राजा इसके अधिपति हैं।

काश्मीर के प्राचीन इतिवृत्ति राजतरंगिनी में पंच गौड देश का नामोल्लेख मिलता है। स्कन्द पुराणीय सह्याद्रि खण्ड में इस पंच गौड का नामोल्लेख है। यथा —

सारस्वताः कान्याकुब्जा उत्कला मैथिलाश्च ये।
गौडाश्च पंचधाचैव पंचगौडाः प्रकीर्त्तिाः।।
उत्तरार्द्ध 1 अध्याय।

सारस्वत अर्थात सरस्वती के तटवर्ती स्थान, कन्नौज, उत्कल, मिथिला और गौड इन पाँच स्थानों को पंच गौड कहा जाता है।

राजमाला में बंग देश के गौड का ही उल्लेख है। अन्य गौड देशों के साथ राजमाला को कोई सबन्ध नहीं है। इस गौड राज्य में गुप्तवंशीय, पाल वंशीय और सेन वंशीय हिन्दू राजाओं ने राज्य शासन किया है। यह राज्य कुछ दिनों के लिए काश्मीर राज्य के अधीन भी रहा था।

प्राचीन काल में गौड नामक कोई नगर रहने का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। विजय सेन के पुत्र बल्लाल सेन गंगा तटवर्ती गौड नगर में राजधानी स्थापन करने के

प्रमाण इतिहास में मिलते हैं। उनके पुत्र लक्ष्मण सेन ने उस नगरी को लक्ष्मणावती नाम दिया था। इसके नवद्वीप पर उन्होंने और एक राजधानी की स्थापना की थी।

हिन्दु राजत्व काल में राजधानी चाहे जहां रहे सभी राजा गौडेश्वर के नाम से ही परिचित थे। मुसलमान शासन के समय उनके अधिकृत भूभाग ''लखनौती'' नाम से जाना जाता था। लखनौती शब्द संभवतः लक्ष्मणावती से ही उत्पन्न हुआ है। मुसलमान शासनकाल में गौड नगर विशेष समृद्ध जनपद में परिणित हुआ था। 1639 ई0 सन् में शाह शुजा राजमहल में राजधानी ले जाने के पश्चात यह स्थान श्रीभ्रष्ट हो गया और क्रमशः हिंसक जन्तुओं से भरा अरण्य में बदल गया। अब भी वहाँ बहुत सी प्राचीन की कीर्तिओं के ध्वंसावशेष विद्यमान है। सुना जाता है यह समृद्ध नगर अरण्य में परिणित होने का महामारी भी एक मात्र कारण है।

<u>चाखमा(पृ 32 ला 15)</u> पार्वत्य चट्टग्राम एक समय रियां सम्प्रदायों की आवास भूमि थी। चाखमाओं ने उन्हें पराजित कर उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया था। तब से ही चट्टग्राम का पार्वत्य प्रदेश में चाखमाओं का प्राधान्य स्थापित हुआ था। चाखमा लोग बौद्ध धर्मावलम्बी है। इनका आदिम आवास स्थल था आराकान।

चाखमा देश चाखमा जाति द्वारा ही शासित था। 1860 ई0 सन् में बिट्रिश सरकार ने कुकी सम्प्रदाय के अत्याचार के निवारण के लिए पार्वत्य चट्टग्राम को एक जिला में बदल दिया। उस समय चाखमा सरदारों की राजशक्ति को रहित कर उन्हें जमींदार श्रेणी में रखा। अभी ''राजा'' और ''दीवान'' उपाधिधारी कुछ चाखमा सरदार द्वारा उक्त प्रदेश शसित होता रहा है। पार्वत्य चट्टग्राम **(Chittagong Hill Tract)** और उसके अन्तर्युक्त रांगामाटी स्थान चाखमा देश के नाम से जाना जाता था।

<u>छाम्बुल नगर (पृ 43 ला 10)</u> इस स्थान के बारे में पहले भी आलोचना की गई है। यहाँ पर अधिक कुछ न कहकर इसके अवस्थान के बारे में दो चार बातें ही केवल आलोचित होगी।

राजमाला में बार बार छाम्बुलनगर का उल्लेख है। महाराज बिमार के पुत्र शिव दर्शनार्थ छाम्बुल नगर में गये थे। यथा –

तार पुत्र कुमार परेते राजा होय।।	उसके बाद राजा हुए उनके पुत्र कुमार।।
किरात अलये आछे छाम्बुल नगर।	किरात देश में है छाम्बुल एक नगर।
सेई राज्ये गियाछिल शिव भक्ति तर।।	उस राज्य में गया था शिव भक्ति तर।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड42पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड42पृ

प्रल—254

गुप्त भाबे आछे तथा अखिलेर पति।	गुप्त भाव से है वहाँ सदा अखिल पति।
मनुराज सत्य युगे पूजिछिलो अति।।	मनुराज ने सत्ययुग में तप किया वहाँ अति।।
मनुनदी तीरे मनु बहु तप कोइलो।	मनु नदी पर मनु ने किया घोर तप।
तद्विधि मनु नदी पुण्य नाम होइलो।।	तब से मनु नदी का हुआ महा पुण्य नाम।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड43पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड43पृ

इस विषय में संस्कृत राजमाला की उक्ति नीचे दी जा रही है —

बिमारस्य सुतोजातः कुमारः पृथिवीपतिः।
स राजा भुबनख्यातः शिवभक्ति परायणः।।
किरात राज्ये स नृपश्छाम्बुलनगरातंरे।
शिवलिगं समाद्राक्षीत् सुबडाई कृतेमठे।।
ततः शिवं समभ्यर्च नित्यं तुष्टावभुमिपः।
राजा श्रुत्वेदमाश्चर्यं पप्रच्छ विनयान्वितः।।
कथमत्र महादेवः किरातनगरे स्थितः।
इति राज वचः श्रुत्वा मुकुन्दो ब्राह्मणोऽब्रवीत।।
पुराकृत युगे राजन् मनुना पूजितः शिबः।
अत्रैव विरले स्थाने मनु नाम नदीतटे।।
गुप्तभावेन देवेशः किरात नगरे बसत्।

इसके द्वारा छाम्बुल नगर के कुछ उल्लेखनीय विषय मिल रहे हैं।

1. छाम्बुल नगर किरात देश में है।
2. यहाँ पर शिवलिंग स्थापित है।
3. सुबडाई(त्रिलोचन) ने यहाँ पर शिव मन्दिर निर्माण कराया था।
4. यह स्थान मनु नदी के तट पर स्थित है।
5. महाराज कुमार इस स्थान पर अवस्थान पूर्वक(रहते हुए) शिव की आराधना में नियुक्त थे।

इस सभी विषयों से छाम्बुल नगर का अवस्थान निर्णय करना होगा। हम यहाँ पर देख रहे हैं —

1. कैलाशहर में पहले किरात(कुकी) जाति का वास था। यहाँ तक कि वर्तमान लंगला नामक स्थान पर उनके अधिपत्य का प्रमाण मिलता है। महाराज धर्मधर ने ब्राह्मणों को ताम्र पत्र प्रदान द्वारा भूमिदान करने पर आर्यों के निवास स्थान हेतु कुकी लोग दूर पहाड़ी पर चले गये थे। इसके द्वारा कैलाशहर और उसके आस पास के स्थानों पर किरात जातियाँ रहती थी, यह प्रमाणित होता है। इस समय भी कुछ कुकी लोग कैलाशहर के दूर दराज के पहाड़ों पर रहते हैं।

2. कैलाशहर के करीब उनकोटि नाम के तीर्थ शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं।

इसके अलावा उस अंचल में दूसरी किसी जगह विख्यात शिवलिंग रहने का प्रमाण नहीं है।

3. सुबडाई(महाराज त्रिलोचन) उक्त उनकोटि तीर्थ में ही मंदिर के निर्माण किये होगें। वहाँ पर आज भी प्राचीन मंदिर के चिन्ह व असंख्य पुरानी ईंटे दिखाई देती हैं।

4. कैलाशहर मनु नदी के किनारे बसा हुआ है। उनकोटि तीर्थ भी इस नदी से दूर नहीं है।

5. कैलाशहर से उत्तर की ओर एक राज भवन था। इसके अलावा भी कैलाशहर के और करीब प्राचीन राजभवन के चिन्ह दिखाई देते हैं। महाराज कुमार इसके किसी महल में रहकर शिव की आराधना करते थे, यह सिद्धान्त असंगत नहीं जान पड़ता।(1)

इन्ही सब ही कारणों से हम उनकोटि तीर्थ और कैलाशहर का नाम छाम्बुल नगर था – इसे ही अभ्रान्त सिद्धान्त समझता हूं। विश्व कोष संकलियता महाशय ने चन्द्रनाथ(सीता कुंड) तीर्थ को छाम्बुल नगर कहकर प्रमाण जुटाने का व्यर्थ प्रयास किया है। किन्तु वह स्थान मनु नदी के तटवर्ती नहीं है एवं वह उक्त नदी के ठीक विपरीत दिशा में बहुत ही दूरी पर है। इसी एक ही कारण से उनका सिद्धान्त व्यर्थ हुआ है।

<u>जयंता(पृ 47 , ला 8)(जयंतिया)</u> वर्तमान मेघालय प्रदेश के अन्तर्गत(पहले आसाम में) एक विस्तृत भूभाग है। पहले यह स्थान हिन्दू राजा द्वारा शासित होता था। देशावली के अनुसार इस स्थान पर जंयतेशी देवी विराज करती है। बृहन्नील तंत्र में यह पीठ स्थान कहकर वर्णित है। यथा –

''जयंतं विजयन्तन्च सर्वकल्याणदं प्रिये।''

– बृहन्नील तंत्र 5 पटल।

जयंत राज हर साल नरबलि द्वारा देवी की अर्चना करते थे। इस राज्य के अन्तिम राजा राजेन्द्र सिंह के नरबलि प्रदान के कारण अग्रेजों के कोपभाजन बने व इस काराण से 1835 ई में उन्हें राज्यच्युत और गर्वनमेंट के बृत्तिभूक् हुए थे। अब इस राज्य का पार्वत्य प्रदेश खासी और जंयतीया पहाड़ के अधीन है। कुछ समतल श्रीहट्ट में चले गये हैं।

---

(1) तल्विंगे शिवमाराध्य कुमाराख्यो महीपतिः।
सुखंबहुविधं भूक्ता कैलाश भवनं यथौ।
– संस्कृत राजमाला।

प्रल–256

तेलाइंग (पृ 62, ला 24) यह स्थान हेड़म्ब(काछाड) राज्य के अन्तर्गत था।

त्रिपुरा (पृ 9, ला 8) त्रिपुरा राज्य इस स्थान की नामोत्पत्ति, अवस्थान और सीमा आदि विषय पूर्वाभाष में आलोचित हो चुके हैं। अतएव यहाँ पुनरूक्ति अनावश्यक है।

त्रिवेग (पृ 6, ला 4) यह स्थान ही त्रिपुरा का राजधानी रहा है। यह कपिल(ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर स्थित है। इस स्थान का विवरण पूर्वाभाष में दिया गया है। इसलिए यहाँ पुनर्उल्लेख नहीं किया गया।

थानांचि (पृ 32, ला 16) यह कुकी प्रदेश है। प्राचीन त्रिपुर राज्य के पूर्व और लुसाई पहाड़(पश्चिम) के पार्वत्य प्रदेश में यह स्थान है। महाराज त्रिलोचन के शासन काल में पहले थानांचि प्रदेश त्रिपुर राज्य के अधीन हुआ था। राजमाला के त्रिलोचन खण्ड में लिखा है

थानांछि प्रतापसिंह आछे जतो देश।	थानांछि प्रताप सिंह है जितने देश।
लिका नामे आर राजा रांगामाटी शेष।।	लिका नाम और राजा रांगामाटी शेष।।
एई सब जिनीबारे इच्छा मने होइलो।	ये राज्य जीतने की जागी मन में वासना।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड32पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड32पृ

अर्थात, थानांचि, प्रताप सिंह आदि जितने देश थे। और रांगामाटी लिका नाम के राजा आदि सभी को जीतने की इच्छा मन में जागृत हुई।

इस विजय के पश्चात थानांचि निवासी कुकी सम्प्रदाय ने त्रिपुरा की अधीनता को छिन्न कर अपना स्वातन्त्रय की घोषणा की थी। महाराज डांगर फा के शासन काल तक ये अपना सर ऊपर उठाने का साहस नहीं कर सके। उस समय थानांचि में त्रिपुरा का एक थाना(1) था। उन दिनों सेना निवास को थाना कहा जाता था। राजमाला में है। डांगर फा ने अपने सत्रह पुत्रों में राज्य का विभाजन करने के पश्चात "थानांचि स्थानेते राजा होइलो एक जन" अर्थात थानांचि में एक को राजा बनाया गया। डांगर फा ने अपने कनिष्ठ पुत्र रत्न फा के द्वारा आक्रान्त और विताडित होकर थानांचि में जाकर आश्रय लिया था एवं वहीं पर वे परलोक सिधारे।(2) इसके बाद कुकीयों ने त्रिपुरा की वश्यता अस्वीकार किया था। यह निर्णय लेने की सुविधा नहीं है।

महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में थानांचि के राजा ने एक श्वेत हस्ती पकड़ा था। त्रिपुरेश्वर ने उस हस्ती की मांग कर भेजने के लिए खबर भेजी तो थानांचि राजा ने उसे लौटाने पर अपनी असहमति जाहिर की। इसी आधार पर थानांचि के साथ त्रिपुरा का युद्ध हुआ।

....

(1) डांगर फा राजार काले थानांचिते थाना – राज द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 17 पृ अर्थात डांगर फा राजा के समय थानांचि में थाना(सेना निवास) बना।

(2)

थानांचि पर्वते राजा डांगर फा मरिलो।	थानांचि पर्वत में जा डांगर फा मरे।
आर जतो राज पुत्र लडाइया धरिलो।।	और राज पुत्र लड़ते हुए गये पकड़े।।
राजमाला प्रल रत्न माणिक्य खण्ड66पृ	राजमाला प्रल रत्न माणिक्य खण्ड66पृ

थानांचि पहाड़ में राजा डांगर फा की मृत्यु हुई। रत्न फा ने दूसरे भाईयों को लडाई कर पकड़ लिया।"

प्रल–257

आठ महीने लगातार युद्ध के बाद थांनाचि प्रदेश श्वेत हस्ती के साथ पुनः त्रिपुरा राज्य के हस्तगत हुआ था।

द्वारिका (पृ 7, ला 9) द्वारिका गुजरात के अन्तर्गत काठियाबाड का एक बन्दर है। यह स्थान बडोदा के गाइकोआर(गायकवाड) के अधीन है। यह हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। बडोदा से पश्चिम 135 कोस अर्थात 270 मील की दूरी पर है। यहाँ के द्वारिकानाथ का मन्दिर एक प्रसिद्ध देवालय है। इस मंदिर में प्रतिष्ठित प्रथम विग्रह ''रणछोड़ जी'' पूजकों के द्वारा अपहृत और अन्यत्र प्रतिष्ठित होने पर द्वितीय विग्रह की प्रतिष्ठा की गई। वहाँ भी उसी तरह चोरी होने पर वर्तमान जो देव विग्रह है उसकी प्रतिष्ठा हुई थी।

यहाँ पर भागवान श्री कृष्ण की राजधानी थी। इसका दूसरा नाम है– कुशस्थली। श्री कृष्ण के राजपाट स्थान के पूर्व से ही यह स्थान तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित था। इस समय भी यह एक प्रधान तीर्थ भूमि के रूप में विख्यात है। हर साल बहुत से यात्री पुण्य की कामना से यहाँ आते हैं।

धर्म नगर (पृ 62, ला 8) यह स्थान कैलाशहर के पूर्व की ओर उनकोटि पर्वत पूर्व प्रान्त में जुरी नदी के किनारे बसा हुआ है। इसका नामन्तर फटिकउली या फूटिकुली था। सबसे पहले महाराज प्रतीत –इसके बाद महाराज डांगर फा ने यहाँ पर भवन निर्माण किया था। महाराज विजयमाणिक्य के कुछ दिनों तक यहाँ रहने के प्रमाण मिलते हैं। विजयमाणिक्य के अभियान वर्णन में राजमाला में हम देखते हैं –

लंगला देश होइते धर्मनगर आइसे।	लंगला देश से हुआ धर्मनगर आगमन।
हर गौरी पूजिछिलो कामोना विशेषे।।	कामना विशेष से किया हर –गौरी पूजन।।
डांगर फार पूरी मघ्ये छिलो कोतो दिन।	डांगर फा की पुरी में वे थे और कुछ दिन।
नारेंगी कमला बाग देखिलो प्रवीण।	नारंगी कमला बाग तब देखे प्रवीण।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड59पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड59पृ

महाराज डांगर फा ने अपने सत्रह पुत्रों को राज्य विभाजन कर देते समय एक पुत्र को यह स्थान प्रदान किया था। राजमाला में लिखा है, ''आर पुत्र धर्मनगरेते राजा छिलो।'' अर्थात ''उनका और एक पुत्र धर्म नगर में राजा हुआ।'' इस राज पुत्र का नाम राजमाला में नहीं लिखा गया है। इसीलिए नाम निर्धारण करना सभंव नहीं है।

धर्मनगर इस समय उत्तर त्रिपुरा का एक सब डिविजनल शहर है। यहाँ पर विभागीय सभी ऑफिस, दीवानी और फौजदारी अदालत, थाना, वनकर ऑफिस डाकघर, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि है। यहाँ पर रेलवे स्टेशन भी है।

प्रल–258
पहले कुलाउडा स्टेशन से पार्वत्य पथ होकर और जुरी स्टेशन से नदी में नाव से यहाँ यातयात होता था।

धर्मनगर अति प्राचीन और समृद्धशाली जनपद था। महाराज प्रतीत ने खलंमा से धर्मनगर में राज पाट स्थापना के समय इस स्थान की जो अवस्था थी, उसके आलोचना करने से ही हमारी उक्ति का ज्वलंत प्रमाण मिलेगा।

धर्म नगरेर कथा सुनो नृप मणि।
धर्मेर बसति स्थान हेनो अनुमानि।।
नित्य जप, तप, होम अतिथि पूजन।
परम आनन्द युक्त बटे सर्व जन।।
सर्वदा ब्राह्मण जाति करे वेद पाठ।
निद्रा हने चैतन्य जन्माय बन्दीभाट।।
गन्ध युक्त पुष्प बहु रस युक्त फल।
अतिमिष्ट भोज्यगुला निर्मल कमल।।
अधर्मेर नाहि लेश पून्येर भाजन।
नाना गुणे रूपे युक्त बँटे सर्वजन।।

– राजा बाबू के घर में स्वरचित राजमाला।

अर्थात – ''हे राजन, धर्म नगर की कथा सुनिये, मुझे ऐसा अनुमान होता है कि वहाँ धर्म का वास है। नित्य जप, तप, होम और अतिथि का पूजन होता है। सभी लोग परमानन्द युक्त हैं। ब्राह्मण जाति के लोग सदा वेद पाठ करते हैं। बन्दी भाट ये लोग सभी लोगो के भीतर अज्ञान रूपी अनिंद्रा को दूर कर लोगों में चैतन्य जागृत कर रहे हैं। गंध युक्त बहुत से फूल वहाँ खिलते हैं और रस युक्त फल भी वहाँ अधिक है। भोज्य सामग्रीयां बहुत ही स्वादिष्ट है। सब कुछ कमल की तरह निर्मल है। वहाँ पुण्य है, अधर्म का लेश मात्र नहीं है। सभी लोग नाना तरह गुण से और रूप से भरे पड़े हैं।''

धर्म नगर का प्राचीन सरोवर, बहुत से तालाब प्रशस्त और सुदीर्घ पथ और प्राचीन भवनों का अवलोकन करने से ऊपर लिखी हुई बातों की यथार्थता उपलब्धि होती है। दुर्भिक्ष, महामारी अथवा कुकी अत्याचारों से यह विशाल जनपद जन शून्य हो गया था। दीर्घ काल के बाद पुनः अब जन बस्तियों का विस्तार हुआ है।

धोपा पाथर (पृ 62 ला 25) आधुनिक श्रीहट्ट जिला के अन्तर्गत एक जनपद है। पहले यह राज्य त्रिपुर राजाओं के अधीन था। महाराज डांगर फा ने अपने सत्रह पुत्रों में से एक को यहाँ का राजा बनाया था। राजमाला में है–

धोपा पाथरेते राजा आर एक जन (राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड62पृ)अर्थात धोपा पाथर में और एक राजा हुए।
किस पुत्र को यहाँ का राजा बनाया था। इस बारे में राजमाला निर्वाक् है। यह पता लगाना नामुमकिन है।

कर्णफूली नदी के दूसरे किनारे पर और एक जगह का नाम धोपा पाथर था। महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल में त्रिपुर वाहिनी आराकान विजय के लिए जाने

प्रल—259

के पश्चात मघों के हाथों पराजित हो भागने पर मजबूर हुई। उस समय

सेई स्थान छाड़ि आइसे कर्ण फुली।	वह स्थान छोड़ फौज आई कर्ण फुली।
मघ सैन्य पाछे पाछे आसिलो सकलि।।	मघ सैन्य पीछे पीछे आई चली।।
धोपा पाथरेर पथे कर्ण फुली पार।	धोपा पाथर की राह हुई कर्ण फुली पार।
मघ सैन्य पाछे पाछे आसे मारिबार।।	मघ सैन्य पीछे पीछे करने आई मार।।
राज तृल अमरमाणिक्य खण्ड28पृ	राज तृल अमरमाणिक्य खण्ड28पृ

अर्थात, "उस स्थान को छोड़ कर सभी कर्ण फूली नदी तट पर आये। सारी मघ सेनायें इन्हें खदेड़ती हुई पीछे पीछे आई। धोपा पाथर के पथ से होकर कणफूली को पार कर मारने के लिए मघ सेनायें आई।

कैलाशहर के करीब प्राचीन कानिहाटि परगना का एक स्थान इस समय भी धोपाटिला नाम से परिचित है। यह स्थान कानिहाटि चाय बागान से सटा हुआ है। इसके पूर्व की ओर विशाल राजारदीधि(राजा का सरोवर) और राज भवन के खण्डहर अब भी दिखाई देते हैं। पहले इस जगह का नाम धोपा पाथर था या नही इसे जानने का कोई उपाय नहीं है। किन्तु यहाँ जो त्रिपुरा का राजमहल था, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

<u>नैमिषारण्य (पृ 7, ला 9)</u> यह स्थान गोमती नदी का तटवर्ती है। यहीं पर चक्रतीर्थ है। नैमिषारण्य नामकरण संबन्ध में शास्त्र ग्रंथों में है —

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा।
उवाच निमिषेनेदं निहतं दानवं बलम्।।
अरण्येऽस्मिंस्ततस्तेन नैमिषारण्य संज्ञितम्।
भविष्यति यथार्हं वै ब्राह्मणानां विशेषतः।।

— बराह पुराण।

ममार्थ — "गौर मुख मुनि ने यहाँ पर निमिषकाल में असुर सेना और उनकी शक्ति को भस्म कर दिया था। इसलिए नैमिषारण्य नाम से यह स्थान विख्यात हुआ।"

देवी भागवत् के अनुसार नैमिषारण्य पवित्र तीर्थ है। यहाँ पर कलिकाल(कलयुग) को प्रवेशाधिकार नहीं है। कूर्म पुराण के 40 अध्याय में एवं विष्णु पुराण इस तीर्थ का वर्णन मिलता है।

<u>पौरव (पृ 9, ला 23)</u> यह स्थान दाक्षिणात्ये, माहीष्मती और सौराष्ट्र के मध्यवर्ती स्थान में स्थित है। महाभारत के समय इस स्थान पर एक हिन्दू राज्य प्रतिष्ठित था एवं दक्षिण विजयी सहदेव ने इस राज्य को जीता था।

<u>प्रताप सिंह (पृ 32, ला 16)</u> नामान्तर प्रतापछि। यह लुसाई पर्वत के समीप कुकिओं का निवास स्थल था। यह किरात अध्युषित प्रदेश बारम्बार त्रिपुर राज्य के कंठ—लग्न होने पर स्वाधीनता प्रिय यहाँ अधिवासी सुदीर्घ कालों तक अपने स्वतान्त्रय की रक्षा में तत्पर रहे एवं बहुत बार त्रिपुरा की अधीनता अस्वीकार किया है। महाराज धनमाणिक्य शासन काल में

प्रल–260
सेनापति राय काचाग के बाहुबल के सामने इन्हे वश्यता स्वीकार करनी पड़ी और कभी राज शासन की विरोधिता करते इन्हें नहीं देखा गया।

प्रयाग (पृ 7, ला 12) यह हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। गंगा और यमुना के संगम स्थल पर यह तीर्थ स्थित है। इसका आधुनिक नाम इलाहाबाद है। प्रयाग महात्म्य का वर्णन बहुत से पुराणों में उल्लेख है। मत्स्य पुराण 102 से लेकर 107 अध्याय तक, पद्म पुराण के भूमि खण्ड में 123 अध्याय और कुर्म पुराण में 33 अध्याय में इस तीर्थ का महात्म्य का विस्तृत भाव से वर्णित हुआ है। प्रयाग महात्म्य नाम का एक स्वतन्त्र ग्रंथ भी हैं।

प्रयाग में मस्तक मुण्डन करना एक प्रधान पुण्य कर्म है। स्त्रीयों के मस्तक मुण्डन के बारे में केश के अग्र भाग का काटने से ही उसे मुण्डन माना जाता है। किन्तु प्रयाग में समस्त मस्तक का उन्हें भी अधिकार है। प्रायश्चित तत्व में लिखा है, "प्रयाग तीर्थ में समस्त मस्तक का मुण्डन–उनके सिर पर जितने बाल होगें उतने सालों तक वे स्वर्ग में रह सकेगें। एक चलित कहावत में भी है –

प्रयागे मुडाइया माथा, मरगे पापी यथा तथा।

अर्थात "हे पापी प्रयाग में मस्तक मुण्डन कर, जहां खुशी वहाँ जाकर मरो।"

प्रयाग में श्राद्ध और दान आदि का फल अतुलनीय है। माघ महीने में यहाँ पर सारे तीर्थों का समागम होता है। इसलिए माघ महीने में यहाँ तीर्थ करने पर सभी तीर्थो का फल मिलता है। मत्स्य पुराण में लिखा है –

माघे मासि गमिष्यंति गंगा यमुना संगमं।
गवां शत सहस्त्रस्य सम्यक दत्तस्य यत्फलं।।
प्रयागे माघमासे वै त्रयहं स्नातस्य तत्फलम्। मत्स्य पुराण

ममार्थ– विधि पूर्वक सहस्र संख्यक गो दान करने से जो फल प्राप्त होता है, माघ महीने में प्रयाग तीर्थ में तीन दिनों तक स्नान करने से वैसा ही फल मिलता है। माघ महीने में प्रयाग स्नान ही सबसे ज्यादा प्रशस्त है।

प्रयाग महात्म्य के विषय में विस्तृत विवरण लेकर आलोचना करना यहाँ असंभव सा है। अतः इस बारे में अब और अधिक आलोचना करने से हम यहीं निरस्त होते हैं।

प्राचीन काल में यह स्थान कौशल राज्य के अधीन था। यादवों ने यहाँ पर बहुत काल राज्य शासन किया था। 414 ई0 सन् चीन परिब्राजक फा–हियान इस स्थान को कौशल राज के अधीन देखा था। 1294 ई0 में यह प्रदेश मुसलमानों के हाथों में चला गया। सम्राट अकबर के शासनकाल में इसका नाम आलाहाबाद

प्रल–261
हुआ। मराठे लोग कभी कभी यह स्थान मुसलमानों से छीन लेते थे। किन्तु दीर्घ दिनों तक अपने कब्जे में नहीं रख सके। 1801 ई0 सन् में अयोध्या के नवाब ने अंग्रेजों को अपनी मोटी रकम न दे सकने के बदले इसे ही दे दिया। 1857 ई0 सन् में यहां भी सिपाही विद्रोह हुआ था।

प्रागज्योतिष (पृ 10, ला 3) कामरूप देश। प्रागज्योतिष नामकरण के विषय में कालिका पुराण में लिखा है–

''अत्रैव हि स्थितो ब्रह्मा प्रां नक्षत्रं ससर्ज च।
ततः प्रागज्योतिषाख्योयं पुरी शत्रु पुरी समा।।'' कालिका पुराण 37 अध्याय

अर्थात – ''पहले ब्रह्मा ने यहीं बैठकर नक्षत्रों की सृष्टि की थी। इसलिए इसका नाम प्रागज्योतिष पड़ा।''

प्रागज्योतिष या कामरूप हिन्दु की एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ पर देवी का योनि पीठ गिरने से यह स्थान महापीठ में बदल गया है। यह स्थान पवित्र ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर बसा हुआ है। मार्कण्डेय पुराण के मत से प्रागज्योतिष राज्य भारत का पूर्व दिशा में है जहाँ पहले सूर्य की ज्योति पहुंचती है।

रामायण के अनुसार कुश के पुत्र अमूर्त्तरजस् ने प्रागज्योतिष पुर को बसाया है। इसका वर्तमान नाम गोहाटी(अब गुवाहटी) है। इस प्रागज्योतिषपुर नाम से एक समय सम्पूर्ण आसाम और उसके आस पास का विशाल भूभाग ''प्रागज्योतिष'' नाम से ही जाना जाता था। कालिका पुराण 37 अध्याय में है, नरकासुर के द्वारा प्रागज्योतिष में राज्य स्थापित हुआ था। नरकासुर के पुत्र भगदत्त इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति थे। पाण्डवों के दिग्वजय के समय अर्जुन के साथ इनका युद्ध हुआ था।(1) इसके अलावा महाभारत के युद्ध में एक अहम् नायक की भूमिका निभाया था।(1) महाभारत के स्त्री पर्व 23 अध्याय में भगदत्त को पर्वतवासी म्लेच्छाधिपति कहा गया है। इनके वंशज दीर्घ दिनों तक प्रागज्योतिष में राज्य शासन कर रहे हैं।

इसके बाद कुछ दिनों तक यह राज्य म्लेच्छों के द्वारा शासित हुआ था। म्लेच्छों के पश्चात प्रलंभ नाम के दूसरे एक वंश का इस पर अधिकार हुआ। ये लोग अपने को भगदत्त के वंशज कहते थे। इसके बाद पाल उपाधिधारी

---

(1) महाभारत – उद्योग पर्व 16 अध्याय।
(2) महाभारत – कर्ण पर्व 5 अध्याय।

प्रल—262

भौम राजाओं ने शासन दण्ड अपने हाथों में लिया। इसके बाद गौड के पाल वंशीय राजाओं का अधिकार का विस्तार हुआ था। इसके थोड़े दिनों के पश्चात मुसलमानों ने प्रागज्योतिष पर अपना हाथ फैलाया। यहाँ पर इससे अधिक आलोचना की सुविधा नहीं है।

<u>बंग (पृ 2, ला 3)</u> बंगाल। प्राचीन ग्रंथों में यह प्रदेश ''समतट'' नाम से परिचित हुआ था। इसके विस्तृत विवरण प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है।

<u>वर्व्वर (पृ 10, ला 4)</u> अयोध्या के करीब खेरी जिला के अन्तर्गत एक जनपद है।यहाँ मुसलमान शासनकाल का एक किले का भग्नावशेष भी दिखाई देता है। कुछ हिन्दु देव मन्दिर और मुसलमानों की मस्जिदें हैं।

<u>विशालगढ (52पृ , ला 4)</u> — यह स्थान त्रिपुरा के राजधानी अगरतल्ला से दक्षिण दिशा में 12 मील की दूरी पर है। अगरतल्ला से दक्षिण की ओर बुडीमा नदी के किनारे है। यह एक बड़ा व्यवासायिक केन्द्र है। यहाँ धान चावल और कपास का भी एक बड़ा वाणिज्य केन्द्र है। यहीं से थोडी दूरी पर गोलाघाटी एक समृद्ध बाजार भी है। व्यवासायिकगण इस स्थान में गोला बना कर के सामान बेचता है कह कर बाजार का नाम गोलाघाटी हुआ है। पहले यह बंग के शासनाधीन थी। महाराज युझारु फा ने इसे जीतकर इसे त्रिपुरा राज्य में मिला लिया। उन्होनें रांगामाटी जीतकर —

रोहिलो अनेक काल से स्थाने नृपति।	रहे बहुत काल तक वहाँ नृपति।
बंगदेश आमल कोरिते होइलो मति।।	बंग देश दखल करने की हुई उनकी मति।।
विशालगढ आदि कोरि पर्बतिया ग्राम।	विशालगढ़ आदि करके और पहाड़ी ग्राम।
कालक्रमे सेई स्थाने होइलो त्रिपुर धाम।।	काल क्रम पर वह स्थान हुआ त्रिपुर धाम।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52पृ

अर्थात — ''बहुत दिनों तक राजा वहीं पर रहे। इसके बाद बंग देश पर अपना अधिकार विस्तार करने की इच्छा हुई। विशालगढ़ और कुछ पहाड़ी गाँवों को जीतकर इन जगहों को त्रिपुरा राज्य में मिला लिया''

यहाँ पर सेना निवास होने पर इसका नाम विशालगढ़ हो गया। यहाँ पर युझारु फा ने एक पुरी का भी निर्माण किया था। बहुत दिनों के पश्चात डांगर फा ने अपने सत्रह पुत्रों में राज्य विभाजन कर एक पुत्र का विशालगढ़ का राजा बनाया था। राजमाला में है —
''विशाल गढ़ेते राजा होइलो एक जन'' अर्थात ''विशालगढ़ में अपने एक पुत्र को राजा बनाया।'' किस पुत्र को राजा बनाया था मलूम नहीं।

इस समय यहाँ पर राजसरकारी स्कूल, अस्पताल, डाकघर, थाना, एवं राज्य के ऑफिस तहसील, कचहरी, वनकर ऑफिस है। यहाँ लोग ए.बी. रेल लाइन द्वारा कमलासागर तक ट्रेन से आते थे।

प्रल–263

नयानपुर स्टेशन से बुडीमा नदीपथ में भी जाया जाता था।

मणिपुर (पृ 62, ला 26) यह त्रिपुर राज्य के बिलोनिया के किनारे मुहुरी नदी के पूर्व किनारे अवस्थित है। त्रिपुरेश्वर की जमींदारी में जगतपुर तहसील के ईलाके में यह मणिपुर है। इस ग्राम के उत्तर में उत्तरधर्मपुर और दक्षिण में दक्षिणधर्मपुर गाँव है। त्रिपुरेश्वर के ब्रह्मोत्र भोगी बहुत से शिक्षित ब्राह्मण यहाँ निवास कर रहे हैं। मणिपुर से एक मील की दूरी पर उत्तर धर्मपुर में एक उँचे टीले पर अब भी एक किले का भग्नावशेष देखने को मिलेगा। यहीं पर समसेर गाजी के साथ त्रिपुरेश्वर का युद्ध हुआ था।

मथुरा (पृ 5, ला 14) यह हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान है। यह स्थान श्रीकृष्ण की लीला भूमि तथा लीला क्षेत्र है। यह नगरी पूत–सलिला कालिन्दी नदी के तट पर स्थित है।

रामायण के उत्तराकाण्ड में लिखा है, मधु दैत्य ने महादेव की कृपा से एक अपूर्व शूल प्राप्त किया था। शूल पाणि ने कहा था, यह शूल जितना दिन तुम्हारे पुत्र के हाथों में रहेगा उतना ही उसे कोई वध नहीं कर सकता। यह वर पाकर मधु दैत्य ने शुप्रभपुर का निर्माण किया यथा समय मधु के यहाँ लवणदैत्य नाम के पुत्र का जन्म हुआ। लवण दुर्विनित और अबाध्य होने पर मधुदैत्य ने उसे शिव शूल अर्पण कर वरूणालय चले गये। क्रमशः लवण के अत्याचारों से सभी अस्थिर हो उठे।

राम के आदेश से शत्रुघ्न ने आकर सुकौशल तथा वीरत्व से लवण का वध किया। इस घटना से इन्द्रादि सभी देव गण सुप्रसन्न होकर शत्रुघ्न को जब वर प्रदान करना चाहा तो उन्होनें यह आकांक्षा व्यक्त की कि यह देव निर्मित मधुपुरी शीघ्र ही राजधानी हो उठे। देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा, यह स्थान शुरसेना नाम से विख्यात होगा। इस विषय में रामायण की उक्ति नीचे दी जा रही है –

"प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्न प्रयतात्मवान्।
इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।।
निवेशं प्राप्नुराच्छ्रघ्रमेष मेहस्त वरः परः।
तंदेवाः प्रीतमनसो बाढनित्येव राघवम्।।
भविष्यति पुरीरम्या शूरसेना न संशयः।
ते तथोक्त्वा महात्मनो दिवमारूरूहुस्तदा।।

उत्तराकाण्ड 83 अध्याय, 5/6 श्लोक।

प्रल–264
इसके बाद शत्रुघ्न द्वारा इस दैत्य राज्य में यदु वंश संभूत शूर सैन्य स्थापित हुए। थोड़े दिनों में यह एक समृद्धिशाली नगरी में बदल गया। पहले इस स्थान का नाम मधुपुरी या मधुरा था। सम्भवतः मधुरा शब्द मथुरा में बदल गया। महाभारत और अन्य पुराणों में मथुरा नाम का उल्लेख मिलता है। किन्तु इस नाम के उत्पत्ति के बारे में कहीं भी किसी तरह की बातें नहीं लिखी गई।

केवल हिन्दुओं का तीर्थ स्थान कहकर ही यह स्थान प्रसिद्ध हो उठा है, ऐसी बात नहीं है। यह स्थान बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय की भी तीर्थ भूमि है। यहाँ पर अनेक बौद्ध स्तूप और जैन मंदिर भी हैं।

शूर सेन वंश को हस्तच्युत कर कुछ दिनों के पश्चात कंस ने यहाँ पर राजत्व किया। श्रीकृष्ण ने कंस का निधन कर पुनः उग्रसेन को मथुरा के सिंहासन पर बैठाया। जरासंध के भय से श्रीकृष्ण के द्वारिका पुरी में गमन के पश्चात यह स्थान पुनः शूरसेनों के हाथ से निकल गया। इसके बाद यह स्थान पाटलीपुत्र के अधीन हुआ। इसके बाद यहाँ उनके अधिपत्य का विस्तार हुआ। इसके बाद क्रमान्वय से गुप्त वंश और पुनः शूरसेन वंश ने यहाँ राजत्व किया। शूरसेनों के राजत्व काल में यह मुसलमानों के हाथों में चला गया। अंग्रेजों के शासनकाल में यह स्थान एक जिला में बदल गया। वृन्दावन इसी जिले का एक हिस्सा है।

मधु ग्राम (पृ 62, ला 15) यह वर्तमान साबरूप सब डिवीजन के करीब श्री नगर मौजा का करीबी गाँव है। यहाँ पर बिट्रिश राज्य के अधीन त्रिपुरेश्वर की एक जमींदारी थी।

माया (7पृ , ला 8) मायापुर। यह स्थान हरिद्वार के नजदीक है। चीन परिब्राजक होयेन चुयं इस स्थान को "म–यु–लो" नाम से सम्बोधन किया है। यह हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है और गंगा के किनारे बसा हुआ है। यहाँ पर माया देवी प्रतिष्ठित है। इस देवी मूर्ति के तीन सिर और चार हाथ हैं। एक हस्त चक्र, एक में मुण्ड और ऊपर हस्त में त्रिशूल धारण करके देवी ने एक पराजित मूर्ति का विनाश करने के लिए उद्धृत है। इसके अलावा यहाँ नारायण शिला का भी एक मंदिर है।

यहाँ पर पुराने किले का भग्नावशेष विद्यमान है। कहा जाता है कि यह वेन राजा द्वारा बनाया गया था। उनके प्राचीन कीर्तिओं का भग्नावशेष देखकर यह कहा जा सकता है कि यह स्थान बहुत प्राचीन तथा एक समय विशेष समृद्ध था।

मेखल या मेखली (पृ 6, ला 7) यह मणिपुर राज्य का नामांतर है। इस देश को साधारणतः मेखल देश निवासियों को मेखिली

प्रल–265
या मिताई कहते हैं। भारत युद्ध में उपस्थित राजाओं में मेखली राजा का नाम विशेष रूप से पाया जाता है।

प्रागज्योतिषादनु नृपः कोशलोऽथ वृहद्वलः।
मेकलैः कुरूविन्दे च त्रिपुयैश्च समन्वितः।।

यहाँ का राज वंश वभ्रुवाहन का वंशधर कहा जाता है। इस प्रदेश के लोग साधारणतः बलिष्ठ, साहसी और योद्धा हैं। मणिपुरियों की स्वतन्त्र एक भाषा है एवं इस भाषा में उनके उत्कृष्ट उपाख्यान रचित हुए हैं। मणिपुर में बहुत से विषयों में विशेषत्व देखने को मिलता है। इस राज्य के पार्वत्य आख्या में उत्कृष्ट टाटु घोड़ा **(Pony)** मिलते हैं। यहाँ गौ, महिष और कुत्ते दूसरे देशों से भिन्न और स्वतन्त्र किस्म के हैं।

मणिपुरी लोग वैष्णव मतावलम्बी हैं। यहाँ के नर नारी सभी संगीत में निपुण हैं। मणिपुरी महिलाओं की रासलीला का अभिनय विशेष उल्लेख योग्य है। इनके शिल्प कला के कार्य में असाधारण नैपुण्य दिखाई देता है।

<u>मेहेर कुल (पृ 56, ला 2)</u> वर्तमान कुमिल्ला और उसके नजदीक स्थान समूह को लेकर एक स्वतन्त्र राज्य प्रतिष्ठित था। इस राज्य की राजधानी संभवतः कमलांक नगर(कुमिला) में प्रतिष्ठित थी। चीन परिब्राजक हिउयेन साँ ने समतट(बंगाल) राज्य के पूर्व दक्षिण की ओर के भूभाग में कमलांक(कुमिला) नगर को देखा था। इसे उन्होनें सागर तटवर्ती देश कहकर उल्लेख किया है। सम्भवतः दास राजगण के द्वारा यह राज्य शासित होता था एवं मेहेर कुल राज्य के नाम से जाना जाता था। मयनामती के गीतों में पाया जाता है कि कुमिला के पश्चिम के पाटिका(पाटिकारा) नगर में रहकर मयनामती ने मेहेरकुल के राजा के प्रति शासन वाक्यों में कहा था –

क्षेणेक रहो बसुमती क्षेणेक रहो तुमि।
मेहेरकुलेर राजाके प्रत्यक्ष देखाई आमि।।

अर्थात, ''क्षणिक रूको बसुमती, तुम क्षणिक रूको मेहेर कुल के राजा को जरा मैं प्रत्यक्ष दिखा दूँ।''

कुछ दिनों के लिए पाटिकारा और मेहेरकुल दोनों प्रदेश ही मयनामती के पिता तिलक चन्द्र के अधीन हुए थे। बाद में उनके दौहित्र(मयनामती के पुत्र) गोविन्द चन्द को वह विरासत में मिला। मयनामती के गीतों में इसका विस्तृत विवरण प्राप्त होगा।

छें थुम फा(कीर्तिधर) त्रिपुरा के सिंहासन पर जब आसीन थे, उस समय मेहेरकुल बंग राज्य के अधीन था एवं हीरावंत नामक एक चौधरी के द्वारा यह राज्य शासित होता था। महाराज कीर्तिधर ने गौड के साथ युद्ध करके मेहेरकुल के साथ साथ मेघना नदी तटवर्ती प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया था। काल क्रम से

प्रल–266

वह स्थान मुसलमानों के हाथों में चला गया और मेहरकुल एक परगने में तब्दील हो गया। देश विभाजन तक यह स्थान त्रिपुरेश्वर की ही जमींदारी में था। कुमिल्ला भी इसी परगने में था।

<u>म्लेच्छ (पृ 20, ला 8)</u> धर्मज्ञान विरहित जाति को ही म्लेच्छ कहते हैं। उनके शासित देश को ही म्लेच्छ देश कहा जाता था। शास्त्रों में म्लेच्छों के नीचे दिये लक्षण दिये गये हैं –

गोमांस खादको यश्च विरूद्धं बहुभाषते।
सर्वाचार विहिनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते।।
– प्रायश्चित्त तत्व।

महाभारत में पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि को म्लेच्छ आख्या प्रदान की गई है। ययाति नन्दन अनु के वंशधर भी म्लेच्छत्व प्राप्त हुए थे। त्रिपुरा राज्य के पड़ोसी राज्य जयंती आदि को मलेक्ष्छ आख्या दी जाने की बात स्थानांतर में कही गई है।

<u>यवन (पृ 5, ला 15)</u> मत्स्य पुराण के अनुसार निम्नलिखित जातियों को यवन देशोद्भव कह कर यवन आख्या प्रदान किया गया है। –

तान् देशान् प्लावयती स्म म्लेच्छा प्रायाश्च सर्वशः।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्।।
– मत्स्य पुराण 120 / 43

मार्कण्डेय पुराण(58 / 52) और मत्स्य पुराण(34 अः) के अनुसार ययाति पुत्र तुर्बसु के वंशधर गण सदाचार विहीन होकर यवन हो गए थे। कोई कोई ग्रीक जातियों को भी यवन कहते हैं।

यवनों के द्वारा अध्युषित प्रदेश यवनदेश के नाम से जाना जाता है।

<u>यशपुर (पृ 69, ला 5)</u> यह त्रिपुर राज्य के बिलोनिया महकमें के अन्तर्गत ''नलुआ'' तहसील के करीब एक गाँव है। वर्तमानकाल में ब्रिटिश राज्य में है।(इस समय त्रिपुरा राज्य में ही है।)

<u>रत्नपुर (पृ 69, ला 5)</u> यह उदयपुर में इस समय जहाँ महादेव बाड़ी के नाम से जो जगह प्रसिद्ध है। इसी का प्राचीन नाम रत्नपुर था। स्व0 महाराज वीरेन्द्र किशोरमाणिक्य ने अपने शासनकाल में पिता की स्मृति रक्षार्थ इस स्थान का नाम राधाकिशोरपुर रखा था।

<u>रियां (32पृ , ला 16)</u> – रियां प्रदेश यह स्थान त्रिपुर

प्रल–267

राज्य के अधीन गोमती नदी के उत्पत्ति स्थान के पूर्व की ओर ''माइनी'' नाम के पार्वत्य प्रदेश में बसा हुआ है। यथा –

''गोमती नदीर यथाते उत्पत्ति।
डमरू नामेते तीर्थ जान तान ख्याति।।
तार पूर्वेते टिला मायोनी नाम धरे।
रिहांग बसति छिलो से नदीर तीरे।।'' – कृष्णमाला।

अर्थात, गोमती नदी की जहाँ उत्पत्ति स्थल है, वहाँ डमरू नाम का तीर्थ है। उसके पूर्व की ओर एक टीला है जिसे मायोनी कहते हैं। वहाँ पर रियांग जनपद नदी के किनारे था।

माइनी नदी बहुत दूर तक घूमकर चट्ट गाँव जिला के कर्णफुली नदी में आकर समाहित हो गई है। इस नदी के तटवर्ती स्थानों को अभी भी माइनी कहकर ही जाना जाता है। इस स्थान में पूर्व में रियां जाति का आवास था। समग्र पार्वत्य चट्टग्राम एक समय रियांओं के द्वारा शासित था। मघों ने उस स्थान से रियाओं को खदेड़ कर अपना अधिपत्य स्थापित किया।

कृष्णमाला की आलोचना करने से यह ज्ञात होता है कि महाराज कृष्णमाणिक्य(अपनी युवावस्था में) शमसेर गाजी द्वारा खदेड़ दिये जाने के पश्चात कुछ दिनों तक रियांग प्रदेश में रहे और वहाँ एक पुरी का निर्माण कराया था।(1)

<u>रांगामाटी (पृ 32, ला 17)</u> त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर को पहले रांगामाटी कहा जाता था। यह स्थान गोमती नदी के दक्षिण तट पर स्थित है। पहले यह स्थान मघ जातीय लिका सम्प्रदाय के राजा के शासनाधीन था। त्रिपुरेश्वर हिमती(युझारु फा) ने इस स्थान को जीतकर अपने राजधानी की प्रतिष्ठा की। राजमाला में लिखा है –

एईमते रांगामाटी त्रिपुरे लोइलो।।	इसी तरह रांगामाटी को ले लिया त्रिपुर।।
नृपति युझार पाट तथाते कोरिलो।।	राजधानी वहाँ बसाया नृपति युझार ।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 52पृ

अर्थात, ''इस तरह त्रिपुर राज कुछ दिनों तक रांगामाटी में रहे। राजा युझारु फा ने वहीं पर अपना राज पाट स्थापित किया।''

तब से यह स्थान त्रिपुरा का ही है। महाराजा उदयमाणिक्य के शासनकाल में रांगामाटी के बदले इसका नाम पड़ा उदयपुर। राजमाला में है –

रांगामाटि नाम राज्य पूर्वाबधि छिलो।	रांगामाटी नाम इसका पहले से मशहूर।।
उदयमाणिक्याबधि उदयपुर होइलो।	अब उदयमाणिक्य के नाम से हुआ उदयपुर।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 68 पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 68 पृ

अर्थात, रांगामाटी नाम पहले से ही था और उदयमाणिक्य से इसका नाम उदयपुर पड़ा।

---

(1) रिहांगेते गिया युवराज कृष्णमणि।
आश्वासिलो सकल त्रिपुरगण आनि।।
मायोनी नदीर तीरे पुरी निर्माइया।
तथा रहे युवराज हरषित होइया।।
– कृष्णमाला।

अर्थात, रियांग में युवराज कृष्णमाणिक्य कुछ दिनों तक थे। सभी रियांओ को उन्होनें भी कुछ आश्वासन दिया। राजा ने वहाँ पर एक पुरी का निर्माण कराया था।

प्रल–268

इस सम्बन्ध में श्रेणीमाला ग्रन्थ में लिखा है –

गोपीप्रसाद नारायण पूर्व नाम छिलो।
उदयमाणिक्य नामें नृपति होइलो।।
रांगामाटी नाम देश छिलेक पूर्बेर।
उदयपुर आपन नामे कोरिलो देशेर।।

अर्थात, गोपी प्रसाद नारायण पूर्व नाम था। उदयमाणिक्य नाम के एक राजा हुए। रांगामाटी नाम था पहले इस देश का। अन्त में उन्होनें अपने नाम से उदयपुर नाम रखा।

यह उदयपुर पीठ स्थान के रूप में सारे हिन्दु जगत में विशेष परिचित और आदृत है। यहाँ पर सती का दक्षिण पद गिरा था। इस पीठ का विवरण इसके पहले प्रदान किया गया है।

यह स्थान त्रिपुर राज्य के एक उपविभाग में परिणत हो गया है।इस समय दक्षिण त्रिपुरा जिला सदर दफ्तर है। यहाँ पर जिलाधिकारी अदालत की अन्य सभी शाखायें, जिला स्तर पर पुलिस का मुख्यालय, डाकघर, अस्पताल, कालेज आदि हैं।

हर साल शिव चतुर्दशी के उपलक्ष्य में यहाँ एक विशाल मेला लगता है।

बंग देश में और एक रांगामाटी का अस्तित्व मिलता है। चट्टग्राम के पार्वत्य प्रदेश में जो और एक रांगामाटी नाम की एक जगह की खबर मिली है, वह भी पहले इसी रांगामाटी के अधीन था। उसके साथ राजमाला कथित रांगामाटी का त्रिपुर राज्य का किसी तरह के सम्पर्क का सारोकार होने इतिपूर्व विवृत हुआ है।

<u>राजनगर (पृ 62, ला 5)</u> यह स्थान उदयपुर के समीप गोमती नदी के उत्तर किनारे पर बसा हुआ है। अब भी यहाँ पर पुराने राजमहल के भग्नावशेष मिलते हैं। महाराज गोविन्दमाणिक्य ने इस भवन का निर्माण कराया था।

महाराज डांगर फा अपने पुत्रों में राज्य का विभाजन करके ज्येष्ठ पुत्र राजा फा को इस स्थान का राजा बनाया था। राजमाला में है –

राजा फा नामेते पुत्र राजार प्रधान।	राजा फा नाम का पुत्र राजा का प्रधान।
राज करिलो ताके राजनगर स्थान।।	राजा किया उन्हें राजनगर स्थान।।
राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 62पृ	राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड 62पृ

अर्थात, राजा फा नाम था राजा के प्रधान पुत्र का। राजा उसे ही उन्होनें बनाया।

यह राजबाड़ी गोमती नदी के उन्नत शैल श्रृंग पर अवस्थित है। यहाँ से बहुत दूर तक के स्थान दृष्टि गोचर होते हैं। यह पर्वत–दीवार, नदी–पारिखा आदि से सुरक्षित और दुराक्रमनीय दुर्ग विशेष है।

<u>लंगाई (पृ 32, ला 15)</u> यह स्थान त्रिपुरा राज्य के पूर्व उत्तरप्रान्त के लंगाई नदी के किनारे बसा हुआ है। पूर्व में यह कुकीगणों का आवास स्थान था। युवराज कृष्णमणी (पश्चात कृष्णमाणिक्य) मुसलमानों के द्वारा अत्याचारित

प्रल–269

होकर यहाँ पर बंग सम्प्रदाय कुकीपल्ली में सेनाओं के साथ आश्रय ग्रहण किया था। यथा –

लंगाई नदीर तीरे बंग पाडा छिलो।
सैन्य समे युवराज तथा उत्तरिलो।। – कृष्णमाला।

अर्थात, ''लंगाई नदी के किनारे बंग पाडा नाम की एक जगह थी। युवराज वहाँ अपनी सेनाओं के साथ उतरे।''

लंगाई नदी आसाम और त्रिपुरा राज्य की सीमा निर्धारण करती थी। उस नदी के उस पार स्थित विशाल भू भाग को लेकर अंग्रेजी हुकुमत के साथ त्रिपुरा का बहुत दिनों तक उस जमाने में विवाद चला था। फिर भी निर्णय नहीं हुआ। विषय भारत सरकार के आलोचनाधीन है।

<u>लिका पाडा (पृ 50, ला 23)</u> यह स्थान उदयपुर(प्राचीन रांगामाटी) पूर्व की ओर एक लिकाछडा (पहाड़ी नाले के) किनारे पर अवस्थित है। राजमाला मे है –

अरण्येर पूर्व भागे लिका नामे छडा।	अरण्य के पूर्व भाग में सोता लिका नाम का।
जत आछे छडाकुले लिका दफा पाडा।।	जितने थे किनारे रहने वाले लिकादफा नाम ग्राम का।।
राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50पृ	राजमाला प्रल युझार फा खण्ड 50पृ

अर्थात – ''जंगल के पूर्व की ओर लिका नाम का एक पहाड़ी सोता है। जितने लोग भी इस पहाड़ी सोता के तीर पर बसते हैं, उस जगह को ''लिकादफा'' कहते हैं।''

यहाँ पर लिका सम्प्रदाय के मुगलों की आवास भूमि थी। उदयपुर भी किसी समय इनके अधिकार में रहने के प्रमाण मिलते हैं।

<u>समार (पृ 66, ला 7)</u> गोमती नदी के उत्पत्ति स्थल(डम्बूर) से पूर्व की ओर समार नदी बहती है और तट भूमि को समार कहा जाता है। यहाँ पर रियांग जाति के लोग के निवास भूमि के बारे में कृष्णमाला में उल्लेख है –

समार नदीर तीरे रियांगेर राय।
आछे हेनो वार्ता तथा चर मुखे पाय।।

अर्थात, ''समार नदी के तट पर रियांग लोगों का राजा रहता है। अपने चरों से सारी वार्ता वहाँ तक पँहुच जाती थी।''

<u>स्वर्ण ग्राम (पृ 68, ला 7)</u> इसे सुवर्णग्राम भी कहते हैं। पुकारने का नाम है सोनार गाँव अर्थात सोने का(स्वर्ण का) गाँव। आधुनिक ढाका जिले में नारायण गंज महाकुमा के सोनार गाँव परगने में यह स्थान है।

ढाका के इतिहास में स्वर्णग्राम के बारे में नीचे लिखी बातें पाई जाती हैं –

1. जनश्रुति है महाराज द्रुहयु के बाद उनके वंशज महाराज जयध्वज के समय इस विशाल भू भाग के ऊपर स्वर्ण की वर्षा हुई थी, इसलिए इसे सुवर्ण ग्राम कहते हैं।(1)

2. ब्रह्मपुत्र धलेश्वरी और लक्ष्या नदी के संगम स्थान को त्रिवेणी कहते हैं। कहा जाता है कि ययाति के चारों पुत्रों में महाबलशाली

पराक्रांत तृतीय पुत्र द्रुहयु ने किरात नृपति को युद्ध में पराजित करके कोपल(ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर त्रिवेग या त्रिवेणी नगर की स्थापना करके वहाँ पर अपनी राजधानी स्थापित की थी।(1)

3. (सामुद्रिक) बन्दरों के चौधुरियों के द्वारा प्रशासित भद्रासन, राजा कृष्णदेव द्वारा प्रदान किया गया, इसलिए उसे राजबाड़ी अर्थात राजा का महल के नाम से प्रसिद्ध है। हमारी धारणा के अनुसार महाराज द्रुहयु के अधस्तन उनके ही वंशज किसी राजा का निवास स्थल रहा होगा। जब तक किसी महल में राजा नहीं रहते हैं। तब तक उसे राजबाड़ी या राजभवन या राजमहल की आख्या नहीं दी जाती।(2)

उद्धृत की गई बातों की आलोचना से यह स्पष्ट होता है कि त्रिपुर राजवंश में जयध्वज नाम के कोई राजा नहीं थे। ध्वजमाणिक्य या जयमाणिक्य नाम के दो राजाओं के नाम वंश लता में मिलते है। ये बहुत बाद के राजा हैं। इसकी राजधानी रांगामाटी(उदयपुर) में थी। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि त्रिपुर भूपतिगण ही द्रुहयु के वंशज हैं। इसके अलावा और कोई उस वंश का दावा करने वाला नहीं है। ढाका के इतिहास के कथित जनश्रुति से त्रिपुरेश्वरों के प्रति आरोपित होने के उपयुक्त प्रमाण नहीं मिल रहे हैं।

द्वितीय प्रसंग की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि द्रुहयु के द्वारा अधिकृत त्रिवेग स्वर्णग्राम नहीं है। हमने पूर्वाभाष में ही इस विषय की आलोचना की है। यहाँ पर उसकी पुनरावृत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है।

तीसरे प्रसंग का आभास राजमाला में मिलता है। महाराज विजयमाणिक्य ने दिग्विजय यात्रा के समय कुछ दिनों तक सुवर्ण ग्राम में निवास किया था। उस समय उन्होनें ब्राह्मण को पाँच द्रोण भूमि दान की थी। उसके बाद से एक जनपद का नाम ''पंचद्रोण'' हुआ है। स्थानीय चलित भाषा में यह स्थान अब भी पाँचदोना नाम से अभिहित होता है। किन्तु स्थायी भाव से वे यहाँ रहे नहीं। इसके पहले महाराज रत्नमाणिक्य ने सुवर्णग्राम से कुछ बंगालियों को लाकर अपने राज्य में बसाया था। बीच बीच में त्रिपुरेश्वरगणों का सुवर्णग्राम पर विजय प्राप्त करने का इतिहास मिलता है, किन्तु वहाँ कभी भी त्रिपुरा की राजधानी स्थापित करने के प्रमाण नहीं मिल रहे हैं।

---

(1) ढाका का इतिहास प्रथम खण्ड 24 अध्याय 472पृ

(2) ढाका का इतिहास प्रथम खण्ड 24 अध्याय 488पृ

प्रल–271

राजमाला के समालोचक रेवरेंड जेम्स लाँग साहब ने **(Rev. James Long)** सुवर्णग्राम के साथ त्रिपुरा का पूर्वोक्त रूप सम्बन्ध का आभास प्रदान किया है। वे कहते हैं –

Samsher jung obtained the government and agreed to pay the revenue without any delay, but the people not recognising him as the legitimate heir, he then installed as Raja one of the Tripura family who resided at Sonargan, but they still refused. (1)

इस मंतव्य की आलोचना करने से यह स्वतः ही प्रतीयमान होता है कि सुवर्णग्राम में त्रिपुरा की राजधानी रहने के बात सत्य है एवं बाद में वहाँ राजवंश की एक शाखा वहीं विद्यमान थी। समसेर गाजी ने उसी वंश से एक को राजा किया था। लेकिन यह बात एकदम आधारहीन है। समसेर गाजी ने जिन्हें साक्षी गोपाल के तौर पर राजा बनाया था। वे महाराजा धर्ममाणिक्य के पौत्र थे। उदयपुर से उन्हें लाया गया था। यथा –

दुहान के तथा राखि कटक सहित।
समसेर गाजी गैलो आपना बाडित।।
तथा गिया बिबेचना कोरिलेक सारा।
ना होइले त्रिपुर राजा ना मिले त्रिपुरा।।
भुवने विख्यात धर्ममाणिक्य नृपति।
गदाधर ठाकुर जे ताहार संतति।।
लबंग ठाकुर गदाधरेर संतति।
उदयपुरेते तिनि करये बसति।।
ताहाके कोरिबो राजा रिहांगेते गिया।
तबे से त्रिपुर सब मिलिबो आसिया।।
एतो भाबि लवंग ठाकुरेर कारण।
उदयपुरेते लोक पठाइलो तखन।।
लोक आसि लबंग ठाकुरके लोइया।
उपस्थित होइलेक रिहांगेते गिया।
लक्ष्मणमाणिक्य नाम तखने कोरिया।
राजा कोरिलेक ताने रिहांगेते गिया।।

– कृष्णमाला।

---

(1) **J.A.S.B. -Vol XIX**

प्रल–272

यह लबंग ठाकुर(लक्ष्मणमाणिक्य) महाराज कृष्णमाणिक्य द्वारा राज्य से विताडित होने के बाद सुवर्णग्राम में आश्रय लिया था। राजमाला में है –

रिहांग हने लक्ष्मण माणिक्य राजन।	रिहांग में थे लक्ष्मण माणिक्य राजन।
स्वर्णग्रामे कोतो दिन आछिलो तखन।।	स्वर्णग्राम में जाकर रहे वे कुछ दिन।।
राजमाला चल विजयमाणिक्य(द्वितीय) खण्ड45पृ	राजमाला चल विजयमाणिक्य(द्वितीय) खण्ड45पृ

अर्थात '' रिहांग से राजा लक्ष्मणमाणिक्य स्वर्ण ग्राम में कुछ दिनों तक रहे।''

यहां लक्ष्मणमाणिक्य के सुवर्ण ग्राम स्थित महल को ही राजबाड़ी(राजमहल) कहा जाता है।

त्रिपुरा की राजधानी सुवर्णग्राम में न रहने पर भी, वहाँ प्राचीन काल में हिन्दु नरपतियों का राज पाट स्थापित था, इसके प्रमाण मिलते हैं। किसी किसी के मतानुसार लक्ष्मण सेन नदिया से भागकर सुवर्णग्राम में आये थे। पुनः किसी का कहना है कि उन्होनें रामपाल में आश्रय ग्रहण किया था। 1280 ई0 सन् में सुवर्ण ग्राम के सिंहासन पर लक्ष्मण सेन के पौत्र दनौज राय या दनौज माधव नाम के राजा विद्यमान थे। इसके कुछ ही दिनों के पश्चात यह स्थान मुसलमानों के हाथों में चला गया।

<u>हरिद्वार (पृ 7, ला 10)</u> यह हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है। यह स्थान उत्तर पश्चिम प्रदेश के सहारनपुर के करीब है। यह गंगा के किनारे बसा हुआ है।

हरिद्वार तुलनात्मक रूप से आधुनिक नाम ही कहा जायेगा। पहले इसे कपिल के नाम से जाना जाता था। यहाँ पर कपिल मुनि का तपोवन था। हर साल हजारों यात्री इस पवित्र तीर्थ जाते हैं। हर बारह सालों के बाद यहाँ कुम्भ मेला लगता है। इस पुण्य क्षेत्र के बारे में पद्म पुराण में लिखा है –

सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागर संगमे।।
सवासवाः सुराः सर्वे हरिद्वारं मनोरमं।
समागत्य प्रकुर्व्वन्ति स्नान दानादिकं मुने।।
दैव योगान्मुने तत्र ये त्याजंति कलेवरं।
मनुष्य पक्षी कीटाद्यान्ते लभन्ते परं पदं।।

ममार्थः– ''सभी स्थानों पर गंगा सुलभ है। किन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर संगम इन तीन स्थानों में गंगा अति दुर्लभ है। इन्द्रादि देवगण इस हरिद्वार में समागत होकर स्नान दानादि करते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि कोई भी प्राणी जब यहाँ देह त्याग करता है तो उसे भी परम पद की प्राप्ति होती है।''

इस तीर्थ को हरि प्राप्ति का द्वार समझकर ही इसे हरिद्वार कहा जाता है। यह स्थान गंगाद्वारा के नाम से भी जाना जाता है। गंगा यहीं अवतीर्ण हुई थी। इसलिए भी इस तरह का नाम पड़ा है। गंगा स्थान एवं पार्वण श्राद्ध और दान ही इसका सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

प्रल–273

हस्तिना (पृ 5, ला 13) चन्द्रवंशीय हस्ती नाम के राजा द्वारा निर्मित नगर है हस्तिनापुर। उत्तर पश्चिम में घिराट जिला में यह स्थान बसा हुआ है। यहीं पर पाण्डवों की राजधानी थी।

हीरापुर (पृ 69, ला 6) यह स्थान त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर के करीब, पूर्व में एक कोश दूर पर स्थित है। यह गोमती नदी के दक्षिण तट पर है। इसका नाम पहले लक्ष्मीपुर था। उदयमाणिक्य की रानी ने इसका नाम हीरापुर रखा था। यथा –

हिरापुर नाम पुर्वे लक्ष्मीपुर छिलो।	हीरापुर का नाम पहले लक्ष्मीपुर था।
उदय माणिक्य रानी हिरापुर कोइलो।।	उदय माणिक्य की रानी हीरापुर की थी।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड43 पृ

अर्थात हीरापुर का नाम पहले लक्ष्मीपुर था। महाराज उदयमाणिक्य की रानी ने इसका नाम हीरापुर रखा।

महाराज विजयमाणिक्य ने यहीं पर अपनी महिषी को वनवास दिया था। राजमाला में है –

सेई क्षणे महादेवी दिलो बनोवास।	साथ साथ महादेवी को वनवास दिया।
हिरापुरे राखे रानी जीवन नैईरास।।	रानी ने हीरापुर मे निराश जीवन काटा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड43 पृ

अर्थात, उसी जगह महादेवी को वनवास दिया गया। हीरापुर में रानी को रखा। वे अपने जीवन से निराश हो चली थी।

यहाँ पर त्रिपुरेश्वर की अनेक प्राचीन कीर्तियां है। यह जगह उस समय राजधानी के ही अन्तर्गत थी।

हेड़म्ब (पृ 11, ला 16) यह काछाड़ का नामान्तर है। हिडिम्ब राक्षस की सहोदरा हिडिम्बा, काछाड़ राजवंश की आदिमाता कहकर महाभारत की आलोचना से ज्ञात होता है। हिडिम्बा के वंशजों के द्वारा यह शासनाधीन था, इसलिए इसका नाम हेड़म्ब हुआ है। भविष्य पुराणीय ब्रह्मखण्ड में हेड़म्ब के नाम का प्रथम उल्लेख मिलता है –

बरेन्द्र ताम्रलिप्तन्च हेड़म्ब मणिपुरकम्।
लौहितास्त्रैपुरं चैव जयंताख्यं सुसंगकम्।।
– भविष्य पुराण – ब्रह्मखण्ड 6 ⁄ 64

यहाँ की अधिष्ठात्री देवी का नाम रणचण्डी है। यह बात भी भविष्य पुराण में पाई जाती है –

हेड़म्बदेशमध्ये च रणचण्डी विराजते।
बरबक्रा सरित्, पार्श्वे हिडिम्बा लोक दुर्जया।।
– भविष्य पुराण ब्रह्मखण्ड 22 ⁄ 41

प्रल–274

घटोत्कच यहाँ के प्रथम राजा थे। देशावली में लिखा है –"हेड़म्ब देश के प्रथम राजा घटोत्कच थे, वे कुरूक्षेत्र की लडाई में कर्ण के हाथों मृत्यु को प्रराप्त हुए। उनका पुत्र वरवरीक उनके पश्चात यहाँ का राजा हुआ।" काछाड़ के भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर एडगर साहब के अनुसार, निर्भय नारायण काछाड़ राजवंश के प्रतिष्ठाता थे।

एडगर साहब का मत, काछाड़, राज्य की प्राचीनता को निर्धारण परिपंथी है। यह राज्य जो बहु प्राचीन राज्य है, वह राजमाला द्वारा यह प्रमाणित हो रहा है। महाराज त्रिलोचन ने हेड़म्ब राज की राजकन्या का पाणिग्रहण किया था एवं त्रिलोचन के ज्येष्ठपुत्र दौहित्र के नाते हेड़म्ब राज्य के अधीश्वर बने थे, अतएव वह राज्य जो अति प्राचीन राज्यों में है, इस बारे में कहीं कोई संदेह नहीं रह सकता। एक समय इस राज्य का दुर्द्धष पराक्रम था। महाराज गोविन्द चन्द्र यहाँ के शेष राजा थे। उनकी मृत्यु के बाद यह अंग्रेजो के हाथ चला गया था।

राजमाला प्रथम लहर में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम और संक्षिप्त परिचय

(वर्णमालानुक्रमिक)

अनु (पृ 5, ला 5) ये भारत सम्राट ययाति चतुर्थ थे। इनकी माँ दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। ययाति शुक्र शाप से जराग्रस्त होने पर अनु को जरा भार ग्रहण करने के लिए कहा था। अनु ने पितृ आज्ञा पालन में असम्मत होने पर ययाति ने इन्हें निर्वासित किया था।

आगर फा (पृ 62, ला 14) ये महाराज डांगर फा के पुत्र थे। डागर फा ने अपने अष्टदश पुत्रों में कनिष्ठ पुत्र रत्न फा को गौड देश में भेजकर बाकी सप्तदश पुत्रों में राज्य का विभाजन कर दिया था। उस समय अगर फा को अगरतल्ला का राजत्व मिला था। किन्तु थोड़े दिनों में ही रत्न फा ने गौडेश्वर की सहायता से पिता को सिंहासनच्युत और भाईयों को अवरूद्ध करके राजेश्वर का पद सम्भाला। यह रत्न फा ही बाद में रत्नमाणिक्य नाम से विख्यात हुए हैं।

प्रल—275

<u>आचंग फा (पृ 42, ला 19)</u> नामांतर सुरेन्द्र या हाचं फा। ये चन्द्र से गणना में 99 संख्या पर आते हैं और त्रिपुर से गणना में 54 स्थानीय भूपति हैं। इनके पिता महाराज इन्द्रकीर्ति के परलोक सिधारने के बाद ज्येष्ठ भ्राता बीरसिंह सिंहासनरूढ़ हुए थे। इनके अपुत्रक अवस्था में परलोक गमन करने पर, आचंग फा सिंहासन के अधिकारी हुए। इससे अधिक कोई विवरण राजमाला में नहीं मिलता। इनके परलोक गमन के पश्चात् इनके पुत्र महाराज बिमार सिंहासन पर बैठे थे।

<u>आचंग फनाई (पृ 42, ला 16)</u> नामान्तर उत्तुंग फणी या इन्द्रकीर्ति। ये महाराज सूर्यराय के पुत्र थे। पिता के परलोक सिधारने पर ये राज्याधिकारी हुए थे। ये चन्द्र से गणना में 97 और त्रिपुर से गणना में स्थानीय 52 थे। इससे अधिक कोई विवरण राजमाला में नहीं मिलता। पुत्र बीर सिंह के(नामान्तर चराचर) हाथों में राज्य भार अर्पण करके ये परलोकवासी हो गये।

<u>आचोंग फा (पृ 59, ला 11)</u> नामान्तर राजसूर्य या कुंजहोम फा। ये महाराज कीर्तिधर के(नामांतर छें थुम फा) के पुत्र थे। इनकी महिषी का नाम आचोंग मा था। इस समय से कुछ राजाओं के शासनकाल तक राजा और रानी का एक नाम मिलता है। महाराज आचोंग फा इस नियम प्रर्वतक थे। ये चन्द्र से गणना में 141 स्थानीय एवं त्रिपुर से अधस्तन 96 संख्या के भूपति थे। इनके परलोक गमन के पश्चात उनके पुत्र खिचुंग फा(नामांतर मोहन) त्रिपुर सिंहासन पर बैठे थे।

<u>आचोंग मा (पृ 59, ला 19)</u> ये महाराजा आचोंग फा की महिषी थी। पति वियोग पर इनका पुत्र खिचुंग फा(नामान्तर मोहन) राज्याधिकारी हुए थे।

<u>इन्द्रकीर्ति (पृ 54, ला 18)</u> ये महाराज नरेन्द्र पुत्र थे। चन्द्र से गणना में 108 और त्रिपुर से गणना में 63 थे। इनके शासनकाल का कोई विवरण राजमाला में नहीं है। इनके पश्चात इनके पुत्र विमान(नामांतर पाइमा राज) ने त्रिपुर राजदण्ड को धारण किया था।

<u>ईश्वर फा (पृ 40, ला 2)</u> नामांतर नील ध्वज। ये महाराज योगेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से गणना में 73 और त्रिपुर से गणना में 28 स्थानीय अधस्तन पुरुष थे। 84 सालों तक राज्य शासन करके पुत्र बसुराज(नामान्तर

प्रल–276

रंगखाई) के हाथों में राज्य समर्पण कर परलोक गमन किया। इसके अतिरिक्त कोई भी विवरण संग्रह करने का कोई उपाय नहीं है।

<u>कतर फा (पृ 40, ला 16)</u> नामांतर काशीराज, ये हरिराज के(नामांतर खाहाम) पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 84 और त्रिपुर से 39 स्थानीय थे। ये विष्णु भक्ति परायण और धार्मिक थे। इनके परलोक सिधारने के पश्चात उनके पुत्र कालातर फा(नामांतर माधव) राज्य के अधिकारी बने।

<u>कमल राय (पृ 53, ला 19)</u> ये महाराज मुकुन्द फा या कुन्द फा के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 127 और त्रिपुर से 82 स्थानीय थे। इनकी शासन विवरणी वर्तमान काल के अगोचर है। इनके परलोक गमन के बाद इनके लडके कृष्ण दास ने राज्य भार संभाला था।

<u>कालातर फा (पृ 40, ला 17)</u> नामान्तर माधव। ये महाराज काशीराज (नामांतर कतर फा) के पुत्र थे। चन्द्र से 85 अधस्तन और त्रिपुर से 40 थे। इन्हे स्वजाति के प्रति गहरा अनुराग था। पुत्र चन्द्र फा(नामांतर चन्द्र राज) के हाथों राज्य भार अर्पण करके इनकी लोकोत्तर प्राप्ति हुई।

<u>कुन्द फा (पृ 53, ला 18)</u> नामांतर मुकुन्द फा। ये ललित राय के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 126 और महाराज त्रिपुर से गणना में 81 स्थानीय थे। इनकी शासन विवरणी मिलने की कोई संभावना नहीं है। कुन्द फा के लोकोत्तर प्राप्ति के बाद इनके पुत्र कमल राय पित्र सिंहासन पर बैठे।

<u>कुमार (पृ 42, ला 21)</u> ये महाराज बिमार के पुत्र थे। चन्द्र से गणना में 101 स्थानीय और महाराज त्रिपुर के 56 स्थानीय राजा थे। इन्होनें शिव आराधना के निमित्त छाम्बुल नगर में राज पाट स्थापन किया था। प्राचीन काल में कैलाशहर और उनकोटि पर्वत छाम्बुल देश के नाम से जाना जाता था, समग्र अवस्था की आलोचना से प्रमाणित होता है। इस विषय में हमने पहले ही विशेष रूप से आलोचना की है। बरबक्र नदी के किनारे से आकर कैलाशहर में राज स्थापित किया। इनके पुत्र सुकुमार पैतृक सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

<u>कृष्णदास (पृ 53, ला 20)</u> महाराज कमल राय के पुत्र थे। चन्द्र के अधस्तन 128 और त्रिपुर के अधस्तन 83 स्थानीय राजा थे। इनकी दो रानियों के गर्भ से

प्रल–277
पाँच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था। इनकी छोटी महारानी के गर्भजात यश फा राज्याधिकारी हुए थे।

<u>खारंग फा (पृ 53, ला 14)</u> नामान्तर राम चन्द्र या कुरूंग फा। ये प्रसिद्ध यज्ञकर्ता महाराज किरीट के(दान कुरू फा या हरिराय) के पुत्र थे। चन्द्र के परिवर्ती 123 और त्रिपुर के अधस्तन 78 स्थानीय राजा थे। इनकी शासन विवरणी जानने का कोई सूत्र नहीं मिल रहा है। इसके बाद उनके पुत्र नृसिंह(नामांतर छें फनाई या सिंह फणी) ने राज्य लाभ किया।

<u>खाहाम (पृ 40, ला 15)</u> नामान्तर हरिराज। ये महाराज तरहाम के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 83 और त्रिपुर से 38 स्थानीय राजा थे। इनके पश्चात उनके पुत्र कतर फा(नामांतर काशीराज) राजा हुए।

<u>खिचों फा (पृ 59, ला 21)</u> नामांतर मोहन, ये आचोंग फा के पुत्र थे। चन्द्र के अधस्तन 142 और त्रिपुर के अधस्तन 97 राजा थे। इनके शासन का कोई विवरण नहीं मिलता है। इसके बाद उनके पुत्र हरिराय(डांगर फा) सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

<u>खिचों मा (पृ 59, ला 22)</u> ये महाराजा खिचों फा की महिषी थी। शिल्प नैपुण्य के निमित्त ये त्रिपुर राज्य में चिर स्मरणीय हुई हैं। इनके प्रयत्न से राज परिवार में एवं राज्य में नाना विध शिल्प कार्य का प्रचलन हुआ है। राज परिवार के शिक्षा का दायित्व स्वयं अपने हाथों में लिया था एवं इससे उन्हें विशेष सफलता मिली थी।

<u>गगन (पृ 49, ला 3)</u> नामांतर काकुथ। ये महाराज मारिची के पुत्र थे। चन्द्र से गणना में अधस्तन 116 और त्रिपुर से 71 स्थानीय राजा थे। राजमाला में इनका नाम मात्र उल्लेख है। ज्यादा कोई विवरण नहीं मिलता है। गगण के पश्चात उनके पुत्र नवराय ने राज्य लाभ किया था।

<u>गंगाराम (पृ 46, ला 4)</u> नामांतर राजगंगा। ये महाराज बंग के आत्मज थे। चन्द्र से 112 और त्रिपुर से 67 पुरुष बाद इनका जन्म हुआ था। इनके बाद उनके पुत्र चित्रसेन या छाक्रु राय राज सिंहासन पर बैठे थे।

<u>गजेश्वर (पृ 40, ला 21)</u> ये चन्द्रराज के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 87 और त्रिपुर से 42 स्थानीय राजा थे। इसके शासन विवरण दुष्प्राप्य हैं। पुत्र वीरराज को सिंहासन का उत्तराधिकारी रखकर ये परलोक सिधार गये।

<u>चन्द्र फा (पृ40, ला 20)</u> नामांतर चन्द्रराज। ये महाराज

प्रल–278

माधव या कालातर फा के पुत्र थे। बहुत दिनों तक राज भोग के पश्चात पुत्र गजेश्वर के हाथों में राज्य भार अर्पण कर परलोक सिधारे।

<u>चम्पा (पृ 54, ला 13)</u> नामांतर चम्पकेश्वर। महाराज सम्राट के पुत्र थे। इनका और कोई विवरण नहीं मिलता। इनके बाद इनके पुत्र मेघराज सिंहासन पर बैठे।

<u>चरातर (पृ 42, ला 17)</u> नामांतर चराचर या बीरसिंह। ये महाराज इन्द्र कीर्ति के पुत्र थे। इनके कोई पुत्र ना होने के कारण भ्राता सुरेन्द्र(आचं फा) राज्याधिकारी हुए थे।

<u>छाक्रु राय (पृ 46, ला 5)</u> नामान्तर चित्रसेन या शुक्रराय। ये महाराज गंगाराय के पुत्र थे। इनका कोई इतिहास नहीं मिल रहा है। इनके लोकान्तर के बाद पुत्र प्रतीत को राज्य शासन मिला था। ये चन्द्र 113 और त्रिपुरा से 68 थे।

<u>छेंगाचाग (पृ 54 ला 15)</u> नामान्तर धर्मधर या छेंकाचाग। ये मेघराज के लड़के थे। चन्द्र से 139 और त्रिपुर से 94 स्थानीय भूपति थे। इन्होने वेदज्ञ पण्डित निधिपति द्वारा कैलाशहर में एक विशाल यज्ञ का सम्पादन कराया था। पुत्र छें थुम फा(कीर्तिधर) को उत्तराधिकारी रखकर ये परलोक सिधार गये।

<u>छें थुम फा (पृ 54, ला 16)</u> नामांतर सिंहतुगं फा या कीर्तिधर। ये महाराज धर्मधर के पुत्र थे। चन्द्र के अधस्तन 140 और त्रिपुर के अधस्तन 95 पुरुष थे। हीरावंत नाम के मेहेर कुल के चौधरी गौडेश्वर के लिए भेंट लेकर गौड जा रहे थे। महाराज छें थुम फा ने हीरावंत का राज्य और भेंट उसे छीन लिया। इसलिए गौड के साथ छें थुम फा का घोर संग्राम हुआ। गौड वाहिनी का विशालत्व देखकर महाराज भयभीत होकर युद्ध से विरत हो गये। महारानी त्रिपुरासुन्दरी देवी के उत्साह से युद्ध हुआ था। महारानी स्वयं युद्ध में अवतीर्ण हुई थी। शत्रुओं के रक्त से रण भूमि पल्लवित करके विजय प्राप्त की थी। 650 त्रिपुराब्द में यह युद्ध हुआ था। उस समय महाराज केशव सेन बंग के सिंहासन पर आसीन थे। इस युद्ध के फलस्वरूप मेहरकुल राज्य पर विजय प्राप्ति और मेघना के तीर तक त्रिपुर राज्य सीमा बर्द्धित हुई थी। अन्त के दिनों में अपने पुत्र राजसूर्य या आचंग फा के हाथों में राज्य भार अर्पण कर छें थुम फा(1) स्वर्गवासी हो गये।

---

(1) यह शब्द त्रिपुरा भाषा से आया है। छें का अर्थ तलवार, थुम का अर्थ है खेल। छें थुम फा का अर्थ हुआ तलवार के खेल में अभिज्ञ व्यक्ति।

प्रल–279

<u>छेंग फनाई (पृ 53, ला 15)</u> नामांतर नृसिंह या सिंहफणी। ये राम चन्द्र के(नामांतर खारूं फा) पुत्र थे। इनके शासन काल का कोई विवरण नहीं मिल रहा है। ये चन्द्र से 124 और त्रिपुरा से 79 भूपति हैं। इनके पुत्र के अभाव में भ्राता ललित राय ने राज्य प्राप्त किया था।

<u>जांगी फा (पृ 53, ला 2)</u> नामांतर राम चन्द्र अथवा जनक फा। ये युझारु फा के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 119 और त्रिपुर से 74 थे। ये चतुर्दश देवता के प्रति विशेष आस्थावान थे। राज्य के नाना स्थानों पर इन देवताओं की उन्होनें अर्चना की है। अन्त में पुत्र पार्थ अथवा देवराय के हाथों राज्य का भार अर्पण कर परलोक सिधार गये।

<u>डांगर फा (पृ 60, ला 3)</u> नामांतर हरिराय। ये महाराज मोहन के(खिचुं फा) पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 142 और त्रिपुर अधस्तन 97 थे। इन्होनें राज्य में कई स्थानों में पुरी निर्माण कराया था। अपने अठारह पुत्रों में सबसे छोटा रत्न फा को गौड देश में भेजकर बाकी सत्रह पुत्रों में राज्य का विभाजन कर दिया था। कनिष्ठ पुत्र रत्न फा ने गौडेश्वर की सहायता से पिता को विताडित और भ्राताओं को अवरूद्ध कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। पलायित डांगर फा ने थानांचि दुर्ग में आश्रय लिया और वहीं पर उनकी मृत्यु हुई।

<u>डांगर मा (पृ 63, ला 5)</u> महाराज डांगर फा की महिषी थी। राजा के नामानुसार इनका नामकरण हुआ था। त्रिपुर राज्य में कुछ दिनों तक इस प्रथा के प्रचलित होने की बात हम पहले ही बता चुके हैं।

<u>डुंगुर फा (पृ 53, ला 12)</u> नामांतर किरीट या दानकुरू फा। हरिराय नाम से भी ये परिचित थे। ये शैवराय या शिवराय के पुत्र थे। चन्द्र से 122 और त्रिपुर से 77 अधस्तन थे। इन्होनें मिथिला से पाँच वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाकर एक विराट यज्ञ का अनुष्ठान कराया था। यह यज्ञ महाराज आदिशुर के यज्ञ से प्रायः एक सदी पहले सम्पादित हुई थी। इस पुण्य कार्य द्वारा वे ब्राह्मणों द्वारा ''आदिधर्म पा'' उपाधि से भूषित हुए थे। यज्ञ समापनांत में उन्होनें पांचों ब्राह्मणों को विशाल भू भाग दान किया था। उन भूखण्डों का नाम ''पंचखण्ड'' हुआ। श्रीहट्ट जिला का पंचखण्ड परगना इसी भू भाग को लेकर गठित हुआ था। इस विषय का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। अन्त में पुत्र राम चन्द्र को(खारूं फा) राज्य भार अर्पण कर डुंगुर फा परलोक सिधार गये।

प्रल–280

<u>तयदाक्षिण (पृ 38, ला 13)</u> नामांतर तैदाक्षिण। ये महाराज त्रिलोचन पौत्र और दाक्षिण के पुत्र थे। चन्द्र से 49 और त्रिपुर अधस्तन 4 थे। इन्होनें मणिपुर की राज कन्या से शादी की थी। उस समय मणिपुर के राजा कौन थे। निर्णय करना कठिन है। यही मणिपुर के साथ त्रिपुरा का प्रथम वैवाहिक संबन्ध था। तयदाक्षिण के पश्चात उनके पुत्र सुदाक्षिण ने राज्य लाभ किया था।

<u>तरजुंग (पृ 39, ला 20)</u> ये महाराज नौयोग राय के पुत्र थे। चन्द्र से 62 और त्रिपुर से 17 अधस्तन थे। इनका इतिहास अतीत के तमोमय गह्वर में विलीन हो गया है – उसका उद्धार असंभव सा है। इसके बाद पुत्र राजधर्मा(तरराज) सिंहासन पर बैठे।

<u>तर दाक्षिण (पृ 39, ला 6)</u> महाराज सुदाक्षिण के पुत्र थे। चन्द्र से 51 और त्रिपुर से छठे अधस्तन थे। ये विशेष धार्मिक और सतत यज्ञ परायण थे। अन्त में पुत्र धर्मधर(धर्म तरू) को राज्य भार सौंपकर स्वर्ग सिधारे।

<u>तरफनाई फा (पृ 40, ला 11)</u> नामान्तर त्रिपली। ये चन्द्र राज(ताभुराज के) पुत्र थे। चन्द्र से 79 और त्रिपुर से 34 अधस्तन पुरुष थे। इनकी शासन विवरणी अगोचर है। इनके परलोक गमन के पश्चात पुत्र सुमंत सिंहासन पर बैठे थे।

<u>तरवंग (पृ 39, ला 14)</u> ये महाराज सुधर्मा के पुत्र थे। चन्द्र से 55 और त्रिपुर से 10 अधस्तन पुरुष थे। इनके पुत्र देवांग पैतृक सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

<u>तरराज (पृ 39, ला 21)</u> नामांतर राजधर्मा। महाराज तरजुंग के पुत्र थे। चन्द्र से 63 और त्रिपुर से 18 स्थानीय राजा थे। ये साधु प्रकृति के थे। राजमाला से केवल इतना ही प्राप्त होता है। पुत्र हामराज के हस्त राज्य भार अर्पण कर स्वर्गवासी हुए थे।

<u>तरलक्ष्मी (पृ 39, ला 28)</u> नामांतर रूपवान। महाराज लक्ष्मीतरू के पुत्र थे। चन्द्र से 69 और त्रिपुर से 24 स्थानीय पुरुष थे। पुत्र लक्ष्मीवान(माई लक्ष्मी) इनके बाद राजा हुए थे।

<u>तर हाम (पृ 40, ला 14)</u> ये तरहोम नाम से भी अभिहित थे। इनके पिता महाराज रूपवंत(नामांतर श्रेष्ठ) थे। ये चन्द्र से

प्रल–281

अधस्तन 82 और त्रिपुर से 37 पुरुष थे। पुत्र खाहाम(हरिराज) को सिंहासन सौंप इन्होनें परलोक गमन किया था।

<u>ताभुराज (पृ 40, ला 10)</u> नामांतर चन्द्रराज या तरूराज। ये महाराज चन्द्रशेखर के पुत्र थे। चन्द्र से 78 और त्रिपुर से 33 पुरुष थे। इनके पुत्र तरफनाई पितृ सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

<u>तुर्बसु (पृ 5, ला 5)</u> देवयानी के गर्भ जात ययाति के पुत्र। पितृ जरा ग्रहण करने में असमर्थ होने पर ययति ने इन्हें निर्वासित किया था।

<u>तैछराव (पृ 44, ला 2)</u> नामान्तर वीरचन्द्र या तक्षराव। ये सुकुमार के पुत्र थे। चन्द्र से 103 और त्रिपुर से 58 अधस्तन पुरुष थे। इस भूपति का इतिहास नहीं मिलता। उनके लोकान्तर के पश्चात पुत्र राजेश्वर सिंहासन पर बैठे थे।

<u>तैछुंग फा (पृ 45, ला 12)</u> नामांतर तैजंग फा। महाराज राजेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 106 और त्रिपुर से 61 पुरुष थे। ये महाराज नागेन्द्र के(क्रोधेश्वर) के भ्राता थे। क्रोधेश्वर के कोई पुत्र न होने पर इन्होनें सिंहासन प्राप्त किया था। इनके पश्चात इनके पुत्र नरेन्द्र राज्याधिकारी हुए थे।

<u>त्रिपुर (पृ 6, ला 12)</u> महाराज दैत्य के पुत्र थे एवं त्रिलोचन के पिता थे। त्रिवेग में जन्म के कारण नाम त्रिपुर हुआ था। ये चन्द्र से 46 अधस्तन पुरुष थे। इनके शासनकाल में राज्य का नाम त्रिपुरा हुआ। त्रिपुर नितान्त ही पापिष्ठ और अत्याचारी थे। इनके अनाचार से प्रजागण प्रत्यंत इलाके में रहने वाले भूपतिवृन्द उत्पीडित हो रहे थे। भगवान आशुतोष प्रजा की रक्षा के निमित्त संहारक मूर्ति में अर्विभूत होकर शूलाघात से त्रिपुर का संहार किया। इसके बाद शिववर से त्रिपुर के त्रिलोचन नाम के पुत्र ने जन्म ग्रहण करके त्रिपुरा का राज दण्ड धारण किया।

<u>त्रिलोचन (पृ 9, ला 11)</u> ये महाराज त्रिपुर के पुत्र थे। त्रिपुर की महिषी हीरावती ने शिव आराधना कर इस पुत्र रत्न को प्राप्त किया था। कहा जाता है जन्म के समय इनके ललाट पर एक आँख दिखाई दी थी। इसलिए इनका नाम त्रिलोचन रखा गया। शिव वर लब्ध त्रिलोचन को प्रजा गण ने शिव का पुत्र कहकर घोषणा की थी एवं ससम्मान उन्हें सिंहासन पर बैठाया।

प्रल–282
त्रिलोचन सुपंडित, धार्मिक, दयालु एवं प्रबल पराक्रान्त भूपति थे। उन्होनें हेड़म्ब की राज दुहिता का पाणिग्रहण किया था। इनके द्वादस पुत्र ''बारघर त्रिपुर''(अर्थात बारहघर त्रिपुर) के नाम से परिचित थे।

त्रिलोचन के प्रथम पुत्र हेड़म्ब ने मातामह के राज्याधिपति बने थे। त्रिलोचन के परलोक सिधारने के पश्चात द्वितीय पुत्र दाक्षिण के सिंहासन पर अधिकार होने पर ज्येष्ठ भ्राता के साथ इसी आधार पर युद्ध हुआ और इस युद्ध के मूल स्वरूप त्रिपुरा का कुछ अंश हेड़म्ब राज्य युक्त हो गया। त्रिलोचन के शासनकाल में त्रिपुरा राज्य सुख शान्ति से परिपूर्ण था।

<u>दक्ष(पृ 8, ला 21)</u> महाभारत और पुराण आदि के मतानुसार दक्ष ब्रह्मा की दक्षिण अगूंठे से जन्म ग्रहण किया था। मत्स्य पुराण में लिखा है।

''शरीरानथ व्यक्ष्यामि मातृहीन प्रजापतेः।
अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षः प्रजापतिरजायत।।

मत्स्य पुराण 3/9

गरूड पुराण, कालिका पुराण, हरिवंश और श्रीमद्भागवत् आदि ग्रंथों में दक्ष की उत्पत्ति का विवरण लिखित है। ये शिव–जाया सती के पिता थे। इनके शिवहीन यज्ञ के फलस्वरूप सती ने देह त्याग किया और उनके अंग प्रत्यंग द्वारा भारत के नाना प्रदेशों में महापीठ की स्थापना हुई। दक्ष का छाग मुण्ड प्राप्ति इस यज्ञ का शेष फल था। ऋग वेद में इनका नामोल्लेख मिलता है। ये प्रजा सृष्टि के कार्य में नियुक्त थे।

<u>दाक्षिण (पृ 34, ला 5)</u> ये महाराज त्रिलोचन के पुत्र थे। चन्द्र से 48 और त्रिपुर से 03 अधस्तन थे। ये अपने सहोदर हेड़म्ब राज द्वारा युद्ध में पराजित होकर कपिला नदी के तटवर्ती त्रिवेग नगरी के राज पाट का त्याग करके बरबक्र(बराक नदी) के किनारे खलंमा नाम के एक जगह पर अपनी राजधानी को बसाया। इसके फलस्वरूप कुकी प्रदेश का विस्तीर्ण भू भाग त्रिपुरा के हस्तच्युत हो गया था। इन्ही के समय से राज भ्राता गण ही सेनापति होते थे। यह नियम दीर्घ काल तक चलता रहा।

<u>दुर्योधन (पृ 33, ला 10)</u> ये कुरूवंशीय धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। पाण्डवों के प्रति विशेषतः भीमसेन के प्रति ये नितान्त ही विद्वेष परायण थे। इन्ही के कूट नीति के फलस्वरूप महाभारत की लडाई हुई थी। इस युद्ध में अपने भ्राताओं और मित्रों के साथ स्वयं भी उनका निधन हो गया। इस युद्ध में भारत माता ने असंख्य वीर पुत्रों को खोकर जो दुर्दशा ग्रस्त हुई थी, उस दुर्गति का समाधान फिर भी नहीं हुआ।(कहा जाता है कि महाभारत की लड़ाई के फलस्वरूप भारत वीर हीन हो गया लेकिन अत्याचारियों के मरने से जन हीन होते होते बच गया– अनुवादक)

प्रल–283

<u>दुराशा (पृ 42, ला 8)</u> नामांतर धुसरां या धरा ईश्वर। ये देवराज के पुत्र थे। चन्द्र से 92 और त्रिपुर से 47 पुरुष थे। इनका ऐतिहासिक तथ्य इस समय अगोचर है। इनके परलोक गमन के पश्चात पुत्र बार कीर्ति या बिराज त्रिपुर सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे।

<u>दुर्लभेन्द्र चन्ताई (पृ 3, ला 16)</u> ये चतुर्दश देवता के प्रधान पूजक थे। त्रिपुर राजवंश का पुरावृत्त इन्हें कंठस्थ था। राजमाला प्रथम लहर, महाराज धर्ममाणिक्य के आदेशानुसार इनके द्वारा ही वर्णित और पण्डित शुक्रेश्वर और बाणेश्वर द्वारा लिपिबद्ध हुआ था। यह पाँच सदी पहले की कथा है।

<u>देवयानी (पृ 5, ला 6)</u> ये दैत्य गुरू शुक्राचार्य की कन्या थी। दैत्यराज बृषपर्वा दुहिता शर्मिष्ठा के साथ इनका खूब सद्भाव था। एक समय सरोवर के किनारे वस्त्र रखकर जलकेल में रत थी। इसी समय इन्द्र ने वायु रूप धारण कर किनारे रखे सभी वस्त्रों को उड़ा कर एकत्र कर दिया। जल विहार के पश्चात शर्मिष्ठा द्वारा व्यस्तता वश जल्दीबाजी में देवयानी का वस्त्र पहन लेने पर दोनों में कलह उपस्थित हुआ। क्रोधान्वित होकर शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुँए में निक्षेप कर घर लौट आई। इसी समय नहुष पुत्र ययाति मृगया के उपलक्ष्य वहाँ पँहुच कर देवयानी को कुँये से निकाला। शुक्राचार्य ने कन्या की दुर्गति से क्रुद्ध होकर दैत्य नगर परित्याग करने संकल्प लिया। बृषपर्वा यह जानकर शुक्राचार्य के प्रति सम्पादनार्थ विशेष यत्नवान हुए। शुक्राचार्य ने कहा, "देवयानी को प्रसन्न नहीं करने से मेरी प्रसन्नता तुम्हारे लिए असंभव है"। देवयानी ने कहा, "हमारी कामना यह है शर्मिष्ठा मेरी दासी हो। हमारे पिता मुझे जहाँ दान करगें, शर्मिष्ठा वहीं मेरा अनुगमन करेगी"। कार्यतः वही हुआ। शर्मिष्ठा देवयानी की दासी के रूप में शुक्राचार्य के घर आई।

कुछ दिनों के पश्चात ययाति, देवयानी का पाणिग्रहण कर राजधानी ले आये। शर्मिष्ठा उनकी अनुगामिनी हुई। किन्तु शुक्राचार्य ने उसी समय ययाति से कहा, शर्मिष्ठा को वे पत्नी रूप से व्यवहार न करें।

कालक्रम से ययाति के, देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्बसु नाम के पुत्र द्वय एवं शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुहयु, अनु, और पुरू नाम के तीन पुत्र जन्में। ययाति

शुक्र का आदेश लंघन कर शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्रोत्पादन करने से कोपान्वित शुक्राचार्य के अभिसम्पात से जरा ग्रस्त हुए थे।

देवराज (पृ 42, ला 2) ये त्रिपुरेश्वर शिक्षराज के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 91 और त्रिपुर से 46 पुरुष थे। इसके बाद उनके पुत्र दुरासा पितृ सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

देव राय (पृ 53, ला 8) नामांतर पार्थ या देवराज। ये महाराज रामचन्द्र के पुत्र थे। चन्द्र से 119 और त्रिपुर से 75 अधस्तन पुरुष थे। ये विशेष धार्मिक और गौ ब्राह्मण के प्रति भक्ति परायण थे। इनकी शासन प्रणाली के बारे में जानकारी प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है। पुत्र शैबराय(शिबराय) को सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाकर इन्होनें परलोक गमन किया।

देवांग (पृ 39, ला 15) ये महाराज तरबंग के पुत्र थे। चन्द्र से 56 और त्रिपुर से 11 अधस्तन पुरुष थे। पितृ सिंहासनरूढ़ होकर इन्होनें कौन कौन सा कार्य किया था, इसका पता नहीं चलता। पुत्र नरांगित के हाथों में राज्य भार सौंपकर परलोकवासी हुए।

दैत्य (पृ 6, ला 9) ये चन्द्र से 45 पुरुष थे। ये महाराज चित्रायुध के पुत्र थे। इनके आत्मज महाराज त्रिपुर बहुत ही अत्याचारी एवं प्रजा पीडक राजा थे। वे शिव हाथों मरे थे। राजमाला में दैत्य से ही राजाओं का विवरण लिपिबद्ध करना शुरु हुआ। इसके पहले के राजाओं का वर्णन इस ग्रंथ में नहीं है। ये सुदीर्घ कालों तक राज्य शासन करके जरा में पुत्र हाथों राज भार अर्पण कर वानप्रस्थ का अवलम्बन किया था।

द्रुहयु (पृ 5, ला 5) ये सम्राट ययाति के पुत्र, शर्मिष्ठा के गर्भजात प्रथम पुत्र थे। ये शुक्राचार्य द्वारा अभिशप्त पिता का जरा भार ग्रहण करने में असम्मत होने पर, सम्राट ययाति ने अभिशाप द्वारा निर्वासित किया कि जहाँ अश्व, रथ, राज योग्य यान अथवा शिविका इत्यादि द्वारा गमनागमन किया नहीं जा सकता, भेला, किंवा संतरण (नौका) द्वारा यातायात किया जाता है। तुम वहीं पर गमन करो। ये त्रिपुरा राजकुल के आदि पुरुष हैं। इसके अलावा विस्तृत विवरण पूर्वभाष में देखा जा सकता है।

धनराज फा (पृ 40, ला 6) ये त्रिपुराधिपति वसुराज के पुत्र थे। चन्द्र से 75 और त्रिपुर से 30 अधस्तन थे। इनकी शासन विवरणी

प्रल–285
अज्ञेय है। पुत्र हरिहर(मुचं फा) इनके उत्तराधिकारी सूत्र में सिंहासन प्राप्त किया था।

धर्मधर (पृ 39, ला 10) नामांतर धर्मतर या धर्मतरू। ये महाराज तरदाक्षिण के पुत्र थे। चन्द्र से 52 और त्रिपुर से साँतवें पुरुष थे। इन्होनें दीर्घ काल तक राजत्व किया था। राजमाला में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके बाद उनके पुत्र धर्मपाल ने त्रिपुरा का राज दण्ड सँभाला था।

धर्मपाल (पृ 39, ला 10) ये ऊपर बताये गये धर्मधर के पुत्र थे। चन्द्र से 53 और त्रिपुर से आँठवे व्यक्ति थे। ये धार्मिक और जीव हिंसा विरत थे। अन्त में सधर्मा(सुधर्म) नाम के पुत्र के हाथों में राज्य सर्मपण कर स्वर्ग सिधारे।

धर्ममाणिक्य (पु 8, ला 17) ये महामाणिक्य के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 148 और त्रिपुर से अधस्तन 103 भूपति थे। ये बहुत धार्मिक थे और राज्य प्राप्ति के पूर्व सन्याषी भेष में दीर्घ कालों तक तीर्थ पर्यटन किये थे। कहा जाता है कि सन्यासी भेष में वाराणासी धाम में एक दिन वृक्ष के नीचे निद्रित अवस्था में एक सर्प फन फैलाकर उनके मस्तक पड़ने वाले सूर्य ताप का निवारण कर रहा था। कौतुक नाम कोई एक विप्र ने यह देखकर इन्हें असाधारण मनुष्य समझा। इसके थोड़े दिनों के पश्चात देश से आए आदमी ने महाराज धर्म को पितृ वियोग का संवाद प्रदान किया और इन्हें राज्य भार ग्रहण करने के लिए देश ले आया।

धर्ममाणिक्य विशेष धार्मिक एवं पराक्रमी भूपति थे। इनके प्रयत्न से राजमाला रचना का सूत्रपात हुआ। इस ग्रंथ के प्रथम लहर बाणेश्वर और शुक्रेश्वर पण्डित द्वारा रचना कराकर ये चिरस्मरणीय कीर्ति रख गये हैं।

कुमिल्ला नगरी स्थित धर्म सागर महाराज धर्म की समुज्जवल कीर्ति है। यह विशाल सरोवर आज भी अपने सुनील वक्ष का विस्तार कर धर्ममाणिक्य के सत्कार्य का साक्ष्य प्रदान कर रहा है।

धर्मांगद (पृ 39, ला 17) ये महाराज नरांगित के पुत्र थे। चन्द्र से 58 तथा त्रिपुर से 13 स्थानीय भूपति थे। इनका इतिहास कुछ भी नहीं मिलता। अन्त में अपने पुत्र रूक्ष्मांगद हाथों राज्य भार इन्होनें सौंपा था।

धृतराष्ट्र (पृ 33, ला 11) ये द्वैपायन वेद व्यास के औरस से

प्रल–286

अम्बिका के गर्भ जात हुए। कुरू वंशीय विचित्र वीर्य के क्षेत्रज पुत्र थे। वेद व्यास के अम्बिका के साथ संगत होते समय उनके गहन कृष्ण वर्ण, विशाल श्मश्रु एवं पिंगल जटा दर्शन कर भयभीत होकर अम्बिका ने आँखें मूँद लिया था। इसलिए धृतराष्ट्र जन्मान्ध हुए। इनके दुर्योधनादि शत पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था। कुरूक्षेत्र युद्ध में पाण्डवों ने उनका विनाश किया।

<u>नरांगित (पृ 39, ला 16)</u> ये महाराज देवांग आत्मज थे। चन्द्र से 57 और त्रिपुर से 12 थे। इनकी शासन विवरणी नहीं मिल रही है। इसके बाद पुत्र धर्मांगद सिंहासन पर बैठे थे।

<u>नरेन्द्र (पृ 45, ला 18)</u> ये महाराज नागेन्द्र के पुत्र थे। चन्द्र से 107 और त्रिपुर से 62 व्यक्ति थे। इनके बाद पुत्र इन्द्र कीर्ति सिंहासनरूढ हुए थे।

<u>नावराय (पृ 49, ला 4)</u> नामांतर कीर्ति या नवराय। ये महाराज गगन के पुत्र थे। चन्द्र से 117 और त्रिपुर 78 पुरुष थे। इनका इतिवृत्त दुष्प्राप्य है। पुत्र हिमती या हामतार फा के ऊपर राज्य भार अर्पण करके ये परलोकवासी हुए थे।

<u>नागपति (पृ 40, ला 25)</u> नामांतर नागेश्वर। ये वीरराज के पुत्र थे। चन्द्र से 89 और त्रिपुर से 44 अधस्तन पुरुष थे। इनके परलोक सिधारने के बाद पुत्र शिक्षराज ने राज्य भार ग्रहण किया था।

<u>नागेश्वर (पृ 39, ला 30)</u> ये महाराज लक्ष्मीवान या माई लक्ष्मी के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 70 और त्रिपुर से अधस्तन 25 थे। पुत्र योगेश्वर के ऊपर राज्य भार सौंपकर परलोकवासी हुए थे।

<u>नौगयोग (पृ 39, ला 19)</u> नामांतर नोगराय। ये महाराज सोमांगद के पुत्र थे। चन्द्र से 61 और त्रिपुर से 16 थे। इनके पश्चात पुत्र तरजुंग ने राज्य भार ग्रहण किया था।

<u>पुरू (पृ 5, ला 5)</u> ये शर्मिष्ठा के गर्भजात ययाति के कनिष्ठ पुत्र थे। ययाति शुक्र शाप से जरा ग्रस्त होकर पुत्रों को जरा भार ग्रहण के लिए अनुरोध करने पर पुरू ने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर पिता के स्नेह के कारण बने। इसलिए ज्येष्ठ भ्राताओं का उल्लंघन कर इन्हें ही राज सिंहासन पर बैठाया। पुरू की संततियां उनके नामानुसार पुरू वंशीय के नाम से विख्यात हुए थे।

<u>प्रतापमाणिक्य (पृ 69, ला 20)</u> महाराज रत्नमाणिक्य के पुत्र थे। चन्द्र से 146 और त्रिपुर से 101 अधस्तन थे। ये अधिक काल राज्य

भोग नहीं कर सके। अधार्मिक और अत्याचारी होने पर सेनापतियों ने मिलकर इनकी हत्या कर दी। अन्त में इनके सहोदर मुकुटमाणिक्य को राजा बनाया गया था।

प्रताप राय (पृ 54, ला 4) ये महाराज साधुराय के पुत्र थे। चन्द्र से 132 और त्रिपुर से 87 पुरुष थे। ये पारा खाने के लती थे। इसी पाप से इनके बड़े लड़के की मृत्यु हुई। उनके पैतृ विष्णु प्रसाद पितामाह के सिंहासन के अधिकारी बने थे।

प्रतीत (पृ 46, ला 9) ये महाराज चित्रसेन के पुत्र थे। चन्द्र से 114 और त्रिपुर से 69 अधस्तन थे। ये हेड़म्ब राय के साथ प्रणय सूत्र में आबद्ध होकर बरबक्र नदी को त्रिपुर और हेड़म्ब राज्य के मध्य सीमा निर्धारण किया था। दोनों इस तरह प्रतिज्ञा सूत्र में आबद्ध हुए कि यदि दैव बल से काला कौवा सफेद वर्ण भी हो जाये तो भी वे सीमा का उल्लंघन नहीं करेगें। आस पास के राज्यों की शक्ति क्षय करना ही इनकी मित्रता स्थापन का मात्र लक्ष्य था एवं इसी बन्धुत्व को सुदृढ़ करने के लिए महाराज प्रतीत ने कुछ दिनों के लिए महाराज हेड़म्ब के यहाँ निवास किया था। उन दिनों दोनों राजा एक साथ आहार एकासन पर उपवेशन करते थे। एक मुहूर्त के लिए एक दूसरे से बिछुड़ते नहीं थे। दो प्रधान शक्तियों के इस तरह की सहायता को देखकर आस पास के राजन्य वर्ग भयभीत और शंकित हो उठे। दोनों में विभेद पैदा करनके लिए तत्पर हो उठे एवं आपस में परामर्श कर एक रूपवती युवती को उनके यहाँ भेजा। उनका यह षड़यन्त्र व्यर्थ नहीं हुआ। सुचतुरा युवती के चातुरी जाल में बिजडित राजद्वय में घोर विवाद उपस्थित हुआ। महाराज प्रतीत उस रमणी को लेकर स्वदेश लौट आये। इसलिए त्रिपुरा का बरबक्र तटवर्ती खलंमा का राजपाट उन्हें परित्याग करना पड़ा था। महाराज प्रतीत ने धर्मनगर आकर नया राजपाट स्थापित किया था।

महाराज प्रतीत साधु चरित्र एवं धर्मनिष्ठ थे। शिव, दुर्गा और विष्णु के प्रति उनकी अचला भक्ति थी। वार्द्धक्य में अपने पुत्र मरिचि के हाथों में राज्य सौंप महाराज प्रतीत परलोक सिधार गये।

बंग (पृ 46, ला 2) नामांतर नवांग। ये त्रिपुरेश्वर यशोराज के पुत्र थे। चन्द्र से 111 और त्रिपुर से 66 स्थानीय थे। इनके शासनकाल में त्रिपुर राज्य में बंगाली प्रजा के बसाने का सूत्रपात हुआ। इसके अतिरिक्त इनका कोई विवरण नहीं मिल रहा है। यह अपने आत्मज गंगाराय को उत्तराधिकारी रखकर परलोकवासी हुए थे।

बाणेश्वर (पृ 54, ला 10) नामांतर वानिश्वर। त्रिपुरेश्वर

प्रल–288

विष्णु प्रसाद के पुत्र थे। चन्द्र से 134 और त्रिपुर से 89 पुरुष थे। इनकी शासन प्रणाली अप्राप्य है। पुत्र बीर बाहु के हाथों में राज्य भार प्रदान पूर्वक ये स्वर्गवासी हुए थे।

<u>बाणेश्वर (पृ 3, ला 20)</u> ये श्रीहट्ट निवासी ब्राह्मण एवं त्रिपुरा दरबार में सभा पंडित थे। पंडित शुक्रेश्वर और चन्ताई दुर्लभेन्द्र के साथ राजमाला के प्रथम लहर की रचना की। राजमाला का यह अंश पाँच सौ साल पुराना है। इनके वंशधर अब नहीं रहे। पहले के 79 पृष्ठ में इनका विस्तृत विवरण देखने को मिलेगा।

<u>विमान (पृ 45, ला 19)</u> नामांतर पाइमाराज। ये महाराज इन्द्रकीर्ति के पुत्र थे। चन्द्र से 109 और त्रिपुर से 64 अधस्तन पुरुष थे। अंतकाल उपस्थित होने पर अपने पुत्र यशोराज के ऊपर राज का दायित्व प्रदान कर परलोक सिधारे।

<u>बिमार (पृ 42 ला 20)</u> ये महाराज सुरेन्द्र के पुत्र है। चन्द्र से 100 और त्रिपुर से 55 अधस्तन पुरुष थे। इनकी शासन प्रणाली अप्राप्य है। इनके पुत्र कुमार राज तख्त पर बैठे थे।

<u>बिराज (पृ 42, ला 9)</u> नामांतर बारकीर्ति या वीरराज। ये महाराज दुरासा के पुत्र थे। चन्द्र से 93 और त्रिपुर से 48 पुरुष थे। इनके परलोक सिधारने के पश्चात उनके पुत्र सागर फा राज तख्त पर बैठे थे।

<u>विष्णु प्रसाद (पृ 54, ला 8)</u> ये महाराज प्रताप राय के पौत्र थे। चन्द्र से 133 और त्रिपुर से 88 पुरुष थे। प्रताप राय के जीवित रहते उनके बड़े पुत्र के परलोकवासी होने पर इन्हें ही राज्याधिकारी बनाया गया था। विष्णु प्रसाद अतिशय धार्मिक पुरुष थे एवं दीर्घ कालों तक राज्य भोग किया था। इनके बाद पुत्र बाणेश्वर ने राज्य प्राप्त किया था।

<u>बीर बाहु (पृ 54, ला 11)</u> ये महाराज बाणेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 135 और त्रिपुर से 90 स्थानीय पुरुष थे। इनके पश्चात उनके पुत्र सम्राट सिंहासनरूढ हुए थे।

बीरराज <u>(पृ 39, ला 23)</u> ये त्रिपुराधिपति हामराज के पुत्र थे। चन्द्र से 65 और त्रिपुर से 20 स्थानीय पुरुष थे। इन्होने युद्धक्षेत्र में प्राणाहुति देकर अपने पुत्र श्रीराज को सिंहासनरूढ किया था।

<u>बृषपर्वा (पृ 5, ला 16)</u> दैत्यराज। ये द्रुहयु जननी शर्मिष्ठा के पिता थे।

प्रल–289

<u>वीरराज(द्वितीय)(पृ 40, ला 24)</u> ये महाराज गजेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 88 और त्रिपुर से 43 अधस्तन पुरुष थे। इनका इतिवृत्त ज्ञान नहीं है। पुत्र नागेश्वर(नामांतर नागपति) इनके पश्चात राजा हुए।

<u>भीमसेन (पृ 33, ला 3)</u> ये कुंती के गर्भजात, वायु से उत्पन्न पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे। द्वितीय पाण्डव के नाम से इनकी ख्याति है। इन्होनें ही त्रिपुरेश्वर का युधिष्ठिर के साथ साक्षात्कार कराया था।

<u>मनु (पृ 43, ला 19)</u> एक ऋषि। इन्होनें ही मनु संहिता की रचना की थी। ऐसा कहा जाता है कि त्रिपुर राज्य के अन्तर्गत मनु नदी के किनारे इनका आश्रम था एवं ये कुछ दिनों तक यहीं शिव की आराधना में रत थे। प्राचीन राजमाला में उद्धृत योगिनी तन्त्र में उल्लेख है –

"पुराकृत युगे राजन मनुना पूजित शिवः।
तत्रैव विरले स्थाने मनुनाम नदी तटे।।"

<u>मलय चन्द्र (पृ 42, ला 14)</u> ये महाराज सागर फा के पुत्र थे। चन्द्र से 95 और त्रिपुर से 50 अधस्तन पुरुष थे। इनके पश्चात तदात्मज सूर्य नारायण या सूर्यराय त्रिपुर सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

<u>महामाणिक्य (पृ 70, ला 6)</u> महाराज मुकुटमाणिक्य के पुत्र थे। चन्द्र से 148 और त्रिपुर से 103 अधस्तन राजा थे। ये विशेष धार्मिक और प्रजावत्सल राजा थे। लोकांतरित होने पर होने पर इनके पुत्र धर्ममाणिक्य राज्याधिकारी हुए थे।

<u>माइचोंग फा (पृ 40, ला 8)</u> नामांतर चन्द्रशेखर। ये मोचुं फा के पुत्र थे। चन्द्र से 77 और त्रिपुर से 32 अधस्तन पुरुष थे। इन्होनें 59 सालों तक राज्य शासन किया था। राजमाला में इससे अधिक जानकारी नहीं मिली। पुत्र चन्द्रराज(नामांतर ताभुराज या तरूराज) पिता के लोकांतरित होने पर सिंहासन के अधिकारी बने थे।

<u>माईलक्ष्मी (पृ 39, ला 29)</u> नामांतर लक्ष्मीवान। ये महाराज रूपवान के पुत्र थे। चन्द्र से 70 और त्रिपुर से 25 अधस्तन राजा थे। शेष समय अपने पुत्र नागेश्वर के हाथों में राज्य भार अर्पण किया था।

<u>मालछि (पृ 49, ला 2)</u> नामांतर मारीचि, मिछली या मरूसोम। ये महाराज प्रतीत के पुत्र थे। चन्द्र से 115 और त्रिपुर से 70 अधस्तन पुत्र थे। इनके परलोक गमन पर इनके पुत्र गगन सिंहासनरूढ हुए थे।

प्रल–290

<u>मुकुटमाणिक्य (पृ 69, ला 20)</u> नामांतर मुकुन्द। ये महाराज रत्नमाणिक्य के पुत्र और प्रतापमाणिक्य के भ्राता थे। चन्द्र से 147 और त्रिपुर से 102 पुरुष थे। महाराज रत्नमाणिक्य के परलोक गमन के पश्चात प्रतापमाणिक्य राजा हुए थे। अनाचारी और अधार्मिक कहकर सेनापतियों के द्वारा उनकी हत्या होने पर मुकुटमाणिक्य सिंहासन पर बैठे।

<u>मुचं फा (पृ 39, ला 23)</u> नामांतर हरिहर। ये महाराज धनराज फा के पुत्र थे। चन्द्र से 76 और त्रिपुर से 31 अधस्तन पुरुष थे। इनका कोई इतिहास नहीं मिलता। इनके परलोक गमन के बाद उनके पुत्र चन्द्रशेखर(नामान्तर माइचोंग फा) राज्याधिकारी हुए थे।

<u>मेघ (पृ 54, ला 14)</u> नामांतर मेघराज। ये महाराज चम्पकेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 138 और त्रिपुर से 93 पुरुष थे। पुत्र छेंका चाग(धर्मधर) को सिंहासन का उत्तराधिकारी रखकर इन्होनें परलोक गमन किया।

<u>मैछिली राज (पृ 45, ला 16)</u> नामांतर नागेन्द्र या क्रोधेश्वर। ये महाराज राजेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 105 और त्रिपुर से 60 अधस्तन पुरुष थे। इन्होनें पुत्र कामना से महादेव जी की आराधना की थी। शिव ने कहा, ''तुम्हारा पुत्र नहीं होगा।'' राजा इससे क्रुद्ध होकर महादेव को लक्ष्य कर बाण छोड़ा था। राजा के इस व्यवहार से रूष्ट होकर महादेव ने आदेश किया, तुम अन्धे हो जाओगे। अनेक अनुनय विनय के पश्चात आशुतोष ने पुनः कहा, ''मनुष्य का रक्त आँखो में देने से तुम्हारा अंधत्व दूर होगा किन्तु स्त्री संगम करने से तुम्हारी मृत्यु होगी।'' मनुष्यों के रक्त संग्रह करने के लिए चारों ओर आदमी भेजा गया। मैछिली या मछलु उपाधि युक्त पार्वत्य एक सम्प्रदाय नरबलि निमित्त आदमी पकड़ने का काम करता था। इस कार्य का भार उन्हीं लोगों पर सौंपा गया। इसलिए राज्य में भीषण अंशाति और भय का संचार हुआ। किसे कब पकड़ कर ले जाय, इस भय से सभी विचलित रहते थे। कुछ दिनों के पश्चात मनुष्य के रक्त द्वारा महाराज रोग मुक्त हुए थे। उनके पुत्र न होने की वजह से उनके भ्राता तेजं फा राज्याधिकारी हुए थे। मैछिली सम्प्रदाय की तरह निष्ठुर समझकर प्रजा साधारणतः उन्हें ''मैछिली राज'' नाम से पुकारती थी।

<u>मोचंग फा (पृ 40, ला 7)</u> नामांतर उद्धव। ये महाराज यश फा के पुत्र थे। चन्द्र से 130 और त्रिपुर से 85 अधस्तन थे। ये अधार्मिक एवं

प्रल–291

पारद रत होने की वजह से और इसी पाप से उनका कोई पुत्र नहीं हुआ। भ्राता साधुराय इनके पश्चात राजा हुए थे।

<u>यदु (पृ 5, ला 5)</u> सम्राट ययाति के देवयानी के गर्भजात पुत्र थे। ये ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी पितृ जरा ग्रहण में असम्मत होने से ययाति ने इन्हें अभिशप्त और निर्वासित किया था। श्रीकृष्ण आदि यादव गण इनके ही वंशज थे।

<u>ययाति (पृ 5, ला 2)</u> ये नहुष के पुत्र थे। पिता के अवर्तमान में इन्होनें भार साम्राज्य प्राप्त किया था। दैत्य गुरू शुक्राचार्य की कन्या देवयानी एवं दैत्य राज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा इनकी महिषी ही है। देवयानी भी महिषी थी। शर्मिष्ठा राज कन्या होने पर भी पितृ आदेश से देवयानी के दासी के रूप में साथ आई थी। देवयानी के विवरण में यह विषय संक्षेप में दिया गया है। यहाँ पर उसका हम उल्लेख नहीं कर रहे हैं। ययाति ने शुक्र के शाप से जरा ग्रस्त होकर सभी पुत्रों से अपना जरा भार ग्रहण के लिए अनुरोध किया था। एक मात्र कनिष्ठ पुत्र पुरू को छोड़ कर कोई भी पुत्र उनके वाक्य का पालन न करने की वजह से ही कनिष्ठ पुत्र को ही राज्य का अधिकारी बनाकर सम्राट पुरू के अधीनता में नाना स्थानों पर निर्वासित कर दिया था। इसी कारण पुरू सबसे कनिष्ठ होने पर हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे थे।

<u>यश फा (पृ 53, ला 22)</u> नामांतर यशोराज। महारज कृष्ण दास के पुत्र थे। चन्द्र से 129 और त्रिपुर से 84 अधस्तन पुत्र थे। इनके पश्चात पुत्र मोचंग फा(उद्धव) राज्याधिकारी हुए थे।

<u>यशोराज (पृ 45, ला 21)</u> ये महाराज विमान के पुत्र थे। चन्द्र से 110 और त्रिपुर से 65 अधस्तन थे। ये साधु और सदाचारी थे। अन्तिम समय में अपने बंग नाम के पुत्र के ऊपर साम्राज्य का भार अर्पण परलोकवासी हुए थे।

<u>युझारु फा (पृ 49, ला 6)</u> युझारु फा नामान्तर हिमती या हामतार फा। ये महाराज कीर्ति के पुत्र थे। चन्द्र से 118 और त्रिपुर से 73 पुरुष थे। ये वीर पुरुष थे। रांगामाटी पर विजय प्राप्त कर इन्होनें राज्य की आयतन वृद्धि किया। इन्होनें सर्व प्रथम बंग देश के कुछ अंशों पर विजय प्राप्त कर इस घटना को चिरस्मरणीय करने के निमित्त त्रिपुराब्द का प्रचलन किया था। इनके लोकांतरित होने के पश्चात तत् पुत्र राजचन्द्र(जांगी फा) राज्याधिकारी हुए थे।

<u>युधिष्ठिर (पृ 33, ला 3)</u> ये कुन्ती के गर्भ जात धर्म से उत्पन्न महाराज पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे। दुर्योधन आदि द्वारा नाना भाव से विडम्बित

प्रल—292

होकर इन्होनें कुरूक्षेत्र युद्ध संगठन किया। इस युद्ध में श्रीकृष्ण ने स्वयं पाण्डवों का पक्षावलम्बन किया और अपनी नारायणी सेना को कौरवो की सहायता के लिए भेज दिया। इस समय भगवान ने समर—विमुख अर्जुन को जो उपदेश प्रदान किया था वही ''श्रीमद्भागवत् गीता'' के नाम से जाना जाता है। इस युद्ध में विजय प्राप्त कर युधिष्ठिर ने साम्राज्य प्राप्त किया था। उनके अनुष्ठित राजसूय यज्ञ भारत विख्यात घटना है। युधिष्ठिर के काल निर्णय को लेकर बहुत से लोग तरह तरह की बातें करते हैं। यद्यपि इस विषय में कोई स्थिर मीमांसा नहीं हो पाई है। वे साढ़े चार हजार साल पहले आये थे। यही अब तक एक स्थिर मीमांसा सूत्र माना जाता है।

योगेश्वर (पृ 39, ला 31) महाराज नागेश्वर के पुत्र थे। ये चन्द्र से 72 और त्रिपुर से 27 अधस्तन थे। इनके पश्चात इनके पुत्र ईश्वर फा पिता के सिंहासन पर बैठे थे।

रंखाई (पृ 40, ला 4) नामांतर बसुराज। ये महाराज नील ध्वज के पुत्र थे। चन्द्र से 74 और त्रिपुर से 29 पुरुष थे। ये धार्मिक थे और दीर्घजीवी हुए थे। इन्होनें पुत्र धन राज फा को राज्याधिकारी बनाकर परलोक सिधारे।

रत्न फा (पृ 61, ला 9) ये डांगर फा के कनिष्ठ पुत्र थे। चन्द्र से 145 और त्रिपुर से 100 अधस्तन पुरुष थे। पिता डांगर फा ने इन्हें गौडेश्वर के दरबार में भेजकर बाकी सत्रह लड़कों में राज्य का विभाजन कर दिया। रत्न फा ने गौडेश्वर की सहायता से राज्य पर आक्रमण और पिता के विताडित करके भाईयों को अवरूद्ध कर सिंहासन पर बैठे। इसके पश्चात इन्होनें गौडेश्वर को एक बहुमूल्य मेढ़क की मणि प्रदान किया था और वंशानुक्रमिक ''माणिक्य'' उपाधि प्राप्ति किया था। तभी से त्रिपुरेश्वरगण माणिक्य उपाधि धारण कर आ रहे हैं।

राजा फा (पृ 62, ला 4) ये महाराज डांगर फा के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके भाई रत्न फा ने राजा फा के साथ सत्रह भ्राताओं को अवरूद्ध करके राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। अतएव ये राज्य भार ग्रहण करके भी राज्य भोग नहीं कर सके। इसके बाद रत्न फा के वंशधर ही त्रिपुर सिंहासन के अधिकारी होते गये।

प्रल–293

राजेश्वर (पृ 44, ला 3) नामांतर राजेश्वर। ये महाराज बीर चन्द्र के(नामांतर तैछ राय) के पुत्र थे। चन्द्र से 104 और त्रिपुर से 59 पुरुष थे। पुत्र नागेश्वर को राज्याधिकारी रखकर स्वर्गवासी हुए थे।

रूक्ष्मांगद (पृ 39, ला 18) ये धर्मांगद के पुत्र थे। चन्द्र से 59 और त्रिपुर से 14 अधस्तन पुरुष थे। पुत्र सोमांगद के हाथों में राज्य भार अर्पण करके ये स्वर्गवासी हो गये थे।

रूपवंत (पृ 40, ला 13) नामांतर श्रेष्ठ। महाराज सुमंत के पुत्र। चन्द्र से 81 और त्रिपुर से 36 अधस्तन थे। पुत्र तरहोम या तरहाम इनके बाद सिंहासन पर बैठे थे।

लक्ष्मीतर (पृ 39, ला 27) नामांतर लक्ष्मीतरू। ये त्रिपुरेश्वर श्रीमान् या श्रीमंत के पुत्र थे। चन्द्र से 68 और त्रिपुर से 23 थे। पुत्र रूपवान इनके पश्चात सिंहासन पर बैठे थे।

ललित राय (पृ 53, ला 17) ये महाराज रामचन्द्र के पुत्र थे एवं नृसिंह के भ्राता थे। चन्द्र से 124 और त्रिपुर से 79 थे। राजा नृसिंह निःसन्तान थे। उनके परलोक यात्रा के बाद अनुज ललित राय सिंहासन पर बैठे थे। इनके पश्चात पुत्र कुन्द फा या मुकुन्द फा राज्याधिकारी हुए थे।

लिका राजा (पृ 49, ला 19) ये मघ सम्प्रदाय के एक शाखा से संबंधित थे। रांगामाटी(उदयपुर) राज्य के राजा थे। त्रिपुरेश्वर युझारु फा ने इन्हे युद्ध में पराभूत कर रांगामाटी को अपने अन्तर्युक्त कर दिया और वहाँ अपना राज पाट स्थापन किया। इसके बाद से ही दीर्घ दिनों तक त्रिपुरा में ही राजधानी थी। यह स्थान एक महापीठ के नाम से भारत विख्यात है।

लोमाई (पृ 62, ला 18) ये महाराज डांगर फा के पुत्र थे। डांगर फा ने सत्रह पुत्रों में राज्य का विभाजन करते समय इन्हें मुहुरी नदी के किनारे राज पाट दिया था। राजमाला में लिखा है –

लोमाई नामेते पुत्र बड़ा शिष्ट छिलो।	लोमाई नाम का पुत्र था बड़ा ही शिष्ट।
मोहरी नदीर तीरे नृपति कोरिलो।।	मोहरी नदी के तीर का राजा किया।।
राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड62पृ	राजमाला प्रल डांगर फा खण्ड62पृ

अर्थात, ''लोमाई नाम के एक पुत्र स्वभाव से बडे शिष्ट थे। राजा ने उन्हें मोहरी नदी के किनारे राजा बनाया।''

ये अधिक दिनों तक राज्य सुख भोग नहीं कर सके। इनके अनुज रत्न फा ने थोड़े दिनों के पश्चात ही गौड वाहिनी की सहायता से भ्राताओं को अवरूद्ध कर सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया।

शर्मिष्ठा (पृ 5, ला 7) ये दानव राज वृष पर्वा की दुहिता एवं सम्राट ययाति की महिषी थी। ये शुक्र कन्या देवयानी की दासी के रूप में ययति के

गृह पधारी। इनके गर्भ से द्रुहयु, अनु और पुरू तीन पुत्रों का जन्म हुआ। इन्हें पत्नी के रूप में ग्रहण करने ययाति शुक्राचार्य के शाप से जरा ग्रस्त हुए थे। देवयानी का विवरण देखिये।

<u>शिक्षराज (पृ 40, ला 27)</u> नामांतर शिखिराज। महाराज नागेश्वर के पुत्र थे। चन्द्र से 90 तथा त्रिपुर से 45 अधस्तन पुरुष थे। एक दिन मृगया के उपलक्ष्य में वन में जाकर अकृत कार्य और परीश्रान्त होकर आराम करने लगे व रसोइये को मांस पकाने को कहा। रसोईया अकस्मात् मांस न पाकर भयभीत हो गया और देवता के सामने नरबलि का मांस लाकर रंधन कार्य समाप्त किया। मांस आहार करते हुए राजा ने कहा यह किस प्राणी का मांस है? इस प्रश्न को सुनकर रसोईया और भयभीत हो गया और काँपते हुए कहा दूसरा मांस संग्रह न कर पाने से मैंने नर मांस पकाया है। राजा यह बात सुनकर भीत और दुखी हुए। इन्होनें विषय विरागवश पुत्र के ऊपर राज्य भार सौंपकर वानप्रस्थ कर वन में चले गये। उनके वन गमन के पश्चात पुत्र देवराज राज्याधिकारी हुए थे।

<u>शिवराय (पृ 53, ला 10)</u> नामांतर शैवराय। ये महाराज पार्थ या देव राज के पुत्र थे। ये चन्द्र से 121 और त्रिपुर से 76 पुरुष थे। ये विशेष गुणी एवं प्रजा वत्सल थे। दीर्घ काल राज्य शासन करने के बाद पुत्र डुंगुर फा को(दान कुरू) सिंहासन प्रदान कर स्वर्गवासी हुए थे।

<u>शुक्र (पृ 5, ला 6)</u> ये दैत्य गुरू शुक्राचार्य है। ययाति की महिषी देवयानी के पिता थे। इनके श्राप से ययाति जरावस्था को प्राप्त हुए थे। इन्होनें वामन अवतार में बलि राजा को भगवान वामन को दान देने के लिए बाधा प्रदान किया था। जिसके फलस्वरूप अपनी एक आँख गँवा देनी पड़ी थी। तब से इन्हे काना शुक्र भी कहा जाता है।

<u>शुक्रेश्वर (पृ 3, ला 20)</u> श्रीहट्टवासी ब्राह्मण थे। धर्ममाणिक्य के शासन काल में त्रिपुर दरबार में सभा पण्डित थे। इन्होनें पण्डित बाणेश्वर और दुर्लभेन्द्र चंताई के साथ मिलकर राजमाला की प्रथम लहर की रचना की थी। इनके वंशज इस समय नहीं हैं। धर्ममाणिक्य के शासन कार्य की आलोचना से जाना जाता है ये पाँच सौ साल पहले जन्में थे।

<u>श्रीमंत (पृ 39, ला 26)</u> नामांतर श्रीमान्। ये श्रीराज के पुत्र थे। चन्द्र से 67 और त्रिपुर से 22 पुरुष थे। इनके राजत्व का इतिहास नहीं मिल रहा है। पुत्र लक्ष्मी तरू के हाथों में राज्य भार अर्पण कर स्वर्गारोहण किया था।

प्रल–295

श्रीराज (पृ 39, ला 14) ये त्रिपुरेश्वर वीरराज के पुत्र थे। चन्द्र से 66 और त्रिपुर से 21 पुरुष थे। इनके पास असंख्य धन जन था। पुत्र श्रीमंत के ऊपर राज्य भार अर्पण कर ये परलोकवासी बने।

सम्राट (पृ 54, ला 12) ये महाराज बीर बाहु के पुत्र थे। चन्द्र से 136 और त्रिपुर से 91 पुरुष थे। इनके परलोक गमन के पश्चात पुत्र चम्पकेश्वर ने त्रिपुरा का राजदण्ड सँभाला।

सहदेव (पृ 9, ला 17) इन्होनें माद्री के गर्भ से अश्विनी कुमार द्वारा उत्पन्न पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे। पाँच पाण्डवों में ही ये सबसे छोटे थे। राजमाला के अनुसार राजसूय यज्ञ के समय इन्होनें त्रिपुरा पर विजय प्राप्त किया था।

सागर फा (पृ 42, ला 12) महाराज विराज के पुत्र थे। चन्द्र से 94 और त्रिपुर से 49 पुरुष थे। दीर्घकाल तक इन्होनें राजत्व किया था। और अन्त में पुत्र मलयचन्द्र के हाथों राज्य भार अर्पण कर परलोकवासी हुए।

साधु राय (पृ 53, ला 26) ये महाराज यश फा के पुत्र और उद्धव के भ्राता थे। चन्द्र से 130 और त्रिपुर से 85 पुरुष थे। इन्होनें यश सम्मान के साथ राजत्व करके पुत्र प्रताप राय को सिंहासन पर बैठाकर परलोक गमन किया।

सुकुमार (पृ 43, ला 22) ये महाराज कुमार के पुत्र थे। चन्द्र से गणना में 102 और त्रिपुर से अधस्तन 57 स्थानीय पुरुष थे। इनके अभाव में पुत्र बीर चन्द्र राजा हुए थे।

सुदाक्षिण (पृ 39, ला 2) राजा तयदाक्षिण या तैदाक्षिण के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 49 और त्रिपुर से अधस्तन चतुर्थ स्थानीय थे। उनके पश्चात् पुत्र तरदक्षिण सिंहासन के अधिकारी हुए थे।

सुधर्म (पृ 39, ला 12) नामांतर सधर्मा। महाराज धर्मपाल के पुत्र थे। चन्द्र से 54 और त्रिपुर से नौंवे पुरुष थे। इनके राज्य काल में राज्य में सुख शांति विराजमान थी। पुत्र तरबंग के हाथों राज्य भार अर्पण कर ये परलोकवासी हुए थे।

सुबडाई (पृ 15, ला 1) महाराज त्रिलोचन का ही नामांतर सुबडाई है। इन्हें धराभारवाही देवता कहकर त्रिपुरा समाज में विश्वास था। त्रिलोचन शीर्षक विवरण देखिये।

सुमंत (पृ 40, ला 12) ये महाराज तरफनाई फा के पुत्र थे। चन्द्र से

80 और त्रिपुर से 35 पुरुष थे। रूपवंत नाम के पुत्र के ऊपर राज्य का दायित्व सौंपकर लोकांतरित हुए।

सूर्य राय (पृ 42, ला 15) नामांतर सूर्य नारायण। महाराज मलय चन्द्र के पुत्र थे। चन्द्र से 96 और त्रिपुर से 51 अधस्तन पुरुष थे। सूर्य राय के परलोक गमन के पश्चात उनके पुत्र इन्द्रकीर्ति सिंहासनाधिपति हुए थे।

सोमांग (पृ 39, ला 18) नामांतर सुमांग या सोमांगद। ये महाराज रूक्ष्मांगद के पुत्र थे। ये चन्द्र से 60 और त्रिपुर से 15 अधस्तन पुरुष थे। इनके अभाव में पुत्र नौगयोग राज्याधिकारी बने।

हामराज (पृ 39 , ला 22) ये राजधर्मा के पुत्र है। ये चन्द्र से 64 और त्रिपुर से 19 अधस्तन पुरुष थे। या यशश्वी राजा थे। इनके अभाव में पुत्र बीरराज राज्याधिकारी बने।

हामतार फा (पृ 49 , ला 5) नामांतर युझारु फा है। इन्होनें रांगामाटी पर विजय और बंग भूमि का कुछ अंश जीतकर त्रिपुर राज्य के परिसर की वृद्धि की थी। युझारु का विवरण देखिये।

हीरावती (पृ 14, ला 18) ये महाराज त्रिपुर की महिषी और त्रिलोचन की जननी थी। त्रिपुर का शिव द्वारा निधन होने पर ये संतान असंभवा थी। इसके बाद शिव आराधना और चतुर्दश देवता की उपासना करके शिव वर से त्रिलोचन को पुत्र रूप में पाया था। मतांतर में त्रिलोचन शिव के औरस जात पुत्र हैं। इस बारे में पूर्वभाष में विवरण दिया गया है।

हीरावंत (पृ 55, ला 3) ये बंग राज के अधीनस्थ एक चौधुरी(शासन कर्ता) थे। मेहेरकुल राज्य(वर्तमान कुमिल्ला इत्यादि) इनके शासनाधीन थे। त्रिपुरेश्वर छैं थुम फा ने इनका धन रत्न एवं राज्य छीन लिया। इसके बाद हीरावन्त गौड के आश्रय गये। इसलिए गौडेश्वर केशव सेन के साथ त्रिपुरा का भीषण संग्राम हुआ। इस युद्ध में छैं थुम फा की महिषी वीर कुल वरेण्या महारानी त्रिपुरासुन्दरी स्वयं समर प्रांगण में अवतीर्ण हुई और अपने वीरत्व प्रदर्शन द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त किया था।

श्रीहट्ट के इतिवृत्त में हीरानन्द नाम के एक बनिक का नाम पाया जाता है। उक्त इतिवृत्त प्रणेता ने इस हीरानन्द और राजमाला में वर्णित हीरावंत अभिन्न व्यक्ति है या नहीं – इस विषय को लेकर संदिग्ध थे। देखा जा रहा है हीरावंत मेहेरकुल निवासी थे एवं उस स्थान के शासन कर्ता भी थे। हीरानन्द श्रीहट्ट वासी थे और वाणिज्य व्यवसायी थे। अतएव ये दोनों पृथक व्यक्ति थे। इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

प्रल–297

अनुक्रमणिका।

(अ)
अक्रोधन – 163
अगुरू काष्ठ – 169, 170, 211, 212
अग्नि – 132, 139
अग्नि पुराण – 112, 122, 133
अग्नि ध्यान – 142
अंग द्वीप – 202
अच्युत चरण चौधरी –77, 78, 86, 181, 207
अजमीढ – 164
अथर्व वेद – 122
अद्वैत प्रकाश – 82
अद्‌भुत रामायण – 58
अनंत शयया – 29
अनश्वा – 164
अनु – 5, 6, 274
अप्सरा – 185
अवंतिका – 7, 237
अर्वाचीन – 163
अब्दि – 30, 131, 132
अभियान – 50, 182, 183, 190, 205
अभिषेक प्रणाली – 121, 196
अमरपुर – 53, 237
अमूल्यचरण विद्याभूषण – 149, 152, 153, 165, 167, 168
अम्बर – 149
अयुत नायी – 163
अयोध्या – 7, 237
अरिजित – 163
अरिह – 163
अर्जुन – 84, 149, 152, 153, 165, 166, 168
अहंयाति – 163
अहोम नृपति – 91
(आ)
आइन–इ–अकबरी – 160, 180, 188
आकबर – 68, 188
आगर – 211
आगरतला – 62, 79, 134, 138, 157, 187, 213, 238
आगर फा – 62, 274
आग्नेयास्त्र – 173
आचोंग फा – 42, 92, 93, 115, 275
आचरंग – 6, 62, 186, 190, 239
आचुंग फालाई – 42, 275
आचोंग फा – 59, 93, 275
आचोंग मा – 59, 62, 93, 275
आत्मबिरोध – 188
आदम सुमारी – 116
आदिधर्म फा – 77, 99, 101, 102, 103, 105, 109 , 110, 111, 196, 207, 208
आदिनाथ तीर्थ – 86, 138
आदिशूर – 111
आनन्द – 99, 101, 103, 105, 108, 109
आनर्त – 163
आनाम – 202
आपाइया – 218
अबुल फजल – 188
आयु – 163

आरंगी – 22, 31, 150, 151, 153, 154, 158
आराकान – 86, 125, 148
आर्यावर्त – 7, 86, 87, 88, 241
आसा – 161
आसाम – 77, 84, 85, 89, 112, 169, 207, 211, 215
आसामी – 89
आसाम इतिहास – 102
आसाम का विशेष विवरण – 101

(इ)
इटा – 108, 109
इटोवा – 108
इंडो एरियन – 180
इन्देश्वर – 108
इन्द्रकीर्ति – 45, 275
इन्द्र कुमार मिश्र – 79
इन्द्रद्वीप – 84
इन्द्र नगर – 108
इउरोप(यूरोप) – 149
इलिन – 163

(ई)
ईशा खाँ – 68
ईशानचन्द्र माणिक्य – 203
ईश्वर फा – 40, 90, 195, 275

(उ)
उइल(विल) फोर्ड साहब – 178
उडिया – 89
उडिष्या – 89, 177
उत्कंल – 7, 135, 241
उत्तर – 153
उत्तर गो गृह – 153
उत्तराधिकारी – 119
उदयपुर – 90, 129, 134, 158, 186
उदयमाणिक्य – 92, 186
उदयाचल – 169
उद्वाह तत्व – 23
उमपीठ – 124
उमा – 139
उमा का ध्यान – 139
उमेश चन्द्र बटवयाल – 178

(उ)
उनकोटि तीर्थ – 97, 98

(ऋ)
ऋक संहिता – 201
ऋग्वेद – 2
ऋक्ष – 163

(ए)
एक डाला दुर्ग – 180
एकादशी व्रत – 60
एडु मिश्र – 180
एरियान – 86

(ओ)
ओझाई – 117
ओयाइज(वाइज) साहब – 178

(क)
कंस नारायण – 68
काक्स बाजार – 86
कठोपनिषद – 2
कतर फा – 40, 276
कनीयान – 164

प्रल—299
कनौज — 105, 106, 108
कन्दर्प नारायण — 68
कन्दर्प का ध्यान — 143
कपि ध्वज — 149, 152
कपिल नदी — 6, 36, 184, 204
कपिलाश्रम — 138
कबन्ध — 58, 231
कमलपुर — 108
कमल राय — 53, 276
कमलांक — 87, 175
कम्बोज — 85, 200, 201, 202
कम्बोडिया — 202
करचा — 82
करताल — 31
करांति — 85
करिमगंज — 186
कर्ण सोना — 194
कर्णाल — 31
(कलकत्ता) कलिकाता — 95
कलिंग— 164, 169
कलिन्द — 164
कलियुग— 44
कल्याणपुर — 186
कल्याणमाणिक्य — 27, 147, 190
कल्याण सागर — 127
कशेरूमान — 84
काइचरंग — 62, 186, 240
काइफेंग — 32, 174, 187, 242
काकचाँद — 185, 208
काकचाँद का तालाब — 211
काँचली — 114, 116, 117
काछाड़ — 83, 86, 132, 133, 185, 186
काताल — 185, 208
काताल का तालाब — 105, 211
कानिहाटी — 186
कान्यकुब्ज — 105
कप्तान लेयार्ड — 194
काबतै — 66
काबुल नदी — 201
कामदेव — 30, 132
कामरुप — 29,99,148
कामाख्या — 47, 185, 242
कामाख्या तंत्र — 29, 136
कामान दागने का ज्ञान — 105
(कामान दागार ज्ञान)
कायस्थ कौस्तव — 111
कारूष — 169
कार्तिकेय — 132, 139
कार्तिकेय ध्यान — 141
कार्पास(कपास) — 173
कार्मूक — 164
कालातर फा — 40, 276
कालिका पुराण — 21, 122, 148
कालिदास — 201, 202, 212
कालिया जुरी — 194
काली कच्छ — 194
काशी — 7, 247
काश्मीर — 76
किरण सुवर्ण — 194
किरात — 19, 22, 28, 34, 64, 84, 85, 89
98, 148, 169, 170, 171, 202, 213
किरात आलय — 5, 7, 8, 17, 42,
83, 88, 96, 187
किरात जाति का विवरण — 213
किरात देश — 83, 85, 86, 87, 88, 94,
168, 170, 211, 246

किरात नगर – 6, 83, 98
किरादिया – 86
किरीट – 99, 195, 207, 208
किलहरण(डाक्टर) – 178
किष्किन्ध्या – 166, 167
कीर्ति – 163, 195
कीर्तिधर – 172, 175, 195, 196
कुकी – 29, 63, 69, 85, 98, 103, 116, 183
कुकी सैन्य – 50
कुंज होम फा – 115
कुन्द फा – 53, 276
कुब्जिका तंत्र – 124
कुमार – 30, 96, 97, 185, 205, 207
कुमार(राजा) – 42, 276
कुमिल्ला – 79, 80, 128
कुआइ तुइया – 217
कुरू – 164
कुरूविन्द – 168, 169
कुरूक्षेत्र – 7, 247
कुल देवता – 95, 129, 135, 139, 145, 148
कुलार्णव – 111
कुशियारा नदी(क्रोशिरा) – 100, 101, 108
कृत्तिवास – 82
कृत्तिबासी रामायण – 82
कृष्ण – 58, 59
कृष्णदास – 53, 276
कृष्ण नाथ शर्मा – 80
कृष्णमाणिक्य – 136, 158
कृष्ण माला – 151
केदार राय – 68
केर पूजा – 143, 144, 145, 158
केशव सेन – 179, 181
कैलार गड – 185
कैलाशहर – 67, 97, 98, 105, 106, 110, 159, 185, 186, 205, 207
कैलास चन्द्र सिंह – 81, 89, 115, 131, 132, 133, 159, 165, 166, 167, 168, 177, 178, 181, 190, 191, 196, 200
कैलास बाबू की राजमाला – 55, 61, 115, 131, 132, 165, 190, 200
कोच – 6, 20, 21, 249
कोचिन – 202
कोट उब आर्मस(Coat Of arms) – 150, 155, 156
कोशल – 10
कौतुक – 79, 90
कमिंग साहब – 81, 196
क्रम – 164

(ख)

खड्ग – 37
खण्डल – 232
खलंमा – 36, 37, 48, 98, 173, 184, 185, 204, 205, 206, 207, 250
खाडंग फा – 53, 277
खाण्डव घोष – 194
खार्ची पूजा – 28, 138, 143, 158
खा हाम – 40, 277
खिचोंग फा – 59, 93, 115, 277
खिचोंग मा – 59, 93, 115, 277
खुटी मुडा – 62, 187, 251
खुम्पई – 115
खुलंग – 32, 174, 187, 252

(ग)

गगन – 49, 207, 277
गंगा – 132, 139, 150, 152, 200
गंगा नदी – 7, 30, 86
गंगा पूजा – 158

प्रल—301
गंगा का ध्यान — 142
गंगा राय — 46, 277
गज कच्छप — 36
गज कच्छपी युद्ध — 185, 225
गज दंत — 192
गज भीम — 78
गजानन — 30
गजेश्वर — 40, 199, 277
गड मण्डल — 181
गणेश — 132, 139
गणेश राय — 68
गणेश का ध्यान — 141
गदाधर ठाकुर — 158
गन्धर्व — 84
गबय — 24, 28, 57, 66
गवर्नमेन्ट रिपोर्ट — 104, 107
गभस्तिमान — 84
गया — 178
गराई पूजा — 117
गावल — 22, 31, 151, 153, 154, 158, 159
गातिघर — 59, 192
गांधार — 163
गारो — 85
गालिम — 27, 145
ग्राम मुद्रा — 33, 96, 144
गियासउद्दीन — 181
गिरीश चन्द्र दास — 102
गुप्तार्चन चन्द्रिका — 139
गेट साहब — 102
गोपथ ब्राह्मण — 122
गोपला नदी — 108
गोविन्द — 99, 101, 103
गोविन्द चन्द्र का गान — 75
गोविन्द पाल देव — 178
गोविन्दमाणिक्य — 147, 148
गोरिया — 201
गौड — 54, 56, 57, 63, 65, 171, 179, 188, 189
गौड वाहिनी — 172, 173, 176, 186, 189
गौड राजमाला — 178
गौड का ब्राह्मण — 112
गौडेश्वर — 63, 64, 65, 67, 112, 146, 160, 175, 176, 177, 181, 188
गौड के साथ समर — 172, 173, 176, 181, 195
गौरी गुरू पर्वत — 201, 202
—
(घ)
घालिम — 138, 218
घोंघ — 23, 31
(च)
चट्टग्राम — 85, 86, 90, 97, 125, 126
चट्टल — 125, 146, 188
चट्टेश्वरी — 125, 126
चण्डिदास — 82
चण्डीमुडा — 190
चतुर्दश देवता — 3, 15, 16, 26, 28, 41, 44, 53, 58, 76, 77, 95, 96, 129, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 158, 172
चतुर्दोल — 64
चंताई — 3, 8, 16, 27, 29, 30, 31, 44, 76, 77, 136, 138,139, 143, 144, 145, 146
चन्दोरी राज्य — 149
चन्द्र — 139, 163, 199
चन्द्रधर — 96
चन्द्र ध्वज — 15, 22

प्रल–302
चन्द्र फा – 40, 227
चन्द्रवंश – 5, 14, 149, 151, 153, 154, 158
चन्द्र बाण(चन्द्र ध्वज) – 149, 150, 151, 153, 155, 158, 182
चन्द्र शेखर – 195
चन्द्र सिंह त्रिपुरा – 108
चन्द्रोदय विद्याविनोद – 106, 107, 109, 197
चम्पक विजय – 90
चम्पक राय – 90
चयचाग(राय) – 155
चरातर – 42, 278
चाकमा – 32, 174, 187, 253
चाँद गाजी – 68
चाँद राय – 68
चम्पा – 54, 278
चित्रवीर्य – 164
चित्ररथ – 162, 164
चित्र शिल्प – 118
चित्र सेन – 164
चित्रायुध – 164
चीन – 84, 202
चीन समुद्र – 85
चुयातांई – 136
चैतन्य चरितामृत – 82
चैतन्य भागवत – 82
चैतन्य मंगल – 82
चोपदार – 161
चौगाम खेला – 69
चौयाल्लिश – 108

(छ)

छडि बरदार – 64
छत्रतुइया – 150, 151, 152, 154, 218
छय चिरि – 108
छाक्रु राय – 46, 278
छागल – 23, 28, 57
छाम्बुल नगर – 42, 43, 96, 97, 98, 205, 253
छायेर नदी – 66
छिलटिया – 217
छें थुम फा – 54, 55, 115, 171, 172, 173, 175, 177, 188, 195, 278
छेंका छाग – 54, 105, 110, 195, 278
छेंग फलाई – 53, 279
–

(ज)

जन्म भूमि(मासिक) – 134
जन्मेजय – 163
जब्बलपुर – 165, 166, 167, 169
जयत् सेन – 163
जय नारायण घोष – 90
जय नारायण सेन – 194
जयंत चंताई – 136
जयंता – 47, 85, 92, 160, 169, 185, 255
जलोत्सव – 33, 96
जांगे फा – 53, 279
जाज नगर – 177, 192
जाजपुर – 177
जामिउत्तारिख – 160
जामिर खाँ गड – 66
जान्हवी देवी – 117
जिरा – 57
जीणोद्धार – 133
जुम क्षेत्र – 100
जुरी नदी – 207
जुलाई – 218
जेम्स लां साहब – 189, 190

(झ)
झड – 100
झाँसी – 181
झापटार मोहना – 87
(ट)
टमास साहब – 178
टलुआ – 127
टलेमी – 85, 86, 201, 202
टेंगरी कुकी – 100, 101
(ठ)
ठाकुर बाड़ी – 79
(ड)
डगर – 172
डंका – 182
डांगर फा – 60, 66, 93, 186, 188, 190, 191, 279
डांगर मा – 60, 93, 279
डिओ डोरास – 86
डुगुंर फा – 53, 99, 103, 195, 279
(ढ)
ढाका दक्षिण – 79
ढाका का इतिहास – 86
ढोल – 35, 172, 175
(त)
तंसु – 163
तनाउ – 32, 174, 187
तंत्र चूडामणि – 124
तंत्रसार – 55
तप्त कुंड – 85
तबकात् –इ –नासेरी – 178
तर दाक्षिण – 39, 98, 195, 205, 280
तर जूंग – 39, 280
तर फनाई – 40, 280
तरबंग – 39, 280
तरराज – 39, 280
तर लक्ष्मी – 39, 281
तरहाम – 40, 281
तलाबायेक – 194
तक्ष शिल्प – 118
ताँत – 116
ताभु राज – 40, 281
ताम्बुल पत्र – 150, 155, 156
ताम्र फलक – 147, 179, 181
ताम्र वर्ण – 84
ताम्र लिप्त – 169
ताम्र शासन – 98, 100, 101, 102, 103,104, 105, 106, 108, 109, 195, 197, 207, 208
तारक स्थान – 62, 187
तिवर – 165, 166, 167
तिष्णा – 194
त्रिनेत्र – 93
त्रिपुर – 6, 8, 10, 11, 13, 19, 27, 70, 89, 90, 93, 98, 109, 117, 129, 130, 134, 159, 162, 164, 165, 173, 174, 194, 197, 198, 199, 281
त्रिपुर नगरी – 48
त्रिपुर वंश – 162, 163
त्रिपुर वंशावली – 82, 92, 126, 129, 143, 155, 173, 177, 178, 182
त्रिपुर भाषा – 77, 83
त्रिपुर सैन्य – 57
त्रिपुर क्षत्रिय – 90
त्रिपुरा – 9, 10, 29, 52, 59, 63, 64, 77, 78, 82, 83, 85, 86, 87, 89, 99, 101

112, 113, 116, 117, 118, 129, 131, 133, 146, 150, 154, 160, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 175, 176, 177, 181, 182, 184, 185, 186, 188, 189, 192, 201, 202, 215, 256
त्रिपुराब्द – 105, 109, 110, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 202, 203, 207, 208
त्रिपुरा मैथिल ब्राह्मण – 78, 90
त्रिपुरा सुन्दरी(विग्रह) – 9, 95, 124, 136
त्रिपुरा सुन्दरी(रानी) – 177, 181, 182, 188, 195
त्रिपुरासुन्दरी का मंदिर – 124
त्रिपुरी – 165
त्रिपुरेश शिव – 9
त्रिवेग – 6, 98, 132, 134, 170, 184, 204 207, 256
त्रिलोचन – 3, 9, 15, 16, 17, 19, 21, 22, 23, 24, 26, 27, 31, 32, 33, 34, 35, 70, 76, 90, 91, 92, 93, 94, 97, 98, 99, 109, 113, 115, 131, 132, 134, 135, 149, 151, 154, 157, 161, 162, 164, 165, 170, 174, 184, 187, 194, 195, 197, 198, 204, 282
त्रिशूल ध्वज – 15, 18, 22, 149, 150, 151, 153, 155, 158, 182
तुग्रल तुगन खाँ – 159, 177, 180, 192, 199
तुरस्क – 180
तुर्बसु – 5, 281
तुलसीदास की रामायण – 58
तुलसीवती महादेवी – 118
तुष का गड – 51
तैछराव – 44, 281
तैछुंग फा – 45, 281
तैतानव – 66,
तैदाक्षिण – 38, 91, 205, 280
तैयंग – 32, 174, 187
तैरंग नदी– 6
तैलाइंग – 66, 67, 187, 256??
तैलाइरुंग – 62
त्रैपुर – 166

(थ)

थानांचि – 32, 62, 66, 155, 174, 187, 190, 191, 256

(द)

दगरी – 23, 35
दत्त वंश माला – 112
दनौज माधव – 181
दक्ष – 8, 122, 123, 282
दक्ष यज्ञ – 122, 123
दक्षिण समुद्र – 167
दाउद शाह – 146
दान कुरू फा – 99, 100, 105, 207
दाय भाग – 119
दाक्षायणी – 122
दाक्षिण – 34, 35, 36, 38, 132, 170, 171, 172, 184, 187, 195, 204, 205, 282
दक्षिणात्य – 86, 167, 169
दिग्विजय – 161, 166, 167, 173, 174, 200
दिल्लीश्वर – 160, 176, 177, 181
दिनेश चन्द्र सेन – 90
दुन्दुभि – 31
दुरदुरिया – 180
दुराशा – 42, 283
दुर्गा – 18, 26, 29, 30, 31, 48, 95, 132, 203

प्रल–305
दुर्गावती – 181
दुर्गा मंगल – 111
दुर्गोत्सव – 33, 96, 158
दुर्भिक्ष – 131, 185, 209
दुर्म्मद – 163
दुर्योधन – 33, 154, 169, 282
दुर्लभेन्द्र – 3, 26, 49, 76, 77,
82, 129, 146, 283
दुष्मंत – 163
दृक पति – 132, 133
देउड़ाई – 16, 26, 27, 28, 29, 136, 137, 138
देबडी – 136
देवता का दर्शन लाभ – 234
देवयानी – 5, 283
देवराज – 42, 43, 203, 284
देवराय – 53, 136, 284
देवल – 136
देवांग – 39, 284
देवा तिथि – 163
देवी पुराण – 122
देवी भागवत् – 124
दैत्य – 6, 83, 88, 89, 112,
129, 130, 164, 284
दैत्य सिंह या दो सिंह – 217
दैव वाणी – 100, 131
दोलोत्सव – 33, 96
द्वापर – 11, 164, 165, 198
द्वार बंगाधीप – 95, 96
द्वारिका – 7, 257
द्विज बंग चन्द्र – 82, 143
द्रुहय– 5, 6, 34, 83, 150, 154, 162,
163, 170, 198, 200, 284
द्रोण – 168, 169

(ध)

धन माणिक – 160
धन राज फा – 40, 285
धनुर्बाण – 173
धन्यमाणिक्य – 124, 125, 147, 155,
धर्म – 163
धर्मतर – 39, 112, 285
धर्मधर – 98, 105, 106, 110, 195
धर्म नगर – 62, 185, 186, 187, 206, 207, 257
धर्मपाल – 39, 109, 110, 285
धर्ममत – 95,
धर्ममाणिक्य – 8, 158, 285
धर्ममाणिक्य का ताम्र शासन – 81
धर्म सागर – 79, 81
धर्मांगद – 39, 286
धर्माचरण – 95
धामाई जाति – 49
धृत – 163
धृतराष्ट्र – 33, 169, 286
धोपापाथर – 62, 187, 258

(न)

नवराय – 49, 207, 286
नकुल – 165, 166
नगेन्द्र नाथ बसु – 97, 178
नदीया – 179
नबदण्ड – 22, 31
नव रत्न – 55
नौ सेना – 68, 69
नव्य भारत(मासिक) – 134
नर बलि – 41, 128, 146, 148

प्रल—306
नर सिंह — 130
नरांगित — 39, 286
नरेन्द्र — 45, 286
नरेन्द्रमाणिक्य — 90
नल — 154
नहुष — 163
नावडाई — 49, 183
नाकी बाड़ी — 62, 187
नागड़ा छडा — 186
नाग द्वीप — 84
नागपति — 40, 199, 286
नागपुर — 86
नागराई पूजा — 144, 145
नागा — 28, 85
नागेश्वर — 39, 286
नारद पंच रात्र — 122
नारायण — 1, 58, 69
नारी निग्रह — 47, 48
अपने प्रति देवत्व आरोप — 220
निधिपति — 105, 106, 107, 108, 109, 110
नील ध्वज — 90, 195
नेपाल — 85
नैमिषारण्य — 7, 259
नोयाखाली — 77, 78
नौगयोग — 39, 286
(प)
पंच कषा — 24
पंचखण्ड — 101, 103, 104, 108
पंच ग्रास — 61
पंच श्री — 156
पांचाल — 201
पण्डित राज — 194
पत्र कौमुदी — 156
पदाति — 58
पद्म पुराण — 51
पद्मावती — 33, 96
पराची — 163
पराबसु — 163
परासर संहिता — 68
परीक्षित — 164
परेश नाथ बन्दोपाध्याय — 200, 202
पर्त्तुगीज — 201
पॉलिटिकल ऐजेन्ट — 198
पाँचा खेला — 37
पांजा(हस्त चिन्ह) — 150, 155, 156
पठान — 146, 178
पाण्डु — 164
पारणा — 60
पारसीक — 201
पारिवारिक कथा — 88
पारिषद — 163
पार्वती — 43
पितृ धन विभाग — 34
पिशाच — 169
पीठ देवी — 121 , 128
पीठ प्रतिष्ठा — 122, 124
पीठ माला तंत्र — 8, 9, 124
पीठ स्थान — 8, 123, 126, 128
पुत्रेष्टि यज्ञ — 111
पुरू — 5, 163, 286
पुरू वंश — 162
पुरुषोत्तम क्षेत्र — 99 101, 103, 137
पुरू सेन — 163

प्रल—307
पुरूरवा — 163
पूर्व बंग — 181
पूर्वभाष — 89
पृथ्वी का ध्यान — 142
पृथ्वी — 30, 132, 139
पृथ्वी नारायण — 215
पेरिप्लुस — 86
पौरव — 165, 166, 167, 259
प्रचेता — 163
प्रतदर्दन — 154, 164
प्रताप — 69
प्रतापादित्य — 68
प्रताप गड — 186
प्रतापमाणिक्य — 69, 184, 188, 196, 287
प्रताप राय — 54
प्रताप सिंह — 32, 174, 187, 259
प्रतिज्ञा निबन्ध — 46, 47
प्रतिम्वान — 163
प्रतिप — 164
प्रतिश्रवा — 164
प्रतिष्ठ — 164
प्रतीत — 46, 47, 48, 185, 203, 204, 205, 206, 207, 287
प्रत्यादेश — 146
प्रबन्ध चिंतामणी — 76
प्रव्रज्या — 112
प्रमथ — 164
प्रयाग — 7, 260
प्रस्तावना — 3
प्रागज्योतिष — 9, 84, 168, 169, 261
प्राचीन राजमाला — 151, 155, 163, 204
प्रेम विलास — 82

(फ)
फजल गाजी — 68
फटिक उली — 186
"फा" उपाधि — 90, 91
फादर उपाधि — 91
फिरोज तुगलक — 67, 160
फेनी नदी — 53
"फ्रा" उपाधि — 91
फर्गुसन साहब — 194

(ब)
बख्तियार खिलजी — 178, 179
बंग उपनिवेश — 67
बंग दर्शन(मासिक) — 157
बंग देश — 6, 52, 55, 82, 87, 88, 89, 112, 175, 179, 186, 187, 200, 203, 206, 207, 208, 262
बंग विजय — 178, 179, 181, 200, 203, 204, 208
बंग भाषा — 75
बंग भाषा और साहित्य विषयक प्रस्ताव — 75
बंग(महाराज) — 46, 288
बंग साहित्य — 75, 79
बंग जातीय इतिहास — 99, 102, 104, 111
बंगोपसागर(बंगाल की खाडी) — 86, 138
बनमाली सिद्धांत — 13
बन्दी — 79
बभ्रु — 163
बरमचाल — 128
बराक नदी(बरबक्र) — 62, 86, 98, 99, 100, 108, 184, 185, 186, 187, 204, 205

प्रल–308
बराक तीर – 187
बराह मिहिर – 86, 134
बरेन्द्र – 169
बरेन्द्र भूमि – 180
बर्बर – 10, 262
बलवन – 181
बलभद्र सिंह – 99
बलिदान – 29, 31, 32, 95, 96, 128, 148, 158
बल्लाल सेन – 180
बसुमान – 163
बस्त्र शिल्प – 59, 113
बहु विवाह – 60, 92, 103, 114
बागडी – 180
वाग्देवी – 132
बंगाली – 89
बंगाली उपनिवेश – 193
वाचस्पति मिश्र – 104, 111
बाछाल – 155, 217
वाजपेय यज्ञ – 111
वानप्रस्थ – 42, 112, 130
वाणा – 151, 156
बाणेश्वर – 3, 54, 70, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 288
बाणेश्वर छेंगा – 80
बातिसा – 194
बाणार नदी – 180
बानिया चंग – 79
बामन पुराण – 84, 87
वायु पुराण – 86
बारह घर त्रिपुर – 25, 89, 90
बारह घरिया – 90
बारह बंगला – 68
बारह भूइयाँ – 68
वारण्यकाय निर्णय – 4
वाराणासी – 79, 90
बाराही संहिता – 134
वारिवर्ह – 164
बारूण – 84
बारेन्द्र कुल पंजिका – 111
बालि शिरा – 108
बाँशी – 23
विकर्ण – 163
विकुंठ – 164
विक्रमपुर – 180
विजय कुमार सेन – 149
विजयमाणिक्य – 129, 146, 160, 200
विजय सागर – 129
विदुरथ – 164
विद्यापति – 82
विद्वान – 45
विनाई गड पूजा – 117
विन्ध्य शैल – 86
विवर्ण – 163
विवाह वेदी – 92, 93
विमार – 42, 96, 97, 205, 288
विराज – 42, 199, 288
विशालगड – 52, 62, 175, 186, 187, 208, 262
विश्व कोष – 89, 99, 127, 129, 135, 159, 190, 191, 203
विश्वरूप सेन – 179, 180
विश्वास उपाधि – 194
विषु संक्रमण – 224
विष्णु – 29, 31, 48, 96, 145
विष्णु प्रसाद – 54, 288

प्रल–309
विष्णु पुराण – 84, 164
विष्णु संक्रमण – 33, 96
विहार – 179
बीर बाहु – – 54, 289
वीर भद्र – 123
वीरराज – 39, 40, 112, 132, 174, 197, 198, 199, 200, 289
बीरांगना – 56
बुकानन साहब – 178
बुध – 163
ब्रिटिश म्यूजियम – 117
वृन्दावन चन्द्र विग्रह – 148
वृन्दावन शर्मा – 81
वृष पर्वा – 5, 83, 289
वृहत संहिता – 86, 87
बृहद् धर्म पुराण – 122, 123
बृहद्वल – 169
बृहन्नला – 153
बृहस्पति – 94
बंगाल गवर्नमेण्ट – 180
वैश्या – 64, 65
वैदिक संवादिनी – 99, 101, 102, 108, 111
वैश्य – 84
वैष्णव – 95, 96
वैष्णव पदावली – 100
ब्रह्मत्र – 103, 112
ब्रह्मदेश – 84
ब्रह्मदेशी – 91
ब्रह्मपुराण – 84, 87
ब्रह्मपुत्र – 169, 170, 184, 204
ब्रह्मा – 30, 132, 139
ब्रह्माण्ड पुराण – 84, 87, 202
ब्रह्मा का ध्यान – 141
ब्राह्मण – 84
ब्लॉक मैन – 178

(भ)

भक्ति रत्नाकर – 82
भगदत्त – 84, 168, 169
भट्ट ब्राह्मण – 79
भरत – 163
भस्माचल – 4
भाट – 78
भानुगाछ – 99, 103, 108
भानु मित्र – 164
भारत वर्ष – 84, 86, 87, 165, 167
भारत वर्ष(मासिक) – 149
भीम सेन – 33, 161, 162, 164, 165, 166, 289
भीषण – 164
भीष्म – 154
भुवन मोहन विग्रह – 148
भुवनेश्वरी विग्रह – 147
भुलुआ – 160
भूटान – 85
भूत बलि – 44, 45
भूमन्यु – 163
भूमिकम्प – 100
भेवर – 31
भेकमणि – 159
भेरी – 35, 171, 172
भैरव – 124, 128, 129
भोमराई – 145

(म)

मगध – 79, 98, 105, 126, 169, 178
मघ – 85, 201

प्रल–310
मंगलपुर – 99, 103, 104, 110
मज:फरपुर – 105
मणिकर्णिका – 7
मणिपुर – 62, 85, 86, 91, 169, 187, 263
मणिपुरी – 116
मंडल – 32, 232
मत्स्य पुराण – 45, 84, 87
मतिनार – 163
मथुरा – 5, 7, 63
मदन – 14, 139
मदन पाड – 179
मद्य पान – 23, 37, 183, 204
मधुग्राम – 62, 187, 264
मधुसेन – 180, 181
मनु – 43, 87, 88, 116, 117, 119, 289
मनुकुल – 108
मनु नदी – 43, 96, 97, 185, 207
मयुर पुच्छ – 158
मलय चन्द्र – 42, 289
मल्ल विद्या – 26, 37, 94, 95, 173
मल्लिनाथ – 201
महंत त्रिपुरा – 49
महम्मद खाँ – 146
महम्मद घोरी – 178
महादेव – 43
महा निर्वाण तंत्र – 2
महापीठ – 8, 124, 126,
महाप्रभु – 79
महाप्रसाद – 137
महाभागवत् पुराण – 122
महाभारत – 9, 84, 85, 86, 122, 149, 154, 158, 164, 165, 166, 168, 169, 170, 198, 201, 211
महाभौम – 163
महामाणिक्य – 3, 70, 76, 196, 289
महामारी – 131
महामुद्रा – 143, 144
महिम चन्द्र ठाकुर – 113, 118
महिष – 24, 28, 57
महीशुर – 76
महेश्वर – 130
"मा" उपाधि – 91
माइचोंग फा – 40, 195, 289
माइ लक्ष्मी – 39, 290
मागधी – 79
माधव सेन – 179
माणिक – 160
मानिक चाँद के गीत – 75
माणिक भण्डार – 67, 159, 186
माणिक्य – 159, 160, 192
माणिक्य ख्याति – 66, 67, 91
माया – 7, 264
मार्कण्डेय पुराण – 84, 174
मालछि – 49, 290
माहि मारितिब – 152
माहिष्मती – 165, 166, 167
मित्रारि – 164
मिथिला – 77, 78, 99, 101, 104, 105, 108, 180
मिनहाज–इ–सिराज – 178
मिरिछिम – 207
मीन मानव(माई मुरत) 149, 152, 153, 155, 156, 158
मुकुट – 69
मुकुटमाणिक्य – 69, 70, 95, 188, 196, 290

मुकुन्द फा – 153
मुकुन्द राम राय – 68
मुगीशउद्दीन युजबक – 179
मुचंग फा – 53, 290
मुद्रा – 121, 160, 192, 196
मुर्शिदाबाद – 194
मुसलमान कवि – 106
मुहूरी नदी – 53, 62, 187
मृगया – 130
मृत्तिका – 121
मृदंग – 31
मेंगदि – 188
मेकमिन साहब – 117
मेकल – 169
मेखल(मेखिली) – 6, 10, 33, 38, 169, 204, 234
मेघ – 54, 290
मेघना – 87, 188
मेघवर्ण – 163
मेजर स्टुयार्ट – 177
मेजर रेवार्टी – 178
मेबार – 149
मेरूतुंग – 76
मेहेरकुल – 56, 59, 175, 188, 265
म्लेच्छ – 20, 266
मैछिली – 45
मैछिली राज – 44, 45, 290
मैथिली ब्राह्मण – 78, 102, 104 , 107
मुघल – 152, 188
मोचंग – 40, 291

मोमारक खाँ – 146
मोहन – 115
192
मोहांत – 127, 136

(य)

यज्ञ – 77, 78, 98, 99, 101, 102, 103, 106, 108
यज्ञ कुंड – 99, 102, 103, 104, 106, 108, 110, 112
यतीन्द्र मोहन राय – 86, 179
यदु – 5, 291
यदुवंश ध्वंस – 38, 228
यवन – 84, 180, 266

यवन राज्य – 5
ययाति – 5, 83, 150, 163, 291
यशपुर – 69, 266
यश फा – 53, 291
यश माणिक – 166
यश राज – 45, 291
युझार पाट – 52
युझारु फा – 49, 89, 151, 174, 186, 187, 195, 207, 208, 291
युद्धास्त्र – 173
युधिष्ठिर – 33, 109, 134, 158, 161, 162, 164, 194, 198, 292
योगिनी तंत्र – 21, 29
योगिनी मालिका – 4
योगेश्वर – 39, 292

(र)

रंखाई – 40, 292
रघुनंदन भट्टाचार्य – 104
रघुवंश – 25, 168, 201, 202, 212
रत्नपुर – 69,146,266
रत्न फा – 61, 63, 66, 67, 159, 160, 182, 188,189, 190, 191, 192, 296,

रत्नमाणिक्य – 66, 67, 69, 90, 91, 159, 160, 186 190, 191, 192, 193, 194, 196
रबीन्द्र नाथ ठाकुर – 157
रयां(रियां) – 32, 174, 187, 266
रसांग – 125
रसांग मर्दन नारायण – 125
रांगामाटी – 32, 49, 50, 51, 52, 57, 66, 69, 134, 151, 174, 175, 176, 186, 189, 194, 207, 267
रांगामुडा – 190
राखालदास बन्दोपाध्याय – 179
राजकर – 193
राज चिन्ह – 121, 149, 151
राजतरगिंनी – 76, 134
राजनगर – 62, 186, 268
राजपूत – 149, 153
राज भक्ति – 117
राजमाला – 76, 77, 79, 81, 82, 83, 87, 88, 89, 91, 92, 93, 96, 97, 98, 112, 113, 125, 127, 130, 131, 132, 133, 136, 145, 146, 153, 157, 159, 160, 161, 165, 170, 171, 173, 174, 176, 183, 184, 190, 192, 195, 198, 199, 203, 204, 205, 213
राजमालिका – 4, 70, 131
राजरत्नाकर – 92, 130, 132, 154, 159, 162, 164
राज राजेश्वरी तन्त्र – 86
राज लांछन(प्रतीक) – 149, 150, 155
राजसूय यज्ञ – 109, 134, 158, 161, 162, 164, 169, 170, 198, 211
राज सूर्य – 115, 196
राज हत्या – 70
राजा फा – 62, 91, 190, 196, 292
राजा निर्वाचन पद्धति – 119
राजावली – 75, 76, 82, 90, 136
राजाबली कथे – 76
राजा बाबू – 206, 258
राजा की युद्ध यात्रा – 173
राजेन्द्र लाल मित्र – 178
राजेश्वर – 44, 293
राज्य विभाग – 62
राज्यभिषेक – 120, 157
राज्यभिषेक पद्धति – 157
राढ़ – 180, 194
राधाकिशोरमाणिक्य – 95, 118
राम – 58, 69, 86
रामकांत शर्मा – 80
रामकोट(रामटेक) – 86
रामगति न्याय रत्न – 75
रामगिरि – 86
रामचन्द्र ठाकुर – 68
रामजय की कुल पंजिका – 180
रामाई पंडित – 75
रामायण – 58, 122
रामु – 86
राम क्षेत्र – 86
रिवारिज साहब – 178
रिया जुस सलातिन – 160
रूक्ष्मांगद – 39, 293
रूपवंत – 40, 293
रंगून – 86
रेवरेंड लांग साहब – 76, 138
रेसेम – 23

प्रल–313
(ल)
लंगला – 98, 108
लंगलाई कुकी – 108
लंगाई – 32, 174, 183, 187, 268
लगुई नदी – 202
लबंग ठाकुर – 158
लार्ड कर्जन – 118
लार्ड विशप – 136
ललित राय – 53, 293
लक्षणमालिका – 4
लक्ष्या नदी – 180
लक्ष्मणमाणिक्य – 68, 158
लक्ष्मण राय – 160
लक्ष्मण सेन – 178, 179, 180, 181
लक्ष्मणावती – 177, 191, 194
लक्ष्मी – 30, 132, 145
लक्ष्मी चरित्र – 51
लक्ष्मीतर – 39, 293
लक्ष्मीनारायण विग्रह – 148
लक्ष्मीपति हाकर – 53
लक्ष्मीबाई – 181
लक्ष्मी का ध्यान – 140
लाउगंगा – 62, 187
लांगरोंग –37
लाम्प्रा पूजा – 117
लिक साहब – 117
लिका – 32, 49, 50, 51, 52, 174, 175, 187, 269, 293

लिका अभियान – 171, 182
लिका छड़ा(सोता) – 50
लुंठन – 131
लेंजा – 37
लेडी डफारिन – 117
लेथ ब्रिज – 153, 198, 199
लेओस देश – 202
लौहित्य – 85, 169
लौहित्य सागर – 78
–
(श)
शंकर – 70, 123
शक्ति – 95, 96
शक्ति संगम तंत्र – 85, 86
शत्रुजित् – 164
शंभु चन्द्र मुखोपाध्याय – 117
शंभुनाथ – 97
शर्मिष्ठा – 5, 83, 293
शाक्त – 95, 96
शांतनु – 154, 164
शांति स्वस्त्यन कल्पद्रुम – 45
शालि वाहन – 134
शासन तंत्र – 193, 194
शिंगा – 31
शिव –11, 26, 29, 30, 31, 44, 48, 95, 96, 100, 123, 132, 137, 139, 149, 203, 205
शिव चतुर्दश मेला – 129
शिव चरित – 124

शिव पुराण – 122
शिव राय – 53, 203, 294
शिव का ध्यान – 139
शिला लिपि – 160

शिल्प – 113, 114, 116
शिल्प विषयक उपाख्यान – 115
शिशुराम दे – 81
शिशु सिंह – 90
शिक्षराज – 40, 112, 294
शिक्षानुराग – 93

प्रल–314
शुक्र – 5, 94, 294
शुक्रनीति – 174
शुक्रेश्वर – 3, 70, 76, 77, 78, 79, 81, 82, 294
शूद्र – 84
शुन्य पुराण – 75
शूलपाणि – 131, 150

शैव – 95, 96

श्यान – 91
श्याम देश – 202
श्याम प्रसाद(मुंशी) – 178
श्यामल नगर – 97
श्याम सुन्दर भट्टाचार्य – 102
शयामोपसागर – 202
श्री धर्ममाणिक्य – 3, 8, 26, 49, 70, 76, 77, 79, 81, 82, 89, 90, 95, 138
श्रीनंद – 99, 101, 103
श्रीपति – 99, 101, 103
श्रीमंत – 39, 294
श्रीमद्भागवत् – 5, 12
श्रीमर्दभागवत् गीता – 1
श्री श्रीयुत का कैलाशहर भ्रमण – 106, 109
श्रीराज – 39, 112
श्रीहट्ट – 29, 77, 78, 79, 83, 86, 99, 100, 101, 104, 105, 109, 181, 182, 207
श्रीहट्ट इतिवृत्त– 77,86,89,100,103,181,207,296
श्री हर्ष – 154
श्री क्षेत्र – 137
श्रेणीमाला – 195
श्वेत चामर – 154, 158
श्वेत छत्र – 22, 149, 151, 153, 154, 158

(ष)
स्टुआर्ट साहब – 178, 192

(स)
संयम – 60
संयाति – 163
संस्कृत राजमाला – 41, 42, 43, 55, 60, 61, 97,132, 151, 159, 160, 172, 176, 191, 195, 198, 199, 200
सगर द्वीप – 138, 200
संगीत चर्चा – 94
सती – 8, – 9
सत्य युग – 43
सप्त द्वीप – 5, 219
सबर जाति – 137
समसेर गंज – 108
समसेर गाजी – 158
समार – 66, 190
समुद्र – 87, 88, 132, 139, 168
समुद्र का ध्यान – 142
सम्राट – 54, 295
संबन्ध निर्णय ग्रंथ – 179
सबंरण – 164
सयेर–उल–मुताक्षरिण – 152
सरस्वती – 139
सरस्वती ध्यान – 140

सराइल – 194
सहदेव – 9, 161, 165, 166, 167, 168, 295
सागर फा – 42, 95
सागर संवृत द्वीप – 84
साहजहाँ – 191
सात गाँव – 10

प्रल–315
साधुराय – 53, 295
सामंत – 175
सामवेद – 30
सामरिक बल – 170
सामसउद्दीन – 180
साम्प्रदायिक ब्राह्मण – 98, 101, 102, 108
सारंगी – 23
सार्वभौम – 163
साहित्य सम्मिलनी – 157
सिउक – 217
सिंहतुगं फा – 175, 195
सिंहासन – 96, 117, 119, 149, 150, 157, 158, 188, 189,195
सिद्ध पीठ – 124
सिद्धांत बागीश – 127
सिन्धु – 7
सिन्धु नदी – 201, 202
सीता कुंड – 97
सुकुमार – 43, 295
सुख सागर – 126
सुजित – 163
सुदर्शन चक्र – 123
सुदाक्षिण – 39, 205, 295
सुधर्म – 39, 109, 110, 112, 295
सुन्दरवन – 138
सुबडाई – 15, 97, 113, 114, 115, 295
सुबड़ाई खुंग – 43
सुमंत – 40, 295
सुमांग – 39, 296
सुराष्ट्र – 165, 166, 167

सुल्तान साम्सउद्दीन – 67, 160, 192
सुसंग – 169
सुहोत्र – 164
सुक्ष्म देश – 86 168
सूत – 79
सूर्य पूजा – 33, 96, 139
सूबे नाराण –218
सूर्य राय – 42, 295
शेख शादी – 90
सेंडिस साहब – 196
सेतु – 163
सेनराज वंश – 179, 180
सेना – 218
सेना नायक – 171, 176
सोंटा – 161
सोंटा बरदार – 161
सोनामुडा – 128, 190
सैनिकों का श्रेणी विभाग – 171, 193
सैन्य संख्या – 171
सौम्य – 83
स्वर्ण ग्राम(सुवर्ण ग्राम) – 68, 180, 181, 269
स्वधर्म फा – 105, 107, 109, 110
स्वप्नादेश – 125, 126, 127

(ह)

हन्टर साहब – 177
हदा के लोग – 216
हनुमान ध्वज – 152
हर – 26, 95
हर गौरी संवाद – 4,70
हर प्रसाद शास्त्री – 166
हरि – 18, 26, 95, 132, 139
हरिण – 57
हरिद्वार – 7, 272
हरि का ध्यान – 140
हरिपुर – 85
हरि मिश्र – 180, 181
हरिराय – 91, 92, 188, 195, 207

प्रल–316
हस्त चिन्ह(पंजा) – 150, 156
हस्तिना – 5, 109, 161, 162, 165, 167, 198, 273
हस्ती(सम्राट) – 164
हावर – 100
हाकालुकी हावर – 100, 105
हांकला कुकी – 100, 101
हामराज – 39, 174, 199, 296
हामतार फा – 49, 208, 296

हम्मीर / हाम्बीर मल्ल – 68
हालाम – 136
हिमती – 195, 207, 208
हिमालय – 30, 85, 130, 139
हिमालय का ध्यान – 143
हिऐन सांग – 194
हीरापुर – 69, 273
हीरावती – 14, 16, 131 150, 296
हीरावंत – 55, 296
हीरावंत खाँ – 175
हूजुरिया – 217
हुताशन – 30
हूण – 201
ऋषिकेश – 29
हेड़म्ब – 11, 14, 20, 22, 23, 24, 26, 36, 47, 48, 91, 169, 172, 185, 187, 205, 206, 273
हेड़म्बेश्वर – 37, 46, 47, 205
हैहय वंश – 165
होम का गर्त(गाथ) – 106, 108

(क्ष)

क्षत्रिय – 84, 89
क्षितीश वंशावली – 111
क्षीरोद सागर – 29, 145

भूमिका

श्री राजमाला व राजमाला त्रिपुरा का राजन्य वर्गो का इतिहास है। भारतवर्ष के सुप्राचीन राजवंश की यह इतिकथा प्रथम लहर से चतुर्थ लहर, सुपंडित श्रीयुक्त काली प्रसन्न सेन विद्याभूषण ने, राजा के आदेशानुसार निविष्ट चित् में सम्पादन किया था। इस महाग्रन्थ के प्रकाशन के लिए राजधानी अगरतला में राजमाला कार्यालय था एवं उस स्थान से इस महान ग्रन्थ के मुद्रण की व्यवस्था की जाती थी। राजमाला, महाकाब्यिक राजइतिहास ने जनप्रियता के शीर्षस्थान को प्राप्त किया था। पार्वत्य त्रिपुरा सहित चाकला रोशनाबाद के राजभक्त जनसाधारण के प्रत्येक गृह में यह ग्रन्थ शोभित होता था। राजन्यवर्गो का यह सुबृहत् विष्मयकर इतिहास शुधुमात्र राजाओ की कीर्ति कहानी नहीं है, बल्कि त्रिपुरा के राजतन्त्र, अर्थ सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास भी वर्णित है। इस सुमहान आकार के ग्रन्थ मे, जो चिरकालीन गवेषना के हिसाब से देश–विदेश मे विशेष आदर को प्राप्त होता आ रहा है, उस हिसाब से यह ग्रन्थ अत्यन्त मूल्यवान है।

लेकिन वेदना व परिताप की बात है, त्रिपुरा के राजतंत्र ने अवसान के बाद आज भी इस सुप्राचीन जनप्रियतम ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण हेतु किसी प्रकार का उद्योग नही किया अतः ग्रन्थ विलुप्ति की तरफ अग्रसारित हो गया।

अतएव त्रिपुरा के इच्छुक जनसाधारण, उक्त ग्रन्थ की पुनर्मुद्रण हो, इस वासना सयत्न में आशा व आग्रह करते आ रहे है। विशेषतः त्रिपुरा व त्रिपुरा के बाहर राजमाला के अनुरागी पाठक, गवेषणक, इतिहास सचेतन मानुष, शिक्षक, छात्र, छात्रांए त्रिपुरा के राजतन्त्र का समकालीन इतिहास के बारे जानने के विशेष रुप से इच्छुक है। इस समस्त विषय का अनुधावण करके त्रिपुरा सरकार का उपजाति गवेषणा केन्द्र मे श्री राजमाला के चारों लहरों को क्रम से पुनर्मुद्रण की सिद्वान्त ग्रहण किया गया है। वर्तमान अंश श्रीयुक्त कालीप्रसन्न विद्याभूषण सम्पादित श्री राजमाला प्रथम लहर है। उक्त लहर का प्रकाशन साल 1336 त्रिपुसब्द (1926 AD) है।

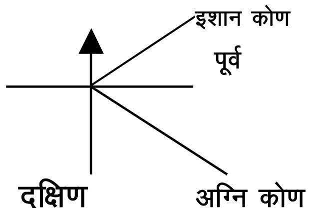
उम्मीद करता हूँ कि राजमाला की पुनःमुद्रित प्रथम लहर सभी लोगों के प्रत्याशा पूर्ण करने में समर्थ होगी।

इति
भवदीय
अगरतला — जे.डी.त्रिपुरा
26 जनवरी 2003 — अधिकर्ता
उपजाति गवेषणा केन्द्र
त्रिपुरा सरकार

प्रल–317
शुद्धि पत्र
मैछिली
हेड़म्ब
गौड़
छाम्बुल
खलंमा
त्रिपुराब्द
~~मेलच्छ~~ म्लेच्छ
द्रुह्यु या दुहयु द्रुहयु – शुद्ध शब्द है
रांगामाटी मुर्शिदाबाद से बारह मील दक्षिण में गंगा के पश्चिम तीर पर स्थित है। इसका दूसरा नाम ''कर्ण सोना'' या ''कर्ण सेन पुरी''
प्रागज्योतिष का ही वर्तमान नाम आसाम है।
प्रागज्योतिषपुर में(गोहाटी में)
कामरुप से भगा दिया था। राज्य भ्रष्ट नरपति के ज्येष्ठ पुत्र ने वर्तमान नागा पहाड़ में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, यही प्राचीन या कृत्रिम हेड़म्ब राज्य था। दीमापुर ही उनका आदिम राजधानी थी। उसी खोए राज्य कामरुपपति के कनिष्ठ पुत्र अग्रज की तरह आधुनिक काछाड़ के उत्तरांश में द्वितीय राज्य की स्थापना की
कोपल(ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर त्रिवेग या त्रिवेणी नगर में संस्थापन पूर्वक यहाँ अपनी राजधानी प्रतिष्ठित किया था।
अर्थ वेद –शिल्प शास्त्र

कांचली या कांचाली
वयन –बुनना
सनद या सनन्द
देवडी और देउड़ाई –कामाख्या देवी के पूजकों की उपाधि देवडी है।(2) देवडी और देउड़ाई एकार्थ वाचक शब्द है। खास तौर से दोनों ही देवता के पुजारी हैं। अतएव ये दोनो शब्द ''देवल'' शब्द के अपभ्रंश लगते हैं।

ममारक या मोमारक !!!!!!!!!!!!!!
प्राचीन काल में ध्वज(पताका) को ''बाणा'' कहा जाता था। उसी बाणा शब्द से चन्द्र बाण, त्रिशूल बाण आदि कहे जाते हैं।
अग्नि कोण – दक्षिण पूर्व दिशा



खलंमा या खलंमा
बरबक्र या बरवक्र
आराकान(रंगुन)

पूर्वभाष के शुरु के पृष्ठों को पुनः नम्बर दें

अनुक्रमणिका के न. चैक करें

फोटो लगाए

Two years before the foundation of Calcutta, it (Sagor Island) contained a population of 2,00,000 souls, which in one night in 1688 was swept away by an inundation.

Calcutta Review -No. XXXVI

foundation of Calcutta was laid in 1690AD

ब्रह्मपुत्र नदी का नामान्तर कपिला होने पर भी कपिला नामक और एक नदी का अस्तित्व पाया जाता है। यह नदी गोहाटी से कुछ ऊपर जाकर ब्रह्मपुत्र में आत्म–सर्मपण किया है।(**Pargiter**) पार्जिटार साहब के अनुसार इसका प्राचीन नाम ''कृपा'' है।
आसाम के लोग मणिपुर राज्य को ''मेखली देश'' कहते है।

कुशियारा नदी बरबक्र के अंश विशेष का नाम है।
कारु कार्य खचित (सूक्ष्म कार्य रचित)
मेहेर कुल प्राचीन नाम ''कमलांक''
650 त्रिपुराब्द में ई0 सन् 1240 था।
1332 बंगला सन् होने पर 1335 त्रिपुराब्द होगा अतः केवल बंगला सन् से तीन वर्ष आगे का फर्क होता है। 590 ई0 सन् में यह सन् प्रचलित हुआ था।

लेखक की अन्य पुस्तके

1	1 RAJMALA Royal Size 462 page With fotoF page isbn to upload 220826
2	2 RAJMALA Royal Size 454 page With fotoF page isbn to upload 220826
3	3 RAJMALA Royal Size 457 page With fotoF page isbn to upload 220826
4	4 RAJMALA Royal Size 182 page With fotoF page isbn to upload 220826
5	book tripura at a glance HINDI fin NOV21 ISBN
6	
7	Banda History 00 front page bnd hist
8	Banda History 00.0 Banda History Index addhyay
9	Banda History 1.01 Etihasik Sanrachana o atihas
10	Banda History 1.02 Etihasik Sanrachana Gosai Himmat Bahadur etc
11	
12	Banda History 2.01 Bhaugolic
13	Banda History 2.02 Nadi Bandh Dam
14	Banda History 2.03 Minrals Soil
15	Banda History 2.04 Mitty Soil Bhumi prakar
16	Banda History 2.05 Patha Pahad ke Prakar
17	Banda History 2.06 Talab Nahar Nale
18	Banda History 2.07 Rain Jal Samasya
19	Banda History 2.08 Muhalle Namkaran
20	Banda History 2.09 Mandir and other Religious places
21	Banda History 2.10 Jansankhya Census 1901 1961
22	Banda History 2.11 Animal, Birds, Trees, Shrubs, Herbs Forests
23	
24	Banda History 3.01 Aarthik Sanrachana Economic Structure
25	Banda History 3.02 Krashi Agricultural Structure
26	Banda History 3.03 Mahua chirongi
27	Banda History 3.04 Tourism Paryatan mandir musium forest jungle
28	Banda History 3.05 Lok Hast shilp Kausal bazar Vyapaar Handicraft & trade
29	Banda History 3.06 Transport Yatayaat Sadak Rail Jal
30	Banda History 3.07 pichhadapau Backwardness Reason and Solutions
31	Banda History 3.08 pichadapan Backeardness - Industry, Causes & solution
32	Banda History 3.09 Pichhadapan Aatmhatya Backeardness Causes & solution
33	Banda History 3.10 Akal sukha Drought, Femine- Causes & solution
34	
35	Banda History 4.01 Bhaasha Sthaniya Boliya Language & Local Dialects
36	Banda History 4.02 NEWSPAPER Hist
37	
38	Banda History 5.01 Raaja va Rajnaitik Parivesh Kingdom & Political Scenario
39	Banda History 5.02 Fort Durg kile garh makaan Fort & Selected Building
40	
41	Banda History 6.01 aavaas gramin Rural Housing, LifeStyle
42	Banda History 6.02 Saanskratik Sanrachana Cultural Cunstruct
43	Banda History 6.03 gramin devata Reti Revaz
44	Banda History 6.04 Reti Revaz Rasm lokjeevan
45	Banda History 6.05 Sanskar 16 Sacred Rites
46	Banda History 6.06 16 sringar 16 Traditional Adornments

47	Banda History 6.07 Aabhushan Gudana Metal Craft Ornament Tattoo
48	Banda History 6.08 Veshbhusha Pahnava Attire
49	
50	Banda History 7.01 manoranjan cinema kavi Enterainment
51	Banda History 7.02 Tyohar Festival Celebration
52	Banda History 7.03 Lok chitra kala Folk Painting Art
53	Banda History 7.04 Lok Geet Folk Song
54	Banda History 7.05 Lok Natya Folk Theatre
55	Banda History 7.06 Lok Nratya Folk Dance
56	Banda History 7.07 Lok Sangeet Folk Music
57	Banda History 7.08 Lok Vadya yantra Musical Instrument
58	Banda History 7.09 kahaani Folk Tales
59	Banda History 7.10 Lok Kahavate muhavare Folk ProverbSayings Idioms
60	
61	Banda History 8.01 Food Bhojan va Bhojan Vyastha Food & Dish
62	Banda History 8.01 Food ODOC Sohan halva p8
63	Banda History 8.02 health in Food med geet Food & Health
64	Banda History 8.03 Jaati va Vyastha Caste System
65	Banda History 8.04 Lok Visvas Lokachaar Kuretiya Folk Faith, Ethos & Bad Customs
66	
67	Banda History 9.01 CLUB Maidan Club & Ground
68	Banda History 9.02 Purane Bhavan Old building
69	
70	Banda History 10.01 sambhranto ka bhramanan Elite Visit
71	
72	Banda History 11.0 Sandarbh Sabhaar Saujanya Context Reference Greatfully Courtesy